विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका UGC Approved Journal - UGC Care Review
ISSN NUMBER : 2455-9717 RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
शिवना प्रकाशन
वर्ष : 9
अंक : 33
अप्रैल-जून 2024
मूल्य 50 रुपये

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

शिवना साहित्य समागम

॥ अलंकरण समारोह ॥

वर्ष : 2021, 2022 एवं 2023

अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान

शिवना कृति सम्मान

शिवना अलंकरण समारोह

चित्रमय झलक

अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान

शिवना कृति सम्मान

शिवना अलंकरण समारोह

चित्रमय झलक

अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान

शिवना कृति सम्मान

कार्यक्रम में श्रोताओं की गरिमामयी उपस्थिति की चित्रमय झलक

संरक्षक एवं सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

कार्यकारी संपादक एवं क़ानूनी सलाहकार
शहरयार (एडवोकेट)

सह संपादक
शैलेन्द्र शरण, आकाश माथुर

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं प्रकाशकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
दूरभाष- +91-7562405545
मोबाइल- +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल- shivnasahityiki@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना साहित्यिकी'
http://www.vibhom.com/shivnasahityiki.html
फेसबुक पर 'शिवना साहित्यिकी'
https://www.facebook.com/shivnasahityiki
एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यावसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्य प्रदेश) रहेगा।

शिवना प्रकाशन

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका
वर्ष : 9, अंक : 33, त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2024
प्रकाशन तिथि - 31 मार्च 2024
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका
(UGC Approved Journal - UGC Care Review)
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

आयोजन के छायाचित्र
राहुल पुरविया

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक जुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, जोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।

इस अंक में

शिवना साहित्यिकी
शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका
वर्ष : 9, अंक : 33,
त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2024
प्रकाशन तिथि - 31 मार्च 2024

संपादकीय / शहरयार / 3
व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 4
शोध आलोचना
संदिग्ध
मनोज मोक्षेन्द्र / तेजेन्द्र शर्मा / 5
समय के बाहर पतझर है
राजेश सक्सेना / नीलोत्पल / 8
इन दिनों जो मैंने पढ़ा
सुधा ओम ढींगरा
पॉर्न स्टार और अन्य कहानियाँ
वीणा वत्सल सिंह
एक्स वाई का ज़ेड
प्रभात रंजन
देह गाथा
पंकज सुबीर, अनीता दुबे / 11
पुस्तक समीक्षा
चलो फिर से शुरू करें
अनीता सक्सेना / सुधा ओम ढींगरा / 13
पंख से छूटा
अभिषेक मुखर्जी / प्रज्ञा पांडेय / 15
थके पाँव से बारह कोस
डॉ. नीलोत्पल रमेश / नीरज नीर / 18
सर्जक, आलोचक और कोशकार डॉ. मधु संधु
डॉ. राकेश प्रेम / डॉ. दीप्ति / 20
आधी दुनिया पूरा आसमान
राधेश्याम भारतीय / ब्रह्म दत्त शर्मा / 22
जंगल
नीरज नीर / अशोक प्रियदर्शी / 24
ज़ोया देसाई कॉटेज
अनीता सक्सेना / पंकज सुबीर / 26
अरविंद की चुनिंदा कहानियाँ
रूपसिंह चन्देल / डॉ. अरविंद / 28
ऐ वहशते-दिल क्या करूँ
पंकज सुबीर / पारुल सिंह / ३०
देह-गाथा
गीताश्री / पंकज सुबीर / 32
मुझे सूरज चाहिए
पारुल सिंह / आकाश माथुर / 33
डोर अंजानी सी
मीरा गोयल / ममता त्यागी / 34
लौट-लौट कर आते हैं परिंदे
गोविन्द सेन / राजेंद्र नागदेव / 35
कि आप शुतुरमुर्ग बने रहें
ब्रजेश कानूनगो / शांतिलाल जैन / 36
ब्रजेश कानूनगो चयनित व्यंग्य रचनाएँ
ओम वर्मा / ब्रजेश कानूनगो / 37
कुछ यूँ हुआ उस रात
रतन चंद 'रत्नेश' / प्रगति गुप्ता / 40
शिवना प्रकाशन की घोषणाएँ / 27
नई पुस्तक
टूटी पेंसिल
हंसा दीप / 79
सुनो नीलगिरी
शैली बक्षी खड़कोतकर / 109
पीली पर्ची
शिवेन्दु श्रीवास्तव / 166
शोध आलेख
डॉ. शिवेन्द्र कुमार मिश्र / 39
कमलेश / 41
सुनील कुमार / 44
सना फ़ातिमा / 47
कु. मोनिका / 50
देवेन्द्र कुमार / 53
शुभम कुमार / 56
स्मृति कुमारी / 59
डॉ. मीनाक्षी राना / 62
माने अनिल लक्ष्मण / 65
घनश्याम साहू / 68
इन्दुबाला / 71
डॉ. जागृति बहन ए पटेल / 74
प्रकाश महादेव निकम / 77
पिंकी देवी / 80
कुलदीप कुमार / 83
पिंकी / 86
पल्लवी देवी / 89
डॉ. रीता दूबे / 91
डॉ. हेमंतकुमार ए पटेल / 93
डॉ. सीमा रानी / 95
ईशान चौहान, प्रेरणा त्यागी, लक्ष्मीकांत नागर / 97
नागेन्द्र रावत, राजपाल सिंह नेगी, मेधा भट्ट / 101
डॉ. मंटू कुमार साव / 104
डॉ. पीयूष कमल / 107
अंकित उछोली / 110
अनुपम सिंह, नवनीत कुमार सिंह,
डॉ. अरुण कुमार / 113
डॉ. पूजा / 116
डॉ. सविता / 119
षमीना. टी / 122
शैलेन्द्र जाटव / 125
अभिषेक बेंजवाल, आयुषी थलवाल / 128
डॉ. दीप सिंह / 131
मनीषा देवी / 134
जितेन्द्र कुमार कुशवाहा, आशा शौग्राक्पम / 137
राजेश कुमार / 140
डॉ. मेरली. के.पुन्नुस / 143
डॉ. राजेश कुमार / 146
अमन वर्मा / 149
प्रो. राखी उपाध्याय / 152
अरुणिमा ए.एम / 155
डॉ.संतोष गिरहे / 158
अभिरामी सी जे / 161
डॉ. गिरीश कुमार के के / १64
डॉ. ज्योति सिंह / 167
ममता देवी / 170
श्वेता कपूर / 173
रमेश वर्मा, विवेक नैथानी / 176
सागर जोशी एवं देवेन्द्र सिंह / 179
शिबानी राजभूषण / 182
डॉ. ज्योति / 184
डॉ. धीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव / 187
भाष्करानन्द पन्त / 190
डॉ. अमित गौतम, डॉ. मनीषा / 194
डॉ. राजेश कुमार, सौरभ कुमार सिंह / 198
दीपक सिंह, आयुषी थलवाल / 202
प्रो. चंद्रकांत सिंह, आशीष कुमार मौर्य / 206

संपादकीय

कुछ न कुछ नया होते रहना चाहिए

शहरयार
शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.
466001,
मोबाइल- 9806162184
ईमेल- shaharyarcj@gmail.com

इस बार जब सीहोर में शिवना प्रकाशन 'शिवना साहित्य समागम तथा अलंकरण समारोह' आयोजित हुआ तो कुछ नई घोषणाओं के साथ प्रकाशन ने कुछ नए रास्तों पर चलने का अपना मंतव्य ज़ाहिर किया। ये सारी घोषणाएँ अमेरिका से ऑनलाइन कार्यक्रम से जुड़ीं सुधा ओम ढींगरा जी ने कीं, जो प्रकाशन की मार्गदर्शक हैं। सबसे पहली घोषणा तो यह की गई कि शिवना प्रकाशन द्वारा एक 'शिवना नवलेखन पुरस्कार' इसी वर्ष से प्रारंभ किया जाएगा। यह पुरस्कार 35 वर्ष से कम आयु के लेखकों को प्रदान किया जाएगा। प्रकाशन द्वारा युवा लेखन को सामने लाने का यह एक विनम्र प्रयास है। इस पुरस्कार के लिए हर वर्ष अलग-अलग विधाओं में पांडुलिपियाँ आमंत्रित की जाएँगी, उन पांडुलिपियों में से चयन समिति द्वारा एक श्रेष्ठ पांडुलिपि का चयन किया जाएगा, जिसे नवलेखन पुरस्कार भी प्रदान किया जाएगा तथा उस पांडुलिपि का प्रकाशन भी शिवना प्रकाशन द्वारा किया जाएगा। चयन समिति द्वारा जो अन्य पांडुलिपियाँ भी प्रकाशन हेतु अनुशंसित की जाएँगी, उनका भी प्रकाशन किया जाएगा। इस हेतु शीघ्र ही प्रकाशन द्वारा विज्ञप्ति जारी की जाएगी। सुधा ओम ढींगरा जी द्वारा की गई दूसरी घोषणा में कहा गया कि शिवना प्रकाशन अमेरिका के सरकारी वेंडर के रूप में रजिस्टर्ड हो चुका है तथा शिवना प्रकाशन द्वारा पुस्तकों की पहली खेप प्रदान भी की जा चुकी है। अब शिवना की किताबें अमेरिका की पब्लिक लाइब्रेरीज़, जो हर शहर, हर कस्बे में हैं, हिन्दी प्रेमियों और पाठकों को मिलेंगी। यूनिवर्सिटीज़ के हिन्दी विभागों में तथा पुस्तकालयों में स्टूडेंट्स को अब शिवना प्रकाशन की पुस्तकें मिल सकेंगी। यह एक बड़ी सफलता शिवना को मिली है, जिसके लिए सुधा ओम ढींगरा जी तथा डॉ. ओम ढींगरा जी द्वारा पिछले कई वर्षों से प्रयास किए जा रहे थे। अब जाकर उन प्रयासों को मूर्त रूप में सफलता प्राप्त हुई है। अमेरिका में शिवना प्रकाशन की हिन्दी पुस्तकें वहाँ के पुस्तकालयों में उपलब्ध होंगी तो सुधा ओम ढींगरा जी सहित उन सभी प्रवासी हिन्दी सेवियों का सपना साकार होगा, जो वहाँ रह कर हिन्दी को स्थापित करने के लिए जाने कितने वर्षों से संघर्ष कर रहे हैं। वहाँ के विश्वविद्यालयों में हिन्दी को भाषा के रूप में स्थान दिलवाने के लिए किया जा रहा संघर्ष अब परिणाम प्रदान कर रहा है। वहाँ के विश्वविद्यालयों में हिन्दी को भाषा के रूप में पढ़ाया जाने लगा है। एक और महत्त्वपूर्ण घोषणा सुधा ओम ढींगरा जी ने की कि शिवना प्रकाशन की पुस्तकें अब पुस्तक रूप के अलावा ऑडियो बुक तथा ई-पुस्तक के रूप में भी उपलब्ध होंगी। इसको लेकर शिवना प्रकाशन तथा इस क्षेत्र में कार्य कर रही अग्रणी संस्था 'रचनाएँ' के बीच क़रार हो चुका है। शिवना की कुछ पुस्तकें ऑडियो बुक के रूप में रचनाएँ के प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध भी हो चुकी हैं। इस क्रम में जल्द ही और भी पुस्तकें रचनाएँ के प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध होंगी। तकनीक के साथ क़दम मिला कर चलने के इस प्रयास में एक कड़ी और जुड़ने जा रही है, शिवना प्रकाशन की अपनी वेबसाइट shivnaprakashan.com के रूप में अब शिवना प्रकाशन अपनी वेबसाइट लॉन्च करने जा रहा है। शिवना द्वारा अपनी किताबों की बिक्री अपनी वेबसाइट से भी की जाएगी। साथ ही यहाँ शिवना के लेखकों के परिचय सहित उनके बारे में पूरी जानकारी भी उपलब्ध रहेगी। शिवना प्रकाशन की तरफ़ से सुधा ओम ढींगरा जी द्वारा यह घोषणा भी की गई कि शिवना प्रकाशन इस वर्ष से एल.एल.सी. कंपनी के रूप में शिवना प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड के नाम से काम करना प्रारंभ देगा। डॉ. ओम ढींगरा, जो एस ओ वी थेराप्यूटिक्स फार्मा कंपनी के प्रेज़िडेंट और कई फार्मा कंपनियों के बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर हैं, इस कंपनी के सी.ई.ओ. के रूप में कार्य करेंगे। साथ ही शिवना प्रकाशन इस वर्ष से अमेरिका में भी एल.एल.सी. के रूप में कार्य करना प्रारंभ कर देगा। यह कुछ विनम्र से प्रयास हैं, जिनको आने वर्ष में हम पूरा करने की कोशिश करेंगे, आप सभी के सहयोग से।

आपका ही

शहरयार

व्यंग्य चित्र-

काजल कुमार
kajalkumar@comic.com

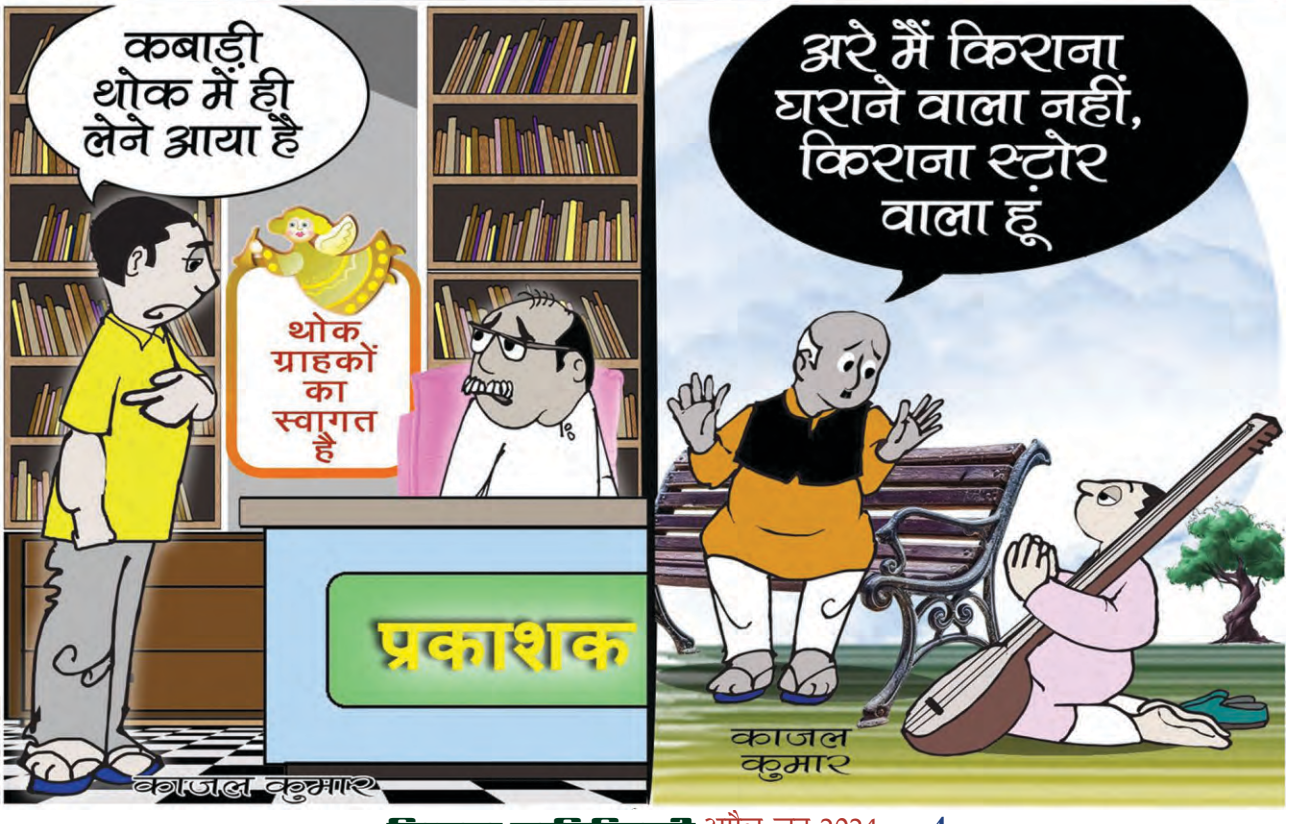

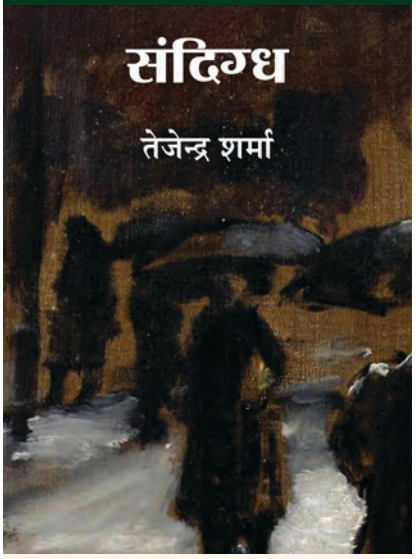

(कहानी संग्रह)

संदिग्ध

समीक्षक : मनोज मोक्षेन्द्र

लेखक : तेजेन्द्र शर्मा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

मनोज मोक्षेन्द्र
145, ओमिक्रोन - 1ए, पॉकेट-ए, ग्रेटर नोएडा, गौतम बुद्ध नगर 201310 उप्र
मोबाइल- 9910360249
ईमेल- drmanojs5@gmail.com

तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों में विश्वव्यापी स्पंदनशील समाज और ज़िंदगी की इतनी पर्तें होती हैं कि उन्हें खोलते हुए एक पूरा संसार चलचित्रित होने लगता है। कथा-साहित्य का रसिया पाठक उनके कथादेश में भ्रमण करते हुए किंचित भ्रमित-सा होने लगता है- यह आत्ममंथन करते हुए कि इस विविधधर्मी कथाकार के जिस कथा-संसार में वह डूब-उतरा रहा है, उसमें वह कहाँ तक विचरण कर सकेगा? अनजाने में किसी बहुमंजिली इमारत में घुस कर, वहाँ एक चौरस हवादार दालान की तलाश में इधर-उधर की सीढ़ियाँ चढ़ने-उतरने के जोश में दिलचस्प भटकाव जैसी उनकी कहानियाँ हमें बहला-फुसलाकर जहाँ ले जाती हैं, वहाँ हमें पहुँचकर बिल्कुल थकान नहीं आती। बल्कि, यही जी करता है कि हम उनके कथा-संसार में यूँ ही, पूरे होशो-हवास में चलते रहें।

तेजेन्द्र के नव-प्रकाशित कथा-संग्रह "संदिग्ध" की पहली कहानी में संवेदना की पर्त आरंभ से ही खुलती है। कहानी 'संदिग्ध' एक मुस्लिम युगल शाहिद-शाहिदा के संबंधों को मर्मिकता से विश्लेषित करती है जिसमें कथाकार निरपेक्ष होकर दोनों के आपसी रुझानों के बारे में बतियाता है; किंतु, जब वह शाहिदा के उसके पति के प्रति निश्छल प्रेम को रूपायित करता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका झुकाव शाहिदा की ओर ही है। तब वह दांपत्य की भावना से विमुख शाहिद के साज़िश-तंत्र का भाँडाफोड़ बड़ी तसल्ली से करता है। शाहिद की कामुकता, दाम्पत्य विश्वास को चूर-चूर कर शाहिदा को लंदन में दोबारा न घुस पाने के लिए रचे गए षड्यंत्र, सिमोना के साथ अपने अवैध संबंधों को स्थायित्व प्रदान करने की उसकी क्रूर मानसिकता, अपने बच्चों के प्रति उसका उचाटपन, पत्नी शाहिदा को आतंकवादी की सूची में डालने की उसकी तिकड़मी कुप्रवृत्ति जैसी बातों पर कथाकार बेबाकी से रोशनी डालता है। अंत में, शाहिद के द्वारा बुने गए षड्यंत्र-जाल में उसके ख़ुद के फँसने के ख़ौफ़ को कहानीकार बड़े ही स्वाभाविक ढंग से वर्णित करता है। शाहिद में अपने भारतीय उपमहाद्वीप की जीवन-शैली और इसकी संस्कृतियों के प्रति कोई रुझान दृष्टिगत नहीं होता है जैसा कि एक प्रवासी कथाकार द्वारा लिखी गई कहानियों में साधारणतया दिखाई देता है। अंधे स्वार्थ में शाहिद का इंसानियत से विमुख होना भीतर तक कचोट जाता है।

'वन्स ए सोल्जर' कहानी संवेदनाओं के प्रस्फुटन में एक चमत्कृत करने वाली कहानी के रूप में रेखांकित की जाएगी। इस कहानी को पढ़ते हुए हमें विदित होता है कि तेजेन्द्र संवेदनाओं के व्यापार में बेहद विशिष्ट कथाकार हैं। उनके अनुसार, आत्मा की तरह संवेदनाएँ भी कभी मरती नहीं। संवेदनाएँ अभौतिक तो होती हैं; किंतु, क्षणभंगुर नहीं। क्या बात है! बिल्कुल, अज़ीबो-ग़रीब प्रयोग- इतना कि पाठक या तो उन संवेदनाओं से दो-चार होने के बाद ग़श खा जाए या यह सोच-सोच कर खुशफहमी पाल बैठे कि 'अजी, मौत भी बेहद मामूली ख़्याल है! शरीर के बाद भी हमारी संवेदनाएँ बरकरार रहेंगी और हमें भावनाओं के ज्वार-भाटे में बहाती रहेंगी।' सो, बकौल तेजेन्द्र, मृत्योपरांत उन संवेदनाओं में जीवित मनुष्य का अहं (ईगो) भी बना रहता है। उसे अपने पद और हैसियत का पूरा ग़ुमान होता है। दिवंगत दीपक की आत्मा का सोचना हैरतअंगेज़ है-'कैप्टन बिली मेरे सीनियर थे तो मरने के मामले में मैं उनसे एक दिन वरिष्ठ था... जबकि मैं पिछले एक दशक से हमेशा कैप्टन बिली मेहता की बातों को अपने लिए निर्देश समझता था...'

एक सही व्यक्ति परिस्थितिवश कैसे ग़ुमराह होकर आपत्तिजनक आदतें और गतिविधियाँ अपना लेता है-जबकि ऐसा वर्णित करना एक कथाकार के लिए सहज नहीं होता है; तेजेन्द्र ऐसा करने की कुव्वत रखते हैं। इस दृष्टि से उनकी एक कहानी 'अंतिम संस्कार का खेल' को चर्चा के केंद्र में रखना समीचीन प्रतीत होता है। इस चरित्र-प्रधान कहानी में नरेन का चरित्र और स्वभाव ऐसा ही है। यद्यपि कथाकार उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया रखता है तथापि उसके मित्र और सहकर्मी रॉज़र के साथ उसके संबंधों को वह बड़े चुटीले ढंग से उकेरता है। नरेन में रॉज़र के प्रति दोस्त के रूप में जो बनावटी रुझान देखने में आता है, वह विस्मयकारी है।

बहरहाल, रॉज़र की वाइफ कार्ला तथा डॉटर लिली का उसकी मौत पर शोक का प्रदर्शन करना- पाश्चात्य कृत्रिम जीवन-शैली के नाटकीय रूप को रेखांकित करता है। मृत रॉज़र भले ही नरेन का बहुत घनिष्ठ मित्र न रहा हो; लेकिन, वह उसके प्रति आत्मीयता का जो स्वांग रचता है, वह भारतीय संस्कृति में पले-बढ़े किसी व्यक्ति के लिए स्वाभाविक नहीं है। लेकिन, वह ऐसा करता है ताकि वह ब्रिटेन के अंग्रेज़ी समाज को हीन साबित कर सके।

तेजेन्द्र के लिए भारत से पाकिस्तान को अलग करके देखने की गुस्ताख़ी उनका पाठक कदापि न करे तो ही उसके और कथाकार के लिए बेहतर होगा, क्योंकि इससे मूल भारतीयता के पोषक तेजेन्द्र को ठेस पहुँचेगी। 'बेपरदा खिड़की' कहानी में वे पाकिस्तान को भारत की गलबहियाँ में रखते हैं। कोरोना काल में हीथ्रो एयरपोर्ट पर पहुँचकर अजय और शकील क्वारन्टीन में रखे जाने वाली सूची में अपने नामों की शिनाख़्त करते हैं तो उनकी प्रतिक्रियाएँ देखने लायक होती हैं। यूँ तो भारत के अजय को पाकिस्तान के शकील से किसी भी बाबत कोई गुरेज़ नहीं है। शकील पर क्या फर्क पड़ता है कि अजय उसे हेयर-ड्रेसर के बजाए नाई कहे? लेकिन, शकील के किसी अन्य फेसबुकिया व्यक्ति द्वारा नाई कहे जाने पर कोई ग़ैर-भारतीय (पाकिस्तानी मुसलमान) अभिप्रेत होता है जिसमें सेक्युलरिज़्म की दख़लंदाज़ी नाजायज़-सी लगती है। चुनांचे। तेजेन्द्र को लगता है कि भारत-पाक रिश्ते सियासत की तिगड़मबाज़ी के कारण बिगड़ते हैं। दोनों देशों के लोगों के संबंध में तल्ख़ी इसी वजह से आती है इस कहानी में कथाकार लंदन की गतिविधियों का जीवंत ब्योरा देता है। प्रवासियों की जीवन-शैली पर अपना ध्यान टिकाते हुए लंदन की जीवन-शैली पर फब्तियाँ कसता है। उसी शैली में ढल चुके प्रवासियों की असहानुभूतिपूर्ण और असंवेदनशील प्रवृत्तियों को भी निशाना बनाता है। अजय वर्मा, कुणाल, पटेल साहब, मिसेज़ पटेल, ललिता बहन और गोपी सहेली जैसे पात्रों के व्यावसायिक क्रिया-व्यापार को वर्णित करते हुए कथाकार लंदन में प्रवासी जीवन का तसल्ली से जायज़ा लेता है।

हास्य, मनोविनोद और कटाक्ष—ये तीनों तेजेन्द्र की कहानियों में आवेष्टित हैं। 'मैं भी तो वैसा ही हूँ' कहानी में प्रवासी और ग़ैर-प्रवासी परिवेशों की पड़ताल करते हुए वह लंदन में एक ऐसे प्रवासी (भारतीय) पात्र की कहानी कहता है जिसकी हालत कमोवेश पढ़े-लिखे बेरोज़गार भारतीय जैसी है जिसके व्यक्तित्त्व में एक ख़ास किस्म का ग़ुरूर है। बीबीसी में पत्रकार और न्यूज़ रीडर रह चुके उस व्यक्ति का मनोविज्ञान अज़ीबोग़रीब है। बीबीसी (ब्रिटिश ब्रॉडकॉस्टिंग कॉर्पोरेशन) को बिहार ब्रॉडकॉस्टिंग कॉर्पोरेशन बताकर उसे जो सुकून मिलता है, वह तब उड़न-छू हो जाता है जबकि बीबीसी जैसी वैश्विक संस्था की सेवा से वह विरत हो जाता है और सड़क पर आ जाता है। पर, उसे सभी प्रवासियों से घोर ईर्ष्या है जिन्हें वह लंदन की आबोहवा को ख़राब करने का दोषी मानता है। वह लंदन को मूल लंदनवासी की नज़रों से ही देखता है। बीबीसी में पत्रकार के रूप में पत्रकारिता करते हुए, जो अदने से ट्रांसलेटर की नौकरी जैसा है, जब वह पेंशनर हो जाता है तो उसे लगता है कि यह पेंशन तो बस बुढ़ापे (जिसे वह स्वीकार करना नहीं चाहता) में 'किसी तरह ज़िंदगी को खींचती रहती है।' उल्लेखनीय है कि उसकी मन:स्थिति जीवन से ऊबते हुए फिर भी तसल्ली से ज़िंदगी गुज़ारते हुए किसी भारतीय या किसी पाकिस्तानी जैसी ही है।

तेजेन्द्र की कहानियों में ज़िंदगी की कितनी परतों को तहा-तहा कर करीने से सजाया गया है, इसका अंदाज़ा तो उनकी हर कहानी को पढ़कर ही लगाया जा सकता है। लंदन की पृष्ठभूमि में जीवन कौन से रंग लेकर उभरेगा, उसे रूपायित करने का बीड़ा तेजेन्द्र ने शिद्दत से उठाया है। वहाँ काफ़ी-कुछ अच्छी बातों के अतिरिक्त, चंद बेहद बुरी बातें भी हैं- मसलन चोरी की आदत। 'रेफ्रीजिरेटरों में डाका' कहानी में लंदन के लोकल स्टेशनों के किचन में रखे फ्रिजों से कर्मचारियों की कर्मचारियों द्वारा टिफिन से खाना चुराने की वाहियात आदत को लेखक आड़े हाथों लेता है। इसे पढ़ते हुए हमें तो ए. जी गार्डिनर की कतिपय कहानियाँ और संस्मरण याद आ जाते हैं जिनमें गार्डिनर साहब किसी अदने से विषय पर भारी-भरकम बवाल खड़ा करते हुए तिल को पहाड़ बनाने का माद्दा रखते हैं।

कहानी 'सहयात्री' में पृष्ठभूमि बदल जाती है। यह लंदन नहीं, दिल्ली है जहाँ अमर सिंह भल्ला सेवा-निवृत्त होकर द्वारका के एक अपार्टमेंट में अपनी पत्नी नीलम के साथ अपने उस नए घर में आकर रहने लगते हैं, जिसे दोनों कुछ ऐसे सजाते-सँवारते हैं जैसे कि वे एक नया उत्फुल्ल जीवन जीना चाहते हों। यह कहानी एक ऐसे पिता की भी है जो गाढ़े पसीने की अपनी सारी कमाई अपने बच्चों की परवरिश में लगा देता है। कथाकार, वृद्ध दंपती के अति सामंजस्यपूर्ण गृहस्थ जीवन का सूक्ष्म विवरण बड़ी तसल्ली से देता है। वे रोमांटिक बाते करते हैं, 'एक्सिस' के जूते पहन सुबह की सैर-सपाटा करते हैं, मज़े से सुबह की चाय की चुस्कियाँ लेते हैं, हास्य-व्यंग्य से माहौल को जीवंत बनाए रखते हैं, दोपहर का भोजन हरेकृष्ण मन्दिर में करते हैं तथा स्वयं को राष्ट्रवाद के जज़्बे से स्नात रखते हैं।

कहानी 'टूट गया नाता...' में कथाकार जनसामान्य के स्तर पर बौद्धिक होने का प्रयास करता है। इस कहानी की पृष्ठभूमि लंदन में अवस्थित है जहाँ सलमान नाई की दुकान खोलता है और जहाँ भाषा को लेकर विवाद को सामने रखा जाता है। भाषा संबंधी संवाद-विवाद में कहानी पाठकीय स्तर पर मनोरंजक और कुछ-कुछ बौद्धिक भी हो जाती है। कहानी कहने वाला पात्र और सलमान दोनों भारत-पाकिस्तान के बीच भाषाई और राष्ट्रीय सौहार्द की सेतु के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। हिन्दी और उर्दू भाषाओं के बीच जो तालमेल है, वही इस सामंजस्य का आधार है। हाँ, अंग्रेज़ी तो लंदन में बस विचार-विनिमय का माध्यम-भर है। दोनों के बीच धर्म और मज़हब कोई बाधा नहीं हैं। भाव-संप्रेषण के लिए कोई लिपि नामत: शाहमुखी और देवनागरी भी अवरोध पैदा नहीं करती। सलमान की दुकान के नाम का 'नूर'

होना भी किसी ख़ास मज़हब से प्रेरित नहीं है। कहानी में पात्र आद्योपांत पंजाबियत के प्रभाव वाली हिन्दी बोलते हैं, संभवत: ऐसा कर पाने में तेजेन्द्र सहज भी अनुभव करते हैं क्योंकि उनकी भी मूल भाषा पंजाबी ही है। चुनांचे, इस चरित्र-प्रधान कहानी में कथाकार ने सलमान के चरित्र को बड़ी शिद्दत से निखारा है। एक लंबी अनुपस्थिति के बाद, मुफ्त में बाल काटने के पश्चात उसकी प्रतिक्रिया किसी को भी भावुक बना देती है

कहानी 'सवालों के जवाब' में कोरोना से होने वाली सामूहिक मौतों और इनसे उत्पन्न भयावह स्थितियों का बयान लेखक ने सक्षम रूप से वर्ण्य भाषा में किया है। संग्रह की अधिकतर कहानियों की भाँति इस कहानी का मुख्य पात्र भी 'नरेन' ही है जिसके संबंधों को एक अंधी लड़की मोनिका के साथ रूपायित किया गया है। इसके अतिरिक्त, कोविड महामारी से निपटने के लिए सुविधाओं और साधनों की अत्यधिक न्यूनता पर लेखक के साथ-साथ हम भी आँसू बहाने को विवश हो जाते हैं। यह अमानवीय स्थिति विश्वव्यापी है। इस कहानी में कंपनियों और अन्य कार्य-स्थलों पर कोरोना-पीड़ितों के लिए उनकी संवेदनाशून्य मानसिकता को ज़ोर-शोर से रेखांकित किया गया है। प्रवासियों के लिए तो कोरोना-काल के दौरान, क्वारेंटाइन में रहने और अपने देश न जा पाने की विवशता सार्वत्रिक है जिससे सारी दुनिया हिली हुई थी।

कहानी 'रिश्तों की गरमाहट' रिटायर्मेंट की स्थिति पर लिखी हुई 'सहयात्री' के अलावा इस संग्रह की दूसरी कहानी है। व्यक्ति की सेवानिवृत्ति के बाद उत्पन्न एकाकीपन को उकेरती यह कहानी वरिष्ठ नागरिकों के उचाटपन पर लिखी एक ख़ास रिपोर्ट जैसी है। रिटायर्मेंट की यह स्थिति और भी चिंताजनक हो जाती है जबकि कोविद-19 जैसी संदिग्ध महामारी दुनियाभर के निर्दोषों को काल का ग्रास बना रही हो। अस्तु, सेवानिवृत्त राजीव कपूर साहब, जिनके पुत्र-पुत्री अमरीका-कनाडा में ऊँचे पदों पर कार्यरत हैं, अकेले ही रहना चाहते हैं। उनका मानना है कि वह 'अकेलेपन का शिकार नहीं हैं।

किसी लेखक का भावुक मन कितना संवेदनशील होता है, यह इस बात से प्रतिपादित होता है कि संग्रह की अधिकतर कहानियाँ कोरोना महामारी की भुतही छाया से प्रकोपित हैं, जिन्हें तेजेन्द्र बार-बार अपनी कहानियों में लाते हैं क्योंकि उससे मानवता का रक्त बहा है। कहानी 'शोक संदेश' में भी तेजेन्द्र ने कोरोना द्वारा किए जा रहे थोक में नरसंहार के चित्र अपने कलम-कैमरे से खींचे हैं। इस कालजन्य विभीषिका के बीच यह कहानी रिश्तों की पड़ताल भी करती है ताकि कहानी में कहानीपन बना रहे। ऐसे समय में भी ज़िंदगी की आपाधापी को विराम नहीं मिलता। ऐसे दुर्दिन में भी लंदन का विकासशील बहु-सांस्कृतिक माहौल रवानगी पर है।

कहानी 'बदलेगी रंग ज़िंदगी' पाकिस्तान की आर्थिक विपन्नता, शिया-सुन्नी के बीच वैवाहिक संबंधों तथा एक मुस्लिम परिवार के हालत-हालात पर सूक्ष्म विवेचन पेश करती है। ऐसी खुशफहमी पाली जा सकती है कि आधुनिकता की तूफानी बयार शिया-सुन्नी के मध्य भेदभाव को मिटा देगी। पर, अगली सुबह शिया मस्जिद में गोलियों से कई लोग मारे जाते हैं। इस कहानी में कथाकार विभिन्न सकारात्मक-नकारात्मक बातों को आसन्न स्थितियों में पास-पास रखते हुए एक दिलचस्प कथानक बुनता है। बँटवारे और हिंसा में हिंदुओं के शिकार का भी ब्योरा है। फेसबुक के जरिए लंदन की लड़की आमना से निकाह के लिए लंदन जाने का उतावलापन है: 'अगर असद विलायत में सैटल हो जाता है तो समझो कि हमने तो हज़ कर लिया।' कथाकार शिया-सुन्नी के ऐतिहासिक झगड़े पर भी खूब ब्योरे देता है

कहानी 'शुभांगी सुनना चाहती है...' आरंभ से ही कौतुहल पैदा करती है। राज का एक लकवाग्रस्त लड़की से प्रेम-निवेदन करना विस्मय पैदा करता है जबकि उक्त स्त्री को राज द्वारा व्हट्सएप संदेश के जरिए सुंदर घोषित किया जाना उसे अज़ीबो-ग़रीब मन:स्थिति में ला खड़ा करता है, 'तुम्हें मेरे लकवाग्रस्त चेहरे की विकृत हँसी में सुंदरता कैसे दिखाई दे गई!' वह एक ऐसी आधी-अधूरी लड़की है जिसे 'सपनों के बार-बार धराशाई होने से' बहुत डर लगता है। नि:संदेह, वह एक महत्त्वाकांक्षी लड़की थी जो ज़िंदगी की ऊँची उड़ान भरना चाहती थी; लेकिन, वह तो 'पैदा ही एक डिफ़ेक्टिव पीस के तौर पर हुई थी।' भोपाल त्रासदी में ज़हरीली गैस के रिसाव के कारण वह कान की बीमारी कोलोस्टीटोमा की शिकार हुई और फिर सर्जन की ग़लत सर्जरी ने उसे बहरा बनाकर उसके चेहरे को लकवाग्रस्त कर दिया। फिर, कान की ही बीमारी गंभीर होकर टिनिटस मे परिवर्तित हो गई जिससे तेज़ सीटी जैसी ध्वनि सुनाई देने लगी।

यदि कहानी संग्रह 'संदिग्ध' की अंतिम दो कहानियों को प्रेम कहानियाँ माना जाए तो यह बेजा न होगा। 'ख़्वाहिशों के पैबंद' कहानी दो देशों- इंग्लैंड और रिपब्लिक ऑफ़ ऑयरलैंड के प्रेमियों के बीच के संबंध को उकेरते हुए आगे बढ़ती है। सैली स्मिथ इसे एक 'हादसे' के तौर पर देखती है। इस प्रेम-संबंध को पढ़कर, पाठक को इंग्लैंड के महाकवि विलियम बट्लर यीट्स और ऑयरलैंड की स्वतंत्रता-सेनानी मॉड गॉन के ट्रैजिक प्रेम-संबंधों की याद आ जाएगी जिसमें यीट्स टूटकर गॉन के प्रेम में मतवाला था जबकि गॉन उससे आख़िर तक बड़ी हृदयविहीनता से किनारा करती रही। किंतु, यहाँ स्थितियाँ बिल्कुल भिन्न हैं।

तेजेन्द्र शर्मा अपनी सभी कहानियों में पात्रों की राय के अतिरिक्त अपनी भी राय देकर कहानी के वातावरण, देशकाल और पात्रों की मन:स्थितियों के बारे में तसल्ली से बतियाते हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि तेजेन्द्र कथानक की पृष्ठभूमि का निर्धारण सोच-समझ कर करते हैं। कथानक के विस्तार में वह अधिकतर एक ही कथावस्तु को आरंभ से अंत तक रखने की कोशिश करते हैं; ढेरों उपकथाओं का समावेश न करके वह कहानी को जटिल और दुर्बोध होने से बचाने के लिए कृतसंकल्प नज़र आते हैं। वे समकालीन कथा-साहित्य के लिए ज़रूरी कथाकार हैं।

000

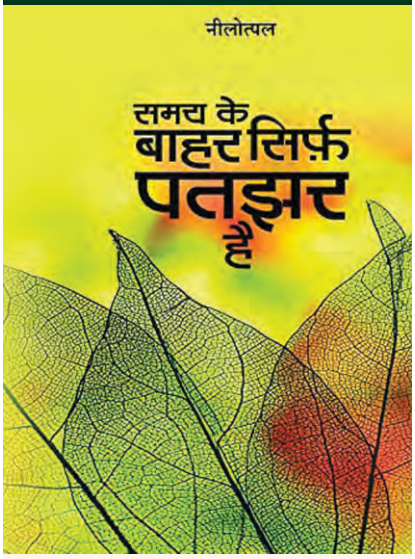

(कविता संग्रह)

समय के बाहर पतझर है

समीक्षक : राजेश सक्सेना
लेखक : नीलोत्पल
प्रकाशक : लोकोदय प्रकाशन, लखनऊ, उप्र

राजेश सक्सेना
48- हरिओम विहार कालोनी, तारामंडल के पास, उज्जैन म. प्र. 456010
मोबाइल- 7869408734
ईमेल- rajlag1519@gmail.com

नीलोत्पल के तीसरे कविता संग्रह "समय के बाहर पतझर है "की कविताएँ पाठक को पठन की गांभीर्यता का बोध कराती है या कहें कि कविता पढ़ने के लिये पाठक की तैयारी का अहसास कराती है, ये कविताएँ सिर्फ नीलोत्पल ही नहीं किसी भी कवि के रचना संसार में प्रवेश का तरीका सिखाती हैं, कई कविताएँ हमें शिल्प, कला, भाषा और सौंदर्य की दृष्टि के प्रति जाग्रत करती हैं, कई कविताएँ हमें विचार प्रक्रिया पर पकड़ के लिये आगाह करती हैं, कुछ कविताएँ हमें राजनैतिक चेतना के पक्षधरता के लिये आगाह करती है! नीलोत्पल का यह तीसरा संग्रह अपने शीर्षक से पाठक के मन में जगह बनाकर कौतुहल और आकर्षण का भाव उत्पन्न करता है, "समय के बाहर पतझर है" अब सामान्य तौर पर यह लगता है कि समय के बाहर तो कुछ भी नहीं है सब कुछ किसी न किसी समय में ही समाया हुआ है, हर काल का अपना अतीत है वर्तमान है कुछ अवधि है, समय के बाहर तो शून्य भी नहीं है, युगों और मन्वन्तरों में भी कुछ तो समय है, तो फिर कवि ऐसा क्यों कह रहा है कि समय के बाहर पतझर है, क्या यह कवि के अपने अवचेतन जगत् के भीतर की चिंताओं, द्वंद्वों का भी कोई लोक है जो बाह्य लोक को इस रूप में देख रहा है और वह समय में नहीं घट रहा है यही सोचते हुए जब इस संग्रह की शीर्षक कविता पढ़ो तो समझ आती है कि कवि अपनी व्यंजना में यह शीर्षक से ध्वन्यात्मक संकेत दे रहा है कि पतझर ही यथार्थ है जो सचमुच बचा रह जाता है, वसंत, हेमंत, वर्षा या शीत तो एक क्षणिक स्वप्न की तरह है उनका रचा हुआ आकर्षक, सौंदर्य एक आभासी समय है वस्तुत: पतझर ही है जो यथार्थ भी और नैसर्गिक भी है!

नीलोत्पल अपनी कविताओं में अधिकांशत: कुछ अ अक्षर का अत्यधिक प्रयोग करते हैं जैसे, अलय, अनाम, अलक्षित, अव्यक्त, अ रंगे, अशाब्दिक, अज्ञात, असत्य, असंख्य, अस्पष्ट, अभाव, अनुपस्थित इत्यादि, इससे लगता है कवि स्वयं को भी अनाम, अलक्षित रखना चाहता है कि वह स्वयं को महत्त्वकांक्षा से मुक्त रखना चाहता है यह कवि की सदाशयता से भरी कामना ही कही जा सकती है !इस संग्रह की कुछ कविताओं में, "कीड़े"कवि को बार बार बाध्य करते हैं कि वह उनके प्रकृति में होने को कई कई तरह और अर्थों के साथ जीवन की क्षणिकता के दार्शनिक संदेश के साथ प्रकट करें। कदाचित् कवि ने कीड़ों के मार्फत यह कहने का काव्यमयी प्रयास किया है- कीड़े धरती के सबसे पुराने बाशिंदे हैं! / आप अमरता के लिये बैचैन हैं जबकि कीड़े रोज़ मरकर नई दुनिया बनाते हैं ! / लैम्प पोस्ट की सफ़ेद रोशनी में, / नन्हें कीड़े बाहर निकलते हैं, / उनकी गुँथी हुई समवेत आवाज़ें, / रात को भर देती है प्रेमिल गीतों से! / सुबह उनकी मृत देह के निशान, / नहीं मिलते पृथ्वी के रंगीन पृष्ठों पर, / लेकिन वे अ रचे गीत गुनगुनाते हैं / असंख्य प्रेमी एक अनंत आकाश में!

उक्त तीनों काव्यांश में कवि ने कीड़ों की उपस्थिति से जीवन की नश्वरता, क्षणभंगुरता के साथ साथ प्रेम का, गीत का संगीत का सृजन करने का भी संकेत दे रहा है, सबसे बड़ी बात यह कि कीड़े अपने कार्य और जीवन को निष्काम और अलक्षित रहने की तरह कर रहे हैं जो मानव समाज के लिये दृष्टांत है! इसी प्रकार "चींटियाँ" कविता में कवि ने उनके जीवन चक्र का सामाजिक बोध और सरोकार से भरे उनके प्रकृति व धरती से प्रेम के सुन्दर बिम्ब चुने हैं जहाँ शिल्प शब्दों की आभा में और अधिक चमकीले दिखते हैं- उनके पदचाप धरती पर / पूरी सावधानी से गिरते हैं! / यकीन नहीं होता जब / फूल गिरते हैं उनकी पदचापों की संगति पर! / बढ़ जाती है पृथ्वी की आश्वस्ति!

यहाँ कवि ने चींटियों की पदचाप के साथ फूलों के गिरने की जो साम्य या संगति बिठाई है उसमें दो बिम्ब के सम्मिलित सौंदर्य और उपमाओं का वितान पृथ्वी के प्रति कृतज्ञ भाव की प्रवृति भी दिखा रहा है साथ ही इस कोलाहल भरे वाचालिक समय में सबसे छोटे जीव अपने समय और हदों में किस तरह सौंदर्य और सृजन की दुनिया बना रहे हैं, जबकि उससे उलट मानव समाज अंधे विकास की अवधारणा में पृथ्वी को तहस नहस करता जा रहा है, सम्भवत: कवि इस कविता में प्रकृति पर्यावरण की वर्तमान दुरूह दुर्दशा से दुखी और संवेदी होकर चींटियों

के साधारण जीवन मूल्य से प्रकृति के लिये प्रेम का संवादी स्वर निकाल रहा है!

"उन क्षणों में" कविता परिकल्पना की एक ऊँची उड़ान से अपना फैलाव करती है जिसमें मछलियों के आसमान में उड़ने की उछाल है लेकिन फिर वह कविता तट पर लौटती है, जहाँ उसे घोंघे और आक्टोप्स में पृथ्वी का एँटीना दिखाई पड़ता है, घोंघे की देह पर एक कलगीनुमा छतरी के लिये कितनी सुन्दर उपमा प्रयोग की गई है, इसी में आगे यह कविता समुद्र के चुप और समय के इथर की तरह होने की भी रचना करती है, लेकिन इथर के समान समय के उड़ जाने का रूपक आता है तब कवि अंतरंग क्षणों में प्रिया के होठों के थरथराने के समय को भी इथर की तरह दर्शाने का प्रयास करता है, यहाँ इस गहराई को पकड़ना पाठक के लिये आसान नहीं है, वैसे कवि एक कविता में अव्यक्त भाव पाठक के लिये होते हैं यह कह चुका है, फिर आगे यह चुप या मौन, प्रेयसी के भीतर खो जाने से भी कम है ऐसा निरूपण करता है, यह कविता बिंब और आकल्पन की सुन्दर परिणति का गुलदस्ता है, लेकिन समुद्र मौन दिखाने की कविता की चेष्टा में कुछ कमी भी है क्योंकि समुद्र के पास आवाजें भी है और शोर भी उसके पास उत्प्लावन का कोल्हाहल है, तो लहरों की गूँज भी है! "अँधेरे की ओट से" इस कविता में कवि की बैचेनी या तड़प ने कविता में जिस तरह की ज़मीन घेरी है वह इंच दर इंच, क्षण दर क्षण कवि की धड़कनों की उद्वेलित वेदना की आवाज़ है- बैठा हूँ रात में बजती सिटीयों से / घबराए सन्नाटे में की सिहर देखते / एक किताब की खुलती / बंद होती खिड़की पर / युद्ध ने घेर लिया है / शांति, प्रेतों का पाठ लगती है, / किताबें हिंसक समय से / आज़ाद नहीं करा पाती

लेकिन यही सिर्फ एक रास्ता है, एक तरह से यह कविता समय की भयावह स्थितियों से निर्मित सामाज की दुरावस्था या दुर्गति और बदलाव के साथ रची जा रही दुर्भावना से विचलित होकर कवि ने लिखी है लेकिन वह किताबों के पढ़े जाने के रास्ते से अपने को संयमित करता है या आश्वस्त करता है कि जब ऐसा कुछ हो रहा हो हो तो किताबें हमें कुछ शांति दे सकती है, वैसे निर्मल वर्मा जी ने अपना एक लेख इसी शीर्षक से लिखा है "निरकुँशता और दासता में साहित्य" जिसमें इस तरह के काल में रचे गए साहित्य के बारे में विवेचना की गई है!

"तुम्हारी करुणा के द्वीप" माँ को समर्पित बहुत सुन्दर, मार्मिक कविता भी इस संग्रह में है जिसमें पूरा एक संसार है, बर्तन, झाड़ू की सीकें, दरवाजे, दीवारें सुतली, धागे, नमक और आटे के साथ माँओं की सुन्दर और करुणामयी तस्वीर कवि ने सँजोई है! "अस्पष्ट सुबह" कविता में कवि ने कोहरे में लिपटी सुबह का अत्यंत सुन्दर बिम्बों के साथ चित्रण किया है जहाँ प्रकृति में पत्तियाँ हैं लेकिन दिखाई नहीं दे रहीं, नदी का बहाव है जो पत्थर पर टकरा कर अपना प्रस्थान बिंदु तय कर रहा है, इसी तरह एक बहुत सुन्दर बिम्ब है जिसमें क्यारियों और उनके हरेपन को होठों की उपमा दी गई है, किन्तु यह सम्यक नहीं लगती क्योंकि होठों का रंग लाल है, मुझे लगता है सुन्दर लेकिन अतार्किक बिम्ब है साथ ही साथ यह एक श्रृंगारिक विचलन भी है!

एक कविता "अव्यक्त शब्द पाठक के लिये होते हैं" भी इस संग्रह में है कदाचित् यह कविता पाठकों के लिये रोचक व विचारणीय है क्योंकि कवि ने कविताओं में शब्दों के असंबद्ध होने या अव्यक्त रहने की रचनात्मक प्रवृति को पाठकीय विवेक की कसौटी के लिए छोड़ देने की तरफदारी की है!- सभी के बीच / हत्याएँ होती हैं / सुन्दर शहर / इसी तर्ज पर बनते हैं!

इस कविता में तीक्ष्ण अभिव्यंजना है कि दरअसल हम जो वस्तु लोक की बाहरी ख़ूबसूरती देख रहे हैं वह न जाने कितनी हत्याओं के कारण बनी है, जब सुन्दर शहरों या नगरों का निर्माण होता है तब न जाने कितने जीव जंतुओं की हत्या होती है कितने ही विस्थापित होते हैं, कई बार इस तरह की स्थितियों में मनुष्य भी आ जाते हैं कि विकास पर या सौंदर्य के नाम पर उन्हें खदेड़ दिया जाता है और इस संघर्ष में वे मारे भी जाते हैं आधुनिक समय में कालोनियों का निर्माण इसी तरह होता है एक महत्त्वपूर्ण प्राचीन आख्यानिक उदाहरण है पांडवों द्वारा खाँडवप्रस्थ को इंद्रपस्थ में बदलना जिसमें कई जीव के साथ नागजाति को इसका शिकार होना पडा था!

"संगति" शीर्षक कविता में प्रेम की उत्कट, उदात्त भावेच्छाओं का वस्तुपरक और प्रकृतिपरक चित्रांकन है और कवि का प्रेयसी के लिये चरम भटकाव है, इस कविता में मुद्रण की कुछ त्रुटियाँ हैं - मेरी अवस्था / खोए नाविक की है, / जो समुद्र के बीचो-बीच / याद करता है तुम्हें, / अंत में मैं भूल जाता हूँ कि / नावें तुम्हारे और मेरे बीच / डूब जाती है / समुद्र हमारी क़ब्र का नाम है!

उक्त काव्यांशों में जो वाक्य विन्यास की निरंतरता और गैप के स्थान की त्रुटि है यथा "याद करता है तुम्हें" के बाद गैप है जबकि अगली पंक्ति इसी की निरंतरता में होनी चाहिए इसी तरह "नावें तुम्हारे और मेरे बीच" की निरंतरता में "डूब जाती है" आना चाहिए लेकिन त्रुटि पूर्ण मुद्रण में यह यहाँ गैप दी गई है! इसी कविता में एक वाक्यांश की दो बार पुनरावृति हुई है - अज्ञात चीज़ें ख़ुशबुओं से भरी हैं, / फिर से यही पंक्तियाँ अगली बार दोहराई गई हैं / तुम अज्ञात चीज़ों की ख़ुशबुओं से भरी हो

"ऋतुओं के बदलाव पर" ऋत्विक कविता है जिसमें हर मौसम की सुन्दरता में सिमटे मोहक बिम्ब रचना कवि ने की है- "बिखरे पत्तों ने आँगन को / अधिक चित्तेदार कर दिया है, जैसे किलों के भीतर दीवारों पर / शेष रह गई बारिश की उनिंदी चमक

यहाँ दो ऋतुओं के यथार्थ परक रूपकों के लिये बहुत सुन्दर प्रकृतिजन्य बिम्ब कवि ने रचकर पिरोए हैं, जिसमें बिखरे पत्तों ने आँगन में जो चादर बनाई है वैसी है है जैसे कि बारिश के बाद दीवारों पर उसके निशान छूट गए हों! "छोटी चिड़ियाएँ पहाड़ों का अंतरंग पाठ करती है" इसमें कवि चिड़ियाओं की चहचाहट की प्रतिध्वनि को पकड़ रहा जो पहाड़ से इस तरह कोमलता की छुअन के साथ टकरा कर लौटती है कि जैसे पहाड़ों के

अंतरतम को छू रही हों या फिर उनके साथ एक अंतरंग पाठ कर रही हों !इसमें प्रेम का अद्वैत भी है जहाँ प्रेम को अजन्मा कहा गया है लेकिन फिर प्रेमियों की मृत्यु भी बताई गई है! पहाड़ किसको हराते है, नदियाँ किससे जीतती हैं, इस कविता में कवि ने जीतने की अभिलाषा से इतर एक गैर प्रतिस्पर्धा का भाव रखा है!

"समय हमारा क़ातिल है" इस कविता में कुछ अनुगूँज, एडम जग्यावस्की की एक कविता "प्रेम हमें मुक्त करता है और समय हमारी हत्या" की सुनाई देती है यद्यपि इसके शीर्षक में एक जैसी ध्वनि है किन्तु विषय वस्तु अलग है नीलोत्पल अपनी इस कविता में समकालीन यथार्थ की एक राजनैतिक अभिव्यंजना रची है - आश्चर्य नहीं कि / हत्यारा नहीं, / समय हमारा क़ातिल है / यह समय असुविधाजनक / लोकतंत्र से भरा है!

"सामान्य जीवन" जैसी कविता में कवि समय की रंगत को अव्यवस्थित रूप में देखते हुए, समय पर चढ़ी आभासी रंगत की चमक की तरफ इशारा करता है जहाँ चेहरे कैंची से काटे जा रहे हैं और उन्हें उन दिलों पर चस्पा किया जा रहा है जो मासूम और भीगे हुए हैं! इस कविता में कवि समय कि की परतों में झाँकने की कोशिश करता है, मौसम के ठंडे रहस्य में भी वह ठंडेपन की उस परिणति को देख रहा है जिसमें सब कुछ ठंडा हो चुका है और सब दुबके हुए हैं जैसे ठंडे मौसम में सबलोग दुबक जाते हैं, यह दुबकना व्यवस्था के भय का भी है, और दु:ख अवसाद, रुग्णता का भी है और इस झाँकने के प्रयास में कवि को सारे उपक्रम कमतर लगते हैं ! एक सुन्दर दृश्य फिर भी इस समय में देख लेता है वह यह कि एक असाधारण गीत उसे बस्ती के उठते हुए धुँए में नज़र आता है और वह उसे सुनता है नतीजतन सूर्य अपनी गति को मंथर करते हुए अनेक रंग छोड़ते हुए सांध्य सौंदर्य की छाप छोड़ते हुए जाता है, यहाँ कवि ने समय के रहस्य की अलग परत को देखा है जो साधारण बस्ती के चूल्हे जलने के धुँए में असाधारण गीत को पकड़ता है! यह कवि की कल्पना शक्ति की उड़ान है जो एक साथ दो ध्रुवों पर जाती है! इस कविता के निष्कर्ष में यह कथन अपनेआप में जीवन की साधारणता या सामान्य होने की स्थिति के बारे में आकर्षक है कि जीवन की पूर्णता असमाप्त कथनों में निहित है!

कविता -1 शीर्षक में कवि ने स्मृतियों को पृथ्वी की उदासी के उपचार का हेतु निरुपित किया है- मुद्दतों बाद कोई आकर बैठे/ सूनी कब्र पर / घाँसों में हलचल हो और / स्मृतियों का गीलापन / ढँक दे पृथ्वी की उदासी

यहाँ कवि ने स्मृतियों को संचारी भाव देने की कोशिश की है जिसमें स्मृतियाँ की भावुकता और आँसू, वैयक्तिक होकर भी केवल क़ब्र में दफन की उदासी नहीं बल्कि पृथ्वी की उदासी को भी हरती है, हालाँकि इसमें घाँसों शब्द का प्रयोग है लेकिन यह त्रुटि है क्योंकि घाँस ही बहु वचन है घाँसों कोई शब्द नहीं है, इसी कविता में कवि ने "हिमकणों के पराग" की उपमा अंकित की है लेकिन हिमकणो में पराग नहीं होते बल्कि फूलों में होते हैं, यहाँ भी कवि ने एक भ्रान्ति रची है जिसमें सौंदर्य का भाव गहरा है किन्तु तर्क संगत नहीं लगता, दरअसल नीलोत्पल अपनी कविताओं को प्रयोगों की ऐसी ज़मीन पर ले जाना चाहते हैं जिसमें भटकाव और असम्बद्धताओं के विन्यास की कला, रसिक पाठक के कल्पनालोक और सौंदर्यबोध को संवेदनशीलता के गहराई तक ले जाकर छोड़ दे!

संग्रह के अंत तक आते हुए "युद्ध और शांति" शीर्षक से छोटी बड़ी तकरीबन चौबीस कविताएँ हैं, यह एक विडंबना ही कही जा सकती है कि इन्हें पढ़ते हुए इस वक़्त में रूस युक्रेन युद्ध की क्रूरतम और भयानक परिणति के दृश्य हम देख रहे हैं, युद्ध और शांति जैसी महानतम कृति लिखने वाले लेखक लियो टॉलस्टॉय के देश के दो हिस्से युद्ध की आग में कूदे हुए हैं, ऐसे में नीलोत्पल जैसा कवि यहाँ दुनिया के इस कोने में युद्ध के ख़िलाफ़ अपनी कलम चला रहा है, इन कविताओं में वह सीमा पर चल रहे युद्ध के साथ, जीवन के हर मोर्चे पर चल रही जद्दोजहद को भी वह युद्ध की तरह मानते हैं, लड़ने वाले सैनिक के साथ साथ, किसान, छात्र, स्त्रियाँ, आम आदमी भी रोज़मर्रा के लिये युद्ध लड़ता है इसलिये केवल सैनिक ही नहीं कवि के भीतर भी चलता है एक युद्ध !

दरअसल युद्ध से शायद सबसे ज़्यादा मानसिक तौर आहत कवि, लेखक, कलाकार होते हैं यही बात हर वक़्त लागू होती है, लिहाजा नीलोत्पल भी इस बैचैनी से गुज़रते हैं! इन कविताओं में कवि लिखता है-

1) "युद्ध जीवन की सबसे बड़ी / विफलता का दूसरा नाम है"!

2)जिन्हें युद्ध चाहिए / अंत में मारे जाते हैं / जिन्हें युद्ध नहीं चाहिए / अंत में वे भी मारे ही जाते हैं युद्ध के बाद... /कोई उम्मीद नहीं बचती!

3)युद्ध के अनेक परिणाम हैं / लेकिन एक स्थायी है / कि यह कभी ख़त्म नहीं होता!

4) शांति के लिये / यदि युद्ध ज़रूरी है / तो ऐसी शांति भी अशांति है!

5) मैं इंकार करता हूँ / दुनिया के सारे युद्धों से / युद्ध करुणा का अंत है!

नीलोत्पल की इन पंक्तियों के बरअक्स यदि हम खोजें तो पाएँगे कि हर युद्ध के बाद फिर युद्ध होता है, महाभारत के बाद यादवों के वंश की लड़ाईयाँ हों या आधुनिक समय के दो विश्व युद्ध हों या अन्य सभी युद्ध इसलिये नीलोत्पल ठीक ही लिख रहे हैं कि युद्ध कभी ख़त्म नहीं होता, इसी तरह अंत में यह कि वह अपनी संवेदना और चित्त की पूरी शक्ति से युद्धों का पुरज़ोर विरोध करते हैं!

कुछ अन्य कविताओं में पीठ, विदा, स्वप्न, शहीद पार्क, उपहार जैसी कविताएँ भी पाठक का ध्यान आकर्षित करती हैं!

इस संग्रह में प्रेम और बारिश की व्यापक, विस्तारित अनुभूतियों की कविताएँ बहुतायत में हैं, इस आधार पर कहा जा सकता है कि समय के बाहर पतझर लेकिन कवि के भीतर प्रेम और बारिश है, संग्रह का आकर्षक आवरण और मुद्रण सराहनीय है, निश्चित ही ये कविताएँ कविता के पाठकों को नए उपमान, रूपकों और बिम्बों के अनूठेपन का आस्वाद देंगी ! कवि और लोकोदय प्रकाशन को हार्दिक बधाई!

000

इन दिनों जो मैंने पढ़ा

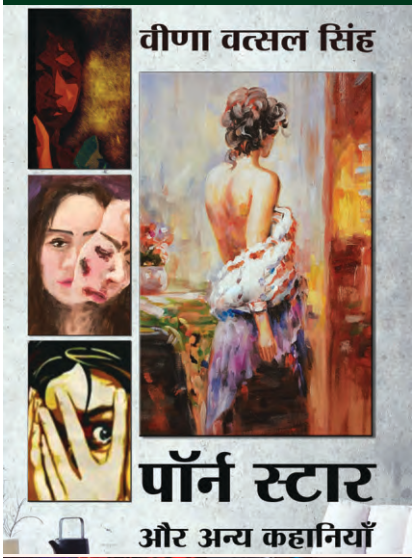

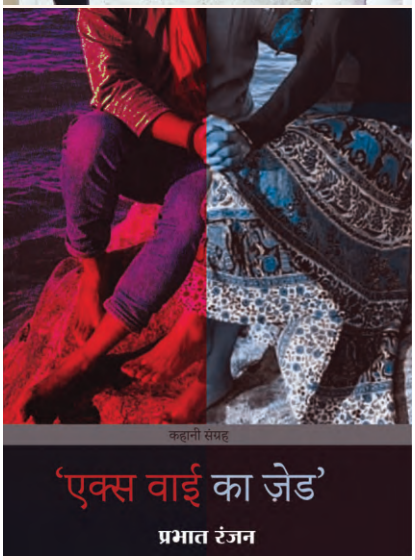

समीक्षक - सुधा ओम ढींगरा

पॉर्न स्टार और अन्य कहानियाँ

लेखक : वीणा वत्सल सिंह

एक्स वाई का ज़ेड

लेखक : प्रभात रंजन

देह गाथा

पंकज सुबीर (काव्य)

अनीता दुबे (चित्रांकन)

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोरिंस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

'पॉर्न स्टार और अन्य कहानियाँ' - वीणा वत्सल सिंह

शिवना प्रकाशन से प्रकाशित वीणा वत्सल सिंह की किताब 'पॉर्न स्टार और अन्य कहानियाँ' पढ़ीं। कुछ वर्ष पहले तक विदेशों में लिखी जा रहीं कहानियों को पढ़ कर अक्सर कहा जाता था, भारत में तो ऐसा नहीं होता, विदेशों में होता है। विभोम-स्वर के लिए रोज़ कहानियाँ पढ़ती हूँ, उन्हें पढ़कर और 'पॉर्न स्टार और अन्य कहानियाँ' पढ़ कर ऐसा लगा कि विश्व एक हो रहा है और संस्कृतियों का अंतर सिमिट रहा है। अब विदेशों में लिखे जा रहे साहित्य को प्रवासी साहित्य कहना बंद कर देना चाहिए; क्योंकि देश में भी अब वैसा ही लिखा जा रहा है। 'पॉर्न स्टार और अन्य कहानियाँ' में पहली कहानी पॉर्न स्टार एक लम्बी कहानी है जिसे लघु उपन्यास भी कह सकते हैं। बाक़ी पाँच कहानियाँ हैं, सरोज की डायरी के कुछ पन्ने, बॉडी मसाज, मैनिकिन कभी कुछ नहीं बोलती, अना, मालविका मनु । सभी कहानियाँ एक ही बैठक में पढ़ा ले गईं। कहानियों के विषय बड़े बोल्ड हैं। पॉर्न स्टार की अभिव्यक्ति भी बहुत बोल्ड है, विषय की ज़रूरत का ध्यान रखा गया पर अभिव्यंजना अश्लील कहीं नहीं होती। बोल्ड विषयों का यही डर रहता है। वीणा जी ने बड़ी कुशलता से कहानी को बुना है, लम्बी होने के बावजूद भी कहानी का निर्वाह अच्छा हुआ है बल्कि यह कहानी कहीं-कहीं उदास कर जाती है, जब पॉर्न स्टारों की मजबूरियाँ पता चलती हैं। लेखिका की कहानी पर पकड़ कसी हुई है,जो पाठक को बाँधे रखती है। सकारात्मक अंत अच्छा लगा।

'सरोज की डायरी के कुछ पन्ने' लिव इन रिलेशनशिप की असफलता को लेकर डायरी के रूप में लिखी गई एक और अच्छी कहानी है। ग़लतफ़हमी और आक्षेपों में छूटा प्रेम और टूटा दिल लिए सरोज सोच की ऊहापोह से मज़बूती से निकलती है।

'बॉडी मसाज' कहानी का शिल्प बड़ी कुशलता से गढ़ा गया है। मल्टीनेशनल कंपनी के कल्चर पर आधारित कहानी में पुरुष मानसिकता की कुंठाओं का भी चित्रण बख़ूबी किया गया है। पुरुष के लिए जो वर्जित नहीं महिलाओं के लिए वह वर्जित है, इस सोच को भी अच्छी तरह निभाया है।

'मैनिकिन कभी कुछ नहीं बोलती' पश्चिमी संस्कृति की होड़ पर बहुत बड़ा तमाचा है। पश्चिमी संस्कृति का भारत में अंधानुकरण किया जाता है। बिना सच जाने। अमेरिका में कभी लड़कियाँ मैनिकिन बन कर किसी मॉल में खड़ी नहीं होतीं, सिर्फ यूरोप में भीख माँगने के लिए लोग तरह-तरह के स्वरूप धर कर मैनिकिन बन सड़कों पर खड़े होते हैं । सावित्री मैनिकिन बनना चाहती है, उसे मॉल का मैनेजर मैनिकिन बना कर खड़ा कर देता है, बिना किसी सुरक्षा के।

अना और मालविका मनु स्त्री विमर्श के लिए कुछ बिंदु छोड़ती कहानियाँ हैं ।

वीणा वत्सल सिंह ने कहानियों के विषय बड़े नए चुने हैं, इन विषयों का निर्वाह भी कुशलता से किया है । संग्रह पठनीय है।

000

एक्स वाई का ज़ेड - प्रभात रंजन

प्रभात रंजन की कहानी 'जानकीपुल' पढ़ी थी, तभी से लेखनी से पहचान हो गई। शिवना प्रकाशन ने प्रभात जी की पुस्तक एक्स वाई का ज़ेड भेजी। मुझे अलग तरीके की किताब लगी। आप सोचेंगे, अलग तरीके की किताब कैसी होती ? क्या मतलब? बात दरअसल यह है कि मैं कोई आलोचक या समीक्षक तो हूँ नहीं, बस एक पाठक हूँ और पाठक भी ऐसी जो पुस्तकों को पढ़ने के साथ-साथ उनसे सीखती भी है। इस किताब में संस्मरण में कहानी और कहानी में संस्मरण का समन्वय कुशलता से किया गया है, जो मुझे अभिव्यक्ति और अभिव्यंजना दोनों तरह से भिन्न लगा इस पुस्तक को पढ़कर यह महसूस हुआ कि कुछ कहा-अनकहा यूँ भी लिखा जा सकता है। इस संग्रह में समरहिल में डनहिल, कभी यूँ भी आ मेरी आँखों में, यार को हमने जा-ब-जा देखा, धूप की गंध मृत्यु की गंध होती है, शॉर्ट फिल्म, वो हमसफ़र था मगर उससे

हमनवाई न थी, देश की बात देस का क़िस्सा, अनुवाद की ग़लती, पत्र लेखक, साहित्य और खिड़की, किस्सा छकौरी पहलवान और चौतरा हनुमान का, एक्स वाई का ज़ेड यानी ग्यारह रचनाएँ हैं। कई रचनाओं में अतीत यात्रा है, जो इन कहानियों को पूर्वदीप्ति और चेतन प्रवाह शिल्प के नज़दीक ले जाती हैं। इस पुस्तक में शिद्दत से किया गया प्रेम , प्रेम में मिली असफलता, एक अनुवादक की परेशानियाँ, लेखक का संघर्ष कई कुछ पढ़ने को मिलता है। प्रेम पर प्रभात रंजन ने बड़े प्यार से कलम चलाई है। भाषा बड़ी सरल है। सरल भाषा का जो प्रवाह होता है, लेखक उसमें बहा है, यही वजह है कि पाठक भी साथ-ही-साथ बहता जाता है। जैसे कि मैंने पहले कहा, कहन की शैली भिन्न है, उदाहरण -कुछ देखते हैं, कुछ याद आता है, सुनाओ तो कहानी लगने लगती है! लिख दूँ तो अजनबी लगने लगती है। आज सिगरेट ख़रीदने गया। दुकान के सामने डनहिल की पैकेट दिखा। मैं मार्लबोरो लाइट पीता हूँ। कहानी डनहिल सिगरेट की नहीं है लेकिन पूरी कहानी में किरदार वही है!संग्रह में जगह-जगह इस तरह की पंक्तियाँ बाँधती हैं और एक ही बैठक में किताब पढ़ी जाती है। किताब पठनीय है।

000

देह गाथा

पंकज सुबीर (काव्य)

अनीता दुबे (चित्रांकन)

देह यानी मानवीय देह, ईश्वर का करिश्मा है, कलात्मक कृति है। इस कृति को लेकर मानव मन कई जिज्ञासाओं से घिरा रहता है। पुरुष और स्त्री देह के रहस्यों को खोजता रहता है। देहों का आकर्षण चाहत को जन्म देता है। यही आकर्षण चाहत को कामना में और कामना रहस्य को खोजने की जिज्ञासा में बदल देती है। देहों की उत्पत्ति के साथ ही आकर्षण, जिज्ञासा और खोज का सिलसिला शुरू हो गया था। समय-समय पर कल्पना की उड़ान के साथ पेंटर के ब्रश और रंग, मूर्तिकार की छैनी और हथौड़ा तथा लेखक की कलम देहों के रहस्य उजागर करते रहे। हिन्दी साहित्य में पिछले कुछ वर्षों में स्त्री विमर्श के

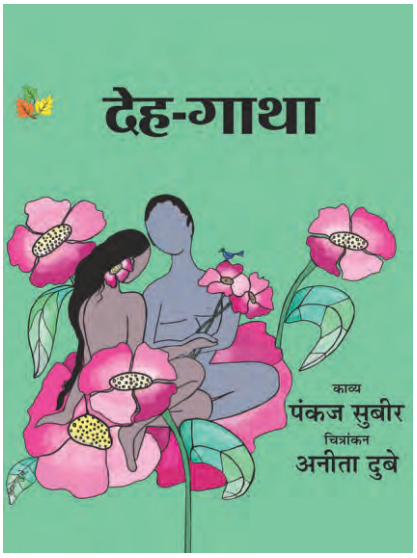

साथ-साथ देह विमर्श भी ज़ोर पकड़ रहा है। पर कम ही लेखक देहों के रहस्यों को खोजते हुए उसकी राह में आने वाली क्रीड़ाओं और क्रियाओं को मर्यादित ढंग से अभिव्यक्त कर पाते हैं। कई बार सनसनी फैलाने के लिए वर्णन किया जाता है। जैसे मैंने पहले कहा देह ईश्वर की कलात्मक कृति है, अगर इसके रहस्य खोलने के लिए या प्रेमाभिव्यक्ति के लिए शब्दों का चुनाव और रूपविधान सही साधा जाए तो अभिव्यक्ति अद्वितीय हो जाती है।

पंकज सुबीर ऐसे कहानीकार हैं जिन्होंने स्त्री-पुरुष देह और प्रेम के भिन्न-भिन्न स्वरूपों पर कई कहानियाँ लिखी हैं, खूब कलम चलाई है। 'अँधेरे का गणित' में दो नायकों ने अपनी देहों के अलग स्वर और ताल तलाशे हैं। पंकज सुबीर ने खूबसूरत बिम्बों और बेजोड़ भाषा से उनकी तलाश पूरी की। देहों के गणित को सुलझाती पंकज सुबीर की एक और चर्चित कहानी 'खजुराहो' है, जो जब 'हंस' में छपी थी तो उसने काफी धूम मचा दी थी। इस कहानी की भाषा भी असाधारण है। प्रतीकों में बात कह दी गई है। दोनों कहानियों में कहन शैली बेमिसाल है।

इसी वर्ष दिल्ली बुक फेयर में शिवना प्रकाशन से पंकज सुबीर का देह-गाथा खंडकाव्य रिलीज़ हुआ, जिसका चित्रांकन अनीता दुबे ने किया है।

सौ छंदों की यह लम्बी कविता है, जिसे खंडकाव्य भी कहा जा सकता है। एक ही विषय पर खंडकाव्य या लम्बी कविता लिखी जाती है। जिसे पढ़कर मैं छायावादी युग में लौट गई। जयशंकर प्रसाद और सुमित्रानंदन पंत की कविताओं के से रस में डूब गई।

है अतीत का धुँधला-दर्पण,
उसमें धूमिल-सा प्रतिबिम्बन
सदियों से ठिठका सुधियों में,
जीवन का वह प्रथम-प्रभञ्जन।
***
दीपशिखा का पा आमंत्रण
किया शलभ ने आत्म-समर्पण।
करता हो ज्यों कम्पित-कर से,
कोई दीपक जल में अर्पण।
तृष्णा की उन्मद-सरिता में,
दो पुष्पों का आत्म-विसर्जन।।
***
राग उठा था एक षडज से,
बहने लगा निनाद-धार में।
गायन एक मंद-सप्ताह का,
परिवर्तित हो चला तार में।
किंतु ताल थी सधी हुई-सी,
कहीं नहीं थी सुर की भटकन।

देह-गाथा में सोलह वर्ष की उम्र में किया गया प्रथम प्रेम, प्रथम प्रणय निमंत्रण, प्रथम स्पंदन, काव्य-नायक भूल नहीं पाया और सुधियों में लौट कर प्रथम प्रणय के क्षणों को याद करता है। किशोरावस्था में शारीरिक संबंध, आकर्षण, देह की जिज्ञासा और देह के रहस्यों की खोज, जिसमें नायिका की सहभागिता है, उनकी स्मृतियों में बार-बार लौटता है।

कस्तूरी-मृग के जैसे ही,
खोज अभी तक है सुगंध की।
देह प्रतीक्षरत है जैसे,
सदियों से उस प्रणय-बन्ध की ।

अनीता दुबे के एक-एक रेखांकन ने काव्य के छंदों को उभारा है। एक पृष्ठ पर रेखाचित्र और दूसरे पर छंद, पढ़ते हुए एक ऐसे रस का आनंद आता है, जिसे वर्णित नहीं किया जा सकता। छंदों की भाषा विलक्षण है, जिसने प्रणय क्षणों को कलात्मक रूप दे दिया है।

000

पुस्तक समीक्षा

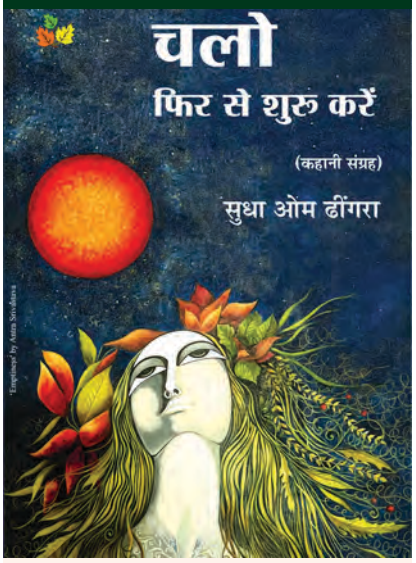

(कहानी संग्रह)

चलो फिर से शुरू करें

समीक्षक : अनीता सक्सेना
लेखक : सुधा ओम ढींगरा
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545
मोबाइल - 9806162184
ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

अनीता सक्सेना,
बी-143, न्यू मीनाल रेसीडेंसी,
भोपाल-462023 मप्र
मोबाइल- 9424402456

सुधा ओम ढींगरा की नवीन कहानी संग्रह है 'चलो फिर से शुरू करें'। पुस्तक का शीर्षक ही सन्देश देता है कि किसी भी चीज़ का अंत कभी नहीं होता, हर अंत के बाद एक नई शुरुआत होती है। जहाँ इंसान यह सोच लेता है कि अब ज़िंदगी में कुछ नहीं बचा वहीं से आशा की एक नई किरण फूटती है जो कहती है 'कोशिश तो करो, चलो एक बार फिर से शुरू करें।'

मुखपृष्ठ भी आशा के गुलाबी फूलों से सजा हुआ बहुत ख़ूबसूरत है। कुल दस कहानियाँ हैं। इन कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये दो संस्कृतियों का वर्णन करती हैं। ये दो ऐसी संस्कृतियाँ हैं जहाँ एक में नियम और क़ानून सबसे ऊपर हैं, जहाँ पुलिस का ख़ौफ़ इंसान को नियमों पर चलाता है, उनके जीवन को आसान बनाता है। पलक झपकते सुरक्षा भी प्रदान करता है। हिन्दुस्तान में यह सब इतना आसान नहीं है। कहानियों में ये दो संस्कृतियाँ कभी मिल जाती हैं और कभी अलग हो जाती हैं, पर कोई न कोई सन्देश देकर जाती हैं।

कहानियाँ दोनों जगह की हैं और दोनों देशों के जीवन और वहाँ की दिनचर्या को व्यक्त करती हैं। कहानियों के किरदार भी यादों में ही सही पर हिन्दुस्तान को शिद्दत से जीते हैं।

पहली कहानी 'कभी देर नहीं होती' मानव मन की उस कशमकश को व्यक्त करती है जो कभी समाज तो कभी परिवार के डर से कुछ बोलने से रुक जाता है, अपने मन की बात कहने में देर कर देता है। हिन्दुस्तान से शुरू हुई यह कहानी रिश्तों के उस प्यार की कहानी है जो कितने भी वर्ष बीत जाएँ पर एक अनजानी मज़बूत डोर से हमेशा बँधे रहते हैं।

'वे अजनबी और गाड़ी का सफ़र' नॉर्थ कैरोलाइना की ट्रेन से शार्लेट तक की यात्रा पर ले जाती है। जैसा मैंने कहा कि कहानियों में दो संस्कृति दिखाई देती हैं, तो यह अमेरिका की संस्कृति और वहाँ की क़ानून व्यवस्था को भी व्यक्त करती है। ट्रेन से यात्रा करना और वह भी अमेरिका की ट्रेन से, बहुत रोमांचित करता है। इस कहानी में थोड़ा सस्पेंस भी है, मन में

उत्सुकता बनी रहती है कि आगे क्या होगा ? सुधा जी इस तरह के सस्पेंस को बनाये रखने में सफल रही हैं। अंत तक पठनीय है कहानी।

'उदास बेनूर आँखें' दो दिलों की पवित्र भावनाओं को व्यक्त करती है। समाज में कैसे-कैसे लोग हैं जो भोले-भले लोगों को धर्म का चश्मा पहनाकर धोखा देते रहते हैं और इंसान फिर भी उन्हें पूजता है। कहानी दो संवेदनशील लोगों की है जिनकी आत्मा पवित्र है, जिनका प्यार सच्चा है। उनमें से एक अपने हृदय को खोलकर जब सच्चाई को सामने रखता है तो दूसरा उसका सच जानकार भी उसका तिरस्कार न करके उसे अपनाता है। दो देशों की संस्कृति और संस्कारों को दर्शाती अच्छी कहानी है यह।

'इस पार से उस पार' कुछ अलग तरह की कहानी है। इंसान की शक्ति से आगे जो एक तीसरी शक्ति होती है जिसे कोई देख नहीं सकता और न ही उसे किसी तरह की परिभाषा में बाँधा जा सकता है पर मानता हर कोई है। यह कहानी उसी विषय पर आधारित है।

पुस्तक की शीर्षक कहानी 'चलो फिर से शुरू करें' उन भारतीय परिवारों की कहानी है जो दो विभिन्न देशों के रहने वाले हैं। दोनों जगह की जीवन शैली में ज़मीन-आसमान का अंतर है। नतीजा वही होता है उनकी ज़िंदगी में दो संस्कृतियाँ कदम-कदम पर टकराती हैं। कभी दिनचर्या, कभी रहन-सहन और कभी पैसों के प्रति इंसान का लालच उसे चैन से नहीं जीने देता। इन सबका सबसे बुरा प्रभाव जब पड़ता है, आदमी का विवेक मर जाता है, उसकी मति भ्रष्ट हो जाती है। समय की मार से उबरना आसान नहीं, कहानी अतीत में चलती है पर अंत आते-आते वर्तमान में पहुँच जाती है। घर के बुज़ुर्ग कहते हैं 'जब जागो तब ही सवेरा' और कहानी का अंत भी यही कहता है कि 'जो बीत गया सो बात गई, कर लो अब शुरूआत नई'। समय कभी भी एक-सा नहीं रहता, इंसान को कोशिश हमेशा करना चाहिए। ये कोशिशें हीं कामयाब होती हैं।

'वह ज़िंदा है' मार्मिक कहानी है। एक माँ के दर्द की कहानी है जो नर्स और डॉक्टर की लापरवाही से बर्वाद होने की कगार पर आ पहुँचती है। उसी तरह से 'भूल-भुलैया' भी अमेरिका की पुलिस की मुस्तैदी को व्यक्त करती कहानी है। साथ ही यह सन्देश भी देती है कि सोशल मिडिया की, ख़ास कर वट्सएप की अफवाहों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। एक भारतीय और अमेरिकी लड़की में कितना फ़र्क होता है यह भी इस कहानी में नज़र आता है अमेरिका में लड़की जानती है उसके अधिकार क्या हैं और स्वयं की रक्षा ख़ुद करनी चाहिए जबकि हिन्दुस्तानी लड़की संकोची होती है। उसे परिवार और समाज दोनों का डर हमेशा सताता रहता है।

अगली कहानी 'कँटीली झाड़ी' में जिसमें प्रतिद्वंद्विता की पराकाष्ठ दिखाई है। दो लड़कियों की कहानी है। अमीर बाप की बेटी होने का नाजायज़ फायदा उठाना, दूसरे को नीचा दिखाना, उसे ग़लत तरीके से किसी स्कैंडल में फँसाना ये सब कहानी में मौजूद हैं। किसी का स्वभाव होता है अपने आप को सुपर बताना और दूसरे को नीचा दिखाना यही इस कहानी में भी है। कॉलेज की सहेलियों के बीच कहानी चलती है, जलन की मारी एक सहेली दूसरी को बदनाम करने में लगी रहती है, सब हरकतें करने के बाद सच्चाई खुलती है और पता चलता है कि सब शिकायतें, सिर्फ झूठ का पुलिंदा था। बावजूद इसके वह फिर भी अपनी हरकतों से बाज नहीं आती। फिर से ग़लत इलज़ाम लगाने लगती है। इस कहानी में यही बताया है कि एक लड़की ईर्ष्या में फँसकर दूसरी लड़की के लिए कठिनाइयों की कितनी कँटीली झाड़ियों का निर्माण कर देती है कि उसका जीना दूभर हो जाता है। एक की इर्ष्या और दूसरी की सतर्कता भी आपने बताई है; जिसका ध्यान रखना हर लड़की को या हर किसी को ज़रूरी है।

'अबूझ पहेली' भी उसी तीसरी शक्ति को दर्शाती कहानी है जो दिखती तो नहीं पर घटनाएँ कुछ ऐसी घटती हैं कि उस शक्ति पर विश्वास करना पड़ता है। कुछ लोग इसे अन्धविश्वास भी कह सकते हैं पर सच कहा जाए तो यह अनबूझ पहेली ही होती हैं।

'कल हम कहाँ, तुम कहाँ' युवा मन के पवित्र प्रेम की कहानी है, दो विपरीत ध्रुवों के मिलन की कहानी है, एक-दूसरे के प्रति झुकाव की कहानी है। दो समझदार दिल जो एक-दूजे की परवाह तो करते हैं पर निष्पाप करते हैं और अपने मन के भाव छुपाकर अपने प्यार को हमेशा के लिए अमर कर देते हैं।

विभिन्न मानवीय मूल्यों और भावनाओं को व्यक्त करती ये कहानियाँ कहीं न कहीं सच्ची हैं। पढ़कर लगता है कि ये किसी न किसी की ज़िंदगी की दुखद या सुखद घटनाएँ हैं जिन्हें सुधा जी ने अपनी कलम से कहानियों में बाँध दिया है इसी तरह से 'अबूझ पहेली या इस पार से उस पार' कहानी है वह कभी न कभी, किसी के जीवन में घटित हुई है। कुछ बातें जिनके बारे में लड़कियों और महिलाओं को जानकारी होना ज़रूरी है उन्हें सुधा जी ने अपनी कहानियों से बताया है निश्चित ही ये सबको एक रास्ता दिखाएँगी। सुधा जी हमेशा अपनी कहानियों/उपन्यास के माध्यम से अमेरिका के रहन-सहन और कानून का परिचय भी कराती हैं और यह पुस्तक तो दो देशों की संस्कृतियों को मिलाने में एक सेतु का काम भी कर रही है इसके लिए सुधा जी बधाई की पात्र हैं।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

पुस्तक समीक्षा

(उपन्यास)

पंख से छूटा

समीक्षक : अभिषेक मुखर्जी

लेखक : प्रज्ञा पांडेय

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

अभिषेक मुखर्जी
गुरु गोविंद सिंह अपार्टमेंट,
ब्लॉक - बी 50, बी.एल. घोष रोड,
बेलघड़िया,कोलकाता -700057, प.बं.
मोबाइल- 8902226567

"तितली के पंखों पर लगा रंग छूटकर उँगलियों में लग जाता है। यदि उसके पंख से रंग छूट जाएँ तो उसके पंख पारदर्शी हो जाते हैं वल्लरी, लेकिन उसके बाद तितली उड़ नहीं पाती। जब तक रंग होते हैं तब तक ही तितली सुन्दर लगती है....प्रेम भी तो ऐसा ही होता है !"

"पंख से छूटा" उपन्यास, स्त्री मन के कशमकश, वेदना और अन्तर्द्वन्द्वों को दर्शाता है। विफल प्रेम, एकाकी जीवन, विवाहेतर संबंध, अवैध संतान, एकल अविभावक - इन सभी विषयों के इर्द गिर्द घूम, भावनाओं के चक्रव्यूह में उलझे लोगों की मानसिक स्थिति को दर्शाता है। हिमाचल की पहाड़ियों और उपत्यकाओं के नैसर्गिक सौंदर्य की पृष्भूमि पर अवस्थित उपन्यास का "स्त्री-गृह" और उसकी कथा एक अद्भुत प्रेम-विषाद-मिलन मिश्रित सुरलहरी की सृष्टि और उसका अनुरणन करती है।

रामायण की अहल्या भी छद्मवेषधारी इंद्र को पहचान गई थी परन्तु अपनी क्षणिक दुर्बलता, अपने महामोह पर विजय न प्राप्त कर सकी। इस उपन्यास की नायिका, आधुनिक युग की अहल्या, वल्लरी भी यह भली-भाँति जानती थी कि उसका प्रेमी, अविनाश विवाहित है, एक किशोर पुत्र का पिता है, और उन दोनों के संबंध को समाज अवैध ही कहेगा परन्तु वह अपनी दुर्बलता को, अपने भावावेग को नियंत्रित न कर सकी। यहाँ एक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि क्या जीवन की एक क्षणिक दुर्बलता, एक महामोह के कारण हुये पदस्खलन के लिए सम्पूर्ण जीवन ही कलंकित हो जाएगा ? और क्या कलंक की कालिमा अधिक घनीभूत हो जाती है जब वह एक स्त्री हो ? क्या उस स्त्री को अपना सम्पूर्ण जीवन समाजच्युत होकर बिताना पड़ेगा? लेखिका ऐसा नहीं मानती हैं। तभी तो वल्लरी, पश्चाताप के अश्रु नहीं बहाती, न ही सम्पूर्ण जीवन अविनाश या पुरुष जाति को कोसने और श्रापित करने में नष्ट करती है। उसका मन कुण्ठाहीन ही रहा, पापबोध के बोझ से ग्रस्त नहीं। वह सत्य को, वास्तविकता को जानती समझती हैं। पाप -पुण्य, शुचिता -अशुचिता के प्रश्नों को लेकर आजीवन पश्चाताप के अश्रुजल भी नहीं बहाती। एकल अविभावक बन अपनी पुत्री, अक्षरा सिद्धि (अन्ना), का पालन पोषण किया। हाँ, उसका यह जीवनपथ आसान नहीं था, कंटकाकीर्ण ही रहा। कभी, बड़ी होती बेटी अपने पितृपरिचय पर प्रश्न करती तो कभी समाज की विषदृष्टि से वल्लरी का हृदय आहात होता परन्तु धीर-धीरे, अन्ना, नलिनी और मार्गरेट के सान्निध्य में, उस शैल 'स्त्री घर' के आश्रय तले और अपनी कॉलेज की नौकरी के माध्यम से वल्लरी से अपनी शर्तों पर अपना जीवन निर्वाह किया - अपना मेरुदण्ड सदा तान कर डटी रही। उसने भले ही अपने जीवन को एक सीमित घेरे में आबद्ध कर रखा, नि:संग रहीं पर समाज और जीवन से जुड़ी रहीं - एकाकीपन के कारण अवसादग्रस्त न हुई, विक्षिप्त न हुई। यही इस कथानकों का सबसे मज़बूत पक्ष है। नाम भले ही वल्लरी हो, पर उसने कभी पुरुष रूपी वृक्ष का सहारा न लिया। अपने नाम के अर्थ के बिल्कुल विपरीत जा कर, आजीवन सुकुमारी लता न बने रहकर एक सघन, छायादार वृक्ष के रूप में वह स्वयंप्रतिष्ठित हुई। इसी ममतामयी छाया तले न केवल अपनी बेटी का पालन पोषण और रक्षणावेक्षण किया अपितु अपने कॉलेज की कई लड़कियों को आत्मनिर्भर बनने की शिक्षा भी दी।

हाँ, पाठकों के मन में एक जिज्ञासा अवश्य आ सकती है। यौवन के प्रथम सोपान पर चरण

रखते ही वल्लरी को प्रेम की अनुभूति हुई। कॉलेज के प्रथम वर्ष में ही उसके मन में आकाश के प्रति प्रेम और आकर्षण का बीज पनपा, और शने:शने: उसके अन्तस में प्रेमलता पूर्ण विकसित हो, पल्लवित और पुष्पित हो उठी। फिर भी अपने प्रेमी के ऊष्ण आवेदनों और कई प्रत्यक्ष व परोक्ष सोद्देश्य संकेतों को पूर्ण अग्राह्य कर उसने आकाश के साथ कोई शारीरिक संबंध स्थापित नहीं किया। अपने आवेग और अपनी शारीरिक इच्छाओं पर सदा ही नियंत्रण रखा। नौकरी के सिलसिले में, जब आकाश उससे दूर चला गया था तब भी वल्लरी ने कई वर्षों तक अपने प्रेमी के लिए प्रतीक्षा की। फिर इस परिपक्व आयु में अचानक से इतनी हठकारिता क्यों ? अविनाश के प्रति अपनी भावनाओं को वह क्यों नियंत्रित न कर सकी ? अविनाश को पहली बार देखते ही वल्लरी का हृदय कह उठा कि इतना सुन्दर पुरुष उसने पहले कभी नहीं देखा। क्या यह केवल अविनाश के रूप के प्रति उसका आकषर्ण था -भीषण वह्निशिखा जिसमें उसने अपने को ही होम कर दिया। इस होमानल में कूद कर, तप कर अंतत: शुद्ध स्वर्ण बन कर ही वह बाहर प्रकट हुई। शायद वर्षों के एकाकीपन और निस्संगता ने उसके मन मस्तिष्क को मथ डाला था। आवेग और भावुकता के ज्वार को रोक पाना, नियंत्रित कर पाना अब संभव न हो सका उसके लिए। अंतत: वल्लरी तो हाड़-मांस की मानुषी है, कोई देवी या संसारत्यागी योगिनी नहीं।

"तमाम भयों के बीच एक सचेत स्त्री की देह में जो मन था वह पुरुष देह के प्रति उत्सुक था। वह अविनाश के आकर्षण में उलझ गई "

परन्तु वल्लरी अबोध, आश्रयहीना स्त्री नहीं अपितु पढ़ी लिखी, आत्मनिर्भर, स्वाधीनचेता नारी है। विश्वविद्यालय में व्याख्याता के पद पर आसीन है। वह जानती थी कि उसके ये बढ़ते कदम उसके जीवन में केवल विकट एवं कठिन परिस्थितियों को ही जन्म देंगे परन्तु अतिभावुक वल्लरी अपने को रोक न सकी। विशेषत: जब वह अविनाश के साथ उसके सेबों की वाटिका देखने, मशोबरा जाने को राज़ी हो जाती है तब हम केवल अविनाश को ही दोषी नहीं मान सकते हैं, कठघरे में वह स्वयं भी खड़ी होती है क्योंकि वह कोई अबला नारी नहीं है। और यहीं पाठकवर्ग के मन में यह प्रश्न जागना पूर्णत: उचित है -कि आज की समझदार आत्मनिर्भर नारी, वल्लरी ने जानबूझ कर ऐसा क्यों किया ? और क्या वह सहानुभूति की अधिकारिणी है?

यदि हम उपन्यास को गंभीरता से पढ़ें तब यह सहज गोचर हो जाता है कि अन्ना (वल्लरी और अविनाश की बेटी)की कहानी आज की कहानी है। उपन्यास के अंतिम अध्यायों में, उसके विवाह के अवसर पर उसे षड्विंशति (छब्बीस वर्षीया) बताया गया है। अर्थात वल्लरी और अविनाश की कथा आज से 27 साल पहले की है - नब्बे दशक का मध्यभाग या उत्तरार्ध। उस समय त्रिंशत ऊर्ध्वा वल्लरी, चंडीगढ़ विश्वविद्यालय की व्याख्याता थी। अत: वल्लरी और आकाश के कॉलेज के दिनों की प्रेम कहानी, उससे भी आठ- नौ वर्ष पहले की होगी - नब्बे दशक का पूर्वार्ध या अस्सी दशक का अंतिमकाल। कहने का तात्पर्य यह है कि वल्लरी और नलिनी मूलत: अस्सी-नब्बे दशक वाले शहर बनारस की लड़कियाँ हैं। उस समय का बनारस और वहाँ के लोगों की मानसिकता और आज के बनारस शहर में बहुत पार्थक्य है - केवल नगरीकरण या आधुनिकीकरण के लिए ही नहीं, लोगों की मानसिकता में भी आकाश पाताल का अंतर आ चुका है। यदि पाठक उस समयकाल (आज से लगभग 35 साल पहले) को अपने मस्तिष्क में रखे तब वह वल्लरी और नलिनी को बेहतर समझ पाएँगे।

वल्लरी परिपक्व अवश्य थी, पर शायद आज के इंटरनेट युग की अत्याधुनिका नारी समान दूरदर्शी न थी। आज के युग में युवक युवतियों के लिए 'लिव इन रिलेशनशिप' कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। वे अपना दायित्व जानते समझते भी हैं। ठीक जैसे इस उपन्यास में उल्लिखित अन्ना और अत्रि का साथ रहना, विवाह के पूर्व दोनों का एक साथ कश्मीर घूमने जाना। परन्तु अस्सी नब्बे दशक की वल्लरी के लिए यह सब इतना सहज सरल न था। तभी तो, विद्यालय में पढ़ती, नलिनी (अर्थात अस्सी दशक का मध्यभाग), जब बलात्कार का शिकार हुई तब उसकी माँ ने ही इस हादसे को सबसे छुपाए रखा - पुलिस या क़ानून का सहारा न लिया। नलिनी इस मानसिक पीड़ा को आजीवन झेलती रही।

हाँ, यदि लेखिका ने समयकाल को थोड़ा और परिष्कृत कर दिया होता तो पाठकवर्ग के लिए बेहतर होता।

लेखिका ने यहाँ वल्लरी को आजीवन अविनाश पर दोषारोपण करते हुए नहीं दिखाया है और न ही वल्लरी लोगों की सहानुभूति चाहती है। वह भली-भाँति अवगत है, सम्पूर्ण स्थिति से और अपना दायित्व भी स्वीकार करती है। बच्चे को जन्म देना वह अपना प्राकृतिक अधिकार मानती है-अपने पूर्ण होने का माध्यम। वह कहती है - "मैं अजन्मे को मृत्युदण्ड नहीं दूँगी।"

वह स्वयम्पूर्णा है। बच्चे का लालन पोषण करने में पूर्णत: सक्षम। उसे अविनाश से न आर्थिक और न ही भावनात्मक सहारा चाहिए। एकल अविभावक बन, अपनी संतान की परवरिश करना उसका निजी निर्णय था। हाँ, उसे अपनी पुरानी सहेली, नलिनी, की सहायता अवश्य प्राप्त हुई। शिमला में वह नलिनी के घर में ही रही और उसी के कॉलेज में पढ़ाने लगी। लेखिका ने कहीं पर भी वल्लरी को पीड़िता, विप्रलब्धा स्त्री के रूप में नहीं दर्शाया है। उसकी पुत्री, अन्ना, भी अपनी माँ को पीड़िता नहीं मानती है। वृद्ध अविनाश से वह स्पष्ट कहती है - "जिस समाज में माँ थी, उसी में आप भी थे न। यदि वह इस बात को सहज होकर नहीं ले सकीं तो आप कैसे लेते। इसमें आपका दोष नहीं था। कोई विवाहित होकर विवाह के बाहर किसी बच्चे की जिम्मेदारी कैसे लेता। जहाँ तक गलती करने का सवाल है तो ऐसी गलती तो माँ ने भी की थी।"

इस उपन्यास में एक महत्त्पूर्ण विषय सामने आता है - अवैध संतान का। माना कि प्रेम कभी अवैध नहीं होता है। वह दाता है,

उदात्त है और प्रेम में मन के साथ-साथ शारीरिक सामीप्य को भी अस्वीकार नहीं कर सकते हैं परन्तु इस मिलन से उप्तन्न संतान का को क्या वैध मानेंगे ? यह एक महत्त्पूर्ण प्रश्न है। लेखिका नहीं मानती है कि संतान कभी भी अवैध हो सकती है। बीज किसी भी उद्भिद का हो धरित्री का गर्भरस पान कर ही वह अंकुरित होता है। अत: लेखिका, वल्लरी का अपनी संतान को जन्म देने के निर्णय को उचित मानती है। हाँ, अवैध संपर्क और इसका परिणाम - उपन्यास में इसका कोई समाधान नहीं सुझाया गया है पर लेखक समाधान दे भी कैसे ? वह तो केवल समाज के विभिन्न रूपों को चित्रित ही करता है।

जीवन बहुमुखी, बहुआयामी है। कभी धूप तो कभी छाँव और एक निरन्तर संघर्ष। सभी में दुर्बलताएँ हैं - कभी हम दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करते हैं तो कभी लक्ष्यच्युत भी होते हैं परन्तु जीवन थमता थोड़े ही है। अत: किसी भी युग के निर्धारित मूल्यबोधों से, उचित-अनुचित या पाप-पुण्य की बारीक परिभाषाओं से किसी मनुष्य के सम्पूर्ण चरित्र का विचार करना मूर्खता है। मनाव तो मानव ही रहेगा, देवता बनना सम्भव नहीं।

इस उपन्यास की सबसे अहम बात है इसकी प्रांजल और सुन्दर भाषा। शब्दों का चयन, वाक्य विन्यास और भाषा का प्रवाह प्रशंसनीय है। उदाहरणस्वरूप "डैफोडिल अलविदा कहने की तैयारी कर रहे थे। गुलमोहर और अमलतास के वितान उसकी दोपहरी उदास कर रहे थे। वह हरियाली सरहद के उस पार उतरने की तैयारी क्र रही थी। बहुत अनमनी सी रहगुज़र थी। अपने उजड़े निचाट में यादों की पोटली सहेजती वह विकल हो गई थी।"

शिमला के उस 'स्त्री गृह' की अन्तर्वासिनियों के अंतस में प्रवाहित होते झंझावात को बहुत गहराई से दर्शाया है लेखिका ने। शीत कालीन हिमाचल की कुज्झटिकाच्छन्न घाटियों के समान नलिनी, मार्गरेट, वल्लरी और अन्ना का मन भी कोहरे से ढका रहता है। वे सभी अपने मन में पनप रहे प्रश्नों की कुहेलिका से निकलने का प्रयास करती रहती हैं। यथार्थ और स्मृतियों के मध्य फँसे-उलझे नलिनी, वल्लरी और मार्गरेट के माध्यम से लेखिका ने स्त्री जीवन की विविधताओं को अच्छे से दर्शाया है। अन्ना को तो अत्रि के रूप में एक सच्चा जीवन साथी मिल जाता है और यही देख वल्लरी, नलिनी और मार्गरेट का अंतस भी सुख और स्वस्ति का अनुभव करता है। वल्लरी, नलिनी और मार्गरेट - तीनों ही निज-निज जीवनपथ पर एकाकी अग्रसर होती हैं और निर्जन तिमिराच्छन्न पथ पर चलते हुए जब उनका शेष प्रदीप भी झंझावात से निष्प्रभ हो जाता है तो वे आँधी को ही अपना साथी मान, आगे बढ़ती जाती है। नियति भी इन तीनों को मिला ही देती है और वे एक दूसरे का सहारा बनती है। अन्ना का जन्म उन तीनों स्त्रियों के जीवन में वैचित्र्य लाता है। ठहरे हुए जीवन को एक गति मिलती है, एक उद्देश्य मिलता है।

उपन्यास का अंत सकारात्मक है-एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक संदेश के साथ। अविनाश दरअसल, विकट कामुकता या 'निम्फ़ोमानिया' नामक मानसिक रोग से ग्रस्त था। कठिन, एकाकी और निस्संग बचपन ने ही उसे मानसिक रोगी बना डाला था। वर्षों के इस रोग ने अविनाश को विक्षिप्त सा बना दिया था। उसकी चिकित्सा अन्ना और उसके पति, अत्रि ही करते हैं। हमारे समाज में औसतन हर 10 व्यक्तियों में 2 व्यक्ति किसी न किसी मानसिक व्याधि से ग्रस्त हैं, चाहे वह तनाव हो, एंज़ायटी हो या अन्य कोई मानसिक समस्या परन्तु बहुत काम लोग ही चिकित्सा का सहारा लेते हैं, अधिकतर चुप ही रहते हैं और इसका परिणाम घातक होता है। लेखिका भी मानती हैं - "मानसिक रोगियों के कारण इस दुनिया में कितने नरसंहार हुए हैं। कितने देश बर्बाद हुए हैं और कितने युद्ध हुए हैं।"

इस उपन्यास के माध्यम से, लेखिका ने, मानवीय सम्बन्धों की जटिलता, गहराई और समय के साथ बदलते उसके स्वरूप को सुन्दर प्रांजल भाषा में अभिव्यक्त किया है। लेखिका को उनके प्रथम उपन्यास के लिए बहुत बधाई।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।
पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।
पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 11 मार्च 2024
हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

पुस्तक समीक्षा

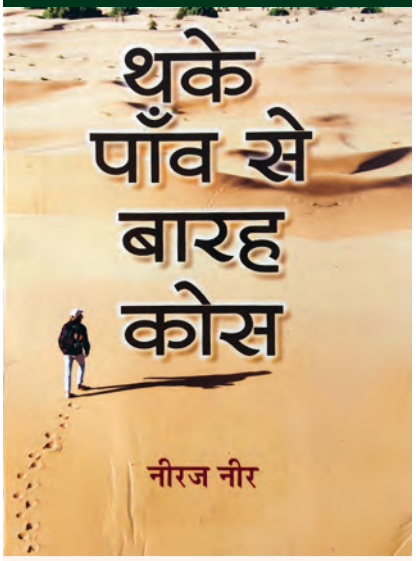

(कहानी संग्रह)

थके पाँव से बारह कोस

समीक्षक : डॉ. नीलोत्पल रमेश
लेखक : नीरज नीर
प्रकाशक : ज्ञान गंगा, नई दिल्ली

डॉ. नीलोत्पल रमेश
पुराना शिव मंदिर, बुध बाज़ार
गिद्दी - ए, जिला - हजारीबाग
झारखंड - 829108
मोबाइल- 9931117537
ईमेल- neelotpalramesh@gmail.com

'थके पाँव से बाहर कोस' नीरज नीर का दूसरा कहानी-संग्रह है। इसके पहले इनका एक कहानी-संग्रह 'ढुकनी एवं अन्य कहानियाँ' काफी चर्चित रहा है। इनके दो कविता-संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं - 'जंगल में पागल हाथी और ढोल' तथा 'पीठ पर रोशनी'। इनकी कहानियाँ व कविताएँ देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में लगातार प्रकाशित हो रही हैं। इस कहानी-संग्रह में बारह कहानियाँ संकलित हैं, जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर चर्चित हुई हैं।

'अपने मन की बात' में नीरज नीर ने लिखा है कि "यह सत्य है कि इस संकलन की ज़्यादातर कहानियों के सूत्र समाज के जीते-जागते चरित्रों के जीवन और घटनाओं से पकड़े गए हैं और इस संकलन की कहानियों में ही नहीं बल्कि मेरी अब तक लिखी लगभग सभी कहानियों में ऐसा ही है। समाज की विडंबनाओं, विसंगतियों, आडंबरों को कथा के माध्यम से प्रस्तुत करने की कोशिश मैंने की है और उनके लिए पात्र और कथानक अपने आसपास से ही उठाए हैं। कई बार अलग-अलग परिप्रेक्ष्य की घटनाओं, अनुभवों को ज़रूरत के अनुसार कहानी में कल्पना, शिल्प और शब्दावलियों के सहारे एक जगह दर्ज किया गया है।"

'भूमिका' में प्रसिद्ध कहानीकार-उपन्यासकार अवधेश प्रीत ने लिखा है - "नीरज नीर अपनी पीढ़ी के उन कथाकारों में हैं जिनकी कहानियों में मामूली आदमी की उस शक्ति की शिनाख्त मिलती है, जिसके बूते वह अपनी नियति के बरक्स तनकर खड़ा होता है। इसके लिए वह कहानी का विषय तलाशने की अनावश्यक कसरत नहीं करते, बल्कि अपने आसपास उपस्थित मामूली आदमी के मामूलीपन में कथा-सूत्र तलाशते हैं और उसकी गरिमा को उद्‌भासित करते हैं। इस संग्रह की कहानियों में जो लोग हैं, उनकी नियतियों में हम अपनी नियतियों के अक्स पाते हैं और आश्चर्य कि हम इनसे अनजान और अनभिज्ञ हैं।"

नीरज नीर की कहानियाँ हमारे आसपास की कहानियाँ हैं। इसमें हमारा ही सुख-दुख वर्णित हुआ है। इनकी भाषा इतनी सहज और सरल है कि एक बार पढ़ना शुरू करने के बाद छोड़ने को मन नहीं करता है। ये कहानियाँ कहीं-कहीं हमें सतर्क भी करती हैं, तो कहीं-कहीं मार्गदर्शन भी करती हैं। इस संग्रह की कहानियाँ वर्तमान परिवेश को अभिव्यक्त करने में पूरी तरह सफल हुई हैं।

'जादूगर और लाल पान की बेगम' कहानी के माध्यम से कहानीकार ने अख़बार के दफ्तर में व्याप्त अनियमितता के बहाने सारे कार्यालयों की अनियमितताओं की पोल खोलकर रख दिया है। समाज के प्रबुद्ध वर्ग के लोग जिस अख़बार के सहारे अपने दैनिक कार्यों की शुरुआत करते हैं, वह ऊपर से तो उन्हें ठीक-ठाक ही लगता है, पर उसके अंदर कौन से कार्यों की मन:स्थिति रहती है, उनसे वे वाकिफ नहीं रहते हैं। यही कारण है कि कहानीकार नीरज नीर ने बिहाग के माध्यम से वे सारी स्थितियों का ज़िक्र कर दिया है जिनसे पाठक वाकिफ तो रहते हैं, पर इतनी गहराई से उसके बारे में सोचते नहीं हैं। कमोबेश प्रत्येक कार्यालयों में चापलूसों का ही बोलबाला रहता है। कहीं भी इमानदारी से अपना कार्य करने वालों की पूछ नहीं होती है, बल्कि उन्हें किसी-न-किसी प्रकार से प्रताड़ित करने का कार्य ही होता है। बिहाग के साथ भी यही होता है, पर वह तो जादूगरी का कार्य भी करता है - भेष बदलकर। जब उसे लगता है कि अब इस अख़बार में काम करना मुश्किल हो रहा है तो उसने बड़ी सफाई से अख़बार के एक आयोजन में जादू दिखाते हुए अपना इस्तीफा खुलेआम सौंप देता है - संपादक और प्रबंधक को। तब लोग आश्चर्यचकित रह जाते हैं। इसके सिवाय उनके पास कोई चारा रह ही नहीं जाता है। यह कहानी बहुत ही पठनीय बन पड़ी है।

'हाकिम का पाजामा' कहानी के माध्यम से कहानीकार ने व्यवस्था की विद्रूपताओं का पर्दाफाश किया है। हाकिम का पजामा ग़ायब हो गया था जिसके पीछे पुलिस का महकमा लगा हुआ था - खोजने के लिए। उसने एक बेगुनाह को पकड़ लिया और उस पर आरोप लगा दिया

कि इसने ही हाकिम का पजामा चुराया है। जबकि हाकिम का पजामा का चोर कोई और था। हाकिम के पाजामे के बारे में जब अधिकारी को बताया गया तो उसने कहा कि "पजामा तो बदला जा सकता है, पर अब चोर नहीं बदला जा सकता है। उसने सिपाहियों को आदेश दिया कि इसके हाथ से पैकेट छीन लो और इसे मार कर दूर भगा दो। सिपाहियों ने वैसा ही किया।" आज की यही सच्चाई है कि बेगुनाह लोगों को फँसा दिया जाता है और जो गुनहगार होता है, वह स्वतंत्र घूमता रहता है। उस तक पुलिस की पहुँच ही नहीं होती है।

'दर्द न जाने कोय' कहानी के माध्यम से कथाकार नीरज नीर ने एक औरत की बेबसी का वर्णन किया है। सुनीता को अपने बच्चों की खातिर अपनी देह बेचनी पड़ रही थी। देह व्यवसाय के सहारे ही उसे अपने बच्चों की ज़िंदगी बेहतर लगने लगी थी। सुनीता के साथ उसके ही भतीजे ने ग़लत करने की कोशिश की थी, पर उस पर उल्टा इल्जाम लगा कि वह ही ग़लत है। गाँव वालों ने पंचायत में सुनीता को बुलाया और कहा कि तुम्हारे चलते पूरे गाँव की इज़्ज़त मिट्टी में मिल रही है। इस पर सुनीता ने दो टूक जवाब दिया। उसके दर्द को जानने की कोशिश कोई नहीं कर रहा था। वह दुख में तप कर निकल चुकी थी और अब उससे गाँव का कोई व्यक्ति मुकाबला करने को तैयार नहीं था। सुनीता एकदम निडर हो गई थी। कथाकार ने लिखा है - "सुनीता को गाँव के हर आदमी की शक्ल से ही अब उबकाई आने लगी थी। उसे लगता था कि गाँव का हर आदमी एक बड़ी-सी जीभ में बदल गया है, जो उसकी ओर बढ़ता चला आ रहा है।" यह कहानी पाठकों के मर्म को झकझोरने में पूरी तरह सफल हुई है।

'सात बजे की ट्रेन' कहानी के माध्यम से कथाकार ने इकलौती संतान रेणु की कहानी कही है। रेणु अपने माता-पिता की इकलौती संतान थी। उसे पढ़ाने-लिखाने में उसके माता-पिता ने कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी थी। कुछ समय बाद उसके पिताजी का निधन हो जाता है तो उसकी माँ ही उसकी देखभाल करती है। माँ ने उसकी परवरिश में कोई कमी नहीं की थी। रेणु पढ़-लिखकर बेंगलुरु में नौकरी पा गई थी। वह अपने पति के साथ वहीं रहती थी और खुशहाल थी। बीच-बीच में माँ की देखभाल के लिए वह आ जाया करती थी। इस बार भी वह आई और माँ से मिलकर जा रही थी कि उसका मन बदल गया कि वह भी अपनी माँ को अपने साथ लेकर बेंगलुरु जाएगी। वह स्टेशन से लौट आती है और उसका पति अगले दिन के लिए उसी ट्रेन में यानी सात बजे वाली में टिकट करवा देता है। यह कहानी इकलौती संतान की समझ रखने वाले दंपति को मजबूती प्रदान करती है।

' कलंकिनी' कहानी के माध्यम से कथाकार ने समाज की उस सच्चाई का ज़िक्र किया है जिसमें समाज ही सुनीता को कलंकिनी बनता है। इसमें उसका दोष नहीं है, फिर भी दोषी उसी को ठहराया जाता है। झारखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में ही नहीं, बल्कि पूरे देश के गाँव की स्थिति यही है। जहाँ लोग अंधविश्वासी होते हैं। ज्ञान सिंह चुनाव ड्यूटी में जाते हैं। जिस स्थान पर उनकी ड्यूटी थी, वहाँ बाँस का झुरमुर था। अँधेरा होते ही लोग उधर नहीं जाते थे, क्योंकि उन्हें चुड़ैल पकड़ लेती थी। फिर वे उस चुड़ैल की कहानी गाँव के चौकीदार से पूछते हैं, तो उन्हें पता चलता है कि सुनीता ही वह चुड़ैल है जिसने कुएँ में कूद कर जान दे दी थी। गाँव के लड़कों ने उसके साथ ज़बरदस्ती करके उसे गर्भवती बना दिया था। सरकार जिस महिला सशक्तिकरण का ढिंढोरा पीटती है, लेखक उसकी पोल खोलकर रख देता है। लेखक ने लिखा है - "भारत में महिला सशक्तिकरण पालकी पर चल रही है, जिसे पुरुष अपने कंधों पर ढो रहे हैं। वह अपने कंधों से इस पालकी के बोझ को उतारना ही नहीं चाहते हैं। कहीं-कहीं तो महिलाएँ पालकी से उतरना भी नहीं चाहती हैं और जहाँ उतरना चाहती हैं, वहाँ पुरुष उन्हें ऐसा करने नहीं देते। हालाँकि स्वतंत्रता एवं सत्ता का स्वाद बहुत नशीला होता है, जिसने इसका स्वाद चख लिया, वह इसे फिर आसानी से छोड़ना नहीं चाहता है।" इस कहानी के माध्यम से कथाकार ने बिहार और झारखंड में मुखियापति के वर्चस्व का भी ज़िक्र किया है। मुखिया उसकी पत्नी होती है, पर सारा कार्य मुखियापति ही करता है। सिर्फ हस्ताक्षर के लिए उसकी पत्नी होती है।

'सतयुग का आगमन' कहानी के माध्यम से कथाकार ने अबस के चोर बनने की कहानी को कहा है। चोर चोर ही होता है, वह बड़ा हो या छोटा। चोर को चोर यह समाज ही बनाता है। उस पर झूठा आरोप लगाकर चोरी के इल्जाम में उसे जेल भेजवा दिया जाता है। फिर वहाँ से निकलने के बाद वह चोरी के तरह-तरह के तरकीब अख्तियार कर लेता है। अबस के चोर से मंत्री बनने की प्रक्रिया को कथाकार ने बखूबी वर्णन किया है। सतयुग सच्चाई और ईमानदारी के लिए जाना जाता है। लेखक ने लिखा है - "पीठ पर नेता का हाथ बड़े-बड़े चमत्कार करने लगा था। इतने चमत्कार तो संत-फकीर के हाथ सर पर आएँ तब भी नहीं होते। उसे याद आया, टीवी पर एक साधु बता रहे थे कि सतयुग का आगमन हो चुका है। उसे पक्का यकीन हो गया कि सतयुग का आगमन हो चुका है।" ...और इस तरह से अबस की गाड़ी चल पड़ी। वह एक बड़ा नेता बन गया था। जिस पर कभी चोरी का इल्जाम लगाकर जेल भेजवाया गया था।

'थके पाँव से बारह कोस' की कहानियाँ हमारे समाज के कई हिस्सों की सच्चाई को उजागर करने में सफल हुई हैं। अगर आदमी थका हो, फिर भी वह बारह कोस चलने का साहस रखता हो, तो हम मान लेते हैं कि उसमें अदम्य जिजीविषा है। नीरज नीर के इस संग्रह में संकलित कहानियाँ झारखंड की गरीबी, भुखमरी, संघर्ष, उत्पीड़न आदि को भी अभिव्यक्त करने में सफल हुई हैं। एक ओर आदमी विभिन्न समस्याओं से घिरा हुआ है, तो दूसरी ओर समाज में रह रहे लोग उसे ही समस्या में डाल देने को तत्पर हैं। वर्तमान में लिखी जा रही कहानियों में नीरज नीर की कहानियों के बिना समसामयिक कथा-साहित्य के परिवेश को आँकना संभव नहीं है। नीरज नीर समकालीन कथा-साहित्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। नीरज नीर को बहुत-बहुत बधाई!

000

पुस्तक समीक्षा

(आलोचना)

सर्जक, आलोचक और कोशकार डॉ. मधु संधु

समीक्षक : डॉ. राकेश प्रेम

लेखक : डॉ. दीप्ति

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

डॉ. राकेश प्रेम
पूर्व प्राचार्य हिन्दू कॉलेज,
अमृतसर, पंजाब
मोबाइल- 9417278878
ईमेल- rakesh07mehra@gmail.com

रचना और आलोचना अलग-अलग रचनात्मक प्रक्रिया से जुड़ी हुई सर्जना है। कहानी, कविता, कोश-लेखन तथा आलोचना विधा रचनात्मकता के ही विभिन्न सोपान हैं। इनमें से किसी एक विधा में पारंगत होना और यश:काय होना किसी भी रचनाकार के लिए सुखद और संतोषप्रद होता है। किन्तु, एक साथ कहानीकार, कवि, कोशकार तथा आलोचक होना, चर्चित एवं यशस्वी होना, स्पृहणीय है। इसमें नवोन्मेषी प्रतिभा, गहन अध्यवसाय, मनोयोग के साथ कठिन परिश्रम की विशिष्ट भूमिका को रेखांकित किया जा सकता है।' सर्जक, आलोचक और कोशकार डॉ. मधु सन्धु (चार दशक की यात्रा) एक ऐसे ही सर्जनात्मक व्यक्तित्व से जुड़ी हुई रचना-यात्रा है। इसके केन्द्र में गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर के हिन्दी विभाग की पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष डॉ. मधु सन्धु का व्यक्तित्व एवं सर्जनात्मक लेखन है।

पुस्तक का सम्पादन हिन्दू कॉलेज, अमृतसर के हिन्दी-विभाग की सहायक आचार्य एवं विभागाध्यक्ष डॉ. दीप्ति ने किया है। 'प्राक्कथन' में पुस्तक के केन्द्रीय-चरित्र के व्यक्तित्व एवं सर्जनात्मक लेखन को रेखांकित करते हुए, डॉ. मधु सन्धु की चारित्रिक एवं सर्जनात्मक विशिष्टता को विभिन्न लेखकों, आलोचकों, प्राध्यापकों एवं उनके शिष्यों के वक्तव्य एवं आलेख के माध्यम से रेखांकित किया गया है।

डॉ. दीप्ति पुस्तक के उद्देश्य की ओर संकेत करते हुए कहती हैं- "पाठकों को उनके साहित्य कर्म के साथ-साथ लेखनी कर्म की विविधता, भाषिक सामर्थ्य, रचनाधर्मिता के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व के बारे में भी सहज रूप से परिचय प्राप्त हो जाए।"

विशिष्ट रचनाकार ममता कालिया का कथन भी द्रष्टव्य है- "डॉ. मधु सन्धु जैसे विरल होते हैं। मधु जी ने अपने विद्यार्थियों के साथ ज्ञानदान का अकादमिक रिश्ता तो रखा ही, उन्होंने समकालीन लेखकों के साथ भी संवाद बनाये रखा। ऐसा इसलिए संभव हुआ क्योंकि हृदय से मधु सन्धु रचनाकार हैं। उन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं और पंजाब में हिन्दी के लिए अनुराग पैदा किया है।"

मधु सन्धु एक लब्धप्रतिष्ठ रचनाकार हैं। दो दर्जन के लगभग पुस्तकों की रचनाकार। कहानी संग्रह, कविता संग्रह, कहानी कोश एवं आलोचनात्मक लेखन। उनकी आलोचना के केन्द्र में विशिष्ट रूप से प्रवासी कहानी एवं उपन्यास लेखन है। आलोच्य पुस्तक चार खण्डों में विभाजित है। खण्ड एक में संस्मरण हैं। खण्ड दो सर्जक काव्य एवं कहानी में विभक्त है। खण्ड तीन आलोचना एवं खण्ड चार कोश ग्रन्थ विश्लेषण से जुड़ा है। अड़तीस आलोचक, रचनाकार और प्राध्यापक डॉ. मधु सन्धु के व्यक्तित्व एवं सर्जनात्मक लेखन के विश्लेषण से जुड़े हैं। सेतु के रूप में डॉ. दीप्ति की भूमिका है।

मधु सन्धु का व्यक्तित्व, 'ज़मीन से जुड़ा व्यक्तित्व' है। भारतीय भावबोध और संवेदना से जुड़ा हुआ उनका मन प्रवासी रचनाधर्मिता के लिए विशेष रूप से धड़कता है, 'तन वासी मन प्रवासी' के माध्यम से उनकी इन्हीं विशेषताओं को रेखांकित किया गया है। इसी संदर्भ में उनकी भूमिका को स्पष्ट करते हुए सुमन कुमार घई का कथन है- "प्रवासी साहित्यकार भारतीय साहित्य की मुख्यधारा में आने का प्रयास दशकों से कर रहे थे। यह डॉ. मधु सन्धु जैसे स्थापित साहित्यकारों के प्रयास हैं कि आज प्रवासी साहित्य भारत के विश्व विद्यालयों में शोध का विषय बन पाया है।"

मानवीय संवेदना का रंग रूप एक समान होता है। सुख-दुख की अनुभूति और अभिव्यक्ति एक जैसी होती है। धर्म, जाति तथा भौगोलिक सीमाओं से उसमें विलगाव कर पाना संभव नहीं है। डॉ. किरण खन्ना के शब्दों में, "आपने अपने भारतवासी तन-मन से प्रवासी मनों की मनोवैज्ञानिक गुत्थियों को पूर्ण उन्मुक्तता से खोजने की सफल चेष्टा की है।"

एक कथाकार के रूप में मधु सन्धु का मुख्य विषय सामाजिक यथार्थ और स्त्री की सामाजिक नियति है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता' के आदर्शवादी देश में आज नारी, पुरुष के हाथों एक खिलौना मात्र बनकर रह गई है। छलना और व्यथा के आभूषणों को

अंगीकार करने में विवश। डॉ. मधु सन्धु के शब्दों में, "स्त्री भले ही सशक्त हुई हो, पर उत्पीड़न को जड़ से उखाड़ने वाली धार कहीं नहीं मिलती। पुरुष ने कभी पति, कभी भाई, कभी पुत्र और कभी पिता बनकर उसे बार-बार छला है... व्यथाबोध को हवा दी है।"

मधु जी के दो कहानी संग्रह हैं, 'नियति और अन्य कहानियाँ' (2001) तथा, 'दीपावली@अस्पताल.काम(2014) जिनमें शिक्षा जगत् के भ्रष्टाचार, स्वास्थ्य क्षेत्र में अस्पताल और उनसे जुड़े डॉक्टरों के अमानवीय व्यवहार, आधुनिक जीवन की भागदौड़ तथा लिव-इन जैसी समस्या का भी चित्रण है। इन कहानियों की नारी परम्परा को जीते हुए भी, स्वयं को बन्धन मुक्त करना चाहती है। पुरुष के समान उसे भी अपने स्वतंत्र अस्तित्व की तलाश है। क्योंकि पुरुष एक या दूसरे प्रकार से नारी के अस्तित्व को नकारता है। वह केवल उसका उपयोग करता है। आज की शिक्षित और कामकाजी नारी इस परिवेश से मुक्त होना चाहती है। इन कहानियों में व्यक्त टीस मूल्य सापेक्षता और सकारात्मक परिवेश की अपेक्षा से जुड़ी हुई है। 'कुमारिकागृह', 'निर्णय', 'लिव इन', 'सती' तथा 'शुभचिंतक' जैसी कहानियों में इसे देखा जा सकता है।

एक कहानीकार पात्रों और वातावरण-संरचना से समस्या को अभिव्यक्ति करता है जबकि कवि अपने मनोभाव की अभिव्यक्ति के लिए सांकेतिकता तथा प्रतीकात्मकता से जुड़े हुए शब्दों का चुनाव करता है। मधु सन्धु की काव्यसंवेदना प्रकृति तथा समाज-सांस्कृतिक उपादानों के माध्यम से फलीभूत हुई है। इसमें प्रकृति-चित्रण; पेड़-पौधे, नदियाँ, उत्सव-त्योहार, इतिहास-संस्कृति, धर्म-संस्कार तथा नारी-उत्पीड़न को देखा जा सकता है। इसमें मानवीय संवेदना, नारी-पुरुष संबंध, राग-विराग, प्रेम, सौन्दर्य और वात्सल्य का चित्रण भी है। उनके काव्य-संग्रह, 'सतरंगे स्वप्नों के शिखर'(2015) तथा 'संकल्प सुख'(2021) में देखा जा सकता है।

एक आलोचक के रूप में मधु सन्धु का मुख्य विषय कथा-साहित्य है। विशेष रूप से प्रवासी महिला कथाकारों का लेखन। महिला उपन्यासकारों पर भी उनका लेखन है। 'साठोत्तर महिला कहानीकार' (1984), 'महिला उपन्यासकार' (2000), 'हिन्दी का भारतीय और पाश्चात्य महिला कथा लेखन' (2013), 'वैश्विक संवेदन संसार और प्रवासी महिला कहानीकार' (2019) तथा, 'इक्कीसवीं शतीका हिन्दी उपन्यास और प्रवासी महिला उपन्यासकार' (2022)। उनका शोध-विषय हिन्दी-कहानी है। वह स्वयं भी कथाकार हैं। स्त्री-संवेदना से उनका जुड़ाव सहज है। नारी-उत्पीड़न के प्रति उनकी चिंता वक्तव्य मात्र न होकर, गहन संवेदना का अंग है जिसे कि उनके शब्दों में महसूस किया जा सकता है। आज की नारी अपनी बौद्धिक चेतना के माध्यम से अपने जीवन की परिभाषा को गढ़ रही है। मधु सन्धु के शब्दों में- "भारत में नारीवाद फैशन नहीं, राष्ट्र के भौतिक, बौद्धिक, आंतरिक विकास का सोपान है।"

" आत्मविश्वास की बढ़ती लहर ने, शैक्षिक ऊँचाइयों ने, वैज्ञानिक उपलब्धियों ने, इसे एक नई दुनिया की खोज की महाशक्ति दी है।"

डॉ. मधु सन्धु की आलोचना-दृष्टि मूल्य-सापेक्ष है। वह आलोच्य कृतियों का विश्लेषण करते हुए, उनकी मूल संवेदना को चिन्हित करते हुए, मानवीय संवेदना और मूल्यपरक निकष को महत्त्व देती हैं।

कोशकला का संबंध एक अध्यवसाययुक्त जीवन शैली एवं समर्पित मानसिकता से है। कोश एक ओर ऐतिहासिक प्रकल्प के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं तथा दूसरी ओर ज्ञान का सहज एवं सुलभ मार्ग भी सिद्ध होते हैं। डॉ. मधु सन्धु ने कथा- लेखन के साथ, कथा- साहित्य की आलोचना तथा कथा-कोश के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। 'कहानी कोश' (1951-1960) 1992, 'हिन्दी कहानी कोश' (1991-2000) 2009, 'हिन्दी लेखक कोश' (सह लेखिका) 2003, 'प्रवासी हिन्दी कहानी कोश' 2019 के अतिरिक्त आचार्य धर्मपाल मैनी के द्वारा सम्पादित- 'मानव मूल्यपरक शब्दावली का शब्दकोश' एवं पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु के द्वारा सम्पादित- 'तुलनात्मक साहित्य विश्वकोश', में भी उनकी प्रविष्टियाँ हैं। कहानी-कोश निश्चित रूप से उनकी हिन्दी साहित्य को एक महत्त्वपूर्ण देन है।

डॉ. मधु सन्धु का व्यक्तित्व सांस्कृतिक चेतना से जुड़ा हुआ व्यक्तित्व है। शालीन एवं मितभाषी। वह लगभग पचास वर्षों से लेखन से जुड़ी हैं। उनकी कर्मठता, निष्ठा एवं समर्पण का साक्ष्य उनकी अनेक शिष्यों के पुस्तक में संकलित आलेख हैं, जिनमें डॉ. चंचल बाला, डॉ. ज्योति ठाकुर, डॉ. अनुराधा शर्मा तथा डॉ. दीप्ति जैसे नाम आते हैं। देश-विदेश से जुड़े हुए चर्चित लेखक और आलोचक भी उनके व्यक्तित्व और साहित्य पर अपने आलेख के माध्यम से विचार अभिव्यक्त करते हुए दिखाई देते हैं। जैसे ममता कालिया, हंसा दीप, अर्चना पेन्यूली, सुमन कुमार घई और डॉ. तरसेम गुजराल। फिर भी एक संशय जो कि संवेदनशील और समर्पित लोगों के साथ जुड़ा रहता है कि वे अपनी समस्त निष्ठा और महत्त्वपूर्ण योगदान के बाद भी संभवत: अपनी पहचान बना पाने में दुनियादार लोगों से पिछड़ जाते हैं। पुस्तक में संकलित डा. तरसेम गुजराल के आलेख में इस ओर संकेत है- "डॉ. मधु सन्धु ने कहानियाँ भी लिखी हैं, कथा समीक्षा में भी काम किया है, परंतु उनके रचनात्मक काम के प्रतिहिन्दी के महान् समीक्षकों ने मुनासिब ध्यान नहीं दिया।"

डॉ. दीप्ति ने डॉ. मधु सन्धु की साहित्य-सर्जना को विभिन्न लेखकों; आलोचक-चिंतकों के माध्यम से, 'सर्जक, आलोचक और कोशकार डॉ. मधु सन्धु' के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उनके सम्पादन में, शिवना प्रकाशन से प्रकाशित यह पुस्तक साहित्यिक सूझबूझ और परिश्रम की साक्षी होने के साथ इस क्षेत्र में उनके प्रति संभावनाशीलता को जन्म देती है। निश्चित रूप से यह पुस्तक डॉ. मधु सन्धु के साहित्य से जुड़ने तथा उसकी पहचान को सक्षम बनाने में अपना योगदान देती है।

000

पुस्तक समीक्षा

(उपन्यास)

आधी दुनिया पूरा आसमान

समीक्षक : राधेश्याम भारतीय
लेखक : ब्रह्म दत्त शर्मा
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545
मोबाइल - 9806162184
ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

राधेश्याम भारतीय
नसीब विहार कालोनी
घरौंडा (करनाल)
हरियाणा- 132114
मोबाइल- 9315382236

ब्रह्म दत्त शर्मा साहित्य में एक ऐसा नाम है, जिन्होंने अपनी कलम के बूते अपनी पहचान बनाई है। इस उपन्यास से पहले उनके तीन कहानी संग्रह (चालीस पार, मिस्टर देवदास, पीठासीन अधिकारी) और एक उपन्यास (ठहरे हुए पलों में) प्रकाशित हो चुके हैं। 'पीठासीन अधिकारी' कहानी-संग्रह हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला की ओर से 'श्रेष्ठ कृति पुरस्कार' से पुरस्कृत हुआ, वहीं कहानी 'पीठासीन अधिकारी' भी विश्व हिन्दी सचिवालय मारीशस द्वारा आयोजित हिन्दी कहानी प्रतियोगिता 2019 में प्रथम स्थान प्राप्त कर चुकी है।

इनका पहला उपन्यास 'ठहरे हुए पलों में' केदारनाथ में आई त्रासदी में इनके द्वारा भोगे हुए यथार्थ का मार्मिक चित्रण है। सद्य: प्रकाशित कृति 'आधी दुनिया पूरा आसमान' नारी प्रधान उपन्यास है। यह उपन्यास बहुत से ज्वलंत प्रश्न खड़े करता है। हमारा समाज नारे बुलंद करता है कि 'बेटा बेटी एक समान', 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ', 'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते, रमन्ते तत्र देवता' अर्थात जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं, परन्तु असल ज़िंदगी में नारी के प्रति हमारी सोच कितनी सकारात्मक है, यह उपन्यास के पढ़ने पर अच्छे से पता चल जाता है।

उपन्यास का ज़्यादातर और शुरूआती हिस्सा ग्रामीण पृष्ठभूमि से जुड़ा है, जहाँ आज भी रूढ़िवादी परम्पराएँ दिमागों में साँप की तरह कुंडली मारे बैठी हैं। यह उपन्यास गिरते लिंग अनुपात की समस्या उठाने के साथ-साथ इसके ज़िम्मेदार सभी पात्रों को बारी-बारी से पाठकों की अदालत में पेश करता है, जिन्हें अपने इस अपराध पर जरा भी अपराधबोध नहीं। हम भले ही चाँद पर चले गए हैं, पर हमारी सोच वही दकियानूसी। पढ़ा लिखा पति सब कुछ जानते हुए भी आभासी दुनिया में जीता है और उसे लगता है कि पत्नी किरण उसे बेटा दे सकती है, भले ही उसके लिए उसे बार-बार गर्भ धारण करना पड़े, बार-बार 'दवाई' खानी पड़े, यदि दवाई भी

कारगर न हो तो मंदिर, मस्जिद, पीर औलिया के कदमों में माथा रगड़कर भीख माँगनी पड़े, भ्रूण की जाँच करवानी पड़े; यदि भ्रूण कन्या का है तो उसे गर्भ में ही क़त्ल करवाना पड़े, बार-बार गर्भ धारण करने से पत्नी की जान पर खतरा भी मँडराता है, तो मँडराए, उसे अपमानित होना पड़े, तो हो, पर उसे बेटा चाहिए। उसके और परिवार के दबाव में किरण एक दो बार प्रयास करती भी है पर भ्रूण कन्या ही निकलता है और फिर वही 'सफाई' और फिर लड़ाई; अगली बार फिर गर्भधारण करने का दवाब।

उपन्यास पढ़ते हुए पात्र, उनके संवाद और घटनाएँ चलचित्र की भाँति मानस पटल पर चलने लगते हैं। सपनों से भरी एक सुशिक्षित नारी पर्दे पर आती है, उसके सपनों पर पहला वार उसके घर से ही शुरू हो जाता है, जब सपनों के पर कुतरकर उसकी शादी कर दी जाती है। शादी के बाद दो बेटियों की माँ बनते ही उस पर जैसे दुखों का पहाड़ टूट पड़ता है। परिवार को तीसरा बच्चा चाहिए और वह भी सिर्फ बेटा। कहानी यहीं से शुरू होती है, जहाँ सिर्फ बेटा पाना ही एकमात्र लक्ष्य रह जाता है। किरण परिवार को समझाती है कि बेटे के जन्म में स्त्री का नहीं पुरुष की अहम भूमिका है, पर पति व समाज को यह तर्क खोखला नज़र आता है। यह कहानी एक परिवार की नहीं है बल्कि पूरे समाज की है, क्योंकि इस पूरी प्रकिया में समाज भी दोषी नज़र आता है। जिस घर में बेटा पैदा नहीं होता समाज उस परिवार को हीन दृष्टि से देखने लगता है और कटु शब्दों के कटीले तीर चलाता है। एक शराबी जिसे ख़ुद की सुध नहीं रहती वह भी उस परिवार के हृदय को छलनी-छलनी कर जाता है। ससुर राजकिशन इसे पीटकर सफाई देता है- "स्साला एक घंटे से बकवास किए जा रहा था, दो-दो पोतियाँ हो गई! लोग तुम्हारी ज़मीनों पर कब्जा कर लेंगे। तुम्हारा खानदान नष्ट हो जाएगा!"

एक दूसरा उदाहरण भी है जब किरण बड़े ही चाव से एक नव नवेली दुल्हन को देखने के लिए सबसे आगे खड़ी है, परन्तु उसे बड़ी हिकारत के साथ सहेली की सास द्वारा पीछे कर दिया जाता है कि उसके पास बेटा नहीं है। "उसे बर्दाश्त न हुआ और आग बबूला होकर चिल्लाई-'कह दिया न एक बार उसे वहीं खड़े रहने दो। मैं नहीं चाहती नई बहू आते ही दो बटियों वाली औरत सामने पड़े!" कल्पना कीजिए किरण पर क्या गुज़री होगी। इसे हमारे संवेदनहीन होते समाज की पराकाष्ठा ही कहा जाएगा। दुख-सुख में जीवन भर साथ निभाने का वादा करने वाला पति पत्नी पर हाथ उठाना जैसे अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है। माता-पिता भी अपने बेटे के इस अपराध को अपराध न मानकर उसे सामान्य ही मानते हैं। ऐसे में जब बेकसूर पत्नी को मारपीटकर घर से निकालकर उसके ही हाल पर छोड़ दिया जाए तो वह क्या करे? यहाँ से पाठक की जिज्ञासा चरम की ओर बढ़ने लगती है। क्या वह जीवन से हार मानकर अपनी जीवनलीला समाप्त कर ले या कोई ऐसा कदम उठाए कि इस सोए हुए समाज की चेतना जागे। इस समाज की चेतना को जगाने के लिए बम फोड़ने पड़ते हैं अर्थात कोई बड़ा काम करके दिखाना होता है।

यहीं से किरण के ज़ेहन में एक विचार अंकुरित होता है कि वह स्वाभिमान बरकरार रखने के लिए आत्म निर्भर बनेगी और वह ऐसी राह पर कदम बढ़ा देती है, जो शुरुआत में कठिनाइयों से भरी अवश्य है, पर असंभव नहीं। यह उपन्यास का दूसरा भाग है, लेकिन कहानी को इस तरह बुना गया कि दोनों कहानियाँ साथ-साथ चलती हैं। पाठक इसी सोच के साथ आगे बढ़ता है कि उपन्यास के अंत में क्या होगा। अंत उपन्यास का रहस्य भी है और केन्द्रबिन्दु भी।

अक्सर सुनने एवं पढ़ने में आता है कि पुरुष मित्र ही एक दूसरे की सहायता करते है, पर इस उपन्यास में मनीषा अपनी सहेली किरण के सपनों में रंग भरने का काम करती है और उसे आई. ए. एस. बनने में हरसंभव सहायता करती है। उनकी दोस्ती कृष्ण-सुदामा-सी चित्रित होती है। उनकी दोस्ती महिलाओं के बीच दोस्ती का एक नया मुहावरा गढ़ती प्रतीत होती है। इसे हम पश्चिम के 'सिस्टरहुड' की शुरुआत भी मान सकते हैं।

लेखक ने किरण के आई. ए. एस. बनने के सफर में जो संघर्ष दिखाया है, वह सही मायने में इस उपन्यास की जान है; क्योंकि कुन्दन बनने के लिए संघर्ष की भट्टी पर तपना पड़ता है और किरण उस भटट्ठी पर खूब तपती है। अपनी बेटियों से दूर रहती है, यहाँ तक कि एक्सीडेंट में बेटी को चोट लगने पर भी उसे केवल देखभर कर वापस आकर अपनी पढ़ाई जारी रखती है। वह दिन-रात एक कर देती है; मनोरंजन के सभी साधनों से मुँह मोड़ लेती है और तभी बनती है, आई. ए. एस., जो उसके गाँव ही नहीं पूरे जिले के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि है। पाठक कहानी के अंत में पहुँचकर कह उठता वाह! किरण तुमने वास्तव में ही पूरे आसमान पर अपना कब्जा जमा लिया है। और इस प्रकार उपन्यास का शीर्षक 'आधी दुनिया पूरा आसमान' अपनी सार्थकता सिद्ध करता है। इस उपन्यास में आई.ए.एस की तैयारी करने वाले परीक्षार्थियों के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ कथा के माध्यम से दी गई हैं। यह कहानी युवाओं ख़ासतौर पर लड़कियों को प्रेरित करने वाली है।

उपन्यास में पात्रानुकूल भाषा और सटीक उपमाएँ पाठकों पर अपना असर छोड़ती हैं। अंग्रेजी, उर्दू के शब्दों का भी बहुतायत प्रयोग हुआ है, लेकिन यह अखरता नहीं। उपन्यास में लेखक ने नारी पात्रों के मनोभावों को जिस तरह व्यक्त किया है, लगता है जैसे वे परकाया में प्रवेश कर गए हों। एक-एक शब्द जैसे लिखा नहीं बल्कि गढ़ा गया हो। उपन्यास में अंत तक रोचकता और पूरी जिज्ञासा बनी रहती है। पाठक उपन्यास को पूरा पढ़े बगैर छोड़ नहीं पाता। यही इसकी सफलता है। उपन्यास में मुम्बई, गोवा जैसे शहरों का मनोहारी चित्रण पाठकों को वहाँ जाने के लिए लालायित कर सकता है।

इसी आशा के साथ कि उपन्यास साहित्य जगत् में अपनी पहचान बनाएगा, लेखक को बधाई।

000

पुस्तक समीक्षा

(उपन्यास)

जंगल

समीक्षक : नीरज नीर

लेखक : अशोक प्रियदर्शी

प्रकाशक : अनन्य प्रकाशन

नीरज नीर
आशीर्वाद, बुद्ध विहार,
अशोक नगर गेट नंबर 4 के सामने,
राँची, झारखण्ड 834002
मोबाइल- 8789263238
ईमेल- neerajcex@gmail.com

जंगल के भीतर जंगल
जंगल के बाहर जंगल
शहर-नगर, गाँव-गिरांव
हर तरफ कितने जंगल
पर मन भीतर जो जंगल
सबसे घना वही जंगल।

जंगल भीतर से अलग और बाहर से अलग दिखाई देता है। बाहर से देखने वाले जंगल को उत्सव और गुरुतर भाव से देखते हैं। असली जंगल देखने के लिए निरपेक्ष भाव से जंगल के भीतर जाना होता है। लेकिन उस जंगल को देखना जो मन के भीतर है, बहुत कठिन है। मन जंगल को देखने के लिए सबसे पहले स्वयं से गुज़रना होता है, स्वयं के आर-पार देखना होता है।

वयोवृद्ध एवं वरिष्ठ लेखक अशोक प्रियदर्शी जी का सद्य: प्रकाशित उपन्यास "जंगल" जंगल को भीतर से देखता है और सभ्यता की सतह पर उगे मन के जंगल की बहुत बारीकी से चीर-फाड़ करते हुए परत दर परत इसके सतहों को खोलता है। बाहरी-भीतरी दोनों ही तरह के जंगल को करीब से देखने के अपने अनुभवों को अशोक प्रियदर्शी अपने इस छोटे कलेवर के उपन्यास में बहुत ही रोचकता से दर्ज करते हैं। लेखक लंबे समय तक झारखंड के सुदूर जंगलों से घिरे छोटे से कस्बे, जो अब जिला बन गया है के एक कॉलेज में हिन्दी पढ़ाते रहे हैं। इसलिए उनका अनुभव आँखों देखा और प्रामाणिक कहा जाना चाहिए। अशोक प्रियदर्शी के इस उपन्यास में वह कटु और नंगा सत्य हमारे सामने उपस्थित होता है, जिसपर कभी बात नहीं होती। जो जंगल से जुड़ी सभ्यता का एक स्याह पक्ष है, लेकिन विमर्शों से परे है। जंगल से जुड़ी सभ्यता और संस्कृति के बारे में दो तरह की बातें होती हैं, पहली कि यह सभ्यता अन्य सभी सभ्यताओं से अच्छी है, दूसरी यह कि यह सभ्यता पिछड़ी है। लेकिन वास्तविकता तो यह है कि सत्य इन दोनों के बीच कहीं खड़ा है। सत्य कभी भी एक कोण लेकर खड़ा नहीं होता। सत्य देखने वाले, कहने वाले के साहस की गोलाई लेकर खड़ा होता है और तभी पूर्णता में दृष्टिगत भी होता है। सत्य के साथ छाया बनने की कोई संभावना नहीं होती। लेकिन दुर्भाग्यवश हम छाया को ही सत्य समझ बैठते हैं। हम चित्रों को जीवन मान लेते हैं। आदिवासी विमर्श के नाम पर प्रगतिशीलतावादियों ने हमेशा छल किया है। दिल्ली में बैठकर रचा गया विमर्श आधा-अधूरा

और फर्जी ही हो सकता है, इसके लिए सिमडेगा, गुमला, बसिया, बानो में बैठना होगा। आदिवासी विमर्श में केवल आदिवासियों के शोषण के पक्ष को तो पकड़ा गया, लेकिन आदिवासियों में व्याप्त बुराइयों, कुरीतियों पर कभी चर्चा नहीं की गई। बिना इन बुराइयों से लड़े, क्या कभी कोई शोषण ख़त्म हो सकता है भला? आख़िर इसीलिए तो बिरसा मुंडा ने अंग्रेजों से लड़ने के साथ ही समाज में व्याप्त बुराइयों से लड़ने का आहवाहन किया था। दारू-हड़िया छोड़ने के लिए कहा। अशोक प्रियदर्शी का यह उपन्यास विचारधारा के बोझ से मुक्त होकर कठोर सच्चाई को दर्ज करने का साहस करता है। यह उपन्यास इसलिए पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि यह शोषण की बात करता है और इसके पीछे की वजहों की बारीकी से पड़ताल भी करता है।

इस उपन्यास में कथा का प्रवाह और कहन शैली बहुत ही रोचक है साथ ही उपन्यास का लोकाल बहुत ही स्पष्ट एवं प्रभावशाली रूप में उपस्थित होता है, जिससे उपन्यास के दृश्य चलचित्र के समान चलते प्रतीत होते हैं और एक बैठकी में पढ़वाने की क्षमता रखते हैं।

यह उपन्यास सीसिलिया, मरियम, क्रिस्टीना, जोहान, रामलाल और इस तरह के अन्य चरित्रों के बहाने तत्कालीन मरमडेगा के सामाजिक ताने-बाने, शोषण, विद्रोह, नक्सली उभार, शासकीय व्यवहार आदि की परतें बहुत ही सूक्ष्मता से उधेड़ता है। मरमडेगा की पहचान मुश्किल नहीं है, उपन्यास को पढ़ते हुए इसे आसानी से समझा जा सकता है। झारखण्ड के वन प्रदेशों, यहाँ के जीवन को जानने समझने के लिए यह उपन्यास बहुत ही कारगर एवं मददगार साबित हो सकता है।

कहानी कई खंडों में विभिन्न उपशीर्षकों में बहुत ही दिलचस्प एवं कुछ हद तक एरोटिक अंदाज़ से कही गई है। इस उपन्यास की कथा से गुज़रते हुए हम इस बात को बहुत विश्वसनीय ढंग से अनुभव कर पाते हैं कि शोषक की कोई जाति, कोई धर्म नहीं होता। शोषक शोषण करते हुए कोई जाति, समाज, धर्म का भेद नहीं करता है। सीसिलिया, मरयम, क्रिस्टीना या अन्य किसी का भी शोषण करने में कोई पीछे नहीं रहा, क्या हिन्दू, क्या मुस्लिम या कि क्या क्रिस्तान, क्रिस्तान भी कौन जो स्वयं आदिवासी ही है। जंगल, पहाड़ की बात करने वाले, आदर्शों एवं सिद्धांतों की बात करने वाली पार्टी के कंडुलना साहब जब सत्ता में आ जाते हैं तो वे भी अभावों में दिन काटने वालों का शोषण करने में पीछे नहीं रह जाते। अपनी चतुराई से मरयम का खेत हड़प लेते हैं और उस खेत को दिलाने के नाम पर समाजसेवी सलीम खान उर्फ सलीम मियाँ सीसिलिया को ही हड़प लेता है। सीसिलिया को जब इस हड़प का पता चलता है तबतक वह सब कुछ खो चुकी होती है और ऐसे में वह राजा साहब के पास अपनी उम्मीदों की गठरी लेकर पहुँचती है और अपनी एकमात्र पूँजी अपनी देह उसे सौंप देती है। ज़मीन वापस पाने की उम्मीद से ज़्यादा शायद उसे सलीम मियाँ से बदला लेने की चाहत रही हो क्योंकि भले ही सलीम मियाँ ने उससे शादी न की थी लेकिन वह रह तो उसकी पत्नी की ही तरह रही थी।

उपन्यास में कई जगह बहुत मार्मिक प्रसंग सामने आते हैं। जैसे एक प्रसंग है "जा आयो मट्टी हो जा"। सीसिलिया की माँ मरयम जब रोग, अभाव और दुःख से पीड़ित होकर मर जाती है तब सीसिलिया उसे कब्र में मिट्टी देते हुए कहती है कि जा आयो मट्टी हो जा। यह पूरा प्रसंग किसी भी संवेदनशील पाठक के हृदय को द्रवित कर सकता है। यह जो मिट्टी हो जाने की कामना के पीछे की विवशता है, वह समूचे कथा के निचोड़ को बहुत ही ताकत से अभिव्यंजित करता है।

मुक्ति की जब कोई राह नहीं है। उठकर खड़े होने भर की भी जब जगह नहीं है, तब मिट्टी हो जाने में ही मुक्ति है। कैसी विवशता है, कैसी लाचारी है! बेटियाँ घर छोड़ कर कभी वापस नहीं आने के लिए चली जा रही है, जाने कहाँ जा रही है? शिकारी जाल लिए घूम रहे हैं। शिकारी भी कैसे, बिल्कुल अपनी तरह के शिकारी, वैसे ही मुँह नाक वाले, वैसी ही बोली-भाषा बोलने वाले। बेटे बिना जाने कि वे क्या काम कर रहे हैं, नक्सली बन जा रहे हैं। और इस विवशता का, इस लाचारी का उतना ही सुंदर प्रकटीकरण लेखक ने अपने उपन्यास में किया है। इस विवशता का जो उभार इस कथा में आता है वह इसका वैशिष्ट्य है।

अशोक प्रियदर्शी की भाषाओं एवं बोलियों पर कमाल की पकड़ है। इस उपन्यास में कई भाषाओं -बोलियों का प्रयोग वे बड़ी सहजता से करते हैं और ख़ासकर कथा के मुख्य पात्रों के द्वारा बोली जाने वाली सादरी का इस उपन्यास में खूब और बाखूब प्रयोग हुआ है। कथा की मुख्य पात्र सीसिलिया कथा के अंत में सादरी में ही कहती है- "मोके कुछ होई हले कब्रस्थान मत पहुँचाबे। मोर गंदा सरीर से कब्रस्थान के का ले अपवितर करबे? मोके जंगल में फेंकवा देबे ! बाघ-सियार, कौआ-चील मन कर पेट भरी।"

सीसिलिया का कई बार दैहिक शोषण और कई बार उसका स्वयं समर्पण कभी उसके प्रति करुणा तो कई बार खीझ से भर देता है लेकिन कथा के अंत के साथ सीसिलिया की उदासी, उसका दुःख पाठक के अंतर को भिगो देता है।

उपन्यास में कुछ अवांतर प्रसंग चलताऊ गप के रूप में आए हैं, ख़ासकर कॉलेज के शिक्षकों के संदर्भ में, जो कथा के प्रकरण में असंगत प्रतीत होते हैं। इनके उल्लेख से बचा जा सकता था। लेकिन लेखक शायद अपने कॉलेज के अध्यापन के दौरान देखे-सुने कुछ दिलचस्प घटनाओं को दर्ज करने के लोभ से बच नहीं पाए। इसके साथ ही पुस्तक का शीर्षक भी कुछ और बेहतर किया जा सकता था, जिससे कहानी की विषय वस्तु और तेवर का भान शीर्षक से हो सके।

120 पृष्ठों की इस पुस्तक को अनन्य प्रकाशन ने प्रकाशित किया है। पुस्तक की छपाई बहुत अच्छी है। झारखण्ड के वन प्रांतर को किसी कथा के माध्यम से देखने समझने की इच्छा रखने वालों को यह उपन्यास अवश्य पढ़ना चाहिए।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

ज़ोया देसाई कॉटेज

समीक्षक : अनीता सक्सेना

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

अनीता सक्सेना
बी 143, न्यू मीनाल रेसीडेंसी
भोपाल - 462023 म.प्र.
मोबाइल- 9424402456

पंकज सुबीर की नवीनतम पुस्तक है 'ज़ोया देसाई कॉटेज'। पंकज सुबीर की पुस्तकें अपने नाम से ही प्रभावित भी करती हैं और पढ़ने के लिए प्रेरित भी। पहली कहानी पढ़ना शुरू करते ही दिल और दिमाग़ सिहर उठता है। पाठक उन दो वर्षों में पहुँच जाता है जब सम्पूर्ण विश्व कोरोना जैसी महामारी की चपेट में आ गया था। इंसान - इंसान को पहचानने से इनकार करने लगा था, हर कोई दुश्मन नज़र आता था। कोई किसी की मदद को आने को तैयार नहीं होता था, रिश्तेदार ही अपनों का साथ छोड़ दिए थे ऐसे में कुछ लोग फ़रिश्ते बनकर धरती पर उतर आए थे जो अपनी जान की परवाह किये बिना दूसरों की जान बचाने के साथ-साथ उन लोगों को उनके अंतिम पड़ाव तक पहुँचा रहे थे जो अपनी ज़िंदगी परिवार के लिए समर्पित तो किये लेकिन कोरोना ने उनसे उनका परिवार ही छीन लिया था। लोग अपनों को ही अपनाने से इनकार करने लगे थे, उनके अंतिम सफ़र में उनका साथ निभा रहे थे तो वो चंद लोग जो स्वार्थ को भूल परमार्थ के लिए काम कर रहे थे। चंद दोस्त किस तरह से लावारिस से पड़े लोगों की अंतिम क्रिया संपन्न करा रहे थे, उसका आँखों देखा हाल जैसा वर्णन है इस कहानी में। कहानी का शीर्षक है 'स्थगित समय गुफ़ा के वे फलाने आदमी'। कहानी में उस समय के हालात का वर्णन मर्मान्तक है 'हवाओं में मौत की ख़बरें हैं, जो हवाओं से होती हुई दिमाग़ तक पहुँच रही हैं' और 'रात में अंतिम संस्कार का निषेध होने के कारण सुबह की प्रतीक्षा में जिस्म एक के ऊपर एक थप्पियाँ बनाकर रखे जा रहे हैं' जैसे वाक्य कोरोना की भीषणता को प्रकट करते हैं।

पुस्तक में कुल ग्यारह कहानियाँ हैं। पहली कहानी बीमारी की विभीषिका को व्यक्त करती है तो दूसरी कहानी एक इंसान के अंतर्मन को समझने की कहानी है। 'ढोंड़ चले जै हैं काहू के संगे' शीर्षक की कहानी पाठक को विचार करने को मजबूर कर देती है कि आख़िर है क्या इस कहानी में ? कहानी जैसे-जैसे आगे बढती है पाठक कहानी के मुख्य पात्र के साथ जुड़ता जाता है, उसके साथ पाठक का हमदर्दी का एक नाता बनता जाता है। यह एक भावुक मन की पुकार है जो एक मनोचिकित्सक के माध्यम से सामने आती है। पढने के बाद भी पाठक के मन में देर तलक भूपेन्द्र की आवाज़ में उनकी ग़ज़ल गूँजती रहती है 'करोगे याद तो हर बात याद आएगी'।

अगली कहानी 'डायरी में नीलकुसुम' तेजी से बदलते समय, टूटती परम्पराएँ और युवा दिलों के ज़ज्बातों की कहानी है। समाज में विशेष वर्ग के लिए बनाये गए नियमों, बंधनों और उनसे उपजते प्रतिरोध की कहानी है। जिसमें यह निकलकर सामने आता है कि युवा होता मन कैसे विद्रोही बन जाता है और किसी के दु:ख में शामिल हो जाता है। डायरी में दबा नीलकुसुम का फूल याद दिलाता है कि प्रेम हमेशा प्रेम के कारण ही नहीं होता है, कभी-कभी वह प्रतिरोध के कारण भी होता है। अगली कहानी 'खजुराहो' एक पवित्र प्रेम की दास्ताँ सुनाती हुई कहानी है जो रोचकता लिए हुए है। कहानी का ताना-बाना बहुत सुंदर बुना गया है, रूहानी वाक्य विन्यास हैं और अंत तो पाठक को वापस कहानी में ले जाकर बहुत कुछ सोचने को मजबूर कर देता है।

'जाल फेंक रे मछेरे' कहानी दो महिलाओं की घरेलू नोक-झोंक से प्रारम्भ होती है और एक लडके की शादी के लिए लड़की खोजने के माध्यम से आगे बढती है। दोनों देवरानी-जिठानी हैं और परिवार में बहुत मिलजुलकर भी रहती हैं लेकिन एक माँ के मन में लालच का आना और दूसरी माँ का समझाना दिलचस्प है। माँ का लालच बेटे को जाल फेंकने के लिए उकसाता है लेकिन जाल में फँसता कौन है यह पढ़ने से ही पता चलेगा। कहानी का अंत चौंकाता है।

शीर्षक कहानी 'ज़ोया देसाई कॉटेज' मांडू की सैर भी कराती है, वहाँ की कहानी भी सुनाती है। यह कहानी भी पवित्र प्रेम की की कथा प्रस्तुत करती है। बाज बहादुर और रूपमती का प्रेम, उनका समर्पण और त्याग जिसका गवाह मांडू का किला, जहाज महल के साथ दूर बहती रेवा नदी भी है उसी को कहानी में ढालकर लेखक ने ज़ोया देसाई की दास्ताँ सुनाई है। कहा जाता है कि बाज बहादुर रूपमती को अकेली छोड़कर चला गया था। लेखक कहानी के माध्यम से दोनों की कथा को वर्तमान से जोड़कर लिखी है। कहानी का सन्देश है कि प्रेम तो अमर है, चाहे वह बाजबहादुर-रूपमती का हो या जोया और राहुल का।

एक सरकारी शासक के अहंकारी रौब की और ग़रीब खेतिहर पर उसके जुल्मों की कहानी है 'जूली और कालू की प्रेमकथा में गोबर'। एक इंसान जो सरकारी पद पर है वो चाहे जो करवा सकता है। फिर चाहे जानवर हो या इंसान सब उसके सब जुल्मों को सहने के लिए मजबूर है। 'रामसरूप अकेला नहीं जाएगा' तेजी से बढ़ते विकास के मनुष्य पर पड़ते प्रभाव की कहानी है। 'नोट जान' एक किन्नर के जीवन के कष्टों को व्यक्त करती है। कितनी कठिनाई भरी ज़िंदगी जीते हैं ये लोग। यह कहानी यह भी दर्शाती है कि समाज में किन्नरों को, जहाँ एक ओर लोगों द्वारा प्रताड़ित किया जाता है वहीँ उन्हें आदर देने वाले भलेमानुस भी रहते हैं।

'हराम का अंडा' इंसानी भावनाओं और मेडिकल साइंस की कहानी है। इंसान चाहता तो यही है कि उसके परिवार में सब सुख आएँ लेकिन उन्हें पाने के लिए जब मेडिकल साइंस का सहारा लेना पड़ता है और उसमें जो खर्च आता है तब उसके विचार, उसके आदर्श सब कैसे बदल जाते हैं यह कहानी के माध्यम से बताया गया है।

'उजियारी काकी हँस रही हैं' यह कहानी परिवार की उजियारी काकी के व्यक्तित्व और उनके स्वाभिमान को विस्तार से सबके सामने लाती है। एक महिला अपने पति के झूठा लांछन लगाने पर कभी भी कमज़ोर नहीं पड़ती, अपना स्वाभिमान नहीं खोती, बल्कि विरोध स्वरूप बस मुस्कुराना छोड़ देती है। उसकी मुस्कराहट ही उसकी जान की दुश्मन बन जाती है और अंत समय वह वापस अपनी मुस्कराहट के दम पर ही सबको अचंभित करती हुई संसार से विदा ले लेती है।

पुस्तक की अधिकतर कहानियाँ उनके शीर्षक की तरह लम्बी हैं, हर बात का वर्णन विस्तार लिए हुए है। लोगों की बातचीत में देशज शब्द हैं, गंभीर भावों का विश्लेष्ण गीत और कविता के माध्यम से भी किया गया है। कई कहानियाँ अतीत में चलती हैं और वर्तमान तक पहुँचकर समाप्त होती हैं। शहर, बस्तियाँ और गाँव सबका बढ़िया वर्णन है।

000

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन की महत्त्वपूर्ण घोषणाएँ

सीहोर के क्रीसेंट रिज़ॉर्ट एवं क्लब में आयोजित 'शिवना साहित्य समागम एवं अलंकरण समारोह' में ऑनलाइन अमेरिका से जुड़ीं वरिष्ठ साहित्यकार सुधा ओम ढींगरा ने कार्यक्रम को संबोधित करते हुए शिवना प्रकाशन द्वारा भविष्य में किये जाने वाले कई कार्यों से श्रोताओं को अवगत करवाया। उन्होंने अपने संबोधन में शिवना की आगामी कार्य योजनाओं से भी अवगत कराया। उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ साझा की। शिवना प्रकाशन की ओर से सुधा ओम ढींगरा द्वारा की जा रही इन घोषणाओं का सभागार में उपस्थित श्रोताओं ने करतल ध्वनि से स्वागत किया।

1. इस वर्ष से शिवना प्रकाशन एक 'शिवना नवलेखन पुरस्कार' भी प्रारंभ करने जा रहा है, जो 35 वर्ष से कम आयु के लेखक/लेखिकाओं को उनकी किसी भी विधा की पहली पांडुलिपि के लिए प्रदान किया जाएगा। हर वर्ष अलग-अलग विधाओं के लिए पांडुलिपियाँ आमंत्रित की जाएँगी। चयनित श्रेष्ठ पांडुलिपि को पुरस्कार राशि प्रदान की जाएगी तथा शिवना से उस पांडुलिपि का प्रकाशन किया जाए।

2. इस वर्ष से शिवना प्रकाशन की अपनी वेबसाइट shivnaprakashan.com काम करना प्रारंभ कर देगी। शिवना द्वारा अपनी किताबों की बिक्री अपनी वेबसाइट से भी की जाएगी। साथ ही यहाँ शिवना के लेखकों के परिचय सहित उनके बारे में पूरी जानकारी भी उपलब्ध रहेगी।

3. शिवना प्रकाशन इस वर्ष से एल.एल.सी. कंपनी के रूप में शिवना प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड के नाम से काम करना प्रारंभ देगा। डॉ. ओम ढींगरा, जो एस ओ वी थेराप्यूटिक्स फार्मा कंपनी के प्रेज़िडेंट और कई फार्मा कंपनियों के बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर हैं, इस कंपनी के सी.ई.ओ. के रूप में कार्य करेंगे।

4. शिवना प्रकाशन इस वर्ष से अमेरिका में भी एल.एल.सी. के रूप में कार्य करना प्रारंभ कर देगा।

5. शिवना प्रकाशन अमेरिका के सरकारी वेंडर के रूप में रज़िस्टर्ड हो चुका है। शिवना प्रकाशन द्वारा पुस्तकों की पहली खेप प्रदान भी की जा चुकी है। अब शिवना की किताबें अमेरिका की पब्लिक लाइब्रेरीज़, जो हर शहर, हर कस्बे में हैं, हिन्दी प्रेमियों और पाठकों को मिलेंगी। यूनिवर्सिटीज़ के हिन्दी विभागों में तथा पुस्तकालयों में स्टूडेंट्स को अब शिवना प्रकाशन की पुस्तकें मिल सकेंगी।

6. शिवना प्रकाशन इसी वर्ष से अपनी ऑडियो बुक्स लांच करना शुरू कर दिया है। यह कार्य इस क्षेत्र की प्रतिष्ठित कंपनी 'रचनाएँ' के साथ मिल कर किया जा रहा है। ऑडियो बुक्स के साथ-साथ 'रचनाएँ' की वेबसाइट तथा मोबाइल एप पर शिवना प्रकाशन की पुस्तकों को 'ई-पुस्तक' के रूप में भी ख़रीद कर पाठक पढ़ सकेंगे। शिवना प्रकाशन की कई पुस्तकें ऑडियो बुक के रूप में जारी की जा चुकी हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

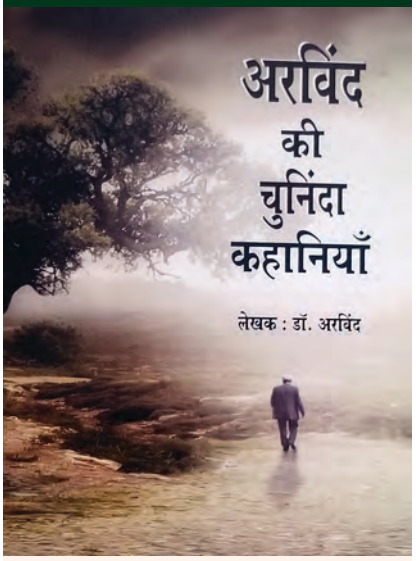

(कहानी संग्रह)

अरविंद की चुनिंदा कहानियाँ

समीक्षक : रूपसिंह चन्देल
लेखक : डॉ. अरविंद
प्रकाशक : इंडिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड

रूपसिंह चन्देल
फ्लेट न. 705 टावर 8,
विपुल गार्डन
धारूहेड़ा, हरियाणा, 123106
मोबाइल- 8059948233

हिन्दी साहित्य में अनेक ऐसे साहित्यकार हैं जो साहित्यिक शोरगुल, राजनीति, मठाधीशों से दूर केवल सृजन सरोकारों तक ही अपने को सीमित रखते हैं। साहित्य की अभिवृद्धि, विकास और उसकी सेवा उनका मुख्य ध्येय होता है। ऐसे ही साहित्यकार हैं डॉ. माधव सक्सेना 'अरविन्द', जो जितने अच्छे कथाकार हैं उतने ही अच्छे इंसान और सम्पादक। लगभग चालीस वर्षों से 'कथाबिंब' जैसी महत्त्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिका का सम्पादन करते हुए हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में उन्होंने जो योगदान दिया है वह न केवल श्लाघनीय है बल्कि हिन्दी लघु-पत्रिका के क्षेत्र में ऐतिहासिक भी है। किसी पत्रिका के सम्पादक के लिए सृजनशील रहना बहुत मायने रखता है, वह भी विशेष रूप से लघु-पत्रिका के सम्पादक के लिए और एक ऐसे सम्पादक के लिए जो अपनी पत्रिका में बिना किसी भेदभाव और राजनीति के रचनाकारों को स्थान देता है। 'कथाबिंब' ने कितने ही नए रचनाकारों को आगे बढ़ाने में अहम भूमिका निभायी, लेकिन उसके सम्पादक अरविन्द जी को राजेन्द्र यादव की भाँति यह गुमान नहीं कि वह उसके लिए 'इट्स माय क्रिएशन' कहते अर्थात यह वह रचनाकार है जो मेरी या मेरी पत्रिका की देन है। राजेन्द्र यादव ने इन पंक्तियों के लेखक को लंबे साक्षात्कार के दौरान कुछ लेखकों को लेकर यही कहा था।

उपरोक्त बात प्रसंगत: आई, जबकि मैं यहाँ डॉ. माधव सक्सेना 'अरविन्द' जी के कहानी संग्रह 'अरविन्द की चुनिंदा कहानियाँ' पर चर्चा करना चाहता हूँ। जैसा कि संग्रह के नाम से स्पष्ट है, इसमें अरविन्द जी की अब तक लिखी कहानियों में से चयनित कहानियों को सम्मिलित किया गया है। ये कहानियाँ जीवन के विवध पक्षों पर प्रकाश डालती हैं। इनमें देश है तो विदेश भी है। 'मीन माने मछली', 'मेरे हिस्से का आसमान' और 'पच्चीसवें माले का फ्लैट' विदेशी पृष्ठभूमि को केन्द्र में रखकर लिखी गई कहानियाँ हैं। प्रेमचन्द के अनुसार एक कथाकार को राह चलते, ट्रेन में, अख़बार में या कहीं भी कहानी के विषय मिल जाते हैं बशर्ते वह अपनी आँखें खोले रहे। लियो तोलस्तोय अपने पास हर समय एक छोटी-सी डायरी रखते थे (तोलस्तोय की जीवनी - 'तोलस्तोय' - लेखक - हेनरी त्रोयत, अनुवाद - रूपसिंह चन्देल) और जब भी कोई विषय सूझता उसमें दर्ज कर लेते। हर रचनाकार की अपनी रचना प्रक्रिया होती है। अरविन्द जी की उपरोक्त तीनों कहानियों में उन देशों की स्थितियों को सघनता के साथ चित्रित किया गया है। 'मीन माने मछली' का एक उद्धरण दृष्टव्य है:

"ज़्यादार कनैडियन युवक-युवतियों को लगता कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अर्थ सात-आठ सालों को जाया करना होगा, क्योंकि नौकरी के वेतनमान शिक्षा से जुड़े हुए नहीं थे। ऐसा नहीं था कि अधिक शिक्षित होने पर वेतन में बहुत अंतर पड़ जाता हो। अधिकांश छात्र पार्ट टाइम नौकरी करते हुए अपनी पढ़ाई का खर्चा स्वयं वहन करते हैं। माँ-बाप बच्चों की कॉलेज या यूनिवर्सिटी की पढ़ाई के लिए पैसे नहीं खर्चते।" (8)

कहानी मीन नामक युवती को केन्द्र में रखकर लिखी गई है जो अपने मंगेतर की आर्थिक सहायता के लिए पढ़ने के साथ 'पित्जा हट' में पार्ट टाइम काम भी करती है। वह नैरेटर का खयाल भी रखती है और जब नैरेटर उसके मंगेतर की चर्चा करता है वह कहती है, "नो, आई हेट हिम, वह चिट्ठी भी नहीं लिखता।" (9) ऐसा वही कह सकता है जो किसी को हृदयतल से प्रेम करता है। लेखक ने इस कहानी के माध्यम से कनाडा में पढ़ने गए छात्रों की समस्याओं, वातावरण आदि का यथार्थपूर्ण और आकर्षक वर्णन किया है। 'मेरे हिस्से का आसमान' में लेखक कनाडा की जीवन-स्थितियों पर गहनता के साथ प्रकाश डालते हैं। "हाय!" "हलो!" या फिर इसी तरह के छोटे-छोटे औपचारिक वाक्यों के अलावा कोई भी किसी की निजी ज़िंदगी में

दखल नहीं देता। बिना फ़ोन पर समय लिये कोई किसी के घर नहीं आता-जाता।" और 'पच्चीसवें माले का फ्लैट' में न्यूयार्क के जीवन, वहाँ और उसके आसपास के सौन्दर्य, आदि का जीवन्त वर्णन लेखक ने किया है। कहानी का अंत बहुत ही मार्मिक है और पाठक को झकझोर देता है।

हमारे देश में राजनीतिज्ञ और उनके चाटुकार कितना संवेदनहीन हो चुके हैं इसका ज्वलंत उदाहरण है 'उद्घाटन' कहानी। एक नेताजी द्वारा शक्ति-माता मंदिर में शक्ति-माता मूर्ति के अनावरण का प्रसंग पाठक को उद्वेलित करता है। शक्ति-माता की मूर्ति के एक हाथ से अचानक रक्ताभ द्रव टपकता है जिसे अशुभ माना जाता है। उसके स्थान पर पीओपी और लकड़ी के हाथ लगाने के उद्यम जब असफल हुए तब रसायनोपचार के बाद किसी महिला का हाथ लगाए जाने का निर्णय किया जाता है। इसके लिए ग़रीब आदिवासी महिलाओं को लाया जाता है और अंतत: एक महिला को राज़ी किया जाता है। मूर्तिकार सफलतापूर्वक हाथ ट्रांसप्लांट करने में सफल रहता है। मूर्ति का अनावरण समारोह सम्पन्न होता है। यह कहानी यह बताती है कि ग़रीबों का कोई जीवन नहीं। जिस ग़रीब ने दस रुपये का नोट नहीं देखा उसके हाथ के लिए दस लाख रुपये मंदिर की ओर से दिए जाते हैं। कहानी राजनीतिज्ञों और धनवानों की अराजकता के साथ धर्मान्ध पुजारियों की अमानवीयता को स्पष्ट करती है, जिनके लिए गरीबों के जीवन का कोई मूल्य नहीं। कहानी का उद्धृत अंश देश में गरीबों की दयनीय स्थिति को गंभीरता के साथ उद्घाटित करता है।

"उधर पता नहीं कैसे दस-बारह नंग-धड़ंग बच्चे सबकी नजरें बचाकर आइसक्रीम के स्टाल के पास पहुँच गए थे और पास पड़े कचड़े के डिब्बे में से कागज के जूठे कप निकालकर बची-खुची आइसक्रीम खाने की कोशिश कर रहे थे।" (16)

मुम्बई का नाम आते ही आम पाठक के ज़ेहन में दो दृश्य सबसे पहले उभरते हैं। एक बालीवुड और दूसरा माफिया। 'दहशतज़दा' कहानी ऐसे ही माफिया गिरोह के बीच फँसे एक टैक्सी ड्राइवर की मानसिक स्थिति को अभिव्यक्त करती है। भाई के लिए काम करने वाले गुण्डे रामसिंह नामक टैक्सी ड्राइवर को हायर करते हैं। वे एक व्यक्ति की हत्या करके उसकी लाश टैक्सी में डाल एक नाले में फेंक देते हैं, फिर एक ढाबे में डिनर करते हैं। डिनर करते हुए वे रामसिंह को अपनी दास्तान सुनाते हुए कहते हैं, "हम सब अच्छे घरों से हैं। सभी पढ़े-लिखे। लेकिन अब बहुत दूर निकल आए हैं। यहाँ से लौटना संभव नहीं है।" बेरोज़गारी, भुखमरी उन्हें उस ओर ले आई। "भाई ने हमें रहने की जगह दी। पेट भरने के लिए खाना दिया। पैसे दिए। हमें जो कुछ भी कहा जाता है वह हम बिना सोचे-समझे करते हैं। भाई के नाम का जितना आतंक फैलता है उतना ज़्यादा पैसा हमें हफ्ते में मिलता है।" उनके माध्यम से लेखक का उल्लेखनीय कथन दृष्टव्य है - "नेता, पुलिस और गुंडे एक-दूसरे पर आश्रित हैं। यह एक अभेद्य महा-त्रिकोण है। इस पूरे माफिया-तंत्र में हमारा स्थान मात्र एक पुर्जे की तरह है।" (31)

अरविन्द जी का अनुभव संसार व्यापक है, दृष्टि सूक्ष्म। वह विषय के तह तक जाते हैं और समय और समाज की विद्रूपताओं और विडंबनाओं पर अपनी गहन अनुभूतियों को सहज और सरल लेकिन आकर्षक भाषा में उद्घाटित करते हैं। 'आदमी मरा नहीं' एक शानदार कहानी है। पात्र की जीवन स्थितियों को जिस प्रकार लेखक ने रेखांकित किया है वह अद्भुत है। कहानी का हर वाक्य उल्लेखनीय है। इस कहानी का मुख्य पात्र एक भिखारी है, जिसके माध्यम से लेखक ने सामाजिक और आर्थिक स्थितियों को व्याख्यायित किया है। "आख़िर क्यों किसी का ध्यान उस मुफलिस आदमी की ओर नहीं जाता?" लेखक समाज के समक्ष एक बड़ा प्रश्न खड़ा करते हैं। कहानी का हर अंश उद्धृत किए जाने की माँग करता है। भिखारी के बैठने के स्थान से लेकर उसके शरीर तक का जो वर्णन लेखक ने किया है वह अविस्मरणीय है। यदि इसे अत्युक्ति न माना जाए तो यह इस संग्रह की श्रेष्ठतम कहानी है और भिखारी की स्थिति का वर्णन इस देश की व्यवस्था पर एक तमाचा।

'हिन्दुस्तान/पाकिस्तान' अरविन्द जी की एक और बहु-चर्चित कहानी है। उन्नीस सौ इकहत्तर युद्ध में बंदी पाकिस्तानी सैनिक कैप्टेन सिद्दीकी के माध्यम से दोनों देशों की स्थितियों के साथ युवा कैप्टेन सिद्दीकी और उसकी सौतेली माँ सलमा के बीच पनपे प्रेम को भी चित्रित करती है। कैप्टेन का जन्म अविभाजित भारत में पंजाब के किसी शहर में हुआ था, लेकिन उसके पिता पाकिस्तान चले गए थे। लेकिन सिद्दीकी भारत के उस शहर को कभी नहीं भूला और उसकी हार्दिक इच्छा रही कि वह जीवन में एक बार हिन्दुस्तान अवश्य जाएगा और घायल होकर बंदी कैप्टेन सिद्दीकी उसी शहर में लाया गया। वह उस शहर को पहचान लेता है। उसके बचपन का जो दृश्य अरविन्द जी ने प्रस्तुत किया है वह हर पाठक को उसके बचपन में खींच ले जाने में सक्षम है।

"गर्मी की छुटटियों में, जब जबर्दस्त लू चला करती, चारों निकल जाते और परेड पर घूमा करते। इमलियाँ बीनते, घने पेड़ों के नीचे बने चबूतरों पर फौजियों के लिए रखे पानी के बड़े-बड़े मटकों को ढुलका आते।" (183)

कैप्टेन सिद्दीकी की माँ की मृत्यु उसके पाकिस्तान जाने के बाद ही हो गई थी। वह कमीशन लेकर फौज में चला गया, लेकिन छुट्टियों में जब वह आया तब देखकर हत्प्रभ रह गया। उसके पिता ने अपने से लगभग आधी उम्र की युवती से विवाह कर लिया था। अंतत: सलमा और उसमें प्रेम पनपता है और प्रेम बहुत आगे बढ़ जाता है। संग्रह की अन्य कहानियाँ 'चाँद शास्त्री', 'बीर बहूटी', 'प्रतीक्षाग्रस्त', 'सुरंग', 'समुद्र' और 'इत्यादि' कहानियाँ इस संग्रह को विशिष्ट बनाती हैं। अरविन्द जी के पास सुगठित, सरल-सहज, और संप्रेषणीय भाषा और आकर्षक शिल्प है। वह कम लिखते हैं, लेकिन जो लिखते हैं वह पाठक के मन-मस्तिष्क में छा जाने वाला होता है। निश्चित ही उनके इस संग्रह का स्वागत होगा, यह मेरा विश्वास है।

000

पुस्तक समीक्षा

(संस्मरणात्मक उपन्यास)

ऐ वहशते-दिल क्या करूँ

समीक्षक : पंकज सुबीर

लेखक : पारुल सिंह

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

पंकज सुबीर, पी.सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर मध्यप्रदेश 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

कहानियाँ उनके पास होती हैं, जिनको ज़िंदगी लगातार परेशानियों में, उलझनों में उलझाए रखती है। कहानियाँ उनके पास नहीं होतीं, जो एक बड़ी तय-सी ज़िंदगी लेकर आते हैं, बिताते हैं और चले जाते हैं। जब ज़िंदगी एक तयशुदा ढर्रे पर चलती है तब केवल घटनाएँ बनती हैं, लेकिन जब ज़िंदगी उस तयशुदा ढर्रे को छोड़ कर रोज़-ब-रोज़ किसी मुश्किल रास्ते पर उतरती हो, तब कहानियाँ बनती हैं। मुँह में चाँदी की चम्मच लेकर पैदा होने वालों का इसीलिए कला से कोई वास्ता नहीं रहता, और विशेषकर कला की सबसे विशिष्ट विधा साहित्य से। उनकी ज़िंदगी चाँदी से शुरू होती है और एक दिन चंदन पर समाप्त हो जाती है। ईश्वर जिससे बहुत प्यार करता है उसे लगातार उलझनों में, परेशानियों में घेरे रखता है, क्योंकि वह उससे उसका सर्वश्रेष्ठ निकलवाना चाहता है। जिससे वह प्यार नहीं करता उसे आराम, ऐश-ओ-इशरत से भरी हुई ज़िंदगी देता है, क्योंकि उसे पता है कि इस ज़िंदगी से कुछ श्रेष्ठ नहीं निकलवाया जा सकता है। सरल रेखाएँ केवल काग़ज़ पर ही अच्छी लगती हैं, ज़िंदगी में नहीं, ज़िंदगी में तो वक्र रेखाएँ, टेढ़ी लकीरें ही अच्छी लगती हैं। सरल रेखा सी ज़िंदगी एकदम बेस्वाद होती है, च्यूइंग-गम की तरह, जो बेस्वाद होती है, मगर फिर भी उसे चबाते जाना पड़ता है।

इस हिसाब से देखा जाये तो पारुल सिंह तो ईश्वर की सबसे लाड़ली हैं, क्योंकि उनको तो ईश्वर पिछली परेशानी से दूर होकर राहत की एक साँस लेने का मौक़ा भी नहीं देता है। पिछली परेशानी बस समाप्त होने को ही होती है कि अगली आ जाती है। और उसके पीछे एक और खड़ी होती है अपनी बारी के इंतज़ार में। जैसे ज़िंदगी असल में ज़िंदगी न होकर कोई कम्प्यूटर का गेम हो, जिसमें एक लेवल पार होते ही दूसरा लेवल सामने आ जाता हो, पहले के मुकाबले में अधिक कठिन तथा दुर्गम। मगर इस सबके बाद भी पारुल सिंह उसी जिजीविषा के साथ फिर खड़ी होती हैं, फिर लड़ जाती हैं। शायद ईश्वर को भी मज़ा आता है इस तरह के साहसी लोगों के सामने नयी-नयी चुनौतियाँ पैदा करने में। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि हम सारे इंसान किसी अज्ञात द्वारा खेले जा रहे कम्प्यूटर गेम का हिस्सा तो नहीं हैं ? वह कहीं दूर बैठा हमारे साथ कोई खेल खेल रहा है। इस खेल में वह दाँव उसी खिलाड़ी पर खेलता है, बाज़ी पर उसी को लगाता है, जिसमें उसको भिड़ जाने की, लड़ जाने की अंदरूनी ताक़त दिखाई देती है। जैसे पारुल सिंह में है। तभी तो हर पुराना लेवल पार करने के बाद पारुल सिंह एक नये लेवल में खड़ी नज़र आती हैं।

हर वो कहानी लोगों तक ज़रूर पहुँचनी चाहिए, जो उनको लड़ना सिखाये। उनको बताये कि ग़ालिब ने कुछ सोच कर ही लिखा होगा- 'मुश्किलें इतनी पड़ीं मुझ पर कि आसाँ हो गयीं'। ये कहानियाँ अगर अनसुनी रह गयीं, तो हम अपने बाद आने वाली पीढ़ियों पर बहुत अन्याय करेंगे। दुनिया को उन लोगों के लिए नहीं बनाया गया है, जो लड़ने से पहले हारते हैं, दुनिया उन

लोगों के लिए बनी है, जो लड़ते हैं, उनके दिमाग़ में हार या जीत कुछ नहीं होती। ऐसे लोग हर समय में होते रहेंगे, मगर उनको प्रेरणा देने के लिए कहानियाँ तो होनीं ही चाहिए। पारुल सिंह जैसे योद्धाओं की ज़िंदगी कहानी की शक्ल में ढल कर सामने आना ही चाहिए। यहाँ तो सबसे अच्छी बात यह है किसी दूसरे को नहीं लिखना है, योद्धा स्वयं ही लेखक भी है। जो ज़िंदगी के युद्ध की रूमानी कहानी कह रहा है।

यह किताब बहुत पहले आ जाना चाहिए थी, लेकिन लेखक के जीवन में युद्धों का क्रम बंद होने का नाम नहीं लेता है, इसलिए देर हुई। इस किताब को पढ़ते हुए मैंने महसूस किया कि यह किताब लड़ना नहीं सिखाती, बल्कि आनंद के साथ लड़ना सिखाती है। एक बड़ी सीख इस किताब में यह है कि जो कुछ हो रहा है, उस पर यदि आपका वश नहीं है, तो उसका आनंद लेना चाहिए। बड़े और गंभीर ऑपरेशन से पूर्व लिपिस्टिक लगाने की इच्छा, यह इच्छा करना कि ऑपरेशन करने वाला पुरुष डॉक्टर सुंदर हो, महिला चिकित्सक को बाँहों में भर कर धन्यवाद देना, ऑपरेशन के लिए जाने से पहले सेल्फ़ी लेना, यह सब बातें असल में लड़ने का तरीक़ा सिखाती हैं। एक बड़ा सबक़ यह मिलता है कि बड़े दुख के सामने खड़े होने पर छोटे सुखों के आनंद से मुँह नहीं फेरा जाये। हम अपने जीवन में बड़े दुख के सामने आकर एकदम स्तब्ध हो जाते हैं। किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं, पाषाणवत् हो जाते हैं, हमें इस प्रकार देख दुख अपनी ताक़त बढ़ी हुई पाता है और दुगने वेग से आक्रमण करता है। लेकिन पारुल सिंह की यह कहानी बताती है कि वे बड़े दुख के सामने खड़े होकर भी अपनी रोज़मर्रा की उन बातों को नहीं छोड़ती हैं, जो बातें उनको सुख देती हैं। वे दुख को एक प्रकार से अनदेखा करते हुए अपने कामों में लगी रहती हैं। दुख वार करता है, मगर केवल शरीर पर वार करता है, मन तक नहीं पहुँच पाता है क्योंकि मन तो उस समय दूसरे काम करने में व्यस्त होता है। दुख को इस प्रकार छलावे में डाल देना हर किसी के बूते की बात नहीं होती है।

पारुल सिंह पर मेरा दबाव हमेशा बना रहा कि अपने जीवन की कहानी लिखो। वह सब कुछ लिखो, जो दूसरों के लिए पढ़ना बहुत ज़रूरी है। और अंतत: यह किताब सामने आयी है। हालाँकि यह संस्मरण है, मगर चूँकि पारुल सिंह ने इसमें उपन्यास की शैली को लिया है इसलिए इसे संस्मरणात्मक उपन्यास कहना अधिक ठीक होगा। इस प्रकार के प्रयोग हिन्दी साहित्य में पहले भी बहुत हो चुके हैं। असल में तो हर कहानी उस कहानी को लिखने वाले लेखक का अपना कोई अनुभव, कोई संस्मरण ही होता है। उस संस्मरण में वह कितनी कल्पना का प्रयोग करता है, इससे तय होता है कि उसे किस विधा में रखा जायेगा। पारुल सिंह की इस कहानी में कल्पना बहुत कम है, मगर उनके पास यथार्थ को भी इस तरह से प्रस्तुत करने की कला है कि वह कल्पना लगे। वे यथार्थ के शुष्क और खुरदुरे धरातल को रूमानियत से इस प्रकार भर देती हैं कि, वह कल्पना ही लगने लगता है। इसीलिए इसे संस्मरणात्मक उपन्यास कहा जाना अधिक ठीक रहेगा। इसको पढ़ते हुए आप महसूस नहीं करते कि कोई यथार्थ पढ़ा जा रहा है।

कहानी एलिस के वंडरलैंड की बिलकुल नहीं है, मगर पारुल सिंह ने युद्ध के मैदान को अपनी भाषा से वंडरलैंड बना दिया है। मेरा ऐसा मानना है कि इस विषय को इतनी रूमानियत के साथ लिखना एक ऐसा कमाल है, जो पारुल सिंह ने कर के दिखाया है। यह दुख की कहानी है, मगर इसमें दुख कहीं नहीं है। दुख अगर इस कहानी को पढ़ ले तो स्वयं हैरत में पड़ जाये कि मेरी कहानी में मुझे ही नगण्य कर देने वाला कौन लेखक है यह।

इस उपन्यास की एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें फ़्लैश-बैक बहुत सुंदरता के साथ आते हैं। एकदम उसी जगह, जहाँ आवश्यकता होती है। ये फ़्लैशबैक एकदम वर्तमान की किसी घटना के साथ जुड़े हुए आते हैं। अतीत को इस प्रकार वर्तमान के साथ जोड़ देना कहानी में थोड़ा मुश्किल होता है, लेकिन इस उपन्यास में पारुल सिंह ने बहुत अच्छे से किया है। इस कहानी में दो फ़्लैशबैक स्कूल और कॉलेज के हैं, मगर उनके कारण पाठक को पता चलता है कि कहानी का मुख्य पात्र का जो आज है, उसमें बीते हुए समय का कितना योगदान है। वर्तमान में चल रही किसी समस्या की जड़ें तलाशी जा रही हैं अतीत में जाकर। हम जो कुछ आज होते हैं, वह इसलिए होते हैं क्योंकि अतीत में कहीं न कहीं, कोई न कोई कारण या सूत्र होता है। इस कहानी में जब भी फ़्लैशबैक आता है, तो वर्तमान की किसी घटना के कारण आता है। जैसे वर्तमान में प्यास लगने पर अवचेतन तुरंत अतीत में ले जाता है, जहाँ इसी तरह की एक और घटना मौजूद है। इस तरह ये फ़्लैशबैक असल में वर्तमान कथा का ही एक हिस्सा बन जाते हैं। वर्तमान कथा को और सुंदर बना देते हैं ये फ़्लैशबैक।

साहित्य वही होता है, जो पढ़ने के बाद आपकी दुनिया को थोड़ा बदल दे। आप पढ़ने के बाद वैसे नहीं रहें, जैसे पहले थे। यदि ऐसा नहीं होता है, तो लेखक असफल है। इस किताब को पढ़ने के बाद पाठक का दुनिया को देखने का नज़रिया यक़ीनन बदलेगा। उसकी दुनिया भी कुछ न कुछ ज़रूर बदलेगी। वह भी दुख के सामने खड़े होकर कुछ वैसा ही करने का प्रयास करेगा, जैसा पारुल सिंह इस किताब में करती हैं। यह किताब दुख से लड़ने का तरीक़ा पाठक को सिखाएगी, जो आज की तारीख़ में सबसे आवश्यक है। विशेषकर वह दुख जो ख़राब स्वास्थ्य के कारण जीवन में आता है। इस समय सबसे बड़ी समस्या यही है, हर कोई किसी न किसी स्वास्थ्य की समस्या से जूझ रहा है। मगर यह किताब पाठक को बताएगी कि डरने या भागने से कुछ नहीं होगा, बस आँखों में आँख डाल कर खड़े रहना है। इससे दुख भले ही कम न हो, मगर उसका प्रभाव थोड़ा कम हो जायेगा। यह किताब दुख के समय 'कूल' रहना सिखाएगी। यदि इसे पढ़ कर पाठक ऐसा महसूस करता है, तो पारुल सिंह इस किताब को लिखने में सफल हैं, शत-प्रतिशत सफल हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

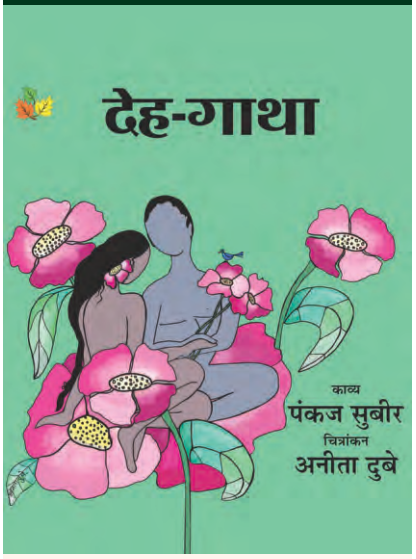

(खण्ड काव्य)

देह-गाथा

समीक्षक : गीताश्री
लेखक : पंकज सुबीर
रेखांकन : अनिता दुबे
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545
मोबाइल - 9806162184
ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

गीताश्री
फ़्लैट नं. सी-1339, गौर ग्रीन एवेन्यू,
अभय खण्ड, इंदिरापुरम, ग़ाज़ियाबाद,
उत्तर प्रदेश- 201014
मोबाइल- 9818246059
ईमेल- geetashri31@gmail.com

पवन झकोरे की इच्छा से दीपशिखा हो जैसे शंकित
देह तुम्हारी तब वैसे ही पाकर परस हुई थी कम्पित ।
000
स्वप्न एक जगमग हो चमका दो नयनों की दीपशिखा में
छुअन मधुर -सी दौड़ रही थी भीगी -भीगी प्रेम - सुधा में ।
000
प्रणय -राग का गायन सुनकर भंग हुई वर्षों की निद्रा
कामदेव के पुष्प वाण से भग्न हुई योगी की तन्द्रा ।
000

अतीत के धुँधले दर्पण में जब जीवन का प्रथम प्रभंजन याद आए... तब इन कविताओं को पढ़ लीजिए। पहली बारिश ! पहला वसंत ! पहली आँधी ! पहली लहर ! पहला प्रेम ! पहली रति! पहली-पहली बार बलिये...!

सोलह बरस की बाली उमर को सलाम...! इस उम्र का प्रेम कौन भूलता है भला ! वो भी तब जब काव्य-नायक सुधियों में ही रहता हो। जीवन के प्रथम निमंत्रण को न बिसरा पा रहा हो। उसकी चाहत बनी हुई हो और शेष जीवन यंत्रवत बन कर रह जाए। उसका मन परिमल-कथा याद करने में ही रमता हो।

खण्डकाव्य साहित्य में प्रबंध काव्य का एक रूप है। जीवन की किसी घटना विशेष को लेकर लिखा गया काव्य खण्डकाव्य है। ये लंबी कविता पूर्णत:निर्मल आनंद पर आधारित है। एक लगभग सोलह वर्षीय किशोर ने बचपन छूटने के पश्चात वय: संधि में ही जब दैहिक सुख प्राप्त किया तो उसे कैसा अनुभव हुआ, उसी का वर्णन इन सौ छंदों में किया गया है।

किशोरावस्था में शारीरिक संबंध हमारे यहाँ मान्य नहीं हैं। परंतु, फिर भी कम से कम छोटे क़स्बों में और ग्राम्यांचलों में ये आम घटना है। इस पर आज नैतिक बहस हो सकती है। आज नियम और सोच बदल गए है। सवाल उठ सकते हैं कि आख़िर एक किशोर वय के लगभग बालक के अनुभवों को क्यों लिया गया? वह रचना ही क्या जो सवाल न उठाए। बहरहाल नैतिक-अनैतिक की बहस में न पड़ते हुए बता दूँ कि इस संग्रह की कविता दरबारी कविता नहीं हैं। इन्हें आप अति ऐंद्रिय और स्थूल कह कर नहीं छोड़ सकते। न ही ये सामन्तवादी अभिव्यक्ति है, जैसा कि डॉ. नगेंद्र रीतिकाल की कविताओं के बारे में कहते हैं। इसे पढ़ने के लिए थोड़े अभ्यास की ज़रूरत है। न ही इसे 'बोल्ड' कह कर हीन बना सकते हैं। ये कविता, लंबी कविता... एक लम्बी कविता है, प्रारंभ से अंत तक सौ छंद की कविता... जो मुक्त हैं इन तमाम पाबंदियों और दबावों से। यहाँ कवि स्त्रियों पर निगाह नहीं रखता है, न ही उनके हाव-भाव, गतिविधियों पर ग़ौर करता है। न ही स्त्री को देख कर नयन तृप्त होते हैं। यहाँ तृप्ति है... प्रथम प्रणय के बाद की। रति मूलक हाव-भाव हैं लेकिन वो स्त्री-पुरुष के साहचर्य से उपजे हैं। कवि की नज़र स्मृति में रति-सुख की खोज करने जाती है। कवि की स्मृति में प्रेम, रति, श्रृंगार, कामकेलि सब कुछ है। किशोरवय नायक का आग्रह, उत्कंठा और नायिका की सहभागिता है।

इसे पढ़ते हुए मुझे दिनकर की उर्वशी याद आई, जो मुझे अत्यंत प्रिय है। 'देह गाथा' शीर्षक से राजकमल चौधरी का एक उपन्यास है। यह बात मुझे उन दिनों पता चली जब मैं और मेरे कथा-गुरु मेरी एक किताब के लिए नाम ढूँढ़ रहे थे। मैंने देह गाथा ही रखा था, फिर बाज़ार में स्त्री। गुरु जी ने मुझे रिसर्च करने को कहा कि नाम चेक करो, पहले किसी और की किताब का तो नहीं। मैंने चेक किया, तब पता चला कि ये दोनों नाम से किताबें हैं। फिर गुरु जी ने कुछ और नाम रखा। पंकज सुबीर के खंड काव्य का यही नाम देख कर अच्छा लगा। यही होना चाहिए था। अब बात अनीता दुबे के रेखांकन की ! काव्य को सराहें कि सराहें रेखांकन को। शानदार। शब्दों और रेखाओं का मेल कमाल है। इसे रेखांकनों के लिए भी पढ़ा और देखा जाना चाहिए।

000

पुस्तक समीक्षा

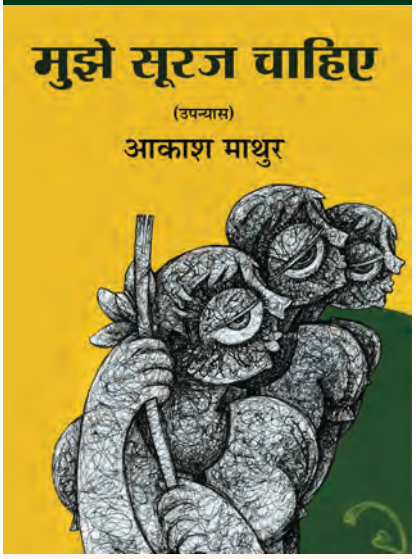

(उपन्यास)

मुझे सूरज चाहिए

समीक्षक : पारुल सिंह

लेखक : आकाश माथुर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

पारुल सिंह
W-903, आम्रपाली ज़ोडिएक, सेक्टर 120, नोएडा 201301, उप्र,
मोबाइल- 9871761845,
ईमेल- psingh0888@gmail.com

'मुझे चाँद चाहिए' की जगह 'मुझे सूरज चाहिए' की सशक्त दावेदारी ठोकती तीन अलग-अलग आयु वर्ग की स्त्रियाँ। जो अपने ही साथ भगवान् या तथाकथित भगवान् की भी आज़ादी की माँग करती हैं। मुझे चाँद चाहिए ये इच्छा जहाँ एक सादगी भरी सौम्य ऊँचाई की, अस्तित्व की माँग हैं। वहीं मुझे सूरज चाहिए अधिक उग्र किंतु आत्मविश्वास से सूरज को सँभाल लेने की भावना को इंगित करती है। ये किसी ऐसे फ़रियादी की फ़रियाद भी लगती है जो सहनशक्ति के आख़िरी छोर पर आ पहुँचा है और अब चाँद की शीतलता भरी ऊँचाई नहीं, आकाश के भाल पर चमकते सूरज की गर्मी ही उसे ठंडक दे सकती है। इस उपन्यास की कहानी शुरू होती है एक सम्भ्रांत परिवार की मध्य-आयु की एक विधवा के सादे जीवन के साथ जिसे एक भरा-पूरा संयुक्त परिवार बहुत सम्मान के साथ देखता है और पूजता है। साथ ही परिवार की एक पुत्र-वधू और उसकी बेटी के अपने-अपने पीढ़िगत संघर्षों को उपन्यास बहुत संवेदना के साथ चित्रित करता है।

मध्य-प्रदेश के ग्रामीण समाज की कुरितियों को बहुत विस्तार से आकाश स्पष्ट करते हैं। ये सामाजिक कुरीतियाँ आख़िर तो स्त्री के मन और तन को रौंद कर की ख़ुद को जीवित रखे हुए हैं। वो फिर चाहे शादी की आटा-साटा प्रथा हो या नातरा। आटा-साटा में जहाँ वार या वधू के ससुराल के ही किसी महिला या पुरुष से घर की किसी महिला या पुरुष की शादी कर दी जाती हैं। यानि ये ज़रूरी नहीं आप ससुराल में जाकर अपनी बहन के ननदोई ही बनें, आप उसके दामाद भी बन सकते हैं। जिन अयोग्य पात्रों की शादी नहीं हो रही हो वहाँ प्रभावी परिवार दूसरे परिवार पर इस तरह का दबाव बना लेता है। जिस में आर्थिक कमज़ोरी सबसे बड़ा कारण होता है। इसी प्रकार नातरा में दूसरी शादी आपसी सहमति से तलाक़ ले कर ली जाती है और दूसरी शादी के एवज में परिवार बड़ी रक़म कमाता है। इसमें स्त्री को एक घर से उठ दूसरे घर जा बसने की पीड़ा से गुज़रना पड़ता है। रमा ऐसे ही आटा-साटा की चपेट में आकर अपने ही भाई की विधवा सास बन बैठी थी। एक पढ़ी-लिखी उमंगों से भरी लड़की की एक बूढ़े व्यक्ति से शादी, उसके कौन-कौन से अरमानों को तिरोहित करती है इसका वर्णन लेखक ने बहुत संवेदनशीलता के साथ किया है।

जंगल को, प्रकृति को सम्मान देना और पूजना हमारी परम्परा है और ये उसकी जीवनदायिनी शक्ति का सम्मान व आदर है। जिसे पूजते-पूजते हम उसकी पूजा में उसे ही नष्ट करने लगते हैं और कर्मकांडों में फँस कर स्वयं की और भगवान् की ग़ुलामी की नीवों को पोषित करते हैं। इस भाव की विवेचना, कारण और निवारण पर लेखक ने खुल कर कलम चलाई है और विस्तार के साथ बहुत ही सुलझी हुई भाषा में इस विषय को बरता है। उसमें जहाँ लेखक पर्यावरण संरक्षण और आदिवासी समाज के उपेक्षा के सवाल उठाते हैं। वहीं वो धर्मांधता पर भी कटाक्ष करने से नहीं चूकते।

आकाश के स्त्री पात्र परिस्थितियों के शिकार अवश्य हैं, लेकिन कमज़ोर नहीं हैं। और अंत में सशक्त रूप से अपने हिस्से के सूरज के लिए खड़े होते हैं। यहाँ अच्छी बात ये है कि वे एक दूसरे की दुश्मन नहीं है और बहनापे की सहायता से पितृ-सत्ता और रूढ़ियों के ख़िलाफ़ खड़ी होती हैं। जो आकाश के लेखन को सामयिक बनाता है।

उपन्यास की भाषा देशकाल- अनुकूल है और सहज है। अपने पात्रों के साथ। एडिटिंग अच्छी है, इसलिए उपन्यास को बहुत अधिक लम्बाई तक ना खींच कर विषयानुसर लेखक कम में ही अपनी बात रख पाने में समर्थ है। जिसके लिए लेखक को बहुत शुभकामनाएँ। ये एक सामाजिक सरोकारों से भरा उपन्यास है जो भगवान् सहित अपने पात्रों की वकालत सफलता से करता नज़र आता है। सती को पूजना भी कहीं न कहीं सती-प्रथा को अभी तक सही मानना ही है, परिवर्तन अपने जीवन में ला सकती है तो स्त्री ही ला सकती है, जैसी हिम्मत देता आकाश माथुर का ये नया उपन्यास निश्चय ही पठनीय है।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

डोर अंजानी सी

समीक्षक : मीरा गोयल

लेखक : ममता त्यागी

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

मीरा गोयल,
211 Landreth Ct., Durham, NC-27713, USA
मोबाइल- 919-452-3831
ईमेल- madeera.goyal@gmail.com

ममता त्यागी का नया कहानी संग्रह 'डोर अंजानी सी' सजग जीवन के अनुभव, शोध और गंभीर विचारों के समन्वय से निर्मित हुआ है। 'मन पाखी काहे न धीर धरे' एक रहस्यमय ढंग से प्रारंभ की हुई करुण कहानी है, जो अंत तक पाठक को बाँधे रहती है। कहानी के सुखान्त से पाठक चैन की साँस लेता है। 'उजाले की ओर बढ़ता क़दम' यह कहानी जीवन के तीसरे पहर के अकेलेपन और नर नारी के सरल आकर्षण की कथा है, जिसमें फूलों की भीनी ख़ुशबू और पायल की मद्धिम झंकार है, जो पाठकों को आह्लादित करती है, पर समाज की प्रचलित मान्यताओं से जूझने की नायिका निर्मला में न शक्ति थी न इच्छा ! देवेश की मित्रता उन्हें भाती अवश्य थी। जब हमउम्र पड़ोसी देवेश जी ने भी उसी सीनियर कम्युनिटी में रहने का निर्णय ले लिया तो निर्मला जी प्रसन्न हो गईं, बगैर किसी समस्या के मात्र मित्रता का संबंध जो वे दोनों चाहते थे, उन्हें मिल गया।

'खूँटी पर टँगा ओवरकोट' इस कहानी में कश्मीर से पंडितों के पलायन के समय की त्रासदी का विवरण है जिस में परिवारों के टूटने और अत्याचार के साथ कुछ हिन्दू और मुसलिम परिवारों में मानवीय संबंध भी थे जिसे स्वर्णाक्षरों में लिखा जाना चाहिए जो ममता जी ने बखूबी निभाया। 'डोर अनजानी सी' अपने अन्दर पलते जीव की अनुभूति का सुख, मातृत्व प्राप्ति की सफलता, स्त्रीत्व की पूर्णता का अनुभव नयना को संतुष्ट करती है। सफल चिकित्सक होते हुए भी मातृत्व प्राप्ति के पहले, नयना अपने को अपूर्ण ही समझती थी। पुरुष और स्त्री की प्रकृति भिन्न है, उनकी सफलता का मापदंड भिन्न है।

'पारिजात की महक' समाज में अवगणित, तिरस्कृत किन्नर व्यथा की करुण कहानी है। सामाजिक पीड़ा से त्रसित परी देवदूत बनकर मदद करती है पर श्रेय नहीं लेना चाहती। इस कहानी के माध्यम से परी जैसे विस्मृत वर्ग की अमानवीय दशा को समाज के सामने लाने का यह प्रयास सराहनीय है। 'एक मुट्ठी ज़िंदगी' एक रहस्यमय कहानी प्रारंभ से अंत तक! विस्तृत सजीव विवरण के साथ लेखिका हमें नायिका के साथ एलिवेटर ले कर कथा नायक के पास पहुँचती है, और आगे की सारी वार्ता हमारे सामने होती है। जीवन के लिए आवश्यक, धनोपार्जन करने के लिए कुछ भी करने को विवश लड़की ने अंत में हमें चौंका दिया। उसने भी आज मुट्ठी भर ज़िंदगी जी ली, वही काफी था। अविस्मरणीय क्षण!

'स्टील का कप' समाज की ग़लत मान्यताओं को झेलती नायिका को वर्षों बाद हर सफलता के बावजूद मानवीय प्रकृति के अनुसार रश्मि की माँ से पूर्व अपमान का बदला ले कर ही शांति मिली।

'वह फिर चूक गया' प्राकृतिक सौन्दर्य का मनोहारी वर्णन उल्लेखनीय है। कलाकार संयम उन पहाड़ी वादियों में हमें भी साथ ले जाता है। मौन प्रकृति के मध्य मधुर संगीत सुनाता है, जिससे आकर्षित होता है और अकेलेपन से कुछ भयभीत भी। लेखिका ने उसका भावनात्मक द्वार खोल दिया। उधर चोट खाई रत्ना पुरुष के प्रेम की क्रूर व्याख्या करती है, पर डाक्टर संयम के साथ उसका अनुभव विपरीत निकला। हर पुरुष को एक ही तराजू में तोलना उचित नहीं, रत्ना अपने वैवाहिक अनुभव से पीड़ित थी। उसके विवाह का आधार ही शारीरिक सौंदर्य था जिसमें भावनात्मक मिलाप हुआ ही नहीं था तो जो हुआ वह प्रत्याशित ही था। रत्ना की असाधारण, अवांछित स्थिति का अनावरण किए बगैर विवाह करना मेरी समझ में भारी भूल थी, विपक्षी के प्रति अन्याय था। 'लव यू दादा' कहानी की सुवास दूर तलक जाती है। ऑटिज़्म की असहाय पीड़ा और आजीवन दु:ख झेलना कब, किस परिवार के भाग्य में लिखा है, कोई नहीं जानता!

विभिन्न महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं पर शक्तिशाली इशारा, कथा के रूप में प्रस्तुत कर के, जन साधारण को जगाने का प्रयास सराहनीय और अनुकरणीय है। पुस्तक की भाषा और विवरण इतना सटीक है कि हम उसमें कुछ ऐसे उलझ जाते हैं कि पात्रों की पीड़ा हमें विह्वल कर देती है।

000

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

लौट-लौट कर आते हैं परिंदे

समीक्षक : गोविन्द सेन
लेखक : राजेंद्र नागदेव
प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर -203006

गोविन्द सेन
राधारमण कॉलोनी, मनावर, ज़िला- धार,
म.प्र. -454446
मोबाइल- 9893010439
ईमेल- govindsen2011@gmail.com

कविता अंतर्मन की सांद्र अभिव्यक्ति है। बिम्ब, प्रतीक और रूपक इसके आभूषण हैं। विचार इसे रीढ़ प्रदान करते हैं। 'लौट-लौट आते हैं परिन्दे' वरिष्ठतम कवि-चित्रकार राजेंद्र नागदेव का ताज़ा कविता संग्रह है। इन कविताओं में आज के समय के अलावा अतीत के समय की अनुगूँजें साफ़ सुनी जा सकती हैं। ये कविताएँ बिम्बों और प्रतीकों से संपन्न हैं। इन कविताओं में समतामूलक समाज का स्वप्न तैर रहा है। महानगरीय जीवन की यंत्रणा, युद्ध की विभीषिका और हर तरह के भेदभाव से मुक्त स्वस्थ मानव समाज की कल्पना है। इनमें वार्धक्य की समस्याएँ के साथ अतीत की स्मृतियाँ का कोलाज भी रचा गया है। विघटित जीवन मूल्यों के साथ पर्यावरणीय चिन्ताएँ, सूक्ष्म मानवीय सम्वेदनाएँ भी इन कविताओं की अभिव्यक्ति में शामिल हैं।

वृद्धावस्था जीवन की अंतिम अवस्था है। इस अवस्था में आदमी पीछे अधिक देखने लगता है। इस दौर में उसके अनेक संगी-साथी विराट सूनापन छोड़कर जा चुके होते हैं। आगे भविष्य में अँधेरा ही नज़र आता है। अतीत के जंगल के उजाले में ही उसे थोड़ी बची हुई उम्मीद नज़र आती है। यह स्मृतियों के लौटने का दौर होता है।

संग्रह की शीर्षक कविता में कवि कहता है-'लौट-लौट कर आते हैं परिन्दे/ स्मृतियाँ लाते हैं।' कवि परिंदों से बार-बार आते रहने की गुहार लगाता है क्योंकि उन्हें उसके उजाड़ आँगन में कुछ दाने सदैव बिखरे मिलेंगे। कविता की आखिरी पंक्तियाँ हैं-'परिंदों ! आते रहो, आते रहो, आते रहो/ तुन्हें मेरे उजाड़ आँगन में/ कुछ दाने सदैव बिखरे मिलेंगे'

'दस्तावेज़' कविता में भी बिम्बों के जरिए इसी वार्धक्य की मन:स्थितियों का सजीव चित्रण है। यह दस्तावेज उम्र के कई दशक पार कर चुका है। यह फटा हुआ और बदरंग है। इस कविता से एक सुन्दर बिंब देखिए-'हम समय के कटोरदान से फैंकी गई / बासी रोटी के टुकड़े/ हमारी नियति / मरघट के कुत्तों द्वारा/ खाए जाने तक की बची है।' 'बुढ़ापा' कविता भी इस दुरावस्था को अभिव्यक्त करती है। बूढ़ों को घर के सुनसान अँधेरे कोने में कबाड़ की तरह फेंक दिया जाता है। बुढ़ापा जीवन की साँझ है। 'अंतिम दिनों में', 'उसकी आँखें', 'इच्छाएँ', 'दिन की लम्बाई नापते' आदि अनेक कविताओं में इस अवस्था के अनुभवों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति मिलती है।

कवि ने प्रकृति का मानवीकरण बखूबी किया है। 'ग्रीष्म' कविता में अनेक बिंब हैं। इस ऋतु में निर्लज्ज सूरज निरंकुश-तानाशाह हो जाता है। 'प्यासी चिड़िया' और 'खिड़की पर चिड़िया', 'नदी' जैसी कविताओं में कवि ने पर्यावरणीय चिंता को सीधे-सीधे प्रेषित किया है। 'रात' कविता का एक खूबसूरत बिंब प्रस्तुत है- 'सूर्य ने अभी-अभी छलाँग लगाई/ क्षितिज की घाटी में, / काली औरत /चमकीली बुन्दकियों वाली साड़ी पहने/ आ रही है धीरे-धीरे।' इसी रात में -'लुटेरों के अड्डे पर/ हथियार तैयार हो रहे हैं।' हमारे समय का यह भयानक सच है।

पृथ्वी युद्ध की यंत्रणा झेलती रही है। मानव समाज युद्धोन्माद में झुलस रहा है। शहंशाह लड़ रहे हैं और तलवारों से वे कट रहे हैं जिनका युद्ध से कोई लेना देना नहीं। संग्रह में युद्ध की विभीषिका को चित्रित करती दो कविताएँ हैं-'युद्ध' और 'युद्ध में बच्चा'। 'युद्ध' कविता की ये पंक्तियाँ देखें-'पर कटे सफ़ेद कबूतर / युद्ध भूमि में फड़फड़ा रहे हैं/ और आकाश में मंडरा रहीं हैं मिसाइलें/ बच्चों, बूढ़ों, स्त्रियों की तलाश में / जिन्हें पता ही नहीं उनका अपराध क्या है/ उन्हें ढूँढ़ा जा रहा है/ सज़ा देने के लिए।'

आधुनिक भावबोध की इन कविताओं की भाषा सहज-सरल और चित्रतामक है। इनके बिंब और प्रतीक अनूठे हैं जो विचार की भूमि पर प्रतिष्ठित हैं। ये कविताएँ पाठक की संवेदना को छूती हैं। समय की विसंगतियों से परिचित करवाती हैं। कविताएँ पाठक को ठहरकर पढ़ने के लिए बाध्य करती हैं। संग्रह पाठक को यूँ ही गुज़र जाने नहीं देता, पाठक का हाथ पकड़कर उसे कुछ देर के लिए तो रोक ही लेता है।

000

पुस्तक समीक्षा

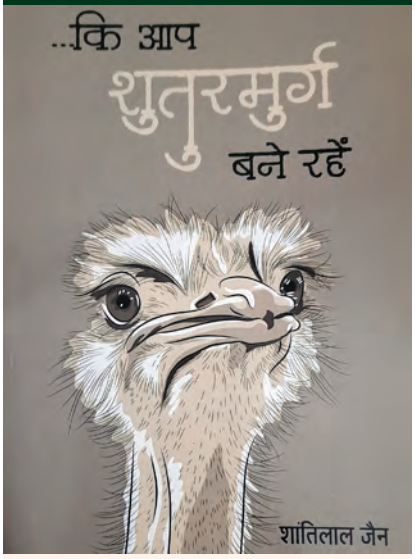

(व्यंग्य संग्रह)

कि आप शुतुरमुर्ग बने रहें

समीक्षक : ब्रजेश कानूनगो

लेखक : शांतिलाल जैन

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

ब्रजेश कानूनगो
503, गोयल रिजेंसी, चमेली पार्क
इंदौर 452018
मोबाइल- 9893944294
ईमेल- bskanungo@gmail.com

सामाजिक उत्कर्ष और पतन के कारणों का पता भी अतीत के समुद्र में गोता लगाकर ही खोजा जाता रहा है। मानव सभ्यता के विकास के साथ ही यह परंपरा आगे बढ़ती रही है। चाहे वह कविता हो, निबंध हो, कहानी या उपन्यास हो अपने समय का सच लोगों के समक्ष रखते रहे हैं। यही साहित्य भविष्य में वैकल्पिक इतिहास की भूमिका का कुछ हद तक निर्वाह करने लगता है। जिस दौर में अप्रिय या कड़वा सच, झूठ के मोहक आवरणों में छुपाया जा रहा हो, इतिहास लेखन संदिग्ध हो तब आगे साहित्य का ही एक आसरा शोधार्थियों के पास बचेगा। ऐसे साहित्यकारों में व्यंग्यकार शांतिलाल जैन भी एक होंगें जिनके लिखे में भविष्य का नागरिक, शोधार्थी आज के सच को जान सकेगा। शांतिलाल जैन का नया व्यंग्य संग्रह 'कि आप शुतुरमुर्ग बने रहें' की रचनाएँ यह आश्वस्ति पाठकों को देता है।

देश और दुनिया में आज सत्ताओं का एक ऐसा राजनीतिक संक्रमण काल चल रहा है जब चारों तरफ अंधेरों का साम्राज्य पसरा पड़ा है। जो दिखता है वह होता नहीं। जो दिखाया जाता है वह सच से बहुत दूर होता है। जो दस्तावेजों में दर्ज होना चाहिए वह प्रकाश में ही नहीं आता। तब इस दौर की विसंगतियों, मूर्खताओं, पाखंड और अटपटेपन को भविष्य में शांतिलाल जैन जैसे रचनाकारों की किताबों में खोजा जा सकेगा।

शांतिलाल जैन के प्रस्तुत व्यंग्य संग्रह की भूमिका में वरिष्ठ व्यंग्यकार कैलाश मंडलेकर ने विस्तार से संकलित रचनाओं पर सटीक टिप्पणियाँ की हैं। उन सब सार्थक सकारात्मक टिप्पणियों से सहमत होते हुए एक पाठक और एक रचनाकार के तौर पर लगता है कि शांतिलाल जैन अपनी किसी भी रचना को अंतिम रूप देने से पहले बहुत चिंतन करते हैं। उसे किस फॉर्मेट में कितने बेहतर ढंग से कहा जा सकता है, इसका धैर्य उनमें अद्भुत है। बात कही भी जाए और संदर्भ ध्वनि से निकल कर आए, सीधे सीधे नहीं। कविता का यह औजार उनके व्यंग्य गद्य में नया बिम्ब रचता है। रचना की प्रस्तुति में उनका ठिठक कर कहना रचना को विश्वसनीय और प्रभावी बना देता है।

कई बार उनकी रचनाओं में ऐसे विषय और प्रसंग या तथ्य होते हैं जिनकी जानकारी भी सामान्य पाठकों को नहीं होती। कई तकनीकी विषयों और नवाधुनिक सूक्तियों, विधियों, व्यवहारों को लेकर उनकी व्यंजनात्मक रचनाएँ आई हैं। कहना न होगा ऐसे में लेखक के साथ पाठक की भी अपेक्षित तैयारी जरूरी हो जाती है अन्यथा वह किसी चक्रव्यूह में उलझ भी सकता है।

कई बार शांतिलाल जैन का नियमित पाठक उनका नाम पढ़ते ही रचना की बुनावट और विषय की नवीनता की कल्पना कर प्रस्तुति के एक विशिष्ठ फॉर्मेट की संभावना में पड़ जाता है। विविधता के बावजूद ऐसा होना मुझे निजी तौर पर खटकता है। मुझे लगता है किसी सुपरस्टार की शैली की बजाए शांतिलाल जैन जैसे सहज लेखक अपने सहज लेखन में भी उतना ही असर डालने में समर्थ हैं। जो उनके पूर्व में आए संकलनों की रचनाओं में बखूबी देखा जा सकता है।

वर्तमान समय की विसंगतियों, बेहूदगियों पर, मूर्खताओं पर वे बहुत प्रभावी रूप से चोट करते हैं। मज़ेदार यह कि जिस पर रचना टिप्पणी करती है वही व्यक्ति मुस्कुराने पर विवश हो जाता है, किंतु भीतर कहीं न कहीं काँटे की चुभन तो महसूस कर ही लेता होगा।

संग्रह की कुछ रचनाएँ कोरोना काल की स्थितियों, विसंगतियों पर लिखी गईं है अन्य रचनाएँ भी इसी कालखंड की राजनीतिक, सामाजिक, मानवीय घटनाक्रमों, आचरणों और पाखंड पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करती हैं।

एक तरह से इस कठिन समय में जब हर अच्छी बुरी बात को नज़र अंदाज़ करने में ही सामान्य जन अपनी भलाई देखने लगा है, सब कुछ भला भला लगने के दौर में शांतिलाल जैन का व्यंग्य संग्रह 'कि आप शुतुरमुर्ग बने रहें' साहस के साथ ज़रूरी और रचनात्मक प्रतिरोध के रूप में अपने समय की विडंबनाओं को रेखांकित करता है।

000

पुस्तक समीक्षा

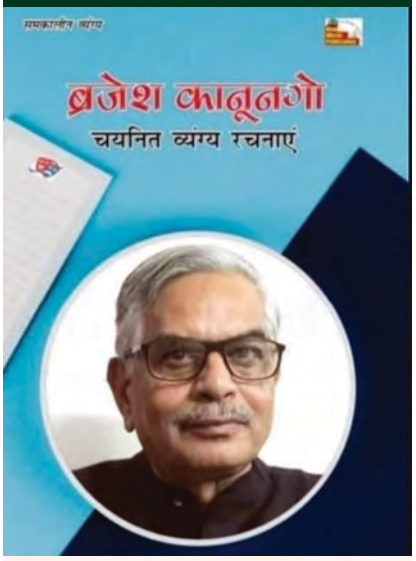

(व्यंग्य संग्रह)

ब्रजेश कानूनगो चयनित व्यंग्य रचनाएँ

समीक्षक : ओम वर्मा
लेखक : ब्रजेश कानूनगो
प्रकाशक : न्यू वर्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली

ओम वर्मा
100, रामनगर एक्सटेंशन,
देवास 455001म.प्र.
मोबाइल- 9302379199
ईमेल- om.varma17@gmail.com

ब्रजेश कानूनगो आज के दौर के व्यंग्यकारों में एक चर्चित नाम है। जैसा कि शीर्षक से ज़ाहिर है, इसमें उन्होंने अपने अब तक के रचनाकाल से चुन-चुनकर 48 व्यंग्य रचनाएँ पाठकों के लिए प्रस्तुत की हैं। सभी व्यंग्य रचनाओं पर अगर कुछ कहूँगा तो बात बहुत दूर तलक जाएगी, इसलिए कुछ चुनिंदा रचनाओं पर अपनी बात कहना चाहूँगा।

पहला व्यंग्य है 'सफ़र में समाधि'। यह कई जगह प्रकाशित हो चुका है और कई गोष्ठियों में पढ़ा और सराहा भी जा चुका है। यह हर व्यक्ति का अनुभव है कि जब मध्यप्रदेश में राज्य परिवहन निगम की बसें चलती थीं तब टिकट कंडक्टर से टिकट लेकर बचे हुए पैसे वापस लेना एक बहुत मुश्किल काम होता था। यही इस व्यंग्य का विषय भी है।

व्यंग्य 'आदमी और पुतला' भी चिंतन की कई परतें उजागर करता है। जैसे-"एक पुतला युगों से एक ही दिशा में अपनी उँगली उठाए राह दिखा रहा है। उसे इस बात की चिंता नहीं है कि अब लोग किसी और रास्ते पर चल पड़े हैं...जिन्हें आदमी होना चाहिए वे धीरे धीरे पुतलों में बदलते जा रहे हैं।"

गाँव-कस्बे जिस तरह कांक्रीट के जंगलों में तब्दील होते जा रहे हैं, उस पर व्यंग्य 'बायपास के पास' में प्रहार है। 'लेखक से चुराइटर तक' में चौर्य रचनाकर्मियों की ख़बर ली गई है। 'ऐनक के बहाने' वह व्यंग्य है जिसे मुंबई वि.वि. ने बीए के पाठ्यक्रम में लगाया है। इसमें उनके प्रिय पात्र साधुराम जी के साथ चर्चा के माध्यम से व्यंग्य की शैली में विसंगतियों पर उनका दार्शनिक चिंतन सामने आता है। 'उत्तेजना का कारोबार' में टीवी चैट शो में होने वाले बहस-मुबाहिसों के गिरते स्तर, उसमें होने वाली काँव-काँव व प्रवक्ता की भूमिका पर तंज़ करते हुए वे कहते हैं- "सवालों से लबालब टीवी बहस के प्यालों में उत्तरों की एक बूँद भी क्यों नहीं मिलती? एक मात्र यही सवाल हर वक्त मन में घंटी बजाता रहता है।" 'सूत्रों के हवाले से' रचना में सनसनी फैलाने वाली अपुष्ट खबरों को सूत्रों का हवाला देकर पेश करने की प्रवृत्ति पर अच्छा व्यंग्य बन पड़ा है।

व्यंग्य 'मेथी की भाजी और लोकतंत्र' उनकी पहचान बन चुका एक क्लासिक व्यंग्य है। व्यंग्य का अंतिम अनुच्छेद सारी बात कह देता है- "कृपया कड़वी मेथी को सत्ता के विपक्ष की तरह मत देखिए, इसका होना भोजन में लोकतंत्र बनाए रखने की ज़रूरत है। मेथी है तो लोकतंत्र भी है।"

'गणेश जी पहुँचे क़र्ज़ लेने' भी ऐसा ही एक क्लासिक व्यंग्य है। स्वयं गणेश जी मानव रूप धारण कर बैंक से क़र्ज़ लेने के लिए इतने चक्कर लगाते हैं कि उनका वजन झटक जाता है। इस पर एक उत्कृष्ट व्यंग्य लघु नाटक भी तैयार किया जा सकता है या कहें कि मंचित भी किया जा सकता है। व्यंग्य गणेशजी जैसे पौराणिक चरित्र को माध्यम बनाकर नीतियों, लोन देने वालों पर दबाव, लेने वाले की तमाम मुश्किलों आदि पर प्रहार करता है। यह उनके प्रारंभिक दौर की परिपक्व व्यंग्य रचना है जो तब प्रकाशित भी हुई, और सराही भी गई। आज के दौर में कोई भी पत्र ऐसे 'संवेदनशील' विषय पर व्यंग्य शायद ही प्रकाशित करे। अगर कर भी दे तो व्यर्थ का बतंगड़ बनते देर न लगेगी।

'वाट्सएप पर महाकवि' शीर्षक व्यंग्य में किसी के भी नाम से किसी की भी रचना घुमाते रहने वाले अति उत्साहियों को बख़ूबी उजागर किया है। बाज़ारीकरण और आधुनीकीकरण के इस दौर में अंग्रेज़ी किस तरह हिन्दी को पदच्युत करने पर तुली है कैसे हमारी अपनी नई पीढ़ी जड़ों से कटती जा रही है, इस चिंता पर 'हिन्दी और मेरा आलाप' में चिंतन है। मुहावरों की प्रासंगिकता और उत्पत्ति पर 'और वे घोड़े बेचकर सो गए' एक बढ़िया साहित्यिक व्यंग्य है। 'कुत्ते की समाधि और बारिश में भीगती बकरी' बहुत ही बढ़िया करुण व्यंग्य कथा है। संकलन के अंतिम व्यंग्य 'कोष्ठकों में विचारधारा' में दलों के होते जाते विघटन पर प्रहार है। संकलन ब्रजेश कानूनगो के अभी तक की व्यंग्य-यात्रा के सभी आयामों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है।

000

पुस्तक समीक्षा

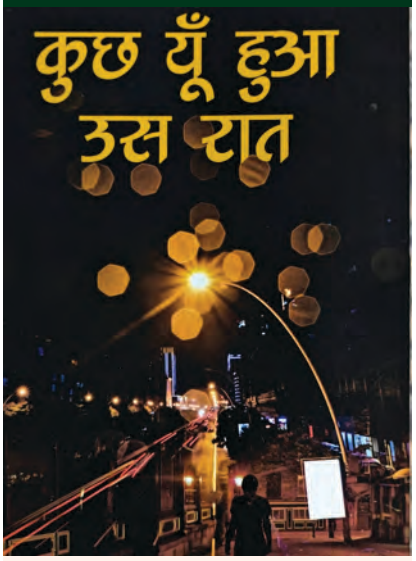

(कहानी संग्रह)

कुछ यूँ हुआ उस रात

समीक्षक : रतन चंद 'रत्नेश'

लेखक : प्रगति गुप्ता

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

रतन चंद 'रत्नेश'
फ्लैट नं. ए-201, एफिनिटी ग्रीन्स,
एयरपोर्ट रोड, जीरकपुर-140603
(पंजाब)

समीक्ष्य कृति 'कुछ यूँ हुआ उस रात' की तेरह कहानियों में आज के बदलते सामाजिक परिवेश की विडंबनाएँ यथार्थ रूप से दर्शायी गई हैं। पहली कहानी 'अधूरी समाप्ति' कोरोना की दूसरी लहर की भयावहता पर केंद्रित है, जिसमें पीड़ित व्यक्तियों के मसीहा बने एक युवक की उसी बीमारी की चपेट में आने के बाद का घटनाक्रम रोमांस और रोमांच से आबद्ध है। 'कुछ यूँ हुआ उस रात' वर्त्तमान परिपेक्ष्य में उस युवा पीढ़ी की व्यथा उजागर करती है, जिनके माता-पिता के आपसी संबंधों में अक्सर खटास पैदा होती रहती है। किशोरावस्था में देह में उत्पन्न परिवर्तनों के साथ शिक्षा का बोझ और उस पर माँ-बाप के अक्सर झगड़े के कारण उत्पन्न तनाव में संभवत: नशे का सहारा लेकर गलती से माँ के वजाय मोबाइल पर अन्य एक महिला तिलोत्तमा से अपना दुखड़ा रोनेवाली और अपनी रक्षा की गुहार लगानेवाली वाली युवती की मानसिक अवस्था के इस कहानी में बखूबी निर्वाह हुआ है। कहानियों में लेखिका का पुस्तक-प्रेम स्वत: उजागर हुआ है। सच्चे साथी की तरह पुस्तकों के प्रति प्रेम 'कोई तो वजह होगी', 'भूलने में सुख मिले तो भूल जाना' और 'ख़ामोश हमसफ़र' में उभरे हैं।

बुज़ुर्गों पर केंद्रित कुछ कहानियाँ हृदयग्राही हैं, जिनमें आज के स्वार्थपरक और उच्छृंखल युवा वर्ग की विकृत मानसिकता की पोल खुलती है। बीमार और बूढ़ी माँ की देखभाल में कोताही बरतने वाली दो बहनों का दिखावटी लगाव सिर्फ इसलिए है कि बाद में छोड़ी गई धन-संपत्ति पर उनका अधिकार हो जाएगा। कहानी का शीर्षक 'चूक तो हुई थी' इस ओर इशारा करती है कि बच्चों के लालन-पालन में कहीं-न-कहीं बड़ों से भी अक्सर चूक हो जाती है।

'भूलने में सुख मिले तो भूल जाना' संग्रह की सशक्त कहानियों में से एक है, जिसमें ग़लत कार्यों में लिप्त युवकों द्वारा एक अवकाश प्राप्त अध्यापक का अपमानित होना, शिक्षा के अवमूल्यन और अध्यापक की पीड़ा की ओर इशारा करता है। इसमें एक दादा और उसकी पोती का आपसी लगाव, स्नेह व प्रेम भी प्रतिबिंबित हुआ है। कहानी से स्पष्ट होता है कि सत्ता और सबलता का मेल व्यक्ति को उच्छृंखल बना देता है।

बाबाओं अथवा गुरुओं का मोहजाल 'टूटते मोह' में परिलक्षित हुआ है, जिसमें एक संभ्रांत परिवार का युवक जतिन शांति की तलाश में एक गुरु पर आश्रित हो जाता है, और अपने पुश्तैनी व्यवसाय की अनदेखी कर निठल्ला गुरु के आश्रम में पड़ा रहता है। यहाँ तक कि वह अपने माँ-बाप की अवहेलना भी करने लग जाता है। ऐसे बच्चे शान्ति पाने के भ्रम में अपने माता-पिता और परिवार के दूसरे सदस्यों के लिए अशान्ति का कारण बन जाते हैं।

हाई प्रोफाइल सोसाइटी की महिलाओं का सच 'पटाक्षेप' में उजागर हुआ है, जिसे उनकी ही समकक्ष एक लेखिका उनके क्रियाकलापों को अपने किताबों में भुनाती रहती है। इसी तथाकथित हाई सोसाइटी के अहं, दंभ और अनैतिकता के इर्दगिर्द बुनी गई, उनकी कहानियाँ ही उसकी लोकप्रियता में चार चाँद लगाते हैं। इनका एक मूक गवाह लेखिका के लिए महफ़िल सजाने वाला ईवेंट मैनेजर श्रीकांत होता है, जो इनके क्रियाकलापों को देखकर कहता है - 'गर्व है मुझे... मैं स्त्री या पुरुष दोनों में से कोई नहीं हूँ। मैं ईश्वर के दिए इस रूप में खुश हूँ। कम-से-कम मुझे रिश्ते निभाने के लिए मुखौटे नहीं चढ़ाने पड़ते। लोगों के झूठ और सच को भुनाना कोई इनसे सीखे।'

उच्च या मध्यवर्ग के पात्रों तक ही प्रगति गुप्ता की कहानियाँ सिमट कर नहीं रह जातीं, बल्कि उन्होंने ग़रीब और दबे-कुचले लोगों पर भी संजीदगी से लिखा है, जो 'कल का क्या पता', 'सपोले' और 'वह तोड़ती रही पत्थर' सरीखी कहानियों में दर्ज है। सामूहिक बलात्कार की शिकार ग़रीब लड़की और उसकी माँ की पीड़ा व दर्द, क्रोध व घृणा 'सपोले' में बदले का रूप ले लेती है। 'समर अभी शेष है' नारी-मन के प्रेम व द्वन्द्व को विस्तार से उद्घाटित करती है। संग्रह की सभी कहानियाँ बदलते सामाजिक परिस्थितियों के विभिन्न मुद्दों पर सोचने को विवश करती हैं, और तेरह की तेरह कहानियाँ पठनीय बन पड़ी हैं।

ooo

(शोध आलेख)

बौद्ध धर्म दर्शन के इतिहास में कश्मीर की भूमिका

शोध लेखक : डॉ. शिवेन्द्र कुमार मिश्र
पोस्ट डॉक्टोरल फेलो

शोध निर्देशक : प्रोफेसर लालजी, पाली एवं बौद्ध अध्ययन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. शिवेन्द्र कुमार मिश्र
पोस्ट-डॉक्टोरल फेलो
(भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद- नई दिल्ली)
ईमेल- shivendramishrabhu@gmail.com

बौद्ध धर्म दर्शन के इतिहास में कश्मीर की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। प्राचीन काल से ही कश्मीर कला संस्कृति और विद्वता का केंद्र रहा है। कश्मीर एक मिश्रित संस्कृति को जन्म देती है जहाँ सभी प्रकार के विचारों का स्थान प्राप्त है। कश्मीर भौगोलिक रूप से एक महत्त्वपूर्ण जगह है, जहाँ चीन भारत, मध्य एशिया, और तिब्बत चारों तरफ से आवागमन का मार्ग था। यही कारण रहा की कश्मीर मे सभी धर्मों का सतत विकास होता रहा। प्राचीन समय से ही कश्मीर का इतिहास उथल पुथल भरा रहा है, लेकिन कश्मीर ने सभी धर्मों तथा संस्कृतियों के अस्तित्व को बनाए रखा। कश्मीर के लोगों ने उन विभिन्न संस्कृतियों को आत्मसात किया जो अपने स्वयं की संस्कृति के साथ परस्पर क्रिया करती है और इस तरह के एक मिश्रित संस्कृति को जन्म देती है, जो आस पास के राज्यों मे फैल गई। ह्वेनसांग ने अपने यात्रा विवरण मे लिखा है की कश्मीर गाँधार का ही एक भाग था।1

कश्मीर मे बौद्ध धर्म का आगमन कब हुआ इसको लेकर विद्वानों मे मतभेद है। इसको लेकर एक सिद्धांत यह भी है की कश्मीर में बौद्ध धर्म का प्रवेश भगवान् बुद्ध के मृत्यु के पचास साल बाद हुआ था जबकि दूसरे मत के अनुसार सम्राट अशोक द्वारा बुलाई गई तीसरी बौद्ध संगीति के बाद।2

ऐतिहासिक प्रमाणों से विद्वानों मे आम तौर पर सहमति है कि सम्राट अशोक के समय कश्मीर मे बौद्ध धर्म प्रमुख हो गया था और शीघ्र ही यह कश्मीर का राजधर्म बन गया। यह अशोक के समय से पहले ही वहाँ व्यापक तौर पर था जिसे न केवल बौद्ध शासकों बल्कि हिन्दू शासकों का भी संरक्षण प्राप्त था। कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार कश्मीर मे अशोक के पहले भी कई बौद्ध विहार थे।

अशोकवदान में वर्णित लोकप्रिय मान्यता के अनुसार अशोक के शासनकाल मे हुई तृतीय बौद्ध महासभा के आयोजन के बाद उसके सभापति मोगगलीपुत्त तिष्यब ने वाराणसी के एक बौद्ध भिक्षु मध्यंतिक को कश्मीर गंधार मे बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार के लिए नियुक्त किया था।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि अशोक के शासन काल से पहले कश्मीर मे बौद्ध धर्म मौजूद था और बाद के राजाओं ने भी इस धर्म को लोकप्रिय बनाने के लिए अपने प्रचारकों को घाटी मे भेजा था। दीपवंश और महवंश के अनुसार अशोक के द्वारा बुलाई गई तीसरी बौद्ध परिषद के बाद अपने प्रचारकों को अशोक ने कश्मीर भेजा था। महावंश के अनुसार हिमालय प्रदेश के 84000 नागवंशियों ने और गंधार कश्मीर के 80, 000 लोगों ने प्रवज्या लेकर बौद्ध धर्म को स्वीकार किया था।3 अत: यह सुनिश्चित है की तीसरी शताब्दी ई पू में सम्राट अशोक के द्वारा भेजे गए प्रचारकों के प्रयासों के कारण बौद्ध धर्म घाटी का एक लोकप्रिय धर्म बन गया।

कश्मीर मे बौद्ध धर्म के निकाय- बुद्ध के निर्वाण के बाद बौद्ध धर्म अट्ठारह भागों मे विभाजित हो गया। इनमें सर्वास्तिवाद निकाय प्रमुख है। यह विभाजन विनय और अभिधर्म सिद्धांत पर आधारित था।4

सर्वास्तिवाद निकाय सबसे प्राचीन निकायों मे से एक है। यह बौद्ध धर्म के स्थविरवाद शाखा से संबंधित है। यह निकाय भगवान् बुद्ध के निर्वाण के बाद सौ दो सौ वर्षो के अंतराल में विकसित हुआ। भारतीय अभिलेखों मे इसका इतिहास तीसरी बौद्ध परिषद के सभापति मोग्गिलीपुत्त तिष्य द्वारा रचित ग्रंथ कथावत्थु से प्रारंभ होता है।5 सर्वास्तिवाद निकाय अधिकतर उत्तर भारत में खूब फला फूला। इस निकाय का प्रारंभिक केंद्र मथुरा था। मथुरा से नगरहारा तक और तक्षशिला से कश्मीर तक इसे बहुत सम्मान दिया जाता था, जहाँ से इसका प्रचार प्रसार मध्य एशिया, तिब्बत और चीन में हुआ। ऐसा माना जाता है कि बौद्ध और अन्य प्रतिद्वंद्वी संप्रदायों के साथ संघर्ष में अपने विचारों को बनाए रखने के लिए सर्वास्तिवादी कश्मीर चले गए और इस निकाय का प्रधान केंद्र कश्मीर बनीं।6 जहाँ इसके सिद्धांत को पढ़ाया गया तथा इसका प्रचार प्रसार किया गया। इसके बाद इस निकाय का बहुत तेजी से कश्मीर मे विस्तार हुआ, और बाद में चलकर इसे वैभाषिक के नाम से जाना गया।

सर्वास्तिवाद के मुख्य आचार्य वसुबन्धु का जीवनी लिखते समय परमार्थ कहते हैं कि बुद्ध के निर्वाण के छ: सौ वर्ष बाद भारत के अर्हत कात्यायनी पुत्र कश्मीर गए और वहाँ सर्वास्तिवाद निकाय से संबंधित अभिधर्म एकत्र किए और उन्हें अलग अलग आठ ग्रंथों में व्यवस्थित किया जिसे ज्ञानप्रस्थान शास्त्र के नाम से जाना जाता है। और इस तरह से बौद्ध धर्म का सर्वास्तिवाद निकाय कश्मीर में खूब फला फूला। इसके अभिधर्म पाठ का संकलन कात्यायनी पुत्र ने किया था। इस निकाय के प्रमुख कार्य इसके सात अभिधर्म ग्रंथ है- 1. अभिधर्मज्ञानप्रस्थान शास्त्र,

2.संगीतिपर्यायपाद शास्त्र,

3.अभिधर्मप्रकरणपाद शास्त्र,

4.अभिधर्मविज्ञानकायपाद शास्त्र,

5.अभिधर्मधातुकायपाद शास्त्र,

6.अभिधर्मस्कन्धपाद शास्त्र,

7.प्रज्ञप्तिपाद शास्त्र

इसका मुख्य सिद्धांत सर्वम अस्ति है।

कश्मीर में बौद्ध धर्म का विकास क्रम-

अशोक (273-236 बीसी)

मौर्य सम्राट अशोक ने कश्मीर में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए न केवल अपने धर्मदूतों को प्रचार के लिए भेजा बल्कि वहाँ कई स्तूप और विहार भी बनवाए। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने प्रमाण सहित बताया है की अशोक ने पूरी कश्मीर घाटी को बौद्धों के लाभ के लिए दे दिया।7

जालौक - अशोक के बाद जलौक ने कश्मीर पर स्वतंत्र रूप से राज्य किया। आधुनिक विद्वान इसे अशोक का पुत्र मानते हैं। इसका उल्लेख राजतरंगिणी में मिलता है। कल्हण इसे सम्पूर्ण धरती का विजेता और मलेछों का संहारकर्ता मानते है। 8 ऐसा कहा जाता है कि प्रारंभ मे यह बौद्ध धर्म का पक्षधर नहीं था लेकिन बाद मे कृत्या के अनुरोध पर उसने अपना विचार बदला और कृत्यआश्रम नाम से एक बौद्ध विहार का निर्माण करवाया।

कनिष्क - प्रथम शताब्दी ई. में शक या तुरुष्क वंश के प्रतापी राजा कुषाण वंश का शासक कनिष्क हुआ। इसी के शासनकाल में कश्मीर के कुंडलवन में चतुर्थ बौद्ध संगीति हुई थी। जिसके अध्यक्ष वसुमित्र और अश्वघोष थे। कनिष्क का साम्राज्य विस्तार काबुल, गंधार, सिंध, उत्तर-पश्चिमी भारत, कश्मीर और मध्य देश तक था। उत्तर भारतीय बौद्ध इसे अशोक के समान आदर देते थे। कुषाणों के दौर में बौद्ध धर्म का आधार सुदृढ़ हो गया। कुषाण वंश के तीनों राजाओं कनिष्क, हुष्क, और जुष्क, नें कश्मीर में अनेक मठों एवं चैत्यों का निर्माण कराया।9

सिक्कों के साक्ष्य से पता चलता है कि कनिष्क पहले कोई ईरानी धर्म मानता था, बाद में वह बौद्ध बन गया। चतुर्थ परिषद उसने 100 ई0 में बुलाई। इस परिषद में बौद्धों के अट्ठारह मत को सही माना गया।10

कनिष्क ने पाँच सौ भिक्षुओं के रहने के लिए एक विहार बनवाया और फिर उन भिक्षुओं को त्रिपिटक पर भाष्य लिखने के लिए प्रेरित किया। 11 इस परिषद का मुख्य कार्य इन भाष्यों को अंतिम रूप देना था। इस परिषद में सर्वास्तिवाद मत के भिक्षु अधिक थे, महायान का कोई प्रतिनिधि इस सभा में शामिल नहीं हुआ, ऐसा विद्वानों का मत है। क्यों कि यह मत नागार्जुन के बाद बढ़ा। राजतरंगिणी के अनुसार नागार्जुन तुरुष्क राजा के पश्चात हुए। 12 चौथी परिषद का सबसे बड़ा कार्य यह था कि बौद्ध दर्शन संस्कृत में सूत्रबद्ध हुआ।13

कुषाण के बाद बौद्ध धर्म - कुषाणों के बाद शकों ने बौद्ध धर्म को राजधर्म बनाकर उसका प्रचार प्रसार किया। कश्मीर संबंधी प्राचीनतम ग्रंथ 'नीलमत पुराण' में भगवान् बुद्ध और उनके द्वारा प्रवर्तित बौद्ध धर्म के प्रति आदर व्यक्त किया गया है। नीलमत पुराण मे शैव, वैष्णव और बौद्ध को एक साथ फलते फूलते दिखाया गया है। गुप्त युग और उसके बाद के दौर में भारतीय संस्कृति का मध्य एशिया और चीन में प्रचार करने का श्रेय मुख्यत: बौद्ध भिक्षुओं को जाता है। गुप्त युग में धर्मयश नामक एक कश्मीरी बौद्ध भिक्षु मध्य एशिया के रास्ते से चीन पहुँचे। गुप्तकल में भारत से चीन जाने वाले बौद्ध विद्वानों में कुमारजीव का महत्त्वपूर्ण स्थान था। इनके पिता कुमारदत्त कश्मीर से कूंचा पहुँचे और वहाँ के राजा के बहन से विवाह कर लिया। इसी माता से कुमारजीव का जन्म हुआ। नव वर्ष की अवस्था में वह अपनी माता के साथ कश्मीर आए और वहाँ बौद्ध साहित्य का अध्ययन किया। बारह वर्षों में कुमारजीव ने करीब 100 बौद्ध ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया था। कश्मीर की बौद्ध परंपरा में गुप्तयुगीन भिक्षु गुणवर्मन का नाम महत्त्वपूर्ण है। वे कश्मीर के राज परिवार में जन्म लिए थे। बीस वर्ष की अवस्था में वह राजकुल का सुख त्यागकर बौद्ध भिक्षु बन गए। वे धर्म दर्शन, ज्योतिष, शिल्प कला में निपुण थे। इन्होनें बौद्ध धर्म का प्रचार जावा, सुमात्रा आदि देशों मे किया। उनकी विद्वत्ता की ख्याति पूरे दक्षिण एशिया में फैल गई।14

कुषाण राजवंश के पतन के बाद कश्मीर के स्थानीय सामंतों ने शासन संभाला और उन्होनें वैदिक परंपरा को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। गुप्तकाल में अन्य प्रदेशों की तरह कश्मीर में भी बौद्ध धर्म की अवनति प्रारंभ हो गई थी, और शैव धर्म का उत्कर्ष हो रहा था।

000

संदर्भ- 1.डॉ. सुनील खोसा, आर्ट हिस्ट्री ऑफ कश्मीर एण्डक लद्दाख, सागर प्रकाशन, 1984, नई दिल्ली, 2.डॉ. सरला खोसला, हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्मं इन कश्मीकर, सागर प्रकाशन, नई दिल्लीक, 1972, पृ. 12, 3.वही, पृ. 13, 4.वही, पृ. 13, 5.वही, पृ. 15-16, 6.वही, पृ. 17, 7.वही, पृ. 41, 8 . कल्हलण- राजतरंगिणी, अनुवादक- श्रुतिदेव शास्त्रीश, बिहार राष्ट्राभाषा परिषद्, पटना, पृ. 35-36, 9.पीवी बापट, बौद्ध धर्म के ढ़ाई हजार वर्ष, प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 2010, पृ. 15, 10.कल्ह, ण- राजतरंगिणी, अनुवादक- श्रुतिदेव शास्त्रीश, बिहार राष्ट्रसभाषा परिषद्, पटना, पृ. 35-36, 11.पीवी बापट, बौद्ध धर्म के ढाई हजार वर्ष, प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 2010, पृ. 14-15, 12.कुमार निर्मलेन्दुल, कश्मीर इतिहास और परंपरा, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2022, पृ. 163, 3.वही, 14.वही

(शोध आलेख)

अशोक वाजपेयी के काव्य में शब्द-चयन

शोध लेखक : कमलेश, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

शोध निर्देशक : डॉ. कृष्णा जून अध्यक्ष, हिन्दी विभाग महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

प्रस्तावना - भाषा भावों की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है जिसकी विभिन्न इकाइयों ध्वनि, पद, शब्द, वाक्य आदि के उचित प्रयोग के कारण ही स्पष्ट अभिव्याक्ति संभव है। चयन सृजक की श्रेष्ठतम मौलिकता है जो उसे अन्य से विशिष्ट बनाती है। किसी भी रचना का रसास्वादन हम तभी कर सकते हैं जब उचित भाव ग्रहण कर पाते हैं और यह उचित शब्द चयन से ही संभव हो पाता है। शैली की संकल्पना में चयन का बहुत महत्त्व है, क्योंकि सभी शैली-वैज्ञानिक उपकरणों का मूल आधार चयन ही है। चयन का शाब्दिक अर्थ है -'चुनना' या 'चुनाव करना' अर्थात् किसी शब्द के विभिन्न पर्यायों में से रचनाकार जब अपनी विवक्षा की संतुष्टि के लिए उपयुक्त पर्याय का चयन कर रचना में प्रयोग करता है अथवा भावों को अभिव्यक्ति देने के लिए अनेक विकल्पों में से किसी एक सटीक व उपयुक्त विकल्प को चुन लेना 'चयन' कहलाता है। सुप्रसिद्ध शैली वैज्ञानिक डॉ. सत्यदेव चौधरी का मत है-"वर्ण्य विषय के अनुकूल शब्दों एव वाक्यों के प्रयोग को शैली वैज्ञानिक शब्दावली में चयन कहते है।"1

चयन प्रक्रिया प्रारंभ में सायास हो सकती है लेकिन बाद में रचनाकार आयास ही अपने कथ्यनुरूप चयन में सिद्धहस्त हो जाता है। इस संबंध में डॉ. नगेन्द्र का मत है - "शैली विचारित या अविचारित चयन प्रक्रियाओं की फलश्रुति होती है"2

शब्द का वाक्य में प्रयोग उसकी सार्थकता सिद्ध करता है। यह सार्थकता संदर्भ तथा रचनाकार की मानसिकता से जुड़ी होती है। शब्द चयन के कई कारण हो सकते हैं जिसके संबंध में डॉ. नगेन्द्र का मत है- "कहीं तो लेखक सावधान होकर अपने कलात्मक विवेक से शब्दों का अर्थात समानार्थक शब्दों, शब्द घटकों, वाक्यांशों तथा वाक्यों में संदर्भ तथा अभीष्ट कलात्मक प्रभाव के अनुरूप किसी एक का निर्वाचन करता है, कहीं अभ्यासवश अविचारित रूप में इस प्रकार का निर्वाचन करता है"3

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने शब्द चयन का कारण कभी-कभी युगीन परिस्थितियों व प्रवृत्तियों की प्रबलता को माना है- "प्रगतिवादी काव्य में 'लाल' शब्द साम साम्यवादी अर्थ में, 'हँसिया', 'हथौड़ा' श्रम का द्योतक व 'खण्डहर पुरानी'कढ़ियों के लिए प्रयुक्त हुए हैं।"4

इस प्रकार कहा जा सकता है कि साहित्यकार जिस भाषा में साहित्य रचना करता है उसमें उसकी गति होती है और उसके सशक्त भावों को उसकी भाषा के शब्द वहन करते हैं, जिनका वह चयन करता है।

अशोक वाजपेयी के शब्द-प्रयोग (चयन) को देखते हुए उनके काव्य का विवेचन भाषा वैज्ञानिक व साहित्यिक स्तर पर किया जाना अपेक्षित है जो इस प्रकार है- भाषा वैज्ञानिक स्तर पर, तत्सम शब्द चयन, तद्भव शब्द चयन, देशज शब्द चयन, विदेशज शब्द चयन, साहित्यिक स्तर पर, सहवर्ती शब्द चयन, आवृत्ति मूलक शब्द चयन

तत्सम शब्द चयन : सस्कृत भाषा के वे शब्द जो हिन्दी भाषा में ज्यों के त्यों प्रयुक्त होते हैं, तत्सम शब्द कहलाते हैं। अशोक वाजपेयी ने अपनी कविताओं मे अभिव्यक्ति को ग्राह्य व सम्प्रेषणीय बनाने के लिए उपयुक्त तत्सम शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग किया है। संशय, पत्र, ग्रंथ कथा, अंधकार आत्मा, शक्ति, संख्या पवन, स्वर्ग, नरक, स्त्री, रहस्य मनुष्य, मार्ग, मृत्यु, चन्द्र, नक्षत्र, यवज्ञा, भिक्षापात्र, क्षोभ, अक्षांश, विवक्षा, अक्षत, वृक्ष, गवाक्ष, देववृक्ष, यात्रा, पवित्र, शून्य, त्रिभुज, अंतरिक्ष, स्मृति, छात्र, पक्षी, पुष्प, स्त्रोत, गन्ध, नीरंग, शिखा, करुणा, सूर्य, पर्वत, संध्या, वसंत, देह, वर्ष, दयालु, आदि अनेक तत्सम शब्दों का चयन किया है।

अशोक वाजपेयी के काव्य में जीवन, प्रेम, मृत्यु, उपस्थिति, अनुपस्थिति व समय की संवेदनाओं की गहराई को देख सकते है। साधारणर सी बातों की उसके सामान्य एंव नगण्य रूपों से बाहर ले आ कर अपने मृदुस्पर्श से पाठकों की निजी संवेदना के रूप में अभिव्यक्त करने में कवि की निपुणता मशहूर है। कवि ने अपने निजी संबंधों को मानवीयता के विभिन्न साँचों में ढालकर उन्हें पेश किया है जिसके लिए उनका तत्सम शब्द चयन अद्भुत है। 'पुरखों के घर' शीर्षक कविता में भारतीय दार्शनिकता को कवि ने तत्सम शब्द चयन के माध्यम से प्रस्तुत किया

कमलेश
हिन्दी विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

हैं - "चक्रवाल के पार / स्वर्ग- नरक के छाया पथ पर / पुरखों का बनाया और संभारा / घर है / किसी पुण्य तोया के तट पर / जहाँ हम ब्रहमरात्र में जाएँगे / उस असमाण्य यात्रा में / सिवाय पुरखों की परछी के / हम और यहाँ सुस्ताएँगे / और पाएँगे ?"5

कवि के हृदय में कुमार गंधर्व की मृत्यु से गहरा आघात लगा उसी संवेदनशीलता को उन्होंने तत्सम शब्द चयन के माध्यम से व्यक्त किया है प्रस्तुत है- "याद में कोई चूक नहीं होती / भूल नहीं पाते वे / जीवन जो बीत चुका / उनकी स्मृति में फिर-फिर एकत्र होता / बीतता है।"6 वैष्णवी संवेदना की सुंदर झलक प्रस्तुत करती तत्पुरूष काव्य संकलन की 'अगर समय होता' कविता की पक्तियों में तत्सम शब्द प्रयोग - "महाकाल, गरुड़ और पदमपाणि / बैकुण्ठ के पास रंभाती कामधेनु"7 अशोक वाजपेयी ने 'अभी कुछ और' काल संग्रह की कविता एकादशी बिता में अपनी सपाटबयानी को प्रस्तुत करने के लिए भाषा की सजगता और सरलता का यथार्थ उपयोग तत्सम शब्दों के माध्यम से किया है- "पूछता है एक / दूसरे से / क्या तुम्हारा ही / स्पर्श और मर्दन क्यों / लज्जारूण पृच्छा / स्पंदित हुई पूरी देह में / वाम था मैं / धीरे से फुसफुसाया / एक दूसरे ने कहा- / दक्षिण हूँ मैं वामा का ही।"8

'डगमग' कविता में कवि ने अपनी नातिन की बाल्यावस्था के भोलेपन पर आनंदित पवित्रता के लिए तत्सम शब्दों ब्रह्माण्ड, आदिकाव्य, ऋग्वेद, ऋचाएँ, प्रतिमाएँ, मंदिरों, विजड़ित का सुंदर प्रयोग किया है - "डगमगाता है / आदिकाव्य, ऋग्वेद की ऋचाएँ / मंन्दिरों में विजड़ित देव प्रतिमाएँ / वह डगमग चलती है / तो सारा ब्रह्मांड थम जाता है।"10

'फाहा -फाहा उड़ते समय से' कविता में निराकाश, निरातप, निस्संख्य, निश्शून्य, अनंत, सुतमा आदि तत्सम शब्दों का प्रयोग- "यह निराकारा / निरातप / निस्संख्य निश्शून्य अनंत / सुतपा के चेहरे वाला / कौन है ? /

तद्भव शब्द चयन- संस्कृत भाषा से परिवर्तित होकर (के शब्दों का रूप बदलकर) हिन्दी भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्द तद्भव शब्द कहलाते हैं। अशोक वाजपेयी ने भरपूर मात्रा में तद्भव शब्दों का प्रयोग अपनी कविताओं में किया हैं। नींद, दोपहर, पाँच, कपूर, आँख, नाक, कंधा, कान, होंठों, उँगलियाँ, छब्बीसवी, सरसों, पौधा, आठ, चैथा, पाँचवा, सातवाँ, सुबह, शहर, जगह, कान, बढ़ई, कवि, मछुआरा, पैंतीसवीं, छः, दूसरी, मेरा, उसने, एक, उठता, चार, धूल, खोह, पत्थर, लौहार, मोची, कुम्हार, धरती, पानी, चींटी, घोड़े, सड़क, रात, हथेली, सिर, तेल, चाँद, जूता, आदि तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया है।

'काम लेना बन्द' कविता में कवि ने ईश्वर को शक्तिहीन बताने के लिए उपयुक्त शब्द चयन किया है- "मैने देवताओं से काम लेना बन्द कर दिया है / अब वे बूढ़े हो गए हैं / कई बार मुझे लगता है कि / अब मिट्टी के माधो बनकर रह गए।"11 पक्तियों में मैंने, बन्द, काम, अब, कई, मुझे, लगता, मिट्टी, बनकर, माधो शब्दों का सटीक चयन है। 'अगर इतने से' काव्य संग्रह की कविता 'हथेली पर सिर' शीर्षक कविता में साधारण मनुष्य की शंका को अभिव्यक्ति देने के लिए तद्भव शब्द प्रयोग- "मैं अपना सिर काटकर हथेली पर रखने को तैयार हूँ / लेकिन पूछता हूँ राम से / कि उसकी हथेली पर / क्या उसका सिर है?"12

'शहर अब भी संभावना है' काव्य संग्रह की कविता 'लौटकर जब आऊँगा' की पंक्तियों में नीला घुड़सवार को मृत्यु का प्रतीक मानते हुए तद्भव शब्दों का प्रयोग किया हैं- "क्या मैं तुमसे कहूँगा / खुश हो माँ अन्त आ गया है। जिसकी तुम्हें प्रतीक्षा थी।"13 देशज शब्द-चयन- देशज शब्द का शाब्दिक अर्थ है- 'देश में जन्मा' देशज शब्द से अभिप्राय किसी प्रदेश के लोगों अर्थात् स्थानीय लोगों की बोलचाल से बना शब्द। इस प्रकार ऐसे शब्द जिनका जन्म देश के किसी स्थानीय परिवेश में हुआ हो, देशज शब्द कहलाते हैं। डॉ. रामचन्द्र वर्मा के अनुसार- "जो किसी दूसरी भाषा से न निकला हो, बल्कि किसी प्रदेश में लोगों की बोलचाल से बन गया हो।"14

अशोक वाजपेयी ने अपने काव्य में अनेक स्थानीय शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने चिथड़े, टुच्चे, झल्लाहट, हड़बड़ी, अटपटेपन, किवाड़, भकोसिए, चुपड़न, चिट्टा, कंकड़, बिसर, टोहने, लाठी, गड्ड-गड्ड, झोले, छिटकना, फुदकती, ठीकठाकपन, सुगबुगाहट, ठिठक, रंदा, खूसट, लिधड़ी, ठोके चीर, गुड़ीमुड़ी, ठिठककर, कराहना, गिड़गिड़ाना, खड़खड़ाना, कड़कना आदि शब्द देशज शब्दों का प्रयोग किया है।

झोले, बटोर - "अपने झोले में बटोर कर जमा करता रहा"15, रंदा/रन्दा - "मैं सिर्फ अपना रन्दा नहीं चलाता"16, खूसट, - "किसी खूसट बुढ़िया की तरह"17, गुड़ीमुड़ी - "और फिर गुडी-गुड़ी कर फेंक देता है कागज को"18, टुकुर-टुकुर - "टुकुर टुकुर कुछ नहीं को ताकते"19, टुच्चे - "कि टुच्चे लोगों से भले न बच सको"20

विदेशज शब्द- भारतीय इतिहास का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि हिन्दी भाषी लोग विदेशी लोगों के संपर्क में रहे है। विदेशी आक्रमणों व संस्कृति के आदान-प्रदान से हिन्दी भाषा में विदेशी भाषा के शब्दों को स्थान प्राप्त हुआ है। बोल-चाल व शिक्षा के माध्यम से वे साहित्य में भी स्थान प्राप्त कर चुके हैं। जिसमें अरबी, फारसी, तुर्की, पुर्तगाली, फ्रैंच, चीनी, पुर्तगाली, लैटिन, जापानी, ग्रीक, इटैलियन आदि भाषाओं के शब्द शामिल है।

अशोक वाजपेयी भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रहे और उन्होंने भी अपनी भावाभिव्यक्ति को प्रभावशाली व सुगम बनाने के लिए विदेशी शब्दों ख़ासकर अरबी व फारसी शब्दों का भरपूर प्रयोग किया है - उन्होंने दोस्त, ज़मीन, अख़बार, दस्तक, कायम, काफ़ी, अंदाज़, तकलीफ़, वक़्त, ख़ुद, बेख़बर, हर्ज़, कलम, बावजूद, जाहिर, रुख, फ़र्ज, बुज़ुर्ग, बदन, खूबसूरत, अफ़सर, ज़हन, रोज़नामचा, हिकमत, सौगात, ताज़ा, बाज़ार, बेकसूर, चीफ़, फिलवक्त, अफवाह, जहन, नाज़ुक, रोज़नामचो, मसरफ़, ज़िंदगी,

अनकरीब, गर्दिश, अब्दुल रहीम, करीम, बगल आदि।

शब्दों से युक्त कुछ उदाहरण काव्य पंक्तियों के साथ

गर्दिश - गर्दिश में भी कुछ न कुछ रचने को"21, मसरफ, ज़िंदगी -"कि किसी मसरफ़ का नहीं" है, ज़िंदगी में भला हुआ तो क्या हुआ?"22, रहीम, करीम, अब्दुल - "रहीम की दुकान, अब्दुल का ढाबा, करीम का ठेला उसके बगल में रामस्वरूप का स्टोर"23, रिक्शा (जापानी) - "और उनके पीछे, एक रिक्शा एक मोटे, थुलथुल को लादे हुए"24, चाय (चीनी) - "न ही चाय वाले से कोई चाय खरीदता है। "25, बालटी - (पुर्तगाली)- "बालटी का खालीपन बढ़ता रहता है।"26

अंग्रेजी भाषा शब्द- अंग्रेजी भाषा के ब्रीफकेस, बस, बुकमार्क, लायब्रेरी, लौंड्री, स्टेशन, ऑफीसर्स, टाइपराइटर, रजिस्टर, लाउडस्पीकर, टेलीविजन, डॉक्टर, सूटकेस, ट्रेन, स्टेशन, आफीसर्स, बेंच, सिगरेट, ब्लेड, फ़ोन, टॉफी आदि शब्दों का प्रयोग अशोक वाजपेयी ने अपनी कविताओं में किया है -

लाउडस्पीकर - "उसे अक्सर सुबह लाउडस्पीकर पर पड़ोस के मंदिर से आई रामधुन"27, बस, ब्रीफकेस "कहीं आखिरी बस न छूट न जाए", लेकिन अपने स्वार्थ तहाकर रखते हैं थैले या ब्रीफकेस में"28, टाइपराइटर - "टाइपराइटर पर भूल से छप गया अक्षर"29

सहवर्ती शब्द- जब साहित्यकार अपने साहित्य में किसी ध्वनि की अभिव्यक्ति, भाव का विस्तार और कभी-कभी मुख-सुख की प्रवृति को प्रस्तुत करना चाहता है तो सहवर्ती शब्दों के प्रयोग से उसे और भी प्रभावशाली बना देता है।

अशोक वाजपेयी ने अनेक अपनी कविताओं में सहवर्ती अथवा अनुकरणात्मक शब्दों का भरपूर प्रयोग किया है। आड़ी-तिरछी, आर-पार, तड़पता-बिछलता, भरी-पूरी, हरा-भरा, ठोंक चोट, कभी-कभार, संगी-साथी, कंकड़-पत्थर, आधे-अधूरे, नहा-धोकर, तितर-बितर, किए-अनकिए, दमक-चमक, चीख-पुकार, चैक-बाज़ार जैसे अनगिनत सहवर्ती शब्दों का प्रयोग अशोक वाजपेयी ने अपनी कविताओं में किया है। भावों की गहराई को अभिव्यक्त करती कुछ का पंक्तियाँ-

कभी-कभार - "क्या कभी-कभार कोई अंधेरा समय रोशनी भी होती है?"30, सधे-सोचे-समझे - "उनके सथे-सोचे-समझे कदम"31, नपे-तुले - "उनके पास शब्द भी नए-तुले होते हैं"32, काटता-गूदता, गुड़ी-मुड़ी - "वह जो बार-बार लिखकर काटता - गूदता है और फिर गुड़ी-मुड़ी कर फेंक देता है कागज़ को"33, सच्ची-झूठी - "कुछ दिन नाम और कुछ सच्ची-झूठी बातें बचती है, कूड़े-कबाड़, और दो-चार और कूड़े-कबाड़ में जाने से बची दो-चार चीजें"34

आवृत्तिमूलक शब्द-चयन- 'थोड़ा-थोड़ा, छोटी-छोटी, टुकुर-टुकुर, कल-कल, आदि सुबक आवृत्तिमूलक शब्दों का भी अशोक वाजपेयी ने प्रयोग किया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अशोक वाजपेयी ने शब्द-चयन करते समय सजगता का परिचय दिया है, उन्होंने तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज, सहवर्ती व अनुकरणात्मक शब्दों का प्रयोग बड़ी ही कुशलता से किया है। सचमुच अशोक वाजपेयी एक शब्द-शिल्पी हैं, जिन्होंने अपनी सृजनात्मकता से अपनी अनुभुति की गहनता को एक सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनकी काव्य भाषा की संवेदनशीलता और संप्रेषणीयता असंदिग्ध है। भाषा के घोर अंधकार के बीच अशोक वाजपेयी ने अपने उपयुक्त शब्द चयन से प्रकाश अंधकार का काम लिया है। अत: इनका शब्द-चयन अनूठा व अप्रतिम है।

000

संदर्भ- डॉ. सत्यदेव चैधरी, भारतीय शैली विज्ञान, पृ. 359, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली 1979, डॉ. जगेन्द्र, शैली विज्ञान, पृ.-10, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-1976, वहीं, पृ. 20, डॉ. भोलानाथ तिवारी, शैली विज्ञान, पृ.-63, शब्द प्रकाशन, दिल्ली, 1977, सपादक, अमिताभ राय, सेतु समग्र: कावित अशोक वाजपेयी, भाग-1, पृ.-353, सेतु प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2020, वही, पृ. 405, वही, पृ. 211, वही, पृ. 319, नंद किशोर नवल, खुल गया है द्वार एक, पृ. 157, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014, सं0 अमिताभ राय, सेतु समग्र: कविता अशोक वाजपेयी, भाग-1, पृ. 440, सेतु प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2020, सं0 अमिताभ राय, सेतु समग्र: कविता अशोक वाजपेयी, भाग-2, पृ. 208, सेतु प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2020, सं0 अमिताभ राय, सेतु समग्र: कविता अशोक वाजपेयी, भाग-1, पृ. 147, सेतु प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2020, वही, पृ. 106, प्रधान सं0 डॉ. रवीन्द्र नाथ मिश्र, नरेश मिश्र रचनावली खण्ड-1, पृ. 292, निर्मल पब्लिकेशंस दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014, संपादक अमिताभ राय, सेतु समग्र: कविता अशोक वाजपेयी, भाग-2, पृ. 237, सेतु प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2020, वही, पृ. 67, संपादक अमिताभ राय, सेतु समग्र: कविता अशोक वाजपेयी, भाग-1, पृ. 400, सेतु प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2020, संपादक अमिताभ राय, सेतु समग्र: कविता अशोक वाजपेयी, भाग-2, पृ. 300, सेतु प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2020, वही, पृ. 384, 1.वही, पृ. 395, 2.नंद किशोर नवल, खुल गया है द्वार एक, पृ. 130, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014, 3.वही, पृ. 125, 4.वही, पृ. 137, 5.संपादक अमिताभ राय, सेतु समग्र: कविता अशोक वाजपेयी, भाग-2, पृ. 288, सेतु प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2020, 6.वही, पृ. 392, 7.वही, पृ. 418, 8.नंद किशोर नवल, खुल गया है द्वार एक, पृ. 148, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014, 9.वही, पृ. 148, 10.संपादक अमिताभ राय, सेतु समग्र: कविता अशोक वाजपेयी, भाग-2, पृ. 268, सेतु प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2020, 11.वही, पृ. 292, 12.वही, पृ. 292, 13.वही, पृ. 293, 14.वही, पृ. 300, 15.वही, पृ. 326, 16.वही, पृ. 296, 17.वही, पृ. 297, 18.वही, पृ. 419, 19.वही, पृ. 327

(शोध आलेख)

'पर-कटे परिन्दे' उपन्यास में चित्रित विभाजनकालीन परिस्थितियाँ और शरणार्थियों की समस्या

शोध लेखक : सुनील कुमार
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

सुनील कुमार
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़
ईमेल- skumarlyricst@gmail.com

शोध सार- देश विभाजन की पृष्ठभूमि पर आधारित हिन्दी उपन्यासों की श्रृंखला में सिमर सदोष द्वारा रचित 'पर-कटे परिन्दे' एक मार्मिक उपन्यास है। इसका नायक सरदार रणजोध सिंह है जो पाकिस्तान के ज़िला शेखपुरा के खन्ना लुबाणा गाँव में अपने परिवार के साथ सुख समृद्धि से रहता है लेकिन देश विभाजन की घोषणा कर दिए जाने के बाद विकृत परिस्थितियों में अपने घर, खेत और पशुओं को छोड़कर अपनी माँ दो बच्चों और बीवी को साथ लेकर बड़ी मुश्किल से जान बचाकर संघर्ष करता हुआ लुटी हुई हालत में हिंदुस्तान आता है। पाकिस्तान में रहते हुए उनके पिता सब धर्मों के लोगों के साथ सौमनस्य से रहते थे। उनकी अपनी ज़मीन और हवेली थी व जीवन प्रत्येक प्रकार की सुख सुविधाओं से समृद्ध था। देश को अंग्रेज़ी हुकूमत से मुक्त करवाने के लिए आंदोलकारियों द्वारा आंदोलन शुरू किए जाते हैं। सिखों के गाँव खन्ना लुबाणा से थोड़ी दूर पच्छोके गाँव होता है जिसमें मुसलमान रहते हैं। मुसलमानों के गाँव में मेला लगता है जिसमें सरदार रणजोध सिंह व गामा पहलवान की कुश्ती होती है। उस कुश्ती में गामा की हार होती है और वहीं से सिखों और मुसलमानों में दुश्मनी शुरू हो जाती है। धीरे-धीरे सभी जगहों पर कौमी दंगे होने लगते हैं और भारत विभाजन की घोषणा कर दी जाती है। इस घोषणा से परिस्थितियाँ इतनी बिगड़ जाती हैं कि मारकाट होने लगती है। मुसलमानों द्वारा हिंदुओं और सिखों को पाकिस्तान से निकाला जाता है। ऐसी स्थिति में अपना घर-बार छोड़कर जान बचाने के लिए सुरक्षित स्थान ढूँढ़ने वाले शरणार्थी शिविरों में पनाह लेते हैं। लेखक ने हिंदुस्तान से

जाकर पाकिस्तान में और पाकिस्तान से आकर हिंदुस्तान में बसे लोगों को उन परिन्दों के रूप में देखा है जिनके मन वापिस अपने ठिकानों पर जाने के लिए व्याकुल हैं लेकिन पंख सियासतदानों रूपी शिकारियों ने काट दिए हैं।

मुख्य शब्द : पराधीनता, विनाशलीला, सहृदय, इलाका, महत्त्वाकांक्षा, शरणार्थी, कर्त्तव्यविमुख।

'पर-कटे परिन्दे' एक प्रतीकात्मक शीर्षक है जो देश विभाजन के दौरान विस्थापित होने वाले हिंदुओं सिखों और मुसलमानों के लिए प्रयुक्त हुआ है। विभाजन का शाब्दिक अर्थ है- बँटवारा, अलग-अलग भागों या हिस्सों में बाँटने की क्रिया या भाव। "1 जब देश पराधीनता की बेड़ियाँ तोड़कर आज़ाद हुआ तो राजनीतिक सता के वशीभूत नेताओं ने क्षेत्र और हिंदू - सिख व मुस्लिम आबादी का बँटवारा कर दिया। इस बंटवारे के दौरान निर्णय लिया गया कि हिंदुओं और सिखों के लिए हिंदुस्तान रहेगा और मुसलमानों के लिए पाकिस्तान। बहुत लम्बे समय का हिंदुओं-सिखों और मुसलमानों का आज़ादी के लिए किया गया संघर्ष फलीभूत तो हुआ परन्तु देश अलग-अलग हिस्सों में बंट गया। "ब्रिटिश सरकार ने देश की आज़ादी के फरमान पर हस्ताक्षर तो कर दिए परन्तु देश के दो टुकड़े भी कर दिए। इसके बारे में जब तक लोग कुछ समझ पाते, लाखों-करोड़ों का जीवन, उनका वर्तमान और भविष्य उनकी सभ्यता और संस्कृति सांप्रदायिकता की आग में जलकर भस्म हो चुके थे। "2 देश के राजनेताओं ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए विभाजन के दुष्परिणामों को अनदेखा करते हुए ऐसा कदम उठाया जिससे परिस्थितियाँ विकृत हो गईं और जनजीवन अस्त-व्यस्त हो गया। इस भयंकर विनाशलीला में हिंदुओं-सिखों और मुसलमानों ने एक दूसरे को तबाह करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। लंदन के प्रसिद्ध वकील सर सीरिल रेडक्लिफ ले ऐसी लकीर खींची कि विश्व मानचित्र पर देश का नक्शा ही बदल गया और नक्शा बदलते ही परिस्थितियाँ बदल गई। "विभाजन की घोषणा तो कर दी गई थी किंतु यह निश्चित नहीं हो पाया था कि ज़िलों और देहातों का विभाजन किस प्रकार से किया जाएगा। इसलिए चारों और अफवाहों और दंगो का बाज़ार गर्म हो चुका था। "3 विभाजन का प्रभाव जनमानस पर इस तरह पड़ा कि मानव ने मानव के साथ ऐसा व्यवहार किया जिसके विषय में सुनकर दिल और दिमाग़ छलनी हो जाते हैं। उस समय की लूट-पाट, मारधाड़, बलात्कार, आगजनी और विभाजन के उपरांत शरणार्थियों का आना-जाना और पुनर्वास की समस्या व मानव मूल्यों का विघटन हमें झकझोर कर रख देता है। "साहित्यकार के भावुक मन को कहीं गहराई तक बींध देने वाली घटनाओं में भारत विभाजन की घटना प्रमुख है... मानवतावादी दृष्टि से देखा जाए तो एक बाप का बेटे से, भाई का भाई से, पति का पत्नी से, एक सहदय पड़ोसी का दूसरे से ऐसा विछोह था जिसकी कल्पना उन्होंने स्वपन में न की होगी। "4 ज़ाहिर है कि विश्व इतिहास में 1947 में घटित होने वाली यह घटना व्यक्ति के अंतर्मन में छिपी नफरत को उजागर कर देती है।

पर-कटे परिन्दे में लेखक ने पाकिस्तान में रहने वाले सिख परिवार की विभाजन से पूर्व, विभाजन के दौरान और विभाजन के बाद की स्थिति का बिम्बात्मक वर्णन किया है। विभाजन से पूर्व रणजोध सिंह के पिता व समस्त परिवार का मुसलमानों के साथ अच्छा मेलजोल था लेकिन विभाजन की घोषणा होते ही एक-दो मुस्लिम परिवारों को छोड़कर बाकी सब रणजोध सिंह के परिवार को ख़त्म कर देने की साजिश रचते हैं। रणजोध सिंह के पिता करतार सिंह व करमदीन के वालिद इलमदीन की गहरी दोस्ती होती है जिसकी बदौलत रणजोध सिंह पाकिस्तान से परिवार सहित हिंदुस्तान पहुँच जाता है। जिस प्रकार का मेलजोल करतार सिंह व इलमदीन का होता है वैसा ही रणजोध सिंह और करमदीन का होता है।

मुसलमानों के गाँव पच्छोके में एक मेले में कुश्ती के दौरान सिख पहलवान रणजोध सिहं द्वारा मुस्लिम पहलवान गामा को हरा देने पर भावनात्मक दूरियाँ बढ़ती चली जाती हैं। "इस कुश्ती ने जैसे इन दो गाँवों में सहे का तकला गाड़ दिया था। कई दिन बाद जाकर पता लगा कि उस दिन कुश्ती में गामा की टांग की हड्डी टूट गई थी। गामा ने इस पराजय को खेल की भावना से तो कदापि नहीं लिया था। "5 इसके बाद तो दोनों धर्म के लोगों में तनाव इतना बढ़ गया कि मारकाट करने के लिए किसी बहाने की ज़रूरत होती थी। रणजोध सिंह के पिता दुनिया से रूख़सत हो जाते हैं पर उनकी कमी इलमदीन और करमदीन दोनों महसूस नहीं होने देते। सियासती लोगों ने चालें चलकर दोनों धर्मों के लोगों को भड़काना शुरू कर दिया और परिस्थितियाँ सामान्य से विकृत हो गईं। "गाँव खन्ना लुबाणा और गाँव पच्छोके के मुसलमानों के बीच ही दूरी, और इसी कारण इन दोनों गाँवों के लोगों के दिलों की बीच की दूरी को भी इस लकीर ने बढ़ा दिया था। कल तक दूसरे के घर बेखौफ़ चले जाने वाले लोग अब एक-दूसरे को संदेह की नज़रों से देखने लगे थे। "6 वर्षों से चले आ रहे प्यार और सद्भावना की जगह नफ़रत ने ले ली थी। विशेष अवसर पर एक-दूसरे को दी जाने वाली शुभकामनाएँ नदारद हो गई थीं। जो इलाका पाकिस्तान की सीमा में आना था वहाँ के मुसलमानों ने हिंदुओं-सिखों की ज़मीनो और उनकी संपति पर नजरें जमा ली थी। अधिकतर मुसलमान रणजीत सिंह के परिवार के खिलाफ़ हो गए। साथ ही मुस्लिम लीग के उभरने के समाचार सामान्य लोगों में फैलने लगे जिसकी बदौलत मुस्लिम लोगों का उत्साह और अधिक बढ़ गया। अब तो हर चीज़ सिख-मुस्लिम या हिंदू-मुस्लिम के दृष्टिकोण से देखी जाने लगी। "लाहौर के आसपास के क्षेत्रों और ख़ासकर रेलवे स्टेशनों पर हिंदू पानी मुस्लिम पानी, के नारे भी दबी सिमटी जुबान में लगने लगे थे..... एक मटके के पास उर्दू में, और दूसरे मटके के पास पंजाबी में 'पीने का पानी लिख दिया था। "7 रणजोध सिंह के घर अब केवल वही मुसलमान आते थे जो बहुत ज़रूरतमंद होते थे। केवल इलमदीन और उसके परिवार का नाता स्वार्थ रहित था। बाकी सब जगह छिटपुट बातों और घटनाओं को लेकर दोनों

समुदायों के लोगों में तनाव बढ़ता ही गया। मोहम्मद अली जिन्ना व नेहरू की महत्त्वाकांक्षा ने हवाओं में ऐसा ज़हर भर दिया कि दोनों समुदायों का आपसी सौहार्द बिल्कुल भी न रह गया था और तनाव के माहौल में सबका दम घुटने लगा। गुप्त रूप से एक दूसरे पर हमले की योजनाएँ बनने लगी। रेडक्लिफ ने जहाँ पंजाब और बंगाल को विभाजित कर क्षेत्र बाँटा वहीं से हिंदू-सिख और मुस्लिम आबादियों का विस्थापन शुरू हो गया और हिंसात्मक घटनाएँ शुरु हो गईं। इतना ही नहीं विभाजन के दौरान पुलिस व सेनाओं का भी बँटवारा हुआ जिन्होंने कर्त्तव्यविमुख होकर लूटपाट और मार-काट में कोई कसर नहीं छोड़ी। नि:संदेह इस प्रकार की परिस्थितियों की कल्पना न तो अंग्रेजो ने की थी और न ही नेहरू और जिन्ना ने। सांप्रदायिकता की आग इतना भयंकर रूप ले चुकी थी कि उस पर किसी भी तरह काबू पाया जाना संभव नहीं रहा। परिस्थितियाँ इतनी बिगड़ गई कि मसला पाकिस्तान या हिन्दुस्तान का ना रहकर हिंदू-मुसलमान या सिख-मुसलमान का हो गया था। सरेआम कत्ल किया जाने लगा। लाहौर और अमृतसर के बीच चलने वाली रेलगाड़ियों में लाशें आने-जाने लगीं। "बंदा तो बंदा... पंछियों के पंख भी हिंसा की इस आग में झुलसने लगे थे। दोनों और लगी आग एक समान थी। बच्चों, बूढ़ों तक को नहीं बख्शा गया।।"8 स्त्रियों के साथ बलात्कार और उनके अपहरण व क्रय विक्रय की घटनाएँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती गईं।

जो लोग अपने घर व ज़मीन-जायदाद को लेकर ज़ज्बाती नहीं थे वे जान बचाकर घरों से निकलने लगे और जो जन्मभूमि से जुड़े रहना चाहते थे वे मौत के घाट उतारे जाने लगे। खन्ना लुबाणा में मुसलमानों की नज़र रणजोध सिंह की हवेली पर रहती है। करमदीन हरसंभव प्रयास करता है कि रणजोध सिंह को विस्थापन न करना पड़े लेकिन परिस्थितियाँ इतनी बिगड़ जाती हैं कि वह स्वयं रणाजोध से पाकिस्तान छोड़ने के लिए कह देता है। "सदियों से रोटी-बोटी का साँझ पाले चले आ रहे हिंदू-मुसलमान एक-दूसरे की ओर आँखे तरेर कर देखने लगे। "9 अंतत: स्थिति ऐसी हो जाती है रणजोध सिंह को निश्चय हो ही जाता है कि उसे हिंदुस्तान जाना ही पड़ेगा। वह करमदीन की बात मान लेता है।

विस्थापन की तैयारियाँ होने लगी। कई हिंदू और सिख परिवार एक साथ मिलकर चलने की तैयारियाँ करने में लगे थे सबके चेहरों पर भय के भाव आते थे क्योंकि परिस्थितियाँ लगातार विद्रूप होती जा रही थीं। रेलगाड़ियाँ में यात्रियों को तलवारों, गंडासों, भालों व नेजों से काटा जाने लगा। "एक के उपर कई-कई लाशें गिरी पड़ी थीं। गाड़ी के डिब्बों से खून ऐसे बहने लगा था, मानो किसी खेत के मालिक ने फसल को पानी देने के लिए पानी का बम्बा चलाया हो। "10 इस तरह के माहौल को देखकर लोग अपने अनजान ठिकानों की ओर चल पड़े। बहुत जरूरी सामान की गठरियाँ बाँधकर, सिर या बैलगाड़ी पर रखकर अपने बच्चों को कंधे पर बैठाकर चलने वाले इतने वेबस थे कि चाहकर भी पुराने मित्रों के कहने पर नहीं रुक रहे थे। सरकार की तरफ से शरणार्थी शिविर बनाए गए थे जहाँ भूखे-प्यासे रहकर थोड़ी बहुत सुरक्षा की उम्मीद की जा सकती थी। लोगों को गाँवों से शिविरों तक लाने के लिए सेना के जवान लगे हुए थे। रणजोध सिंह भी परिवार अन्य सिखों सहित ट्रक में सवार होकर खन्ना लुबाणा से लाहौर के शिविर में शरण लेता है। शिविरों की स्थिति ऐसी थी कि सभी भूख-प्यास से व्याकुल हो रहे थे। छोटे बच्चों का रो-रोकर बुरा हाल था। रेलगाड़ियों में मारे जाने की आशंका से रणजोध सिंह व उसके सिख साथी अपने परिवारों सहित पैदल ही अमृतसर की ओर चलने लगे। रास्ते में अनेक खतरों कर सामना करते हुए अंतत: हिंदुस्तान की सीमा में प्रवेश कर जाते हैं। "रणजोध सिंह के रास्ते में एक जगह ही शिनाख्त कर अपनी बंदूक और दोनों तलवारें बरगद के घने वृक्ष पर टांग दीं, और फिर सीमा पार पाकिस्तान बनी धरती से आने वाले पंजाबी शरणार्थियों की शिनाख्त दर्ज करने के लिए बनाए गए शिविरों की ओर चल दिए"11

सुरक्षित स्थान पर पहुँचकर भी शरणार्थियों को बहुत दिनों तक रहने के लिए स्थाई ठिकाने नहीं मिले। अपने घर, ज़मीन, और सुख दु:ख के साथियों के बिना विद्रूप परिस्थितियाँ में अपने आपको समायोजित करना कितना कष्टदायी रहा होगा, इस बात का अंदाजा ही लगाया जा सकता है।

निष्कर्ष : देश विभाजन भारतीय इतिहास की सबसे दु:खद घटना है। राजनीतिक चाल के कारण न जाने कितने बेगुनाह लोग मारे गए और न जाने कितने बेघर हा गए। वर्षों का सौहार्द सिर्फ एक घोषणा से मिट गया और लोग सिर्फ धर्म के नाम और हिंदुस्तान-पाकिस्तान के नाम पर एक दूसरे के दुश्मन बन गए। बच्चों, स्त्रियों और बेजुबान पशुओं के साथ नृशंसता का बर्ताव किया गया। लोग जान बचाने के लिए बच्चों को लेकर शिविरों में शरण लेने लगे। भूख-प्यास और खौफ़ से सबको जीवन दूभर हो रहा था। खौफ़ का आलम ऐसा था कि यदि कोई बच्चा भूख से रोता तो उसका मुँह दबाकर चुप करा दिया जाता। पर-कटे परिन्दे उपन्यास में लेखक ने की विभाजनकालीन परिस्थितियों और शरणार्थियों की मुसीबतों को नायक रणजोध सिंह के माध्यम से चित्रित कर मर्म को छू लिया है।

000

संदर्भ - 1.सम्पा. आचार्य रामचन्द्र वर्मा, बृहत् प्रामाणिक हिन्दी कोश, लोकभारती प्रकाशन, ग्यारहवां सं. 2004, पृ. 842, 2.सम्पा. डॉ. अशोक कुमार, हिन्दी का कथा साहित्य और भारत विभाजन, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2019, पृ.27, 3.डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, देश विभाजन और हिन्दी कथा साहित्य, संचयन, प्रकाशन, कानपुर, प्रथम सं० 1987, 4.डॉ. अंजु देशवाल, भारत विभाजन और हिन्दी उपन्यास, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृ.2, 5.सिमर सदोष पर-कटे परिन्दे, एन.बी.डी. बुक्स पश्चिमी विहार, दिल्ली, 2017, 6.उपर्युक्त, पृ. 82, 7.उपर्युक्त, पृ. 83, 8.उपर्युक्त, पृ. 88, 9.उपर्युक्त, पृ. 90, 10.उपर्युक्त, पृ. 110, 11.उपर्युक्त, पृ. 120

शोध आलेख

(शोध आलेख)

रामविलास शर्मा की तारसप्तक की कविताओं में झलकता ग्रामीण परिवेश

शोध लेखक : सना फ़ातिमा (शोधार्थी) हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

शोध निर्देशक : प्रो. इफ़्फ़त असग़र

सना फ़ातिमा
फ़्लैट एफ-2, फर्स्ट फ़्लोर, ज़कारिया अपार्टमेंट, नाला रोड, न्यू सर सैयद नगर, अलीगढ़ 202002 उप्र
मोबाइल- 8449397123
ईमेल- sanafatima2141 @gmail.com

शोध सार : भारतीय साहित्य में ग्रामीण जीवन को व्यक्त करने वाली कई रचनाएँ हैं जो उसकी सच्चाई और सुंदरता को प्रकट करती हैं। ये रचनाएँ भारतीय संस्कृति एवं ग्रामीण जीवन की महत्ता को प्रस्तुत करती है। रामविलास शर्मा इन्ही साहित्यकारों में से एक है जिन्होंने अपने काव्य में ग्रामीण परिवेश को अत्यन्त सहज एवं सुन्दर रूप में अभिव्यक्त किया है। रामविलास शर्मा ने अपनी कविताओं में गाँव के जीवन को विस्तृत रूप से अभिव्यक्त किया है। उनकी कविताओं में गाँव के लोगों की परंपरागत जीवनशैली, किसानों की मेहनत, और प्राकृतिक सौंदर्य को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में मुख्य रूप से रामविलास शर्मा की तारसप्तक में संकलित कविताओं में झलकते ग्रामीण परिवेश पर विचार किया गया हैं।

बीज शब्द-: रामविलास शर्मा, तारसप्तक, ग्रामीण, प्रकृति, परिवेश, किसान।

मूल आलेख- रामविलास शर्मा को एक महान् आलोचक एवं गद्यकार के रूप में जाना जाता हैं। हालाँकि उन्होंने काव्य सृजन भी किया है। एक गद्यकार, आलोचक आदि के रूप में ख्याति प्राप्त होने से उनके काव्य का महत्त्व कम नहीं हो जाता है। तारसप्तक में संकलित उनकी कविताएँ इस बात का प्रमाण है। काव्य लेखन में उनकी रुचि निरन्तर रही हैं। तारसप्तक के अपने वक्तव्य में रामविलास शर्मा लिखते है "कि कविता लिखने की ओर मेरी रुचि बराबर रही हैं।"1 तारसप्तक में संकलित कविताओं के अतिरिक्त उनके अन्य काव्य संग्रह भी प्रकाशित हुये हैं जैसे रूपतरंग' (1956) एवं 'सदियों के सोये जाग उठे'। रामविलास शर्मा की कविताओं में प्रकृति चित्रण, मानवतावादी विचारधारा, राष्ट्रीय भावना आदि को अभिव्यक्ति मिली है। रामविलास शर्मा प्रगतिशील काव्य के अग्रणी कवियों में से एक हैं, इसलिए उनकी कविता में जनवादी चेतना मुख्यत: लक्षित होती हैं। तारसप्तक' में उनकी लगभग बीस कविताएँ संकलित है, जिसमें से अधिकांश ग्रामोन्मुख काव्य दृष्टि लिये हुये हैं। उन्होंने ग्रामीण समाज की समस्याओं, संघर्षों, सांस्कृतिक विविधताओं को काव्य में जीवन्तता के साथ प्रस्तुत किया है।

रामविलास शर्मा का काव्य प्राय: युगीन यथार्थ को उजागर करने का रहा है। उनकी कविताएँ सदैव सामाजिक घटनाओं पर ध्यान केंद्रित करती हैं, इसलिए जनता के जीवन का यथार्थ ही उनकी कविता का मुख्य विषय रहा है। उनके यथार्थबोध की एक विशेषता यह है कि उसमें कवि का संवेदनात्मक उद्देश्य निहित है। क्योंकि उनका अधिकतर जीवन गाँव में ही बीता है जैसा कि तारसप्तक के अपने वक्तव्य में उन्होंने लिखा हैं कि, "मेरा बचपन अवध के गाँवों में बीता। उन संस्कारों के बल पर मैंने वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य और सामाजिक जीवन पर कुछ कविताएँ लिखीं।"2

उनकी कविताओं में ग्रामीण प्रकृति के चित्र मानवीयता और साहित्यिक सौन्दर्य को बख़ूबी उजागर करते है। तारसप्तक की कविताओं में उन्होंने प्रकृति के अत्यन्त मनोरम और हृदयग्राही चित्र खींचे हैं। रामविलास शर्मा गाँव की संस्कृति से अपनी दृष्टि जोड़ते है- "बरस रहा खेतों पर हिम-हेमंत है, / हरी-भरी बालों के भारी बोझसे, / मूर्च्छित हो धरती पर झुकी मोराइयाँ। / बरगद के नीचे ही महफ़िल है जमी।"3

रामविलास शर्मा का सम्पर्क गाँव और वहाँ के लोगों से निरन्तर रहा है। तारसप्तक के वक्तव्य में स्वीकारते हैं कि, "कुछ कविताओं में गाँव के दृश्यों का वर्णन है। बचपन गाँव के खेतों में बीता है और वह सम्पर्क कभी नहीं छूटा। इस समय भी खिड़की के बाहर खेत दिखाई दे रहा है जिसमें कटी हुई ज्वार के दूँठ ही रह गए हैं। सुनहली धूप में कबूतर दाने चुग रहे हैं और थोड़ी दूर पर नहर का पुल पार करके किसान सिर पर बाज़ार के सामान का गट्ठर रखे घर लौट रहे हैं। मैं साधारणत: छह घण्टे काम करूँ तो खेतों के बीच में रहकर दस घण्टे कर सकता हूँ। इन खेतों को प्यार करना किसी ने नहीं सिखाया। ये मेरे गाँव के खेत भी नहीं हैं; गाँव यहाँ से सैकड़ों मील दूर है। फिर भी, हिन्दुस्तान के जिस गाँव पर भी साँझ की सुनहली धूप पड़ती है, वह अपने गाँव-जैसा ही लगता है।"4

रामविलास शर्मा ने ग्रामीणजनों, किसानों आदि के चित्रण में विशेष रुचि ली है। उनकी

कविताओं में गाँव के लोगों की स्वाभाविकता, उनके संघर्ष, उनकी आस्था और उम्मीदें सभी को एक नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने ग्रामीण जीवन को समृद्धि, समानता, और समरसता का प्रतीक बनाया है, जो समाज की वास्तविकता को उजागर करता है। इसलिए तारसप्तक की कविताओं में यथार्थ व्यक्ति विशेष न होकर समाज का यथार्थ है। कार्यक्षेत्र, चाँदनी, प्रत्यक्ष के पूर्व, कतरी, शारदीया, सिलहार, दिवास्वप्न, गुरुदेव की पुण्यभूमि, किसान कवि और उसका पुत्र, विश्वशांति आदि कविताओं के माध्यम से उन्होंने ग्रामीण परिवेश के विभिन्न रूपों एवं संस्कृति का चित्रण किया है; कहीं प्रसन्नता की लहर है, कही खेतखलिहानों का चित्रण है- "वर्षा से धुल कर निखर उठा नीला-नीला / फिर हरे-हरे खेतों पर छाया आसमान, / उजली कुँआर की धूप अकेली पड़ी हार में, / लौटे इस बेला सब अपने घर किसान।"5

उनकी कविता में कहीं कहीं बसन्त का अत्यन्त मनमोहक चित्रण भी मिलता है। शहद एकत्रित करने के लिए फूलों पर उड़ती हुयी मधु मक्खियाँ, खेतों से मकई और ज्वार के दाने चुगती हुयी चिड़ियाँ, बागों में आम के पेड़ों आदि का सुन्दर चित्र दृष्टव्य है- "सूनेपन का मधु-गीत आम की डाली में, / गाती जातीं मिल कर ममाखियाँ लगातार। / भरे रहे मकाई ज्वार बाजरे के दाने, / चुगती चिड़ियाँ पेड़ों पर बैठीं झूल-झूल, / पीले कनेर के फूल सुनहले फूले पीले।"6

उनका ग्राम्य चित्रण अत्यन्त सजीव और वास्तविक बन पडा है कही बरगद के पेड़ के नीचे जमी हुई महफिल है तो कही मेले में जाने की तैयारी हो रही है। कहीं कनेर के फूल खिले हैं, कहीं मीठी सारंगी बज रही है- "घुँघरू की छुम-छुम पर तबला ठनकता, / पेशवाज़ से सजी पतुरियाँ नाचतीं, / मीठी-मीठी सारंगी भी बज रही।"7

रामविलास शर्मा अपनी विचारधारा को अपनी कविता में अभिव्यक्त करते हैं। विचारों से प्रगतिशील होने के कारण गाँव की गरीबी, किसान, मज़दूर के विषमतापूर्ण जीवन आदि को उन्होंने काव्य का विषय बनाया हैं। "उनकी दृष्टी में सच्चा लेखक वही है जो अपनी राजनीतिक दृष्टि का उपयोग शोषण के विरूद्ध करता है। ऐसा करने के लिए आवश्यक है कि कृतिकार आवाम की ज़िन्दगी के नज़दीक रहे, उसके साथ घुले मिले, उसके साथ आगे बढ़े। तभी वह अपने साहित्य को सबल और पुष्ट कर सकता है। यदि लेखक जनता से दूर रहेगा तो वह रोमांटिक अकेलापन, ऊब, उदासी, निराशा आदि में फँसेगा, जो कला और कलाकार दोनों के लिए घातक है।"8

रामविलास शर्मा ने तारसप्तक की कविताओं में ग्रामीण जीवन के माध्यम से वर्ग विभाजित समाज का चित्रण भी काफी सूक्ष्मता से किया है। शोषित जन के प्रति गहरी सहानुभूति का प्रभाव रामविलास शर्मा की संघर्ष भावना पर पड़ा है। "उनकी कविताओं में मानवीय सहानुभूति की एक अजस्त्र धारा समायी हुई दिखलाई पड़ती है। "9 सीला बीनते चमार का अत्यन्त संवेदनशील चित्रण उनकी 'सिलहार' कविता में देखने को मिलता है- "काले धब्बों-से बिखरे वे खेत में / फटे अँगोछों में, बच्चे भी साथ ले, / ध्यान लगा सीला चमार हैं बीनते, / खेत कटाई की मज़दूरी, इन्हीं ने / जोता बोया सींचा भी था खेत को।"10

यहाँ फसल काटने के बाद अनाज की ढेरी से भरे खेतों का सौन्दर्य वर्णन है, पर कविता के अन्त में इन खेतों को जोतने बोने और सींचने वाले लोगों को जब मेहनताना के बजाय खेतों में बिखरे हुए दाने बीनते हुए देखते हैं तो खेत का सौन्दर्य एक बेचैनी उत्पन्न कर देता है।

रामविलास शर्मा ने ग्रामीण सामाजिक जीवन के यथार्थ के बीच के तनाव को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। "शोषित जन के प्रति गहरी सहानुभूति का प्रभाव रामविलास शर्मा की संघर्ष भावना पर पड़ा है। वे मार्क्सवादी है। एक सच्चे मार्क्सवादी की तरह वे श्रमिक, कृषक, मेहनती मनुष्य के संघर्षशील साथी बनने को ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं और निरंतर कांति और विजय का गीत गाते दिखलाई पड़ते है।"11

वर्षा ऋतु के आने से किसान के जीवन में कितने बदलाव आ जाते है। उसकी चिन्ताएँ बढ़ जाती है। अत्यधिक बारिश होने से ग्रामीण किसान को क्या क्या कष्ट उठाने पड़ते है उसका मार्मिक दृश्य देखिये- "बह न जाए जीवन अपार सीमा से बाहर / मेड़ बाँधता है किसान खेतों में जाकर / यह असाढ़ का पहला दिन, ये काले बादल / लू से झुलसे हाड़ों को करते हैं शीतल। / टपक रहा है टूटा घर, खटिया टूटी है / एक यहाँ मनचाही सुख की लूट नहीं है।"12

उनकी कविताओं में ग्रामीण जीवन में व्याप्त भुखमरी, भेदभाव आदि का संवेदनात्मक रूप देखने को मिलता है। ग्रामीण परिवेश के माध्यम से प्रगतिशील चेतना के स्वर उजागर होते है। प्रगतिशील चेतना ने ग्राम्य जीवन को अंकित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। खेत भरे होने के बाद भी कुछ वर्ग भूख से तड़प रहे हैं- "उन भरे धान के खेतों में दिन-रात भूख, / बस भूख महामारी का आकुल क्रंदन!" / हड्डी हड्डी में सुलग रही है आग भूख की।"13

रामविलास शर्मा ने करोड़ों देशवासियों के कष्टों और महत्वाकांक्षाओं का अपने काव्य में चित्र खींचा है। रामविलास शर्मा की दृष्टि में "यदि लेखक पूँजीवादी समाज में रहता है तो उसका कर्त्तव्य है कि अपनी रचनाओं द्वारा मज़दूरों को वर्ग चेतन बनाएँ, पूँजीवादी समाज की असंगतियों को प्रस्तुत करें, पूँजीवादी शोषण को ख़त्म करने की उत्कंठा पैदा करें तथा पूँजीवादी वर्गनीति की पोल खोलकर रख दे।"14 इसी कारण उनकी कविता में धरती के पुत्र किसान का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। वे किसान के हाथों से क्रांति की फसल कटवाते हैं- "धरती के पुत्र की, / जोतनी है गहरी दो-चार बार, दस बार, / बोना महातिक्त वहाँ बीज असंतोष का, / काटनी है नए साल फागुन में फ़सल जो क्रांति की।"15

रामविलास शर्मा की कविताओं में ग्रामीण परिवेश का चित्रण एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिससे वर्ग विभाजित समाज की वास्तविकता का चित्रण मिलता है। उनकी

कविता में गाँव के लोगों की जीवनशैली, उनकी मेहनत और संघर्ष, गरीबी और संकटों का विवरण दिया गया है। यहाँ प्रस्तुत चित्रण में भी देखा जा सकता है कि धरती को जोतते हुए जो किसान हैं वो उसी खेती के जरिए जीवनयापन करने का प्रयास करते हैं, इससे उनकी संघर्षपूर्ण जीवनशैली का विस्तार होता है। ग्रामीण परिवेश के माध्यम से वर्ग विभाजित समाज का चित्रण भी उनकी कविता में देखने को मिलता है- "धरती के पुत्र की, / होगी कौन जाति, कौन मत, कहो कौन धर्म? / धूलि-भरा धरती का पुत्र है, / जोतता है बोता जो किसान इस धरती को, / मिट्टी का पुतला है।"16

रामविलास शर्मा ने मुख्यत: वर्ग वैषम्य जनित यथार्थ को ही अपने काव्य में उतारा है। रामविलास शर्मा का ध्यान भाई का ही खून पीने वाले शोषक ज़मींदार पर भी गया है- "भाई-भाई से जुदा चिता पर लड़ते हैं / भाई-भाई, दो भीरु श्वान-से कायर! / लाखों की रक़में काट रहे हैं, काट रहे हैं / गले करोड़ों के, छिप-छिप कर कायर।"17

रामविलास शर्मा ने मुख्य रूप से किसान एवं खेतों का चित्रण किया है। खेतों में बैठे किसान एवं उसके हल बैल का भी एक चित्र दृष्टव्य है- "गरम रजाई में निश्चिंत किसान भी / बैठा बैलों की पगही ढीली किए। / घुँघरू की मीठी ध्वनि करते जा रहे / फटी-पुरानी, झूलें ओढ़े बैल वे।"18

रामविलास शर्मा का ग्रामीण चित्रण एक ऐसी भावभूमि पर ले जाता है जहाँ जीवन के सुख दुख का वैषम्य दूर हो जाता है। इनका काव्य लोक जीवन के भिन्न-भिन्न भावों का चित्रण करने में सक्षम रहा है। किसान, ग्रामीण युवक युवतियाँ, मज़दूर आदि सबका चित्रण रामविलास शर्मा ने तारसप्तक की कविताओं में किया है। रामविलास शर्मा के काव्य में ग्रामीण जीवन का विवरण उनकी भावनात्मकता और साहित्यिक कला की एक अद्वितीय संगति का परिचायक है। उन्होंने गाँव के लोगों की सामाजिक और आर्थिक स्थितियों को अपनी कविताओं में विस्तार से दर्शाया है, जो उनकी कल्पना और व्यापक ज्ञान का परिणाम है। उनकी कविताओं में ग्रामीण जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं का समर्थन किया गया है, जिससे उनकी कल्पना का दायरा बहुत व्यापक और संवेदनशील दिखाई देता है। रामविलास शर्मा का काव्य ग्रामीण जीवन की सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक विविधता को एक नए प्रकार से प्रस्तुत करता है। 'गुरूदेव की पुण्यभूमि' कविता में रामविलास शर्मा लिखते हैं कि- "यह शस्य श्यामला वसुंधरा है, जिसे देख कर / कवि ने मन में स्वर्ग रचा था सुंदर। / यह पुण्यभूमि है, जिसे देख कर / आंदोलित हो उठता था कवि का भावाकुल अंतर। / वे भरे धान के खेत यहीं थे, जिन्हें देख कर / साँझ-सवेरे फूटे थे कवि के स्वर।"20

रामविलास शर्मा की कविताओं की पृष्ठभूमि ग्रामीण होने के कारण बहुत से ग्रामीण जीवन के बिम्ब प्रकृतिरूप में दृष्टिगोचर होते है। यथा- "सोना ही सोना छाया आकाश में, / पश्चिम में सोने का सूरज डूबता, / पका रंग कंचन जैसे ताया हुआ, / भरे ज्वार के भुट्टे पक कर झुक गए।"20

'सत्यं शिवं सुन्दरम्' लोकगीत में रामविलास शर्मा आशावादी दृष्टिकोण लिये दिखाई पड़ते है। किसानों को जीत की आशा दिलाते हुये वे कहते हैं कि- "हिन्दी हम चालीस करोड़? / यह आज़ादी का मैदान, / जीतेंगे मज़दूर-किसान। / एक यही है राह सुगम / सत्यं शिवं सुंदरम्।"21

ग्रामीण प्रकृति का अत्यन्त मनमोहक चित्र दृष्टव्य है- आमों की सुगंध से महक उठी पुरवाई, / पिउ-पिउ के मृदु रव से गूँज उठी अमराई। / जग के दग्ध हृदय पर गह-गह बादर बरसे, / डह-डह अंकुर फूटे वसुधा के अंतर से।"22

निष्कर्ष- रामविलास शर्मा मिट्टी से जुड़े साहित्यकार थे इसमें कोई दोराय नहीं है। उन्हें अपनी धरती व अपने लोगों से बहुत जुड़ाव था। इसलिये वे अपनी रचनाओं में ग्रामीण संस्कृति को कभी नहीं भूले हैं। उनकी कविताओं में किसान, मज़दूर, ग्रामीण संस्कृति सब जीवित हो उठे हैं। रामविलास शर्मा की तारसप्तक में संकलित कविताएँ यथार्थ की पृष्ठभूमि पर निर्मित सहज जन की इच्छा आकांक्षाओं से प्रेरित है, उनके दुख दर्द को बयान करती है, साथ ही साथ एक सजीव वातावरण का सृजन करती है। कतकी, सिलहार, किसान कवि और उसका पुत्र, विश्वशान्ति, गुरूदेव की पुण्यभूमि, शारदीया, कार्यक्षेत्र आदि कविताएँ इस सजीवता का प्रमाण हैं। तारसप्तक में संकलित रामविलास शर्मा की कविताएँ इस बात का साक्ष्य हैं कि उनके मन में प्रत्येक जन एवं उसकी समस्याओं से जुड़ने का भाव विध्यमान है।

000

संदर्भ- 1.अज्ञेय, तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2021, पृष्ठ 189, 2.अज्ञेय, तार सप्तक, पृष्ठ 214, 3.अज्ञेय, तार सप्तक, पृष्ठ 194-195, 4.अज्ञेय, तार सप्तक, पृष्ठ 189, 5.अज्ञेय, तार सप्तक, पृष्ठ 197, 6.अज्ञेय, तार सप्तक, पृष्ठ 197, 7.अज्ञेय, तार सप्तक, पृष्ठ 195, 8.रामविलास शर्मा, भाषा साहित्य और संस्कृति, किताब महल, इलाहाबाद, संस्करण 1954, पृष्ठ 244, 9.अलख नारायण, आलोचना, जुलाई - सितंबर, 1977, पृष्ठ 59, 10.अज्ञेय, तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2021, पृष्ठ 197, 11.अलख नारायण, आलोचना, जुलाई - सितंबर, 1977, पृष्ठ 60-61, 12.अज्ञेय, तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2021, पृष्ठ 208, 13.अज्ञेय, तार सप्तक, पृष्ठ 201, 14.रामविलास शर्मा, भाषा साहित्य और संस्कृति, किताब महल, इलाहाबाद, संस्करण 1954, पृष्ठ 245- 246, 15.अज्ञेय, तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2021, पृष्ठ 191, 16.अज्ञेय, तार सप्तक, पृष्ठ 191, 17.अज्ञेय, तार सप्तक, पृष्ठ 201, 18.अज्ञेय, तार सप्तक, पृष्ठ 196, 19.अज्ञेय, तार सप्तक, पृष्ठ 201, 20.अज्ञेय, तार सप्तक, पृष्ठ 196, 21.अज्ञेय, तार सप्तक, पृष्ठ 206, 22.अज्ञेय, तार सप्तक, पृष्ठ 207,

(शोध आलेख)

जैविक कृषि: कृषकों को लाभ व कठिनाईयों का अध्ययन

शोध लेखक : कु. मोनिका शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग, दिगंबर जैन कॉलेज बड़ौत (बागपत)

शोध सारांश-यह स्वाभाविक है कि 121 करोड़ से भी अधिक जनसंख्या वाले देश में कृषि प्रणाली में परिवर्तन एक सुविचारित प्रक्रिया द्वारा होनी चाहिए, जिसके लिए काफी सतर्कता बरतने की आवश्यकता है। खाद्य, ईन्धन, चारा और बढ़ती जनसंख्या के लिए अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कृषि भूमि की उत्पादकता और मृदा स्वास्थ्य में सुधार लाना आवश्यक है। स्वतन्त्रता पश्चात युग में हरित क्रान्ति ने खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता के लिए विकासशील देशों को रास्ता दिखाया है, किन्तु सीमित प्राकृतिक संसाधनों के बल पर कृषि पैदावार कायम रखने के लिए रासायनिक कृषि के स्थान पर जैविक कृषि पर विशेष ज़ोर दिया जा रहा है, क्योंकि रासायनिक कृषि से जहाँ हमारे संसाधनों की गुणवत्ता घटती है, वहीं जैविक कृषि से हमारे संसाधनों का संरक्षण होता है। हरित क्रान्ति के बाद के समय में कृषि व्यवस्था ने उत्पादन के असन्तुलन, रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता, द्वितीयक और सूक्ष्म पोषकों की कमियों में वृद्धि, कीटनाशकों के इस्तेमाल में वृद्धि, अवैज्ञानिक जल प्रबन्धन और उत्पादकता में कमी के साथ ही उत्पाद की गुणवत्ता में ह्रास, पर्यावरण प्रदूषण और सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में असन्तुलन की समस्या का सामना किया है। फसल उत्पादन को निरन्तर कायम रखने के लिए जैविक कृषि एक अच्छी पहल है किन्तु, भारत में कम्पोस्ट के अभाव, प्रमाणित प्रौद्योगिकियों के प्रचार के लिए विस्तार की असंगठित प्रणाली, जैविक सामग्री में पोषक तत्वों का अन्तर, कचरे से संग्रह करने और प्रसंस्करण करने में जटिलता, विभिन्न फसलों के लागत लाभदायकता अनुपात के साथ जैविक कृषि के व्यवहारों को शामिल करने में पैकेज का अभाव और वित्तीय मदद के बिना कृषकों द्वारा इसे अपनाने में कठिनाई होने के कारण जैविक कृषि को अपनाने में विभिन्न कठिनाइयाँ हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में जैविक कृषि अपनाने से कृषकों को होने वाले लाभों के साथ -साथ कृषकों को होने वाली कठिनाईयों का अध्ययन किया गया है।

मूल शब्द - जैविक कृषि, कृषक, रासायनिक खाद, कीटनाशक,

प्रस्तावना-जैविक कृषि से तात्पर्य फसल उत्पादन की उस पद्धति से है जिसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशियों, व्याधिनाशियों, शाकनाशियों, पादप वृद्धि नियामकों और पशुओं के भोजन में किसी भी रसायन का प्रयोग नहीं किया जाता बल्कि उचित फसल चक्र, फसल अवशेष, पशुओं का गोबर व मलमूत्र, फसल चक्र में दलहनी फसलों का समावेश, हरी खाद और अन्य जैविक तरीकों द्वारा भूमि की उपजाऊ शक्ति बनाए रखकर पौधों को पोषक तत्वों की प्राप्ति कराना एवं जैविक विधियों द्वारा कीट-पतंगों और खरपतवारों का नियंत्रण किया जाता है।

जैविक कृषि एक पर्यावरण अनुकूल कृषि प्रणाली है। इसमें खाद्यान्नों, फलों और सब्जियों की पैदावार के दौरान उनका आकार बढ़ाने या वक्त से पहले पकाने के लिये किसी प्रकार के रसायन या पादप नियामकों का प्रयोग नहीं किया जाता है। जैविक कृषि का उद्देश्य रसायनमुक्त उत्पादों और लाभकारी जैविक सामग्री का प्रयोग करके मृदा स्वास्थ्य में सुधार और फसल उत्पादन को बढ़ावा देना है। इससे उच्च गुणवत्ता वाली फसलों के उत्पादन के लिये मृदा को स्वस्थ और पर्यावरण को प्रदूषणमुक्त बनाया जा सकता है।

खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) के अनुसार, "जैविक कृषि एक विशिष्ट उत्पादन प्रबन्धन प्रणाली है, जो जैव-विविधता, जैविकीय चक्रों एवं मृदा जैविकीय क्रियाओं सहित कृषि पारिस्थितिकीय स्वास्थ्य का प्रोन्नयन एवं उच्चीकरण करती है। ऐसा खेतों पर कृषि विज्ञान, जैविकीय तथा यान्त्रिक विधियों में कृत्रिम आगतों को अपनाए बिना किया जाता है"।

संयुक्त राज्य अमरीका के कृषि विभाग के एक अध्ययन दल द्वारा जैविक कृषि को

कु. मोनिका पिता श्योवीर सिंह,
गाँव व पोस्ट नौरोज़पुर गुर्जर
(बागपत), उप्र 250601
मोबाइल - 8171238478
ईमेल - monikatomar2020@gmail.com

परिभाषित करते हुए कहा गया है "जैविक कृषि एक ऐसी प्रणाली है, जिसमें बड़े पैमाने पर कृत्रिम आगतों, जैसे कि रासायनिक उर्वरकों कीटनाशकों के प्रयोग से बचा जाता है एवं अधिकांशतया फसल चक्रण, फसल, अवशिष्टों, गोबर की खाद, खेतों से बाहर के ऑर्गेनिक अवशिष्ट पदार्थों, खनिज ग्रेड के रॉक योगजों तथा पोषक तत्वों के सृजन और फसल सुरक्षा की जैविकीय प्रणाली पर निर्भर रहा जाता है।"

साहित्य समीक्षा- 1.जितेन्द्र सिंह (2011) ने अपने अध्ययन में बताया है कि आज हमारे देश के कृषको को फिर से आवश्यकता है अपनी पारम्परिक और जैविक खाद के उपयोग की और उनका मूल्य समझने की, साथ ही आवश्यकता है इन जैविक खादों को वैज्ञानिक रूप से बनाने की, जिससे अधिक से अधिक पोषक तत्व खाद में आ सके। कृषक वर्मी कम्पोस्ट, नाडेप कम्पोस्ट, गोबर की खाद, हरि खाद, विष्ठा की खाद. विभिन्न खलियों की खाद, मछली की खाद, हड्डी की खाद, फूलो की खाद आदि को अपने फार्म प्रक्षेत्र में उपयोग कर रहे है। 2. सूद अर्चना (2011) उन्होंने अपने अध्ययन में बताया है कि जैविक या कार्बनिक स्वभाव और स्वास्थ्य के लिए हितकारी होने की वजह से ऐसे रस और सुगंधित पदार्थों की माँग अधिक है। 3.शर्मा, गुंजन (2011) उन्होंने अपने अध्ययन में बताया है कि जैविक खेती के लिए किसानों को प्रेरित करना, बीज पौधों एवं खाद की आपूर्ति सुनिश्चित करना तथा किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार करना, देश की प्राथमिकता है।4. जैन, सारिका, कामिनी जैन (2011) उन्होंने अपने अध्ययन में बताया है कि कृषकों को चाहिए कि वे ऐसी खादों व तकनीक का प्रयोग करें, जो कम खर्च पर अधिक उत्पादन करे। आज जैविक कृषि तकनीक का महत्त्व बढ़ रहा है, क्योंकि जैविक कृषि की तकनीक प्रचलित आधुनिक कृषि के अधिकांश दोषों को ख़त्म करती है। 5. तिवारी, आर. बी. (2011) उन्होंने अपने अध्ययन में बताया है कि जैविक खेती वर्तमान में विश्व के विभिन्न देशों में तेजी से प्रचलित हो रही है एवं दिन-प्रतिदिन जैविक उत्पादन की मात्रा की माँग भी बढ़ती जा रही है। जैविक खेती से न केवल कृषकों की आर्थिक स्थिति सुधार रही है, वरन् कृषि के अन्य तरीकों की तुलना में अधिक कीमतें दिला रही हैं, जिसके कारण जैविक पर्यावरण संतुलन एवं उपभोक्ताओं को स्वस्थ उत्पादन उपलब्ध कराने हेतु अग्रसर हो रहा है। जैविक पदार्थों के बाज़ार के लिए एक प्रभावकारी बहुत से जैविक उत्पाद विक्रेता उपक्रम अपना स्वयं के लोगो प्रारंभिक अवस्था में ही विकसित कर लिए हैं और उनके प्रचार-प्रसार में सुधार / वृद्धि हुई हैं। 6. बनर्जी शुभंकर (2011) ने अपने अध्ययन में बताया है कि जैव- खेती की सहायता से बेहतर फसल प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की जा सकती हैं, इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए कई महत्त्वपूर्ण उपयोगों की जानकारी भी मिली। इन उपयोगों के अन्तर्गत प्रारंभ से ही जैव-खेती के माध्यम से योग्य उत्पादन प्राप्त करने की चेष्ठा की गई, जिसमें पर्याप्त सफलता भी मिली हैं। 7. स्वामीनाथन, एम. एस. (2012) ने अपने अध्ययन में बताया है कि भारतीय किसान परम्परागत रूप से खेती में स्थानीय तकनीकी व संसाधनों का उपयोग करते थे, जिसमें वे स्थानीय बीज आधारित खेती व जैविक खाद का प्रयोग करते थे, जो कि सड़े-गले पत्तें व घासों का उपयोग कर बनाने में भारतीय किसान माहिर थे। पारम्परिक खाद के प्रयोग से फसल अधिक गुणवत्ता वाली होती थी साथ ही आस-पास का वातावरण साफ व स्वच्छ रहता था।

एक दो दशक पहले तक आम काश्तकार खेती से इतना उत्पादन कर लेता था कि परिवार का गुज़र-बसर हो जाता था और अपनी आर्थिक ज़रूरतें भी पूरी कर लेता था।

जैविक कृषि के लाभ -कृषकों को जैविक खेती के लिए प्रोत्साहित करने का मूल उद्देश्य भूमि की उर्वरा शक्ति को नष्ट होने से बचाने तथा दूसरा सबसे महत्त्वपूर्ण मानव स्वास्थ्य पर रासायनिक पदार्थों के दुष्प्रभाव को कम करना। ऐसे कीटनाशक तैयार किये जाए जो मृदा में अघुलनशील हो तथा खरपतवार व हानिकारक जीवाणुओं को मिटाने में कारगर हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए नाइट्रोजन से जैविक खाद तथा कार्बनिक पदार्थों को पुन: उपयोगी बनाया जाता हैं।

जैविक कृषि किसान के लिए सबसे उपयुक्त मानी गई है जिसके चलते वह पालतू जानवरों की देखभाल कर सकेगा, उनके जीवन स्तर तथा रखरखाव में मदद मिलेगी. जैविक कृषि का एक अहम लक्ष्य पर्यावरण पर रासायनिक प्रभावों को कम करना तथा प्रकृति के साथ बिना छेड़छाड़ किये सहजीवी बनकर इसकी सुरक्षा करना हैं।

यदि हम जैविक कृषि के लाभ की बात करे तो यह बहुआयामी हैं. इसका प्रत्यक्ष एवं तत्कालीन लाभ कृषक को दो तरह से मिलता हैं. पहला उनके स्वास्थ्य तथा पर्यावरण को तथा दूसरा कृषक की भूमि को। जैविक कृषि के लिए प्राकृतिक खाद का उपयोग करने से भूमि का उपजाऊपन तो बढ़ता ही है साथ ही सिंचाई चक्र की अवधि भी बढ़ जाती है।

जैविक खेती करने से किसान को आर्थिक लाभ भी होगा। आज जहाँ रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशको की कीमतें इतनी बढ़ चुकी है कि किसान ऋणग्रस्त होकर खेत में बुवाई करता हैं। ऐसे में यदि वह इस रासायनिक खाद के साथ पर पशुओं, पेड़ों पौधों के अवशेषों से निर्मित जैविक खाद का उपयोग करे तो कृषि की लागत भी कम आएगी और किसान का जीवन भी खुशहाल हो सकेगा। निरंतर केमिकल फर्टिलाइजर के उपयोग से भूमि की उत्पादन क्षमता कम हो जाती है, साथ ही भूमि के जल स्तर में भी कटौती होती जाती हैं। जैविक खाद के प्रयोग से बम्पर उत्पादन भी होगा, भूमि की जलधारण क्षमता बढ़ेगी तथा हमारे पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता हैं। जैविक कृषि पूरी तरह पर्यावरण मित्र होती हैं। भारत ही नहीं समूचे संसार में आज तेजी से बढ़ती जनसंख्या एक गम्भीर समस्या बन चुकी है। अधिक जनआबादी के भोजन के लिए अधिक अन्न, फल, सब्जियाँ उत्पादन के लिए किसान अपने खेतों में नाना प्रकार के रसायन, कृत्रिम खाद और जहरीले कीट नाशकों का उपयोग

करते हैं। इससे प्रकृति का संतुलित संघटन जैविक व अजैविक पदार्थों के पारिस्थितिकी तंत्र को बुरी तरह प्रभावित करता हैं। तय सीमा से अधिक मात्रा में रसायनों के उपयोग से भूमि की उर्वरा क्षमता समाप्त होकर बंजर का रूप ले लेती है। खेतों में प्रयुक्त रसायनों से पर्यावरण भी प्रदूषित होता है। इसका सीधा संबंध मानव स्वास्थ्य से जुड़ा हुआ हैं। आजादी के समय तक भारत में अन्न की व्यापक कमी का दौर था। उस समय तक प्राचीन परम्परागत कृषि का स्वरूप चलन था, सरकारी नीतियों के चलते न तो किसान को कोई मदद मिलती थी न ही उनका कोई मददगार था। ऐसे में जब 60 के दशक में हरित क्रांति का प्रादुर्भाव हुआ तो किसान उत्तरोतर लाभ के लिए अपनी उपजाऊ ज़मीन में भी रसायनों के प्रयोग से अधिक पैदावार करने लगे। जहाँ एक बीघा में किसान एक क्विंटल उर्वरक डालता था अब वह तीन क्विंटल डालकर अधिक पैदावार तो करने लगा मगर यह लाभ तात्कालिक ही था, कालान्तर में उसकी भूमि बंजर में बदलने लगी।

पुराने जमाने में खेती का जो स्वरूप प्रचलन में था उसमें मनुष्य के स्वास्थ्य तथा प्रकृति के वातावरण का पूरा पूरा ख्याल रखा जाता था। परम्परागत जैविक खेती से जैविक व अजैविक घटकों का सामजस्य बना रहा, यही कारण है उस समय जल, वायु या मृदा प्रदूषण की समस्या ने जन्म नहीं लिया। हमारा भारत गायों का देश था। हर घर में गाय का पालन किया जाता था। गाय और बैल किसान के मित्र समझे जाते थे। मगर आज यांत्रिक कृषि ने इन्हें मनुष्य से दूर बना दिया हैं। परिणामस्वरूप खेतों में जैविक खाद के स्थान पर रासायनिक खाद का प्रयोग बड़े पैमाने पर किया जाने लगा। भारतीय किसान अब फिर से जैविक कृषि की ओर उन्मुख हुए है।

जैविक कृषि की कठिनाईयाँ - किसानों के पास कम्पोस्ट तैयार करने के लिए आधुनिक तकनीकों के इस्तेमाल की जानकारी के साथ ही उसके प्रयोगों की जानकारी का भी अभाव है। ज़्यादा से ज़्यादा वे यही करते हैं कि गड्ढा खोदकर उसे कचरे की कम मात्रा से भर देते हैं। अक्सर गड्डा वर्षा के जल से भर जाता है और इसका परिणाम यह होता है कि कचरे का ऊपरी हिस्सा पूरी तरह कम्पोस्ट नहीं बन पाता और नीचे का हिस्सा कड़ी खल्ली की तरह बन जाता है। जैविक कम्पोस्ट तैयार करने के बारे में किसानों को समुचित प्रशिक्षण देने की ज़रूरत है। ऐसा पाया जाता है कि जैविक फसलों की खेती शुरू करने के पहले उनका विपणन योग्य होना और पारम्परिक उत्पादों की तुलना में लाभ सुनिश्चित करना होता है। ऐसा प्रमाण मिला है कि राजस्थान में जैविक गेहूँ के किसानों को गेहूँ के पारम्परिक किसानों की तुलना में कम कीमतें मिली। दोनों प्रकार के उत्पादों के विपणन की लागत भी समान थी और गेहूँ के खरीदार जैविक किस्म के लिए अधिक कीमत देने को तैयार नहीं थे। भारत के छोटे और सीमान्त किसान पारम्परिक कृषि प्रणाली के रूप में एक प्रकार की जैविक खेती करते रहे हैं। वे खेतों को पुनर्जीवित करने के लिए स्थानीय अथवा अपने संसाधनों का इस प्रकार इस्तेमाल करते हैं ताकि पारिस्थितिकी के अनुकूल पर्यावरण कायम रहे। हालाँकि इस समय पारम्परिक कृषि प्रणाली में इस्तेमाल होने वाली अन्य चीजों सहित औद्योगिक तौर पर उत्पादित रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों की लागत की तुलना में जैविक उत्पादों की लागत अधिक हो रही है।

निष्कर्ष -भारत में सर्वप्रथम मध्य प्रदेश में 2001-02 में प्रत्येक प्रत्येक ब्लॉक में जैविक कृषि को आरंभ किया गया तथा उन गाँवों को जैविक गाँव कहा गया। आज से 18 साल पहले जैविक खेती का भारत में सफल प्रयोग हुआ, एक किसान आन्दोलन के रूप में मध्यप्रदेश में इसे पूर्ण सफलता मिली। भारत के साथ साथ पश्चिम के देशों को भी इस पहल को आगे बढ़ाना चाहिए, मगर इस अभियान से जुड़ा प्रश्न यह भी है कि क्या सम्पूर्ण देश में जैविक खेती को पुनर्जन्म दिया जा सकता हैं? हमारे देश में कृषि के लिए पर्याप्त उपजाऊ भूमि है, कुल भूक्षेत्र के 60 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र पर कृषि की जाती हैं। देश की 58 प्रतिशत जनसंख्या का रोज़गार क्षेत्र भी कृषि है। यदि जैविक कृषि के लिए एक स्वस्थ कृषि पद्धति जन्म लेती है अथवा नए युग व साधनों के अनुरूप अच्छी कृषि व्यवस्था का जन्म होता है तो देश व दुनिया की पैदावार तथा स्वास्थ्य सूचकांक में बदलाव अपेक्षित है। इस क्षेत्र में कार्य करने वाले शोध कर्ताओं का विश्वास है कि जैविक कृषि के संबंध में असीम सम्भावनाएँ हैं. पश्चिम के देशों के लिए यह एक नवीन व्यवस्था है जिसमें किसान रुचिकर हैं। मगर भारत के विषय में एक लुप्त पुरातन व्यवस्था को पुनर्जीवित करना हैं। सिक्किम वर्ष 2016 में देश का प्रथम जैविक राज्य बना था। यहाँ के कृषकों ने 75,000 हेक्टेयर कृषि भूमि पर जैविक प्रथाओं एवं जैविक कृषि पद्धतियों से पैदावार प्राप्त की, जिसमें किसी प्रकार के रसायनिक खाद, कीटनाशक या अन्य रूप में उपयोग नहीं किया गया।

इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ ऑर्गेनिक एगीकल्चर मोमेंट ने भारत को जैविक खेती अपनाने वाले शीर्ष दस देशों में नौवा स्थान दिया हैं। भारतीय कृषि को न केवल खाद्यान्न उत्पादन को कायम रखना होगा, बल्कि उसे बढ़ाने के भी प्रयास करने होंगे। ऐसा लगता है कि जैविक खेती की सुविधा उपलब्ध होने, रासायनिक खेती की प्रक्रिया के इस्तेमाल में कमी लाने के प्रयास करने तथा सार्वजनिक निवेश को सीमित करने से जैविक खेती को धीरे- धीरे शुरू किया जा सकता है।

000

संदर्भ-

1 . जैविक खेती: समस्याएँ और संभावनाएँ, कुलदीप शर्मा एवं सुधीर प्रधान, 2.जैविक खेती की ओर बढ़ता रुझान, डॉ वीरेंद्र कुमार, 3.भारत में जैविक खेती का भविष्य, गीता, विवेक, अनु, विजय शर्मा एवं नीलम शेखावत, 4. जैविक खेती, दिपाली पटेल, 5. वीके पुरी व एसके मिश्रा, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 6.डॉ जेपी मिश्रा, भारतीय आर्थिक समस्याएँ, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा,

(शोध आलेख)

पुरुष के द्वारा स्त्री शोषण की प्रक्रिया में तलाक और हलाला का योगदान

शोध लेखक : देवेन्द्र कुमार
शोधार्थी- हिन्दी विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय,
रोहतक

देवेन्द्र कुमार
शोधार्थी - हिन्दी विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक
मोबाइल- 9068859229
ईमेल- neh.devender309@gmail.com

भारतवर्ष पुरुष प्रधान देश है। हमारे समाज मे कहने को तो स्त्री एवं पुरुष एक समान है लेकिन यह सब कहने मात्र को है सत्य कुछ और है पुरुष मे अहम भाव होता है और वह इस भाव के कारण हमेशा स्त्री को दबाकर रखना चाहता है। समाज की उत्पति के बाद समाज धीरे-धीरे विकाश करने लगा तो पुरुष ने स्वयं को समाज का अधिकारी बना लिया और अपने आप को श्रेष्ठ सिद्ध करने का भरसक प्रयास किया और स्त्रियों से संबंधित जितने भी निर्णय लेने होते थे वो सब पुरुष के द्वारा ही लिए जाने लगे और स्त्री पुरुषों के अधीन होने लगी। स्त्री को किससे विवाह करना है कब बच्चा पैदा करना है कितने बच्चे पैदा करने है यह सब स्त्रियों से संबंधित होते हुए भी यह सब निर्णय पुरुष के अधिकार क्षेत्र मे थे। धीरे-धीरे संपति पर भी नर संतान का अधिकार स्थापित हो गया और स्त्रियाँ पूरी तरह पुरुषों के पराधिन हो गई और इस दशा में स्त्री का सम्पूर्ण जीवन तीन भागों में बँट गया और इन भागों में बँटी स्त्री पर तीन प्रकार के पुरुषों का अधिकार हो गया जो क्रमश: इस प्रकार है- पिता, पति एवं पुत्र।

जब स्त्री पूर्ण रूप से पुरुष के अधीन हो गई तो पुरुष ने सभी अधिकार अपने पास रख लिए और स्त्रियों को अधिकार के नाम पर मिली परवशता स्त्रियों ने इस परवशता को सहर्ष स्वीकार कर लिया और पुरुषों के अधिकारी बनने की राह में कोई व्यवधान उत्पन्न नही हुआ और इस प्रकार से भारतीय समाज पुरुष प्रधान समाज बना गया और आज भी बना हुआ है कहने को तो स्त्रियों को पुरुष के समान अधिकार मिल गए पर आज भी स्त्रियों से संबधित सभी निर्णय पुरुष के द्वारा ही निर्णित होते हैं। स्त्रियों को इससे किसी प्रकार की क्षति होती हुई नही दिखाई दे रही है और स्त्रियाँ पुरुषों की इच्छा के अनुसार ही अपना जीवन सुखमय व्यतित कर रही है। अगर कहीं इसका अपवाद मिलता है तो स्त्री को बदचलन की श्रेणी में डालकर उसके अस्तित्व को समाप्त करे का प्रयास किया जाता है ताकि अन्य स्त्रियाँ ऐसा दुस्साहस न कर सकें और वह हमेशा पुरुष की परवशता स्वीकार करते हुए अपना जीवन व्यतीत करे। मुस्लिम धर्म में तो स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार अभी तक नहीं दिए गए है स्त्रियों को आज भी पुरुषों की पराधीनता स्वीकार करनी पड़ती है।

मुस्लिम समाज में तलाक और हलाला भी स्त्री शोषण मे अपनी अह्म भूमिका निभाता है क्योंकि मुस्लिम धर्म के नियमों के अनुसार तलाक लेने में पुरुष स्वतंत्र है पर स्त्रियाँ ऐसा करने मे

पूरी तरह पराधीन है। जब भी स्त्रियाँ पुरुषों के अनुसार न चलें, पुरुषों को अपनी पत्नी से घृणा हो जाए या फिर पुरुष का स्त्री से मन भर जाए तो वो तीन बार एक शब्द का प्रयोग करके स्त्री को उसके सभी अधिकारो से वंचित कर देता है और कुछ चंद कागज के टुकड़े स्त्री के सामने डालकर उससे छुटकारा प्राप्त कर लेता है।

पुरुष इस तलाक रूपी अचूक अस्त्र का प्रयोग करके स्वयं को विजयी बना कर अपनी जीत का जश्न बनाते हुए स्त्री को उसकी हैसियत दिखा देता है और स्त्री के पास अपनी पराजय पर पस्तावा करने के अलावा कुछ नही होता है। इसी डर के कारण मुस्लिम स्त्री हमेशा यह सब स्मरण रखती है कि उससे गलती से भी कोई गलती न हो जाए अगर ऐसा होता है तो पुरुष को केवल तीन शब्द तलाक.. तलाक.. तलाक कहने की देर भर है और स्त्री का अस्तित्व एवं अस्मिता समाप्त हो जाती है।

हलाला तलाक के बाद स्त्री के शोषण का एक चर्म बिंदु है और मुस्लिम पुरुष को ये बहुत बड़ा अधिकारी बना देता है। जब पुरुष स्त्री के सामने तीन शब्दों का प्रयोग करके उसको सभी अधिकारों से वंचित कर देता है तो स्त्री को वो सभी अधिकार प्राप्त करने है या फिर जिस पुरुष ने तलाक कह कर स्त्री को अपने पत्नी पद से हटा दिया है उसे फिर से अपने पति के रूप मे स्वीकार करना है तो किसी अन्य पुरुष से विवाह करके उसके साथ एक रात के लिए शारीरिक संबंध बनाने के बाद उसे तलाक देकर फिर से उसको प्राप्त कर सकती है। स्त्री के लिए ये एक भयानक कार्य है और ऐसा करना स्त्री के लिए सरल नही है जब तक स्त्री हलाला नहीं करती है वो अपने बच्चों से भी नहीं मिल सकती है। हलाला प्रथा का लाभ उठाकर मुस्लिम परिवारो मे स्त्रियाँ का शारीरिक एवं मानसिक शोषण होता है।

'कुठाँव' उपन्यास में सुबराती की माँ ऊँचे घरो पर खुड्डी साफ करती थी उसकी मृत्यु के बाद यह काम करने के लिए सुबराती अपनी पत्नी को विवश करता है पहले तो वो यह करने से मना कर देती है पर तलाक के भय से उसे यह सब करना पड़ता है। "अन्ततः इद्दन ने अपने शौहर के आदेशा को मान लिया। इसलिए मान लिया कि तलाक लेने के बाद भी क्या उसकी स्थिति बेहतर हो पाएगी?"01 मुस्लिम धर्म की स्त्रियों को बहुत अधिक शोषण सहन करना पड़ता है और जब वो उसका विरोध करती है तो उसका पति उसे तलाक रूपी अचूक अस्त्र से मौन कर देता है

'अभिनेता' कहानी में रहमान अपने मित्र के यहाँ गया हुआ था तो उसके मित्र ने उसकी दूसरी पत्नी के बारे मे पूछा तो वो कहता है। "अरे तुम्हे नहीं मालूम क्या! उसे तो मैंने तलाक दे दिया। पठानिन अपने को लगाती थी बहुत। अरे जी में आया, कर ली शादी और जी में आया छोड़ दिया।02 मुस्लिम धर्म मे तलाक लेने के लिए पुरुष पूरी तरह से स्वतंत्रत है जब की स्त्री को ऐसा कोई अधिकार नही है वह पुरुष के बिना कोई भी कार्य नहीं कर सकती है।

'जहरबाद' उपन्यास में नायक के पिता कोई भी कार्य नहीं करते हैं जब की उसकी माता संघर्ष करके परिवार का पालन-पोषण करती हुई पति की मार भी सहन करती है और जब अपने पति का विरोध करती है तो उसे तलाक मिल जाता है। "अम्माँ का तलाक हो गया था। अब वे हम लोगों से अलग रहने लगी थीं। नौ महीनों तक अपने जिस्म के भीतर रखने के बावजूद कानूनन उनका मेरे ऊपर कोई अधिकार नही था।" 03 स्त्री केवल शोषण सहने के लिए होती है उसका प्रमुख धर्म है पति के अत्याचार सहन करे अगर वो ऐसा नही करती है तो पति उसे मारता-पिटता है अगर फिर भी वो धर्म का पालन नही करती है तो उसे तलाकनामा लिखकर दे दिया जाता है।

'रावी लिखता है' उपन्यास में वल्ली मुहम्मद गुदने वाली लड़की का शारीरिक शोषण करता है तो सज़ा के रूप मे दोनों का विवाह कर दिया जाता है। वल्ली की पत्नी के घर वाले उसके घर आने लगे ये सब वल्ली को अच्छा नहीं लगता था और उसकी पत्नी वल्ली से बिना पूछे और उसकी गैर मौजूदगी मे अपनी पुत्री का विवाह कर देती है और इस सब की वल्ली ने गुदनेवाली को तलाक देकर एक भयानक सज़ा दी। "वल्ली ख़मोश तो रहे, मगर एक शब्द को तीन बार बोलने के बाद। उस शब्द ने गुदनेवाली को पत्नी के पद से हटा दिया।"04 पत्नी पति के कहे अनुसार चले तो उचित है मगर जब वो उसके विरुद्ध चलती है तो पुरुष को लगता है वो उसका अपनमान कर रही है और पुरुष से ये अपमान कभी-भी सहन नही होता है और वो सोचता है कि वो ऐसा क्या करे की वो अपने अपमान का बदला अपनी पत्नी से ले सके और वो उसे तलाक दे देता है।

'तलाक के बाद' कहानी में साबिरा का विवाह सत्तार से होता है और विवाह के समय किसी बराती ने शराब की माँग की पर साबिरा के पिता के पास रुपये नहीं थे की वो बरातियों को शराब पिला सके और सत्तार के पिता ने इसे अपना अपमान मान लिया और वो साबिरा का तंग करने लगा और वह अपने पुत्र सत्तार से तलाकनामा लिखवा कर साबिरा को दे देता है। "उस दिन सत्तार का इंतज़ार बड़ी बेसब्री से होता रहा। आते ही पहला हुक्म दिया, इस कागज पर दस्तखत करो बाप ने कड़ककर हुक्म दिया, दस्तखत करो। और बाप के हाथ से खुजली हुई कलम लेकर सत्तार ने दस्तखत कर दिया।"05 मुस्लिम धर्म में तलाक लेना बहुत अधिक सरल है और जब स्त्री के घर वाले दहेज या उनकी अन्य इच्छा पूर्ण नही करते है तो किसी अन्य या परिवार के सदस्य के कहने भर से पति-पत्नी के सभी संबंध एक हस्ताक्षर करने से कुछ ही पलों में समाप्त हो जाते है।

इसी कहानी में जब सत्तार को यह एहसास होता है कि उसने अपने पिता के कहने पर साबिरा को तलाक देकर ग़लत कार्य कर दिया है। वो अब भी अपनी पत्नी से प्रेम करता है और वह चाहता है कि वो उससे क्षमा माँग कर फिर से उसे अपने साथ ले आएगा मगर मुस्लिम धर्म मे यह संभव नहीं है। "ऐसा नही हो सकता। मज़हब इसकी इजाजत नहीं देता शरीयत का रूह से पहले 'हलाला' होना जरूरी है।"06 किसी अन्य व्यक्ति या सगे-संबंधियों के दबाव के कारण तलाक हो जाता है और इस तलाक के लिए पति-पत्नी दोनों

सहमत नहीं थे तो क्या इसे तलाक मान लिया जाए तब वो शरीयत आड़े नहीं आता है। तलाक पति-पत्नी की पूर्ण सहमती से होता है न कि किसी अन्य के कहने पर और जब तलाक दोनों की सहमती से नहीं हुआ है तो फिर हलाला का औचित्य ही नहीं बनता यह तो एक तरह से स्त्री गुलाम बनाने की प्रक्रिया है।

'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास के माध्यम से पता चलता है कि स्त्रियों का प्रमुख महत्त्व है घर का कार्य एवं पति की सेवा करना। तलाक शब्द सुनते ही स्त्री हृदय में उथल-पुथल होने लगती है। किसी स्त्री का तलाक हो जाता है तो उस स्त्री को बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

लतीफ एक शराबी व्यक्ति है जो रात को शराब पी कर घर आता है वो बहुत अधिक नशे मे होता है और अपनी पत्नी को उठाने का प्रयास करता है पर उसके पेट में बहुत अधिक दर्द होता है और वह उठ नहीं पाई तो लतीफ ने उसे बहुत मारा और जब वो सुबह अपने पति लतीफ के लिए चाय एवं रोटी लेकर आती है तो लतीफ उसे फिर से मारता है और वो एक चारपाई पर जाकर लेट जाती है और उसका विरोध करते हुए कोई भी काम नहीं करती तो लतीफ उसे तलाक दे देता है। "जब इसने देखा कि यह तो कुछ काम नहीं कर रही है तो और बिगड़ उठा। इसने फिर उसे झँझोड़कर उठाया तो वह भड़क उठी। उसने भी कुछ उल्टा-सीधा कह दिया। बस इसने उसे तलाक बोल दिया।"07 स्त्री अगर पति की मार-पीट सहती रहे तो उचित है अगर वह उसका विरोध करती है तो पति उसे तलाक मात्र कहकर उसे सिरे से नकार देता है।

इसी उपन्यास में जब लतीफ और कमरून के तलाक के बारे मे अलीमुन अपने पति मतीन को बताती है तो मतीन जो कहता है वह मुस्लिम स्त्रियों का यथार्थ है। "तलाक तो बिरादरी मे आम बात हो गई है। औरत ज़ात की हैसियत ही क्या? जब चाहो चूतड़ पर लात मारकर निकाल दो! औरत का और इस्तेमाल ही क्या है। ?08 इन पंक्तियों से स्त्री की दशा के बारे मे पता चलता है। स्त्री का जब तक शारीरिक प्रयोग करना है तो प्रयोग करते रहो बच्चे पैदा करते रहो घर के सभी काम करवाते रहो मारते-पीटते रहो अगर वह इस सब में ना-नूकुर करे तो तलाक रूपी अचूक अस्त्र का प्रयोग कर दो। लतीफ जब कमरून को तलाक दे देता है उसके बाद उसे फिर से स्त्री का आवश्यकता होती है तो वह सोचता है कि कमरून को अपने घर ले आए लेकिन मुस्लिम धर्म में यह संभव नही है। "लेकिन शरीअत आड़े आ जाती है। जब तक उसका 'हलाला' न हो जाए, दुबारा लतीफ के साथ वह नहीं रह सकती। अब तो यही एक उपाय है कि कमरून का निकाह किसी और से हो जाय और वह एक रात अपने साथ रखकर उसे तलाक दे दे। तब जाकर फिर लतीफ के साथ उसका निकाह हो सकेगा।"09 पुरुष के द्वारा तीन बार तलाक बोल देने एवं लिख देने से पति-पत्नी का संबंध समाप्त हो जाता है मगर पति-पत्नी फिर साथ रहना चाहे तो उसके लिए हलाला अनिवार्य है।

कमरून और उसका पति तलाक के बाद साथ रहना चाहते है इस पर अलीमुन कमरून को समझाती है। "लेकिन अलीमुन ने उसे समझाया कि ऐसा सोचना अब बेकार है। बगैर 'हलाला'के लतीफ के साथ वह नहीं रह सकती।"10 कमरून और लतीफ का साथ रहना अब एक ही नियम पर संभव था जो कि किसी भी स्त्री के लिए संभव नही है वो है हलाला। जिसने तलाक दिया वो भी चाह कर अपनी पत्नी को फिर से नही अपना सकता और न ही बच्चें अपनी माँ से मिल सकते है। यह सब सुनकर कमरून को बहुत बड़ा धक्का लगता है और वो इस सब के बारे मे सोचने लगी कि ऐसा करना उसके लिए संभव नही था और एक स्त्री के लिए यह संभव हो भी कैसे हो सकता है। "कमरून का दिल बैठ गया। इतनी जलालत के लिए ख़ुद को तैयार करना उसके लिए मुमकिन नहीं था।"11 अगर हम कमरून की जगह स्वयं को रखकर देखे तो यह हमारे लिए भी बहुत घृणित कार्य होगा और कोई भी स्त्री ऐसा घृणित कार्य करने के लिए तैयार नहीं होगी उसके पाँच बच्चे है लगभग सभी समझदार और एक पुत्री का विवाह भी हो चुका है उनके सामने यह सब करना संभव नहीं है। यह सब स्त्रियों के शोषण का षड़यंत्र है और इस षड़यंत्र का शिकार प्रत्येक मुस्लिम स्त्री को होना पड़ता है।

लतीफ बिन हलाला के अपनी पत्नी कमरून को घर पर ले आता है तो कमरून अपने ही घर पर डरी सहमी रहती है और सोचती रहती है। "कमरून चली तो आई वापस, लेकिन अपने ही घर में वह बन्दिनी की तरह रहने लगी। किस मुँह से बाहर निकलती? दुनिया में क्या ऐसा भी कहीं हुआ है कि तलाकशुदा मुस्लमान औरत बगैर 'हलाला' के फिर अपने शौहर के साथ आकर रहने लगे।"12 मुस्लमान धर्म का कानून यह अनुमति नहीं देता कि तलाकशुदा स्त्री बिना हलाला के फिर से अपने पति के साथ रहे अगर ऐसा होता है तो उस परिवार को बिरादरी से निकाल देने की धमकी दी जाती है और अछूतों सा व्यवहार किया जाता है।

निष्कर्ष: जब कर्ता को समाज में नियम एवं अधिकार बनाने का कार्य दिया जाता है तो वह सभी नियम अपनी सुविधा के अनुसार बनाता है ताकि उसकी सत्ता पर कोई आँच ना आए। पुरुषो ने भी इसी प्रक्रिया को अपनाया ताकि वह स्त्री को अपना प्रिय गुलाम बनाकर रख सके मुस्लिम धर्म में तो स्त्रियो को गुलाम बनाए रखने के लिए तलाक एवं हलाला रूपी अचूक अस्त्रो का उदय हुआ। जब तक विवाहित स्त्री जीवित रहती है उस यह दोनो अस्त्र पूर्ण रूप से प्रभावी रहते है और विवाहित स्त्री को हमेशा पुरुष का प्रिय गुलाम बनाऐ रखते हैं।

000

संदर्भ- 1.अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुठाँव, पृ.-128, 2.अब्दुल बिस्मिल्लाह, अतिथि देवो भव, पृ.-42, 3.अब्दुल बिस्मिल्लाह, जहरबाद, पृ.-98, 4.अब्दुल बिस्मिल्लाह, रावी लिखता है, पृ.-111, 5.अब्दुल बिस्मिल्लाह, ताकि सनद रहे, पृ.-122, 6.वही, पृ.-124, 7.अब्दुल बिस्मिल्लाह, झीनी-झीनी बीनी चदरिया, पृ.-119, 8.वही, पृ.-49, 9.वही, पृ.-56, 10.वही, पृ.-71, 11.वही, पृ.-72, 12.वही, पृ.-196

(शोध आलेख)

योग और आहार- एक स्वस्थ जीवनशैली

शोध लेखक : शुभम कुमार
(पी. एच. डी. शोधार्थी, योग)
योग विज्ञान विभाग, लक्ष्मीबाई राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा संस्थान, ग्वालियर (म.प्र.)

शोध निर्देशक : डॉ. मनोज साहू
सहायक प्रोफेसर

शुभम कुमार
योग विज्ञान विभाग, लक्ष्मीबाई राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा संस्थान, शक्ति नगर, मेला रोड, ग्वालियर- 474002 (म.प्र.)
मोबाइल- 9882876059
ईमेल- shubhamkumarhpu@gmail.com

सारांश: यह शोध पत्र योग एवं संतुलित आहार के महत्त्वपूर्ण योगदान पर प्रकाश डालता है, जो एक स्वस्थ जीवनशैली की नींव रखते हैं। योग, एक प्राचीनतम विद्या है जिसका वर्णन सर्वप्रथम हमें ऋग्वेद में देखने को मिलता है जो कि एक प्राचीन भारतीय अभ्यास है। योग, न केवल शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार करता है बल्कि मानसिक और आत्मिक शांति भी प्रदान करता है। इसी तरह, एक संतुलित आहार, जो सभी आवश्यक पोषक तत्वों को समावेशित करता है, न केवल व्यक्ति के शारीरिक कार्यों को सही बनाए रखता है बल्कि ऊर्जा स्तर और अच्छे मानसिक स्वास्थ्य को भी सुनिश्चित करता है। इस शोध पत्र में, हम विश्लेषण करेंगे कि कैसे योग और संतुलित आहार का एक साथ अभ्यास करने से व्यक्ति के जीवन में समग्र सुधार हो सकता है। अंत में, हम योग और आहार के बीच सामंजस्य को बढ़ावा देने के लिए व्यावहारिक सुझाव प्रदान करेंगे, जिससे व्यक्तियों को उनके स्वास्थ्य और कल्याण के पथ पर मार्गदर्शन मिल सके।

कूट शब्द- योग, संतुलित आहार, स्वस्थ जीवनशैली, शारीरिक स्वास्थ्य।

1.परिचय: स्वस्थ जीवनशैली- एक स्वस्थ जीवन शैली में मुख्य रूप से स्वस्थ भोजन की आदतों का पालन करना, पर्याप्त नींद लेना और प्रत्येक दिन शारीरिक व्यायाम के लिए कुछ समय निकालना शामिल है(1)। योग और संतुलित आहार, दोनों ही स्वस्थ जीवनशैली के अहम् स्तंभ हैं(7)। योग, जो कि एक प्राचीन भारतीय प्रथा है, शारीरिक आसनों, प्राणायाम (श्वास क्रियाओं), और ध्यान का संयोजन है जो शारीरिक स्थिति को सुधारने, मानसिक शांति को बढ़ावा देने और आध्यात्मिक जागरूकता को उत्तेजित करने में मदद करता है। योगाभ्यास न केवल तनाव को कम करता है बल्कि एकाग्रता और आत्म-संज्ञान में भी वृद्धि करता है(9)(11)। दूसरी ओर, संतुलित आहार, जिसमें फल, सब्जियाँ, दालें, नट्स, अनाज और प्रोटीन युक्त भोजन शामिल हैं, शारीरिक विकास और मरम्मत में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह शरीर को आवश्यक विटामिन, खनिज और अन्य पोषक तत्व प्रदान करता है, जो ऊर्जा के स्तर को बढ़ाते हैं और बीमारियों से लड़ने में मदद करते हैं(2)। इस शोध पत्र में, हम विस्तार से चर्चा करेंगे कि किस तरह से योग और संतुलित आहार का नियमित अभ्यास एक स्वस्थ जीवन शैली के निर्माण में योगदान तथा व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य को संतुलित कर सकता है।

2.योग एवं योगाभ्यास से लाभ

योग, एक प्राचीनतम विज्ञान है, जिसका अभ्यास हजारों वर्षों से शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए किया जा रहा है(8)। पाणिनीय संस्कृत व्याकरण के अनुसार योग का शाब्दिक अर्थ "समाधि" है। महर्षि पतंजलि के अनुसार योग के आठ अंग हैं जो निम्न प्रकार से हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि (15)। योग के लाभ अत्यधिक व्यापक हैं। योग हमारे शरीर में लचीलापन, मांसपेशी की ताकत तथा समग्र शारीरिक सहनशीलता में सुधार करता है। यह पाचन क्रिया को बेहतर बनाता है, रक्त संचार को बढ़ावा देता है, और शरीर से विषैले पदार्थों को निकालने में मदद करता है। मानसिक और भावनात्मक रूप से, योग तनाव, चिंता तथा अवसाद को कम करता है(4)।

योग साधना के विभिन्न प्रकार हैं जैसे कि हठ योग, राज योग, कर्म योग, भक्ति योग और

ज्ञान योग जिनके विभिन्न लाभ एवं विशेषताएँ हैं। उदाहरण के लिए, हठ योग शारीरिक आसनों पर ज़ोर देता है, जबकि राज योग मन को नियंत्रित करने और ध्यान के माध्यम से आत्मसात्कार की ओर अग्रसर करता है। योग के नियमित अभ्यास से न केवल शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार होता है, बल्कि यह आत्मसाक्षात्कार और आंतरिक शांति को भी बढ़ावा देता है। योग आध्यात्मिक विकास को भी समर्थन देता है, जिससे व्यक्तियों को उनके जीवन के उद्देश्य और अर्थ को समझने में मदद मिलती है(16)।

3.संतुलित आहार का महत्त्व- संतुलित आहार वह है जो शरीर को उसके सही कार्यान्वयन और विकास के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्व प्रदान करता है। एक आदर्श संतुलित आहार में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, मिनरल्स और पानी शामिल होते हैं, जो सभी शरीर की विभिन्न ज़रूरतों को पूरा करते हैं(4)(6)।

3.1 कार्बोहाइड्रेट: शरीर के लिए मुख्य ऊर्जा स्रोत हैं। अनाज, फल, और सब्जियाँ कार्बोहाइड्रेट के समृद्ध स्रोत हैं।

3.2 प्रोटीन: मांसपेशियों के निर्माण और मरम्मत के लिए आवश्यक हैं और दालें, दूध उत्पाद, अंडे और मांस में पाए जाते हैं।

3.3 वसा: वसा ऊर्जा के संचित स्रोत हैं, इनके नियंत्रित सेवन से शरीर की ऊर्जा एवं प्रतिरक्षा शक्ति में वृद्धि होती है। वसा स्रोतों में नट्स, बीज और जैतून का तेल शामिल हैं।

3.4 विटामिन: विटामिन ऐसे कार्बनिक यौगिक हैं जो कि चाहे कम मात्रा में ही सही परन्तु हमारे शरीर के उचित कामकाज के लिए बहुत ही आवश्यक है। हमारा शरीर ख़ुद से विटामिन नहीं बनाता या बहुत ही कम मात्रा में बनाता है तो इनकी कमी हम भोजन से पूरी करते हैं। विटामिन्स को दो मुख्य भागों में बाँटा गया है। एक भाग "वसा में घुलनशील" और दूसरा भाग "पानी में घुलनशील" कहलाता है(3)(6)।

विटामिन ए: इस विटामिन का काम शरीर की त्वचा, बाल, नाखून, दाँत, मसूड़े, मांसपेशियाँ और हड्डी को ताकत देना है। विटामिन बी: मुख्य काम हमारी पाचनक्रिया को स्वस्थ रखना है। विटामिन सी: एस्कार्बिक ऐसिड के नाम से मशहूर विटामिन सी शरीर की कोशिकाओं को स्वस्थ रखने के साथ ही शरीर की इम्यूनिटी की भी रक्षा करता है। विटामिन डी: शरीर में कैल्शियम और फास्फोरस को अवशोषित करने में मदद करता है। इससे हड्डियाँ मजबूत रहती हैं। यह बच्चों के विकास के लिए बहुत आवश्यक है। विटामिन ई: वसा में घुलने वाला यह विटामिन ई एंटी-ऑक्सीडेंट के रूप में इम्यूनिटी बढ़ाने के साथ-साथ शरीर में एलर्जी से बचाव और कोलेस्ट्रॉल को भी संतुलित करता है। विटामिन के: यह विटामिन शरीर में ब्लड को गाढ़ा करके जमाने का काम करता है।

3.5 मिनरल्स: हमारे शरीर में मिनरल्स की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह विभिन्न जैविक क्रियाओं में मदद करते हैं, जैसे कि हड्डियों का निर्माण, हार्मोन का संश्लेषण, हृदय और मांसपेशियों की क्रियाविधि और बहुत सी अन्य प्रक्रियाएँ।

कैल्शियम: हड्डियों और दांतों के निर्माण और मजबूती के लिए अत्यंत आवश्यक है। यह मांसपेशियों के संकुचन और रक्त के थक्के बनने मंण भी मदद करता है। आयरन: हीमोग्लोबिन का एक भाग है, जो ऑक्सीजन को लाल रक्त कोशिकाओं से शरीर के विभिन्न भागों तक पहुँचाता है। पोटैशियम: नर्व और मसल्स फंक्शन के लिए जरूरी है तथा यह हृदय दर और रक्तचाप को नियंत्रित करने में भी मदद करता है। आयोडीन: थायराइड हार्मोन्स के निर्माण में महत्त्वपूर्ण है, जो चयापचय और वृद्धि को नियंत्रित करता है(2)(4)।

4.दैनिक जीवन में योग का एकीकरण- योग को दैनिक जीवन में एकीकृत करना न केवल शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार करता है, बल्कि मानसिक और भावनात्मक संतुलन को भी बढ़ावा देता है। योग और दिनचर्या हमारे जीवन के दो महत्त्वपूर्ण अंग हैं। दैनिक जीवन में योगाभ्यास से मन शांत और शरीर स्वस्थ रहता है। सुबह उठकर, ताज़ा हवा में योगासन, प्राणायाम और ध्यान का अभ्यास हमें ऊर्जावान बनाता है। दिन की शुरुआत नियमित रूप से जल पान, शौच और स्वच्छता से करनी चाहिए। संतुलित आहार और पर्याप्त नींद भी अनिवार्य हैं। दिनचर्या में समय का सदुपयोग, कार्य और आराम के बीच संतुलन, और सकारात्मक सोच शामिल है(5)। हम निम्न प्रकार से अपनी दिनचर्या में योग अभ्यासों का समावेश कर सकते हैं- 4.1नियमित अभ्यास: प्रतिदिन नियत समय पर योग अभ्यास करें। इससे यह आदत में बदल जाएगा। सुबह का समय सबसे उत्तम माना जाता है, परन्तु यदि संभव न हो, तो जब भी समय मिले, योग करें। 4.2 आसनों का चयन: अपनी क्षमता और आराम के अनुसार आसनों का चयन करें। शुरुआत में, सरल आसनों से शुरू करें और धीरे-धीरे अधिक जटिल आसनों की ओर बढ़ें। 4.3 ध्यान और प्राणायाम: योग अभ्यास में ध्यान और प्राणायाम (श्वास तकनीक) को शामिल करें। ये अभ्यास मन को शांत करते हैं और एकाग्रता बढ़ाते हैं(18)।

5.स्वस्थ जीवनशैली के लिए आहार संबंधी अभ्यास- श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है, "युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।" इसका अर्थ है कि जिसका खान-पान और विहार (व्यवहार और आराम) संयमित हो, जो कार्यों में संयमित प्रयास करता है, जिसकी नींद और जागरण संयमित होते हैं, उसके लिए योग दुःखों को दूर करने वाला होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में आहार और उसके प्रकारों पर विशेष बल दिया गया है(14)। गीता में आहार को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है- 5.1सात्विक आहार- सात्विक आहार को शुद्ध और स्वास्थ्यप्रद माना जाता है। इसमें ताजा फल, सब्जियाँ, दूध, घी, अनाज और जल शामिल हैं। सात्विक भोजन मन को शांति प्रदान करता है और आत्मा के उत्थान में सहायक होता है(13)। 5.2राजसिक आहार- राजसिक आहार में वह भोजन शामिल है जो मसालेदार, चटपटा, तीखा और गर्म होता है। इस प्रकार का भोजन मन को उत्तेजित करता है और

अधिक ऊर्जा प्रदान करता है। 5.3 तामसिक आहार- तामसिक आहार, वह है जो बासी, सड़ा, अशुद्ध और मांसाहारी होता है। यह आहार मन को अंधकारमय और निष्क्रिय बनाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार, व्यक्ति का आहार उसके मन, चित्त और आत्मा पर प्रभाव डालता है। इसलिए, आत्मिक उत्थान और स्वास्थ्य के लिए सात्विक आहार का सेवन अत्यंत उपयोगी माना जाता है। जैसा हमारा आहार होता है, वैसे ही हमारी जीवनशैली आकार लेती है। सात्विक आहार अपनाने वाले व्यक्ति अधिक शांत, संगठित और ध्यान केंद्रित होते हैं, जिससे उनकी दिनचर्या अधिक सुव्यवस्थित और उद्देश्यपूर्ण होती है। इसके विपरीत, राजसिक और तामसिक आहार लेने वाले लोगों में अशांति और असंतोष की भावनाएँ अधिक होती हैं, जिससे उनकी जीवनशैली में असंतुलन और अस्थिरता आती है। अत: उचित आहार न केवल हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करता है, बल्कि हमारी जीवनशैली की गुणवत्ता और दिशा को भी निर्धारित करता है(18)।

6.योग और आहार के बीच सामंजस्य: उत्तम स्वास्थ्य के लिए- योग और संतुलित आहार दोनों ही स्वस्थ जीवनशैली के महत्त्वपूर्ण स्तंभ हैं। जब ये दोनों एक साथ काम करते हैं, तो वे शरीर, मन और आत्मा के समग्र स्वास्थ्य और कल्याण को बढ़ावा देते हैं(7)।

6.1 योग और आहार का सामंजस्य: योग अभ्यास से शरीर की आंतरिक सफाई होती है, जिससे अधिक प्रभावी ढंग से पोषक तत्वों का अवशोषण हो सकता है। योग के माध्यम से उत्पन्न शारीरिक गतिविधियाँ चयापचय को सक्रिय करती हैं, जिससे आहार से प्राप्त पोषक तत्वों का बेहतर उपयोग होता है(12)। 6.2 आत्म-जागरूकता में वृद्धि: योग का अभ्यास आत्म-जागरूकता में वृद्धि करता है, जिससे व्यक्ति अपने खाने की आदतों और विकल्पों के प्रति अधिक सजग हो जाते हैं। यह सजगता उन्हें स्वस्थ खान-पान की ओर अग्रसर करती है(19)। 6.3 भावनात्मक संतुलन: योग भावनात्मक संतुलन और तनाव प्रबंधन में मदद करता है, जो अक्सर खान-पान की आदतों को नियंत्रित करने में सहायक होता है(10)।

7.निष्कर्ष- इस अध्ययन के माध्यम से, हमने योग और संतुलित आहार के महत्त्व को समझा और यह भी पहचाना कि कैसे इन दोनों का संयोजन हमें एक स्वस्थ और संतुलित जीवनशैली की ओर अग्रसर कर सकता है। स्वस्थ जीवनशैली की ओर हमारा प्रयास केवल शारीरिक स्वास्थ्य तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि मानसिक और भावनात्मक संतुलन पर भी ध्यान केंद्रित करना चाहिए। योग और आहार का सही संयोजन हमें इस दिशा में एक सकारात्मक कदम बढ़ाने में सहायता करता है। यह महत्त्वपूर्ण है कि हम अपने शरीर की क्षमता को समझें और उसके अनुसार ही योगाभ्यास और आहार का चयन करें। इस अध्ययन के अंत में, हम समझते हैं कि स्वस्थ रहने के लिए कोई एकमात्र या तत्काल समाधान नहीं है। यह एक निरंतर प्रक्रिया है जिसमें सही आहार और नियमित योग अभ्यास के साथ साथ, स्वयं के प्रति सजगता और समर्पण भी शामिल है। अपने आप को समय दें, अपनी यात्रा का आनंद लें, और अपने जीवन को अधिक संतुलित और पूर्ण बनाने के लिए योग और संतुलित आहार के महत्त्व को अपनाएँ।

000

संदर्भ- 1. आयंगर, बी. के. एस., (2008) लाइट ऑन योगा: पूर्णता, आंतरिक शांति और परम स्वतंत्रता की यात्रा। पैन मैकमिलन। 2. खालसा, डी. एस., (2003) दवा के रूप में भोजन: स्वस्थ, खुशहाल और लंबे जीवन के लिए आहार, विटामिन, जूस और जड़ी-बूटियों का उपयोग कैसे करें। साइमन और शूस्टर। 3. गुप्ता, ए. कौर, जे., शुक्ला, जी., भुल्लर, केके, लामो, पी., बीजू, केसी, अग्रवाल, ए., श्रीवास्तव, ए. के. और शर्मा, जी., (2023) स्लीप एपनिया वाले अधिक वजन वाले व्यक्तियों में योग-आधारित जीवन शैली और आहार संशोधन का प्रभाव: एक यादृच्छिक नियंत्रित परीक्षण (एलिसा"। स्लीप मेडिसिन। 4. टेल्स, एस., नवीन, वी.के., बालकृष्ण, ए. और कुमार, एस., (2009) मोटापे पर योग और आहार परिवर्तन कार्यक्रम का अल्पकालिक स्वास्थ्य प्रभाव। मेडिकल साइंस मॉनिटर। 5. देसिकाचर, टी. के. वी., (1999) दा हार्ट ऑफ योगा: डेवेलोपिंग ऐ पर्सनल प्रैक्टिस। साइमन और शूस्टर। 6. फ्रॉली, डी., (1999) योग और आयुर्वेद: आत्म-उपचार और आत्म-साक्षात्कार। लोटस प्रेस। 7. बालकृष्ण आ., (2013) आयुर्वेद-सिद्धांत रहस्य, दिव्य प्रकाशन पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार। 8. भारतीय दर्शन, चंद्रधर शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई, पुनर्मुद्रण संस्करण: 1995, 2010, 2013। 9. ममतानी, आर. और ममतानी, आर., (2005) हृदय रोगों में आयुर्वेद और योग। 10. मेनन, एस. डी. और के. ए, एम., (2024) जीवन शैली की बीमारियाँ और योग प्रथाओं के माध्यम से इसका इलाज। 11. वासोरेड्डी ई. बी. और पाठक स., (2018) हठयोग के आधार एवं प्रयोग, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, दिल्ली। 12. विलेट, डब्ल्यू, स्केरेट, पीजे और जियोवानुची, ईएल, (2017) खाओ, पीओ, और स्वस्थ रहो: स्वस्थ भोजन के लिए। हार्वर्ड मेडिकल स्कूल गाइड। साइमन और शूस्टर। 13. शर्मा, आर., और गुप्ता, एस. (2018) सात्विक आहार: सचेत जीवन के लिए भोजन। क्रिएटस्पेस इंडिपेंडेंट पब्लिशिंग प्लेटफ़ॉर्म। 14. श्रीमद्भगवद्गीता, शंकराचार्य भाष्यकार, गीताप्रेस, गोरखपुर, संस्करण: विक्रम संवत 2037। 15. श्रीवास्तव सु., (2015) पातञ्जलयोगदर्शनम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी। 16. सरस्वती, एस. एस. और हिति, जे.के., (1996) आसन प्राणायाम मुद्रा बंध, बिहार, भारत: योग प्रकाशन ट्रस्ट। 17. सिंह राम., (2018) स्वस्थवृत्त विज्ञान, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली। 18. हार्वर्ड हेल्थ पब्लिशिंग। (2020). योगा बेनिफिट्स बयोंड दा मैट। हार्वर्ड मेडिकल स्कूल।

(शोध आलेख)

काशी नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन का तुलनात्मक अध्ययन

शोध लेखक : स्मृति कुमारी
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

शोध निर्देशक : डा. सत्य प्रकाश सिंह

स्मृति कुमारी
तिवारी भवन, लेन नं. 5, हैदराबाद गेट के पास, बीएचयू, सुसुवाही, बैजनाथपुरी कॉलोनी, वाराणसी 221011 उप्र
मोबाइल- 7303341715
ईमेल- smirtisingh621@gmail.com

शोध सार- काशी नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन दोनों संस्थाओं की स्थापना स्वतंत्रता पूर्व क्रमश: 1893 और 1910 में हुई थी। उस समय भारत ऐसे दौर से गुज़र रहा था जिसमे भविष्य की योजना, नीतियाँ एवं आज़ाद भारत के सपने को देखने की छटपटाहट थी तथा एक ऐसे समृद्ध भाषा की ज़रूरत थी जो सम्पूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में बाँध सके इसलिए हिन्दी भाषा और नागरी लिपी के प्रचार के लिए इन दोनों संस्थाओं की स्थापना की गई। इन दोनों संस्थाओं के योगदान को हम तत्कालीन परिस्थितियों, विचारधाराओं, संभावनाओं और आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर देखेंगे। हालाँकि आजादी से पूर्व और बाद में दोनों संस्थाओं में पर्याप्त विकास और भिन्नताएँ आती गई। मेरे इस शोध आलेख का उद्देश्य दोनों संस्थाओं के अतीत एवं वर्तमान की भूमिका को देखते हुए उनकी समानता एवं विषमता पर विचार करना है। साथ ही तुलनात्मक प्रद्धति के सहारे दोनों संस्थाओं के बीच वैचारिक संतुलन का प्रयास करना है।

बीज शब्द- हिन्दी सेवी संस्था, भाषाई विविधता, राजनीतिक दबाव, सांप्रदायिकता, राष्ट्रवाद

शोध पत्र- नागरी प्रचारिणी सभा एवं हिन्दी साहित्य सम्मेलन ऐसी संस्थाएँ है जहाँ हिन्दी-प्रेमियों, विद्वानों, साहित्य-सर्जकों का समागम होता रहा है। ये दोनों ही संस्थाएँ देश की प्रधान संस्था है। हिन्दी प्रचार और साहित्य सेवा के लिए यह भारतवर्ष के साथ-साथ विदेशों में भी ख्याति प्राप्त कर चुका है। नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना के पीछे क्वींस कॉलेज के कुछ उत्साही छात्रों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है जिनमें गोपालप्रसाद खत्री रामसूरत मिश्र, रामनारायण मिश्र, उमराव सिंह एवं शिवकुमार सिंह थे। इन कार्यकर्ताओं ने 1 मार्च 1893 ई0 को नागरी प्रचार के उद्देश्य से एक सभा की स्थापना की और उसका नाम नागरी प्रचारिणी सभा रखा गया। इन छात्रों की इस स्थापना को नगर में एक विस्तृत रूप दिया गया और श्री जीवनदास ने अपने निवास के एक कमरे में इसकी स्थापना और संचालन की स्वीकृति दी। 16 जुलाई 1893 को सभा की एक महत्त्वपूर्ण बैठक हुई, जिसमे यह निश्चित किया गया कि- 1.सभा का नाम नागरी प्रचारिणी सभा ही रहे। 2.इसके स्थापनाकर्ता श्री गोपाल प्रसाद माने जाएँ। 3.स्थापना दिवस 16 जुलाई 1893 माना जाय। 4.श्री श्यामसुंदर दास सभा के मंत्री बनाए जाएँ। बाद में राधाकृष्ण दास संस्था के प्रथम अध्यक्ष निर्वाचित हुए। महात्मा गांधी ने कार्यकारिणी की सदस्यता ग्रहण की तथा पंडित गोविंद वल्लभ पंत ने अपने सामाजिक और राजनीतिक जीवन की शुरुआत संस्था से अपने को संबद्ध करके की। जून 1896 ई0 से प्रकाशित नागरीप्रचारिणी पत्रिका के प्रथम अंक में यह घोषणा की गई थी-

"कोई देश तब तक सभ्य कहलाने का गौरव नहीं प्राप्त कर सकता जब तक उसने यथोचित विद्या की उन्नति प्राप्त न कर ली हो और विद्या की उन्नति तब तक संभव नहीं, जब तक देश के कृतविध जनों का ध्यान आकर्षित न हुआ हो। इसी न्योन्य संबंध को एक-दूसरे से सहायता पहुँचाने के लिए काशी नागरी प्रचारिणी सभा का जन्म हुआ, क्योंकि इस देश की मातृभाषा हिन्दी की उन्नति करना ही इस सभा का मुख्य उद्देश्य है।"1

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, 15 मार्च 1910 ई0, में श्याम सुंदर दास का एक पत्र प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन करने की आवश्यकता को बताया। हिन्दी जगत् पर इस अनुरोध पत्र का दूरगामी प्रभाव पड़ा। परिणामस्वरूप श्यामसुंदर दास ने 1 मई 1910ई0 को नागरी प्रचारिणी समिति की प्रबंध समिति की बैठक में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आयोजन

करने हेतु एक प्रस्ताव उपस्थित किया था और उसी प्रस्ताव पर सम्मेलन को स्थापित करने का निश्चय किया गया और बहुमत से पंडित मदन मोहन मालवीय सम्मेलन के माननीय सभापति निर्वाचित हुए। इस प्रकार हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की जननी काशी नागरी प्रचारिणी सभा है और इसी परंपरा का निर्वहन करते हुए साहित्य सम्मेलन ने भी अनेक क्षेत्रों में शाखाएँ स्थापित की है जिनमें दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा, बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पटना इत्यादि हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बारे में फ्रांचेस्का आर्सीनी लिखती है- "हिन्दी साहित्य सम्मेलन हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए कांग्रेस पर दबाब डालने वाली सबसे प्रमुख संस्था के रूप में उभरा था।"2 इस प्रकार दोनों ही संस्थाएँ हिन्दी भाषा, साहित्य और नागरी लिपि को अपने स्थापना वर्ष से आजतक समृद्ध करती आ रही है। पंडित मदनमोहन मालवीय ने अपने प्रथम अध्यक्षीय अभिभाषण में कहा कि -"भाषा की उन्नति करने में हमारा सर्वप्रथम कर्त्तव्य यह है कि हम स्वच्छ भाषा में हिन्दी लिखें। पुस्तकें भी ऐसी ही भाषा में लिखी जाएँ। जब हम कोई काव्यमाला लिखें, तो अलंकारिक भाषा से काम लें, विद्यानादि लिखने से पहले भाषा के शब्द लीजिए। जब भाषा में शब्द न मिलें, तब संस्कृत से लीजिए या बनाइए। भाषा का सुधार बड़ा ही प्रयोजनीय है। समाचारपत्रों और स्कूल की पुस्तकों में ऐसी भाषा चल जाने पर उसके प्रसार की राह खुलेगी। एक दिन यह भाषा राष्ट्रभाषा हो सकेगी।"3

काशी नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन दोनों ही संस्थाओं का संबंध आजादी से पूर्व का है और दोनों ही संस्थाएँ एक-दूसरे की समकालीन रही है इसलिए इनकी पृष्ठभूमि भी एक जैसी है। हम इन संस्थाओं की महत्ता को भी तभी समझ पाएँगे जब उस दौर की विचारधारा, आवश्यकताओं, संभावनाओं तथा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थिति को ध्यान में रखकर देखेंगे। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अंग्रेजों के शासन काल के अर्न्तगत संयुक्त प्रांत की अदालतों, कचहरी व अन्य सरकारी काम - काज में फारसी लिपि व उर्दू भाषा का बोलबाला था। तब देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा की पहुँच उन स्थानों तक नहीं थी। इस परिस्थिति में नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अत्यंत उपयोगी और महत्त्वपूर्ण कार्यों को अपने हाथ में लिया। यद्यपि देखा जाए तो 1837 ई. में ही अंग्रेजी सरकार ने फ़ारसी व उसकी लिपि को आम जनमानस के लिए दुरूह मानकर देशी भाषाओं को अदालतों व अन्य सरकारी कार्यों में जारी करने की आज्ञा प्रदान की, किंतु तत्कालीन संयुक्त प्रांत की सरकार ने अन्य प्रांतों की तुलना में इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। तब सभा का ध्यान इस दिशा में गया और हिन्दी को अदालतों में स्थान दिलाने के लिए 1898 ई0 में महामना मदनमोहन मालवीय जी के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मंडल का गठन किया गया, जिसने तत्कालीन गवर्नर को एक निवेदन पत्र जिसमे साठ हजार हस्ताक्षरों की सोलह जिल्द थी और साथ में मालवीय जी ने 'कोर्ट कैरेक्टर एंड प्राइमरी एजुकेशन' की एक प्रति भी दिया था। सभा के प्रयास से सरकारी कार्यों में हिन्दी प्रवेश का मार्ग प्रशस्त हुआ। हिन्दी भाषा आंदोलन की लहर को सभा ने उठाया और उसे गतिशील बनाया सम्मेलन ने। सम्मेलन प्रतिवर्ष हिन्दी प्रेमियों, हितैषियों, साहित्य - सर्जकों, भाषाविदों, तत्कालीन विद्वानों के अधिवेशन का आयोजन कराया करती थी। 1917 के इंदौर अधिवेशन के पश्चात् दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार का कार्य सम्मेलन ने अपने जिम्मे लिया जिसके परिणामस्वरूप दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा नामक स्वतंत्र संस्था की स्थापना हुई। हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा पालित - पोषित यह संस्था अब दक्षिण भारत की प्रतिष्ठित मानक संस्था है। 25वें अधिवेशन नागपुर के अवसर पर पूर्व - पश्चिम प्रदेशों में भी हिन्दी प्रचार समिति बनाने का निश्चय हुआ जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी प्रचार समिति वर्धा का निर्माण हुआ। अब हिन्दी प्रचार समिति वर्धा भी स्वतंत्र है। दोनों को हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने ही जन्म दिया। गुजरात, महाराष्ट्र, उड़ीसा, आदि प्रांतों में भी हिन्दी प्रचार समितियों की स्थापना सम्मेलन की प्रेरणा से हुई। हिन्दी के लिए दोनों संस्थाओं द्वारा किए जा रहे प्रयास एक गौरवपूर्ण इतिहास की सृष्टि करते हैं। संस्थाएँ एक दूसरे के विकास क्रम के रूप में स्थापित की गई थी, लेकिन समय के साथ दोनों संस्थाओं में पर्याप्त विकास एवं भिन्नताएँ आती गई। काशी नागरीप्रचारिणी सभा के 22वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर महात्मा गांधी की उपस्थिति में बाबू श्यामसुंदर दास ने कहा था -"इस सभा के दो कार्य विभाग हैं- एक तो हिन्दी और नागरी का प्रचार तथा दूसरा हिन्दी साहित्य भंडार की पूर्ति। हिन्दी और देवनागरी का बहुत ही घनिष्ठ संबंध है, इसलिए दोनों के प्रचार और वृद्धि के लिए समान रूप से उद्योग हुए हैं। देश की उन्नति में, देश के उत्थान में साहित्य से सबसे अधिक सहायता मिलती है। इन कार्यों में भाषा और साहित्य का स्थान बहुत ही ऊँचा है। समाज की उन्नति पूर्ण रूप से उस समय तक नहीं हो सकती जब तक कि उसकी मातृभाषा का साहित्य -भंडार पूरा न हो।"4 इसी प्रकार तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन में उसके तत्कालीन मंत्री पुरुषोत्तमदास टंडन ने कहा था - हिन्दी साहित्य सम्मेलन के दो कर्त्तव्य हैं - एक तो हिन्दी साहित्य की वृद्धि का उपाय करना और दूसरा हिन्दी भाषा और नागरी लिपि को देश भर में सर्वव्यापी बनाने का उद्योग करना।"5

काशी नागरी प्रचारिणी सभा व हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रकाशन का भी अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व रहा है क्योंकि इन दोनों ही संस्थाओं से प्रकाशित होने वाली विभिन्न पुस्तकें व पत्रिका आदि साहित्य जगत् एवं हिन्दी प्रेमियों के बीच आज भी लोकप्रिय है। इन संस्थाओं से साहित्य, विज्ञान, संगीत, इतिहास, कला आदि विभिन्न विषयों के अलावा हस्तलिखित पांडुलिपियों एवं अनूदित पुस्तकों का भी प्रकाशन होता है। काशी नागरी प्रचारिणी से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'नागरी प्रचारिणी' एवं हिन्दी साहित्य

सम्मेलन से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'सम्मेलन' दोनों ही शोध पत्रिकाएँ होने के साथ साथ त्रैमासिक भी है। सभा में अब तक दो हजार से अधिक पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं, जो हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधियाँ हैं। सभा से हिन्दी का सबसे प्रामाणिक कोश, व्याकरण, हिन्दी साहित्य का इतिहास, हिन्दी विश्वकोश आदि ग्रंथ प्रकाशित है। चंदवरदाई, सूरदास, तुलसीदास, जायसी, कबीरदास, भिखारीदास, भारतेंदु, रत्नाकर, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदि अनेक प्राचीन और नवीन लेखकों की ग्रंथावलियाँ आदि ऐसे प्रकाशन हैं जिनका पुन: मुद्रण असंभव है। इसी प्रकार सम्मेलन के प्रकाशन विभाग द्वारा पुराने दुर्लभ ग्रंथ व हिन्दी की रचनाओं को जनमानस तक पहुँचाने का कार्य किया गया है जिनमें आधुनिक कविमाला, सम्मेलन के रत्न, आधुनिक वीर काव्य, हिन्दी दशमिक वर्गीकरण, कवि कालिदास, प्रबोध चंद्रोदय और उसकी हिन्दी परंपरा, माधवानल नाटक, मार्क्स और गांधी का साम्य दर्शन इत्यादि है।

दोनों ही संस्थाओं में अपने उद्देश्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए निम्नलिखित कार्यालय संघटन का निर्माण किया गया। जिनमें प्रबंध विभाग, प्रधानमंत्री कार्यालय, परीक्षा विभाग, संग्रह विभाग, प्रचार विभाग, प्रकाशन विभाग, साहित्य विभाग, बिक्री विभाग एवं अर्थ विभाग इत्यादि है। ये सभी विभाग एक संस्था को सुनियोजित तरीके से नियमित और संचालित करती है। इन दोनों संस्थाओं से जुड़ने वाले कुछ प्रमुख व्यक्तियों में पुरुषोत्तम दास टंडन, राम कुमार वर्मा, सत्यप्रकाश मिश्र, श्याम सुंदर दास, निराला, गांधी, मालवीय जी इत्यादि है। ये सभी विद्वान इन संस्थाओं के विभिन्न व्याख्यानों, परिसंवादो, गोष्ठियों आदि के अलावा संस्था के सदस्य के रूप में भी जुड़ते थे। व्याख्यानों या गोष्ठियों में इन दोनों ही संस्थाओं के अंतर्गत हिन्दी साहित्य के साहित्यकारों रामचंद्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामधारी सिंह दिनकर, निराला, पंत, प्रसाद, धीरेंद्र वर्मा, महादेवी वर्मा आदि को आमंत्रित किया जाता था।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन एवं काशी नागरी प्रचारिणी सभा में बहुत से विषम परिस्थितियाँ भी एक जैसी रही है। जैसे कि आर्थिक विषमता, राजनीतिक हस्तक्षेप, जनमानस में घटती लोकप्रियता, आंतरिक कलह, आरोप-प्रत्यारोप एवं तरह - तरह की भ्रांतियाँ। दोनों ही संस्थाओं को समय समय पर आर्थिक तंगी से गुज़रना पड़ा है। नागरी प्रचारिणी सभा की आर्थिक तंगी का मुख्य कारण आपसी तालमेल का न होना, संसाधन का दुरुपयोग था तो वहीं सम्मेलन की आर्थिक अभाव का कारण सरकार द्वारा उचित अनुदान का न मिल पाना था। इन संस्थाओं का अपने उद्देश्य से भटकने के भी निम्नलिखित कारण थे। बाह्य कारणों में सरकारी हस्तक्षेप, साहित्य बनाम राजनीति, सम्मान एवं पुरस्कार का चयन, देश- विभाजन, सांप्रदायिकता बनाम राष्ट्रवाद, अभिजात्य वर्ग की भूमिका, वार्षिक अधिवेशन व सम्मेलन की निरंतरता का न बने रहना इत्यादि है। वही आंतरिक कारणों में आलस्य, चाटुकारिता, धन का दुरुपयोग, अभद्र टिप्पणी, संस्था से जुड़े मुख्य लोगों का संस्था से निकल जाना, कर्मचारियों के चयन में भाई-भतीजावाद इत्यादि है। दोनों संस्थाओं में वर्चस्व की मुठभेड़ इसके अस्तित्व को ही मिटाता चला गया। जैसे निराला और टंडन के प्रसंग में भरी सभा में निराला को नीचा दिखाना टंडन के वर्चस्व को ही दिखाता है। उसी तरह शुक्ल जी के मौजूद होने के बावजूद सम्मेलन के सभापति का दायित्व राजनीतिज्ञ के हाथ में सौपना वर्चस्व की ही निशानी है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ही हिन्दी उर्दू विवाद ने उग्र रूप धारण कर लिया था और इसका प्रभाव दोनों ही संस्थाओं पर स्पष्ट रूप से देखा जाता है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने प्रारंभ में ही यह घोषणा कर दी थी -"उर्दू भाषा रहे, कोई बुद्धिमान पुरुष यह नहीं कह सकता कि उर्दू मिट जाए। यह अवश्य रहे और इसके मिटाने का विचार वैसा ही होगा, जैसा हिन्दी भाषा के मिटाने का। दोनों भाषाएँ अमिट हैं, दोनों रहेंगी।"6 लेकिन बाद के दौर में ये संस्थाएँ उर्दू के विरोध को जनता की सुविधा और राष्ट्रीय स्वाभिमान का नाम दे दिया। दोनों संस्थाओं का स्वरूप और उद्देश्य एक होते हुए भी इतनी विषमताएँ आ गई कि दोनों संस्थाएँ एक दूसरे को प्रतिद्वंदी के रूप में देखने लगे और और अलग अलग भी ये दोनों संस्थाएँ अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए ख़ुद के संरक्षक से ही बचाव का गुहार लगाने लगें।

अंतत: यह कहा जा सकता है कि आजादी के पहले की इन दोनों संस्थाओं का इतिहास अत्यधिक सक्रिय और व्यापक रहा है। लेकिन आजादी के बाद अपनी अपनी सत्ता के अनुरूप इसे ढालने की कोशिश की गई परिणामस्वरूप ये दोनों ही संस्थाएँ अपने उद्देश्य से भटकती चली गई। आज ये संस्थाएँ कर्मठ और नि:स्वार्थ कार्यकर्ता के अभाव में बस एक इमारत के रूप में खड़ी रह गई है। इसके बावजूद इन संस्थाओं के भाषा एवं साहित्यिक योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। वर्तमान में नागरी प्रचारिणी सभा तत्कालीन प्रधानमंत्री व्योमेश शुक्ल के निर्देशन में तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन अपने वर्तमान प्रधानमंत्री विभूति मिश्र के निर्देशन में जीवित एवं सक्रिय है।

000

संदर्भ-

1. नागरी प्रचारिणी पत्रिका (पहला भाग), पुन:मुद्रण, 1897 ई0 प्रस्तावना, पृष्ठ एक।, 2. आर्सीनी फ्रांचेस्का -हिन्दी का लोकवृत, अनूदित (नीलाभ), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली(2011), पृष्ठ 418, 3. प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन, काशी कार्य विवरण-पहला भाग। सम्मेलन समिति की सम्मति से मंत्री नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित। पृष्ठ -20, 4. नागरी प्रचारिणी पत्रिका: फरवरी 1916 ई0(भाग 20, संख्या 8), पृष्ठ 240, 5. तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन कार्य विवरण - पहला भाग, 1912 ई0। परिशिष्ट घ। पृष्ठ 26, 6. प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन काशी का कार्य विवरण - पहला भाग। मदन मोहन मालवीय। पृष्ठ.. 18,

(शोध आलेख)

रामधारी सिंह 'दिनकर' का बाल साहित्य

शोध लेखक : डॉ. मीनाक्षी राना
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, चन्द्रधारी मिथिला महाविद्यालय

शोध संक्षेप-रामधारी सिंह 'दिनकर' हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकार हैं। बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न 'दिनकर' की अग्निधर्मा साहित्यिक प्रतिभा गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं में अभिव्यक्त हुई है। विशेष रूप से अपनी काव्य-कृतियों के कारण 'राष्ट्रकवि' के रूप में प्रतिष्ठित 'दिनकर' के रचना-संसार में बाल-गीतों एवं कविताओं का भी महत्तवपूर्ण स्थान है। 'दिनकर' के बाल-केन्द्रीत साहित्य की विवेचना एवं मूल्यांकन प्रस्तुत लेख का उद्देश्य है।

मुख्य शब्द- बाल साहित्य, कल्पना, गीतात्मकता, बाल मनोविज्ञान

स्वस्थ समाज की परिकल्पना में बच्चे महत्त्वपूर्ण इकाई हैं। वे भविष्य की दुनिया की नींव हैं। बाल-मन सदैव ही अपने परिवेश के प्रति जिज्ञासा और उत्सुकता से भरा होता है। दुनिया में होने वाली छोटी से छोटी गतिविधि के प्रति आकर्षित बालक के कोमल मानस-पटल को बाल-साहित्य एक आधारभूमि प्रदान करने का कार्य करता है। दुनिया को समझ पाने की बाल-मन की उत्कंठा बाल केन्द्रीत साहित्य के कल्पना-पंखों पर बैठ कर देश-दुनिया की सैर करती है। बालक के हृदय में अपने परिवेश और समाज के प्रति संवेदनशीलता, सकारात्मकता एवं सजगता के भाव-विस्तार करने के साथ उसके सर्वांगीण विकास में बाल-साहित्य की प्रमुख भूमिका है।

बाल साहित्यकार प्रकाश मनु 'प्रभात ख़बर' को दिए साक्षात्कार में बाल-साहित्य पर दृष्टिकोण व्यक्त करते हैं कि "बाल-साहित्य से बच्चे में सकारात्मक ऊर्जा आती है और देश-समाज के लिए कुछ करने का भाव पैदा होता है। इस अर्थ में अच्छा बाल साहित्य बच्चे की संवेदना का विस्तार करता है, उसे अधिक समझदार और जिम्मेदार बनाता है और उसमें सकारात्मक संवाद की क्षमता विकसित करता है।"1

विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं के साहित्य में बाल केन्द्रीत साहित्य के सृजन की समृद्ध परम्परा है। पाश्चात्य साहित्य-जगत् में बाल केन्द्रीत साहित्य को महत्तवपूर्ण सृजन कर्म के रूप में गंभीरता से लिया जाता है। बाल-मन के कल्पना-लोक से जुड़ी लुईस कैरोल कृत 'एलिस इन वंडरलैंड' हो या जादू और फंतासियों के अदभुत माया-जगत् के आश्चर्यों से भरी 'हैरी पॉटर' सीरीज की पुस्तकें- पाश्चात्य देशों में सदैव ही बाल-मन के सपनों और मनोविज्ञान को उनकी भाषा और बिंबों में अभिव्यक्त किया गया है। रुडयार्ड किपलिंग की 'द जंगल बुक', जोनाथन स्विफट कृत 'गुलिवर्स ट्रेवल्स', एए मिल्ने द्वारा रचित 'विनी-द-पूह', मुनरो लीफ की 'स्टोरी ऑफ फर्डिनेंड के साथ ही सिंदबाद के साहसी कारनामें, ईसप की कहानियाँ, एंडरसन एवं ग्रिल द्वारा लिखी गई परीकथाएँ आदि विश्व बाल-साहित्य की धरोहर हैं।

भारत कथाओं का देश है। मिथकों, दंतकथाओं, नीतिकथाओं, परियों की कहानियाँ से भारतीय साहित्य समृद्ध है। संस्कृत में पंचतंत्र, हितोपदेश, कथासरित्सागर, सिंहासनद्वात्रिंशति (सिंहासन बत्तीसी), वेतालपञ्चविंशति: (वेताल पच्चीसी) तो पालि में रचित जातक कथाएँ- भारतीय बाल-साहित्य की निधि हैं।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी समर्थ साहित्यकारों द्वारा विपुल मात्रा में बाल-साहित्य का सृजन प्रमुखता से किया गया है। हिन्दी साहित्य में विशेषकर आधुनिक युग के साहित्यकारों द्वारा बाल केंद्रीत साहित्य को पल्लवित-पुष्पित करने में अहम योगदान दिया गया। भारतेंदु हरिश्चंद्र,

डॉ. मीनाक्षी राना
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, चन्द्रधारी मिथिला महाविद्यालय, दरभंगा (बिहार)
मोबाइल- 8128082577
ईमेल- meenakshiys@gmail.com

बालमुकुंद गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, श्रीनाथ सिंह, रामकुमार वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, आरसी प्रसाद सिंह, सोहनलाल द्विवेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, सुभद्राकुमारी चौहान, द्वारकाप्रसाद माहेश्वरी, महादेवी वर्मा, प्रेमचंद, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि प्रमुख बाल-साहित्य के रचनाकारों के प्रतिष्ठित क्रम में रामधारी सिंह 'दिनकर' का नाम सम्मानपूर्वक लिया जाता है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' का सृजन संसार बहुआयामी है। काव्य, निबंध, आलोचना, ऐतिहासिक-सांस्कृतिक चिंतन के साथ ही दिनकर ने प्रभूत मात्रा में बाल-काव्य की भी रचना की है। बाल-केन्द्रीत साहित्य का सृजन दिनकर की रचनाशीलता का महत्तवपूर्ण पक्ष है। रोचक कथात्मकता एवं रस से परिपूर्ण उनकी बाल कविताओं के तीन संग्रह है- 'सूरज का ब्याह', 'मिर्च का मजा' और 'धूप-छाँह'। संग्रह की अधिकांश कविताएँ तत्कालीन दौर की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं- बालक, मनमोहन चुन्नू-मुन्नू आदि में भी प्रकाशित हुई।

बाल-साहित्य में कविता और कहानी सर्वाधिक लोकप्रिय विधाएँ हैं। अपनी लयात्मकता के कारण कविताएँ बाल-मन को स्पर्श कर उन्हें सहज ही कंठस्थत भी हो जाती हैं। दादी-नानी और माँ से सुनी लोरियों के विकास-क्रम में कविताएँ बच्चों को आत्मीय प्रतीत होती हैं। 'दिनकर' के तीनों बाल-काव्य संग्रह कल्पनाशील चित्रण एवं गीतात्मक गुणवत्ता से परिपूर्ण कविताओं के कारण बाल-पाठक वर्ग में बेहद लोकप्रिय हुए। 'सूरज का ब्याओह' संग्रह में छोटी-बड़ी आठ प्रसिद्ध कविताएँ-चाँद का कुरता, सूरज का ब्याह, मेमना और भेड़िया, खरहा और कुत्ता, ज्योतिष तारे गिनता था, बालक हम्मीर, चील का बच्चा, चतुर सुअर, बर्र और बालक संकलित हैं। बाल कविताओं के दूसरे संग्रह 'मिर्च का मजा' में शीर्षक कविता के अतिरिक्त सात अन्य रोचक कविताएँ भी शामिल हैं, जिनके शीर्षक है- पढ़क्कू की सूझ, चूहे की दिल्ली-यात्रा, अंगद-कुदान, कर करो या कुर्र, मामा के लिए आम तथा झब्बू का परलोक सुधार। 'धूप-छांह' मूलत: प्रकृति केन्द्रीत एवं भाव-वैविध्य सम्पन्न बाल कविताओं का सुंदर संकलन है।

'दिनकर' की बाल कविताओं में कल्पना, सौंदर्य और लयात्मकता का अदभुत मेल हुआ है। विषय-विविधता के कारण उनकी कविताएँ आकर्षित करती हैं। उनकी कविताओं की विशिष्टता है कि उनमें न तो भारी-भारी उपदेश दिए गए न ही जटिल दृष्टांत। उन्होंनें पद्म-कथाओं को माध्यम बना कर जीवन- जगत् से जुड़े जान और संदेश को तार्किक रूप से बाल-पाठकों तक पहुँचाया है। 'सूरज का ब्याह' शीर्षक कविता में सूरज के विवाह की अफवाह सुन कर प्रसन्न जीव-जंतुओं को बूढ़ी मछली की आशंका सकते में डाल देती है- "एक सूर्य के मारे हम विपद कौन कम सहते हैं, / गर्मी भर सारे जलवासी छटपट करते रहते हैं। / अगर सूर्य ने ब्याह किया, दस-पाँच पुत्र जन्माएगा, / सोचो, तब उतने सूर्यों का ताप कौन सह पाएगा।"2

'दिनकर' का बाल-साहित्य संसार कल्पनाशीलता और कौतूहल से भरा आश्चर्यलोक रहा है। बाल-मन की रुचि के अनुकूल कथावस्तु का चयन और उसकी अदभुत प्रस्तुति बाल मनोविज्ञान पर 'दिनकर' की सूक्ष्म पकड़ का द्योतक है। ज्योति चौधरी 'दिनकर का चिंतन पक्ष' लेख में दिनकर की गुणत्तापूर्ण मूल्यपरक और मनोरंजक शैली में लिखी बाल कविताओं के पक्ष मंर कहती हैं कि, "बच्चों के लिए लिखे गए साहित्य में दिनकर अपनी कविताओं से बच्चों के दिलो-दिमाग़ पर छा जाते हैं। ये कविताएँ बच्चों को कभी हंसाती है तो कभी उनके मन में रोमांच पैदा कर देती है। वे अपने काव्य कौशल से बच्चों को कल्पनालोक में पहुँचा देते हैं।"3

'चाँद का कुरता' रामधारी सिंह 'दिनकर' की बहुचर्चित कविता है। कविता में बालक चाँद सर्द रातों की ठिठुरन से बचने के लिए माँ को ऊनी झिंगोला (वस्त्र) सिलवाने की माँग करता है। चाँद की इस व्यथा और उचित माँग को पूरा करने के संदर्भ में माँ की चिंता एवं उसका असमंजस एक कहानी ही रच जाता है- "हठ कर बैठा चाँद एक दिन माता से यह बोला / सिलवा दो मां मुझे ऊन का मोटा एक झिंगोला / सन-सन चलती हवा रात भर जाड़े में मरता हूँ / ठिठुर-ठिठुर कर किसी तरह यात्रा पूरी करता हूँ। / घटता-बढ़ता रोज़ किसी दिन ऐसा भी करता है / नहीं किसी की भी आँखों को तू दिखलाई पड़ता है / अब तू ही यह बता नाप तेरा किस रोज़ लिवाएँ? / सीं दे एक झिंगोला जो हर रोज़ बदन में आए?" 4

सन् साठ के दशक की इस बहुचर्चित कविता में बाल-मन का हठ, माँ का मनुहार, प्रकृति का मानवीकरण एवं कविता में सहज ही पिरोया चाँद की कलाओं के घटने-बढ़ने का ज्ञान आकर्षक तुकबंदी के रूप में अभिव्यक्त हुआ। माँ-बेटे के सहज-संवाद के माध्यम से रोचक रूप में विकसित यह कविता बाल-मन पर अमिट प्रभाव छोड़ती है। इस तथ्य का समर्थन भगवतीप्रसाद द्विवेदी अपने लेख में करते हैं कि,

"चाँद पर वैसे तो कविताओं की भरमार है, पर वैसी अनूठी और अद्वितीय कविता सिर्फ दिनकर ही लिख सकते थे। .....सहजता, सरलता, रोचकता, प्रवाहमयता, चुटीलापन और कहने के नवीन अंदाज़ का ही नतीजा है कि इस कविता के प्रति बच्चों की दीवानगी आज भी बरकरार है।"5

माँ-बच्चे का संवाद 'वर्षा' कविता में प्रकृति के साहचर्य में विस्तार प्राप्त करता है। ऋतु-परिवर्तन के आनन्द से उमगा बाल-मन प्रकृति से स्नेह रूप में बरस रही बूँदों में भींगना चाहता है। बाल-मन की इच्छा और आनन्दे की कड़ियाँ माँ से जुड़ी है। बालक माँ से 'वर्षा' ऋतु के कारण सुरम्यी छटा से सराबोर सृष्टि के सौंदर्य का वर्णन विभोर हो कर करता है- "अम्मा, जरा देख तो ऊपर / चले आ रहे हैं बादल। / गरज रहे हैं, बरस रहे हैं, / दीख रहा है जल ही जल। / हवा चल रही क्या पुरवाई, / झूम रही डाली-डाली। / ऊपर काली घटा घिरी है, / नीचे फैली हरियाली।"6

'वर्षा' कविता बाल-मन की कामना, उसके उत्साह और उमंग के साथ ही सुंदर प्रकृति चित्रों से समृद्ध कविता है।

बाल-जीवन में माँ बालक की इच्छा, आकांक्षा, हठ, उसके प्यार, मनुहार का केंद्र होती है। माँ-बच्चे में अक्सर रुठने-मनाने का दौर चलता रहता है। बच्चे का हठ पर अड़े रहना और माँ द्वारा उसको समझाना-बुझाना, नित्य की क्रिया है। 'टेसू राजा अड़े खड़े' दही-बड़े खाने की हठ करने वाला बालक और माँ से सम्बद्ध प्रसिद्ध कविता है। कविता की विशेषता है कि दिनकर अत्यन्त सहजता से बालक के हठ को माँ द्वारा मनाने के क्रम में सामान्य वस्तुओं के पीछे लगने वाली सम्पूर्ण प्रक्रिया का ज्ञान प्रदान करने का माध्यम बना देते हैं। खेत में उड़द उगाने से आरम्भ होकर अंतत: रसोईघर में पीट्ठी तलवाने और दही-बड़े बनवाने की प्रक्रिया अत्यंत रोचकता से बालक को खेत-खलिहान से, उसके परिवेश से, साथ ही स्त्री-श्रम से परिचित करवाने का कार्य सहज ही करती है।

बालकों में साहस की प्रवृत्ति भी प्रबल होती है। दिनकर का ओज और उत्साह वाला कवि रूप 'बालक हम्मीर' कविता में परकाष्ठा पर पहुँचता है। बालक हम्मीर की शौर्यगाथा बाल-पाठकों को रोमांच से भर देती है। बालक हम्मीर का साहस, निडरता एवं चाचा राणा अजय सिंह के अपमान का बदला लेता उसका तेजस्वी रूप पाठकों के मन में अमिट छाप छोड़ता है- "घोड़े पर हम्मीर खुशी में भरकर फूल रहा था- / औं रिकाब से बंधा मुंज का मस्तक झूल रहा था।"7

दिनकर ने अधिकांश कविताएँ बाल मनोविनोद हेतु रची हैं। हास्य रस से परिपूर्ण ये रचनाएँ बच्चों को हंसाते हुए लोटपोट कर देती है, परन्तु साथ ही कोई न कोई संदेश भी अवश्य प्रदान करती है। आजादी का जश्नद देखने दिल्ली जाने वाला चूहा हो (चूहे की दिल्ली-यात्रा), या काले-काले भौरों को जामुन समझकर खाने वाला मोगल (कर्र करो या कुर्र), गुरुजी को परलोक पहुँचाने का इंतज़ाम करने वाला चेला 'झब्बू' हो (झब्बू का परलोक सुधार) या फिर रामकथा प्रसंग में पंगत में बैठे वानरों की हरकतें (अंगद-कुदान), या टैगौर के चिर-परिचित काबुलीवाला से विपरीत मूर्ख 'काबुलीवाला' जो मौसम का अनुठा फल समझ लाल मिर्च खरीद कर उसे खाने लगता हैं (मिर्च का मजा), यह सभी अनूठे चरित्र कविता में हास्य का सृजन करते हैं। इसी प्रकार 'ज्योतिष तारे गिनता था' और 'पढ़क्कू की सूझ' शीर्षक कविताएँ रोचक कथानक से बालकों के मन को गुदगुदाती है।

दिग्गज कवि 'दिनकर' का बाल-दुनिया में प्रवेश, उत्कृष्ट कोटि के बाल-साहित्य से हिन्दी भाषा को समृद्ध करता है। 'दिनकर' पद्म-कथाओं के माध्यम से बाल और कैशोर्य मन को हँसाने-गुदगुदाने के साथ ही, आस-पास के परिवेश और जीवन से बालकों का साहचर्य स्थापित करने का गुरु कार्य भी करते हैं।

मनोरंजन की चाशनी से लिपटी, तार्किक एवं नैतिक ज्ञान में पगी 'दिनकर' की बाल कविताएँ पीढ़ी दर पीढ़ी बाल-पाठकों का कंठाहार बनी हुई हैं। रोचक कथावस्तु, गीतात्मकता एवं हास्य-बोध से समृद्ध भाषा एवं गुणवत्ता के कारण रामधारी सिंह 'दिनकर' की बाल- कविताएँ हिन्दी बाल-साहित्य के सर्वोत्तम शिखर को स्पर्श करती हैं। नि:संदेह 'दिनकर' की बाल-कविताएँ, बच्चों के जीवन एवं उनके मनोविज्ञान में गहरे उतर कर प्राप्त मोती के समान मूल्यवान हैं।

000

संदर्भ-

1.साक्षात्कार, प्रकाश मनु, प्रभात ख़बर, 25 मई, 2018, 2.बाल कविताएँ, रामधारी सिंह 'दिनकर', www.hindi.shabd.in, 3.दिनकर का चिंतन पक्ष, ज्योति चौधरी, आजकल अक्टूबर, 2008, पृ.- 107, 4.बाल कविताएँ, रामधारी सिंह 'दिनकर', www.hindi.shabd.in, 5.दिनकर का बाल-काव्य, भगवती प्रसाद द्विवेदी, आजकल अक्टूबर 2008, पृ.- 108, 6.वर्षा, रामधारी सिंह 'दिनकर', kavitakosh.org, 7.बाल कविताएँ, रामधारी सिंह दिनकर, hindi.shabd.in

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com

(शोध आलेख)

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता में अभिव्यक्त मानवीय मूल्य

शोध लेखक : माने अनिल लक्ष्मण
पीएचडी शोधार्थी
हिन्दी विभाग
तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय

माने अनिल लक्ष्मण
पीएचडी शोधार्थी हिन्दी विभाग
तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय
तिरुवारुर तमिलनाडु, 610005
ईमेल- maneanil46@gmail.com

प्रस्तावना- इक्कीसवीं सदी के मानव भी अपने जीवन में मानवीयता के स्थान पर जाति, धर्म, लिंग, वर्ग, भेद को मानकर जी रहे हैं। इक्कीसवीं सदी की कविता में कवियों ने आज के मानव जीवन की त्रासदी पर विचार-विमर्श किया है। आज इस इक्कीसवीं सदी का कवि भी इन नष्ट हो रहे तथा बदल रहे मानवीय मूल्यों की और पाठकों का ध्यान आकर्षित कर रहें हैं। भूमंडलीकरण, उदारीकरण, बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद का मौजूदा दौर आज के भारत की विशेषता है। किंतु दूसरी ओर इस समय में मानवीय मूल्यऔर मानवीय संवेदना चिंता के विषय बने हुए हैं। परिवार, समाज, राजनीति आदि सभी जगह मूल्यों का पतन हो रहा है। समाज में बाज़ारवादी अर्थव्यवस्था का प्रभाव बढ़ रहा है। भूमंडलीकरण और भौतिकवादीजीवन शैली हमारे पारंपरिक मूल्यों को तहस-नहस कर रही है। व्यक्ति चेतना भटकाव की स्थिति में है, तो मानवीय संवेदना लड़खड़ा रही है। विश्व की मानवता लक्ष्यविहीन, दिग्भ्रमित और निस्तेज हो गई है। फलस्वरूप इसका परिणाम रचनाधर्मिता पर पड़ता दिखाई दे रहा है। आज की जातिवादी राजनीति का प्रतिगामी परिणाम पूरे देश में दिखाई पड़ रहा है। धार्मिक मान्यताएँ सांप्रदायिक वेश-भूषा में अवतरित हो रही है। सूचना क्रांति के विस्फोट ने सांस्कृतिक मूल्यों पर प्रश्न-चिह्न खड़ा कर दिया है। साथ ही पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण बढ़ रहा है। इसके चलते आज की कविताओं में बदलते मानवीय मूल्यों की चिंता जतायी जा रही है। इस सामाजिक चिंताओं के चलते आज के कवि अपनी कविताओं के माध्यम से मानवीय मूल्यों को उजागर कर रहें हैं।

सारांश- सारांश यह है कि यहाँ मूल्यों का द्वंद्व है, यह इस समय के अनेक विरोधाभास एवं बिडंबनाएँ हैं। पूरा भारतीय परिदृश्य अनेक संकटों से भयभीत है। उपभोक्तावादी संस्कृति में प्रत्येक आदमी किसी न किसी को छल रहा है, स्वयं भी छला जा रहा है। इसके फलस्वरूप संपूर्ण विश्व में भूमंडलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की आँधी बहने लगी। परिणाम स्वरूप मानवीय संबंधों के स्थान पर बाज़ार की प्रभुता बढ़ी। पूँजी सर्वशक्तिमान हो गई। धनवान विशिष्ट वर्ग में आए तो धनहीन सामान्यइत्यादि की श्रेणी में गिने जाने लगे। मनुष्य की स्वतंत्रता

को छीना जा रहा है। उसकी आवाज़ को दबाया जा रहा है। किंतु कविता का दूसरा पक्ष भी सामने आता है। वर्तमान समय की कविता में सवाल तो है, लेकिन इस सूचीबद्ध घनांधकार में समस्याओं के समुंदर में कवि गतिमान उम्मीद के सहारे वह पूरे जोश से आगे बढ़ता दिखता है। कवि अपनी स्वतंत्रता, अपनी आशा-आकांक्षा के साथ आगे बढ़ने का प्रयास करता दिखाई देता है। लेकिन दिशा सूचक का अभाव बार-बार खलता है। हिन्दी साहित्य में ऐसे उपेक्षितों के प्रति संवेदना से भरपूर बिंब प्रस्तुत करने का काम कवि राजेश जोशीअपनी कविताओं के माध्यम से करते हैं। कवि आगे लिखते हैं कि- "इनाम इकराम का भी खासा इंतज़ाम था / और इस बात का भी कि उसकी किताब लोगों तक न पहुँचे / समाज कि संरचना इतनी दिलचस्प थी कि आदि से ज़्यादा आबादी / दो जून रोटी और कपड़े लत्तों कि फ़िक्र में ही / अपनी पूरी ज़िंदगी काट देती थी / उनके बच्चे कुपोषण के बाद भी अगर जिंदा रह जाते थे / तो वहीं धूल में खेलते हुए बड़े होते रहते।"

राजेश जोशी सामाजिक-राजनैतिक संरचना के भीतर पल रही तथा शोषण पर टिकी व्यवस्था को दिखाते हुए एक सामाजिकजीवन पद्धति विकसित करने का प्रयास करने वाले कवि हैं। उनकी चिंताओं में व्यक्ति, समाज और मानवीय मूल्य काफी मुखर है। राजेश जोशी सुकून देने वाले कवि नहीं हैं, वें बेचैन करने वाले कवि हैं। यह बेचैनी उनके सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था से असंतोष के कारण है। उनकी नज़र में लिख-लिख कर दर्ज करना और असहाय होकर आत्महत्या तक कर लेने पर भी इस व्यवस्था के कान पर जूँ नहीं रेंगती। लेकिन कविता में कवि उसे जिस कलात्मक रूप प्रकट कर रहा है वह ध्यान देने योग्य है। क्योंकि आज काव्य संवेदना की यह भी एक ध्वनि है। लेकिन यहाँ संवेदनशील होने के बजाय संवेदना का क्षरण ही दिखाई दे रहा है।

वर्तमान में सामाजिक जीवन विविध विसंगतियों और विद्रूपताओं से लबालब भरा पड़ा है। आज समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अवमूल्यन और विघटन का बोलबाला है। नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में मानवीय मूल्यों का हनन दिखाई देता है। आर्थिक और सामाजिक विषमता ने मानवीय जीवन मूल्यों को धूमिल कर डाला है। जीवन में रिक्तता, कड़वाहट और अकेलेपन के कारण मनुष्य अपने जीवन में बाहरी-भीतरी दोनों रूपों में घात-प्रतिघात झेल रहा है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में इस प्रकार की अनेक बातें उभरकर सामने आई। परंपरागत मूल्यों का विघटन, जातिवाद, वर्णव्यवस्था, सांप्रदायिकता, धार्मिक उन्माद आदि के कारण उत्पन्न स्थितियों ने देश की एकता और अखंडता को हानि पहुँचाई है। देश तथा विश्वपटल पर घटित होनेवाली इन घटनाओं को समकालीन कवियों ने विभिन्न रूपों में अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

साहित्य की प्रत्येक विधा अपने युगीन परिस्थितियों के अनुसार जीवन में आने वाले बदलाव को स्पष्ट करने में सक्रिय रूप से कार्य करती है। इसलिए वह समय और समाज से अलग नहीं रह सकती। मनुष्य की सहज प्रकृति है कि वह अपने समय की परिस्थितियों में आनेवाले सामाजिक परिवर्तनों या बदलाव पर अपनी प्रतिक्रिया जाहिर करें। यह सामूहिक या वैयक्तिक प्रतिक्रिया के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है। युगीन परिस्थितियों में आनेवाले बदलाव के कारण जीवन बोध में भी बदलाव आता है। इस प्रकार का बदलाव कविता में भी देखा जा सकता है। कवि कुमार अंबुज ने वैयक्तिक और सामाजिक जीवन मूल्यों के आधार पर अपनी कविता को पाठकों के सामने रखा है। मानव स्वातंत्र्य और जीवन मूल्यों के रूप में नष्ट हो रहे मानवीय संबंधों और मूल्यों के आधार पर देखा जा सकता है। कवि कुमार अंबुज ने'अतिक्रमण' कविता में मानव-स्वातंत्र्य की चेतना का स्वर प्रकट किया है। यथा- "अतिक्रमण के समाज में जीवित रहने के लिए / सबसे पहले दूसरे के हिस्से की जगह चाहिए / फिर दूसरे के हिस्से की स्वतंत्रता।"

क्या कारण है कि कवि को दूसरे के हिस्से की जगह चाहिए और दुसरे के हिस्से की स्वतंत्रता की भी आशा करता है। किंतु यह स्पष्ट है कि, कविता की इन पंक्तियों में मानवीय मूल्यों का अनुभव किया गया है। समाज का पंक्ति में अंतिम स्थान पर खड़ा व्यक्ति भी अपने कला-कौशल और श्रम से चाहे तो पहला स्थान पा सकता है। ऐसे वातावरण में कवि अपनी जगह को खोजता है। इस प्रकार के सामाजिक माहौल में कवि का स्थान कहाँ है? क्या कारण है कि कवि स्वतंत्र होकर जीना चाहता है। उसकी मानवीय संवेदना इस प्रकार के वातावरण को क्यों स्वीकार नहीं करती? समाज में व्यक्ति अपने जीवन की आवश्यकता के अनुरूप मूल्यों का निर्धारण करता है। क्योंकि व्यक्ति का संबंध समाज से है। व्यक्ति स्वभावत: स्वतंत्र या कहे की स्वछंदता प्रिय होता है। उसकी स्वतंत्रता जब मर्यादा की सीमा पार करती है तो मूल्यों का हनन होता है। समाज में निर्धन और धनवान के बीच बढ़ते फासले के कारण सामाजिक और सांस्कृतिक संकट मँडराता दिखाई दे रहा है। किसी भी प्रकार से पैसे कमाने के मोह में लोग कुछ भी करने को तैयार है। इस समय समकालीन सत्ताधारी भी इससे दूर नहीं है।

कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में कर्म-सौन्दर्य का उदाहरण जब-तब देखा जा सकता है। कवि अशोक वाजपेयी की संवेदना उस सौन्दर्य को भी अपने काव्य में समेटती है जो बाह्य दृष्टि से तो असुंदर है, मलिन है किंतु उसकी सुंदरता उसके काम के प्रति निष्ठा और आस्था में छुपी हुई है। कवि अशोक वाजपेयी की एक कविता है जिसका शीर्षक है 'सुबह काम पर जाने वाले'। इस कविता में कवि सुबह-सुबह काम पर जानेवाले उन ग़रीब, मजदूर वर्ग के मजबूरी को जाहीर करतेहुए उनमें जो कर्म-सौन्दर्य, अपने काम के प्रति निष्ठा और आस्था है उसे रूपायित करते है। उन मजदूरों के लिए खाना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना कि काम पर समय पर पहुँचना। वह अपनी माँ या घरैतिन का बनाया भोजन रास्ते में चलते हुएही खाते हैं। उदाहरण स्वरूप कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार उद्धृत है कि-

"कितने अच्छे लगते हैं सुबह काम पर जानेवाले / वे जल्दी में होते हैं / इसलिए तेजी और फुर्ती से चलते हैं। प्राय: सभी के हाथों में थैले होते हैं / जिनमें सुबह-सुबह माँ या घरैतिन का बनाया दोपहर का भोजन / जतन से लपेटकर रखा होता है। कुछ लोगों के पास इतना वक्त नहीं होता / कि इत्मीनान से अपने घर बैठ कर नाश्ता कर सकें / सो वे हाथ में उसे लिए रास्ता चलते खाते हैं।"

इक्कीसवीं सदी के इस समकालीन परिवेश में जीने वाला आज का प्रत्येक व्यक्ति निश्चित ही स्वतंत्र है। वह अपने जीवन में अपनी पसंद और नापसंद को ख़ुद चुन सकता है। पहले इस व्यक्ति के स्वातंत्र्य के विषय में यह चुनाव की प्रक्रिया समग्र मानव समाज के हित को ध्यान में रखकर होती थी। किन्तु आज उसका स्वरूप या व्यक्ति का हर फैसला आत्म केंद्रित बनकर रह गया है। आज समाज में मानव का वैयक्तिक जीवन इतना संकुचित हो गया है कि आज का मानव अकेला रहना चाहता है। अपने संकुचित स्वार्थ के घेरे से बाहर आना आज के समय में उसे नामुमकिन सा हो गया है। उसके जीवन में वह संत्रास तथा घुटन भरी ज़िंदगी जीने को वह आज विवश दिखाई देता है। विनोद कुमार शुक्ल अपने इस संग्रह के पहले ही पन्ने पर मानव मुक्ति की बात करते हैं। यथा- "शब्द हीनता में, मैं किसी भी कविता के पहले / मुक्ति को मुक्तियों में दुहराता हूँ, शब्दश: नहीं ध्वनिश: / एक झुंड पक्षियों का पंख फड़फड़ाकर उड़ जाता है।"

इक्कीसवीं सदी की कविता में सत्य की अनुभूति का मूल स्वर है। वह सापेक्ष वस्तुस्थिति का निर्माण करती है और उसका आधार मानव सत्य और मानवीय संवेदना होता है। इस समय की कविता में व्यक्ति की चेतना के साथ-साथ सामाजिक दायित्व और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की अवधारणा को भी स्वीकार किया गया है। वह अनुभूति को सत्य के माध्यम से अभिव्यंजित करती है और उसकेसहज संभावना को खोजती है। मानव जीवन के बदलते संदर्भ उसे नए प्रतिमान प्रदान कराते हैं। इक्कीसवीं सदी कविताओं में नैतिक मूल्यों के नष्ट होने से व्यक्ति के जीवन में उपस्थित होनेवाली निरंकुशता पर चर्चा हुई है। आज की यह कविता हमें यही पाठ देना चाहती है कि चाहे हम जिस परिस्थिति में अपना जीवन व्यतीत करें पर हमारी संस्कृति में कोई बदलाव न आए। हम अपने समाज में साथ-साथ रहने पर या दूसरों से हमदर्दी, प्यार, दया आदि भावनाएँ रखने से दुख का अनुभव करनेवाले आधुनिक मनुष्य ने अपने जीवन को इन सब बंधनों से आज के संदर्भ में मुक्ति दिलाई ऐसा प्रतीत होता है। परंतु जिस स्वतंत्रता को उसने अपने जीवन में जगह दी उसमें भी वह आज के समय में खुश नहीं है। उसने जिस संवेदनशून्यता को अपने जीवन का लक्ष बनाया, उसी ने अब मानवीय मूल्यों के संदर्भ में एकदम विकृत, चेतनाहीन तथा गतिहीन बनाया। इक्कीसवीं सदी का समय संक्रमण का समय है। इस काल एवं युग का संक्रमण अवश्य हो जाए किंतु जिन संवेदनाओं से मनुष्य बनता है, उसमें कभी कोई बदलाव नहीं आएगा। अगर बदलाव आ गया है, तो समझना चाहिए समाज अपनी मानवीयता को खोने लगा है।

इक्कीसवीं सदी के भारत में भी मानव मूल्य की बात उतनी ही बरकरार हैं जितनी आदिकाल में थी। आज के समकालीन समय में अपने समाज को जातिगत, धर्मगत, लिंगगत एवं वर्गगत भेदभावों के जरिए बाँटकर रखा है। समाज में किसी को उसकी जाति, कुलीनता, उच्च-नीचत्व के आधार पर उसे कम दिखाने की घटिया हरकतें आज भी पूरे भारतीय समाज में हम देख सकते हैं। आज के उत्तराधुनिक भारत में भी सब हिंदू-मुसलमान एवं ईसाई में फर्क करने पर तुले हैं। आज इंसान को इंसानियत के आधार पर नहीं बल्कि धर्म के आधार पर देखा जा रहा है।

आज भी समजमेन स्त्री-परूष में भेद पैदा करने वाली रूढ़िवादी परंपरा के अनुयायी देखने को मिल जाते हैं। महिलाओं को अपनी वैयक्तिक एवं सामाजिक अस्मिता को खोती हुई नज़र आती हैं। महिलाओं में यह भेदभाव उनके बचपन से लेकर जीवन के अंत तक उसका पीछा किए हुए हैं। इक्कीसवीं सदी का समकालीन समाज स्त्री को जीवित प्राणी नहीं बल्कि भोग की वस्तु के रूप में देखने का आदि हो गया हैं। सारी अमानवीयताएँ आज भी उसके साथ घटित होती हैं। किंतु आज का समकालीन समाज स्त्री की सभी अमानवीयताओं के लिए स्त्री को ही दोषी ठहराने में लगा है। इक्कीसवीं सदी का समकालीन समाज मानव की संवेदनशून्यता का परिणाम भुगत रहा है। आज के विस्थापित समाज की स्थिति आज तक बदली नहीं हैं। आज मनुष्य स्वार्थी प्रवृत्ति का बनता दिखाई दे रहा है। एक दुसरे का इस्तेमाल करना और अपना काम निकालना आज के लोगों को बखूबी आता है। आज समाज की क्रूर नीति यह है कि जो अपने काम में नहीं आ रहा है वह निकृष्ट है, चाहे वह निर्जीव वस्तु हो या जीता जागता मानव शरीर। इन सारी विडंबनाओं का उल्लेख इक्कीसवीं सदी के प्रतिष्ठित कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से किया हैं। इन कवियों में प्रमुख है- राजेश जोशी, अनामिका, कुमार अंबुज, ज्ञानेंद्रपति, सविता सिंह, कुँवर नारायण, अशोक वाजपेयी, विनोद कुमार शुक्ल, अनीता वर्मा आदि कवि आते हैं। इक्कीसवीं सदी के इन कवियों ने अपनी कविता के माध्यम से सारे सामाजिक जीवन मूल्यों को अपने काव्य के माध्यम से उजागर करने का प्रयास किया है। अपनी कविताओं के माध्यम से उनका यहीलक्ष्य रहा है कि मानव को व्यवस्थित जीवन जीने की कला सिखाएँ। बशर्ते वह अपने विवेक को जाग्रत रखें तथा उस विवेक से वह अपने परिवार और समाज के सर्वांगीण विकास के प्रति हमेशा संवेदनशील रहें।

000

संदर्भ- राजेश जोशी.(2006). चाँद की वर्तनी. राजकमल प्रकाशन. नई दिल्ली पृ. सं. 76, कुमार अंबुज(2002). अतिक्रमण, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. सं. 27, अशोक वाजपेयी(2004). कुछ रफ़ू कुछ थिगड़े, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. सं. 33, विनोद कुमार शुक्ल(2000). अतिरिक्त नहीं, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. सं.12

(शोध आलेख)

तुलसी देवी तिवारी के साहित्य में नारी की समस्याएँ

शोध लेखक : घनश्याम साहू
(शोधार्थी हिन्दी विभाग)

शोध निर्देशक : डॉ. मंजू भट्ट
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
डॉ. सी.व्ही. रमन विश्वविद्यालय,
कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश- तुलसी देवी तिवारी के साहित्य में नारी के समस्याएँ को व्यक्त करने में उन्होंने अपनी कलम का प्रयोग कुशलता से किया है। उनकी कहानियों एवं उपन्यासों में नारी को समर्थ, सुदृढ़, और सुरक्षित बनाए रखने के लिए एक प्रेरणादायक परिचय दिखता है। उनकी रचनाओं में नारी को समाज में उच्च स्थान देने और उसकी स्वतंत्रता को प्रोत्साहित करने का समर्थन किया गया है। तिवारी ने नारी के अंतर्निहित शक्तिपूर्ण स्वरूप को सार्थक बनाने के लिए अपनी कल्पना को सुबही, सुंदर, और सकारात्मक भाषा में व्यक्त किया है। उनकी रचनाओं से एक नई पीढ़ी को नारी के महत्त्वपूर्ण भूमिका के प्रति सजग करने का अवसर मिलता है और उन्हें समाज में स्थानांतरित करने के लिए प्रेरित करता है।

मुख्य शब्द- कथा साहित्य, भावनाएँ, सामाजिक, छत्तीसगढ़ी भाषा, यर्थाथवाद, साहित्यिक दृष्टिकोण और साहित्यिक योगदान।

प्रस्तावना- आधुनिक नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है। इस कारण वह किसी की अधीनता को स्वीकार नहीं करती जिसका चित्रण समकालीन काव्य में स्पष्ट होता है। अल्पसंख्यक और दलित समाज की नारियाँ आज भी पुरुष के उत्पीड़न का शिकार हो रही है। आज की नारी आत्मनिर्भर है। उसमें कुछ कर गुज़रने का साहस है। अगर वो जर्जर रुढ़ियों का विरोध करती है तो अपने लिए नए आकाश का निर्माण भी करना जानती है पर पुरुष से अलग होकर नहीं उसके साथ। ये किसी से डर कर नहीं सब से मिलकर रहना चाहती हैं। आत्मनिर्भरता के साथ ही नारी में अपनी पहचान के लिए कुलबुलाहट, बेचौनी दिखाई देने लगी। वह कभी रिश्तों की गर्माहट को अनुभव करने का प्रयास करती हैं तो कभी उसमें रिश्तों से मुक्ति की

घनश्याम साहू
शोधार्थी हिन्दी विभाग
डॉ. सी.व्ही. रमन विश्वविद्यालय
कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

छटपटाहट दिखाई देती है। कहीं वह पूर्ण समर्पित ग्रहणी है तो कहीं ख़ुद को तलाशने में भटकती दिखाई देती है।

नारी अपनी अभिव्यक्ति के लिए उत्सुक हैं और विभिन्न दृष्टिकोणों से मुद्दों को समझने के लिए तैयार हैं। यह एक ऐसा समय है जब सभी अपने विचारों को साझा करने के लिए प्रेरित हैं, और इसका परिणामस्वरूप हम गहरे विमर्शों की ओर बढ़ रहे हैं। मीडिया और बाज़ार ने अपनी विपणी और प्रचार-प्रसार से नहीं, बल्कि अपनी विचारशीलता और धारणाओं के माध्यम से भी समाज को प्रभावित किया है। विचारों को क्रय-विक्रय के माल की तरह बेचकर, उन्होंने लोगों को एक ऐसे विमर्श में खींच लिया है जो विभिन्न मतों और दृष्टिकोणों को समाहित करता है। यह समझाता है कि समाज में विचारशीलता की महत्त्वपूर्णता है और विभिन्न रायों का समर्थन करना एक समृद्धि भरा समाज बनाने मं् सहायक है।

इस दौर में, लोग धारणाओं को समझने और उनके पीछे छिपे राज़ को खोजने के लिए प्रेरित हैं। सभी को अपने-अपने राग की उक्ति करने का अधिकार है, और यह समय हमें एक-दूसरे के विचारों का समर्थन करने और उनसे सीखने के लिए उत्साहित कर रहा है। इसमें हमें समृद्धि, समरसता, और समाज में समाहित रहने की क्षमता का सामर्थ्य मिलेगा। आज व्यक्ति भीड़ में रहकर भी नितांत अकेलेपन और पारिवारिक व अन्य संबंधों में रहकर भी अविश्वास का शिकार है। खैर! साहित्य और चिंतन के क्षेत्र में 'दलित', 'स्त्री' और 'आदिवासी' विमर्श समग्रत: दलित वर्ग, साहित्य-चिंतन के केन्द्र में है। इसमें भी स्त्री विमर्श ने जिस ज़ोर-शोर से अपनी जगह बनाई है, वह काबिले तारीफ है।

प्राचीन से समसामयिक काल तक स्त्री के विषय में जो भी चिंतन-मनन हुआ है वह पुरुष की ओर से ही अधिक हुआ है। स्त्री की ओर से कम हुआ है, हुआ भी है तो उसका कहीं किसी ने नोटिस नहीं लिया। स्त्री-विमर्श और स्त्री-लेखन से स्त्री-जीवन के अंधेरे पक्ष ही समाज के सामने उजागर हुए। परम्परागत रूप से समाज में स्त्री के 'स्व' पर पुरुष का एकाधिकार है। इस विमर्श ने इस बात पर ज़ोर दिया कि स्त्री को भी मानवीय अधिकार दिए जाएँ।

आज के नारी और पुरुष दोनों ही आधुनिक परिवेश में फैले मानवीय दुख, अवसाद, भयानकता, अकेलापन, टूटल आदि वृत्ति के शिकार हुए हैं। कुंठा, संत्रास और घुटन आज के मनुष्य की सबसे बड़ी नियति है यही आधुनिक नारी की ज्वलंत समस्या है। तुलसी देवी तिवारी जी ने अपनी रचनाओं में नारी जीवन के लगभग हर पहलू को छुआ है। उन्होंने एक अलग परिपेक्ष्य में एक स्त्री के व्यक्तित्व को उभारा है। वह प्रेम को लेकर भवुक नहीं है। विवाह और प्रेम को वह दो स्तरों पर रखकर देख सकती है और विवाह के लिए प्रेम का परित्याग भी कर सकती है। वह यह सोचकर निर्णय करती है कि ज़िंदगी को केवल भावुकता के आधार पर हीं नहीं देखना चाहिए। प्रणय के अलावा भी नारी के सामने अनेक चुनौतियाँ हैं जिनसे लड़ना ही जीवन की सार्थकता मानना चाहिए। आज की नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व की पहचान यहाँ स्पष्ट होती है।

तुलसी तिवारी ने अपने कहानी 'सदर दरवाज़ा' में जीवन की घटनाओं में नारी के विभिन्न अवस्थाओं की समस्या को उकेरती हुए कहती है-''अफसोस मत कर बेटी, आजकल किसी रिश्ते में कोई सच्चाई नहीं है। '' आंटी के स्वर में उनका अनुभव तैर रहा था। ''आंटी, बिना खाये किसी भी फल का स्वाद कैसे मिल सकता है।'' मीरा गंभीर थी। जीवन मात्र बुढ़ापा ही नहीं, उसमें बचपन और यौवन भी है। हमेशा आए ऐसे क्षण, जब एक किशोरी, एक युवती ने, किसी कंधे के सहारे होकर आपना मन हल्का करना चाहा। मिला क्या? कभी दरवाज़ा, कभी दीवार। यौवन की तपती रेत, अनेकों मरूद्यान अपने सीने में छिपाये किसी माली की प्रतिक्षाओं में आँखें बिछाये। कभी कोई बदली छितराई भी तो दूसरे ही पल हवा का झोंका उसे दूर ले गया। ''अपना ही दिखेगी, बहनों की पढ़ाई है इसकी शादी, माँ को कौन देख्ेागा अब इस उम्र में शादी? पैसे और पद के लोभी हैं सब।''1 इस प्रकार से एक युवती की मीरा के माध्यम से किशोर अवस्थाओं के समस्या को व्यक्य किया है।

मानव मूल्यों के साथ संवेदना की तलाश करती है। सामाजिकता का सामूहिक दर्शन कराती है। आचरण का भंडाफोड़ करते हुए समाज का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करती है। वैयक्तिक सामाजिक रिश्तों का आख्यान दर्शाते हुए, स्त्री मुक्ति एवं स्त्रोत की पड़ताल कर सामाजिक विडम्बना का पक्ष प्रस्तुत करती है। ''नीलकंठ'' कहानी - ''हमारे समाज के जड़बद्ध स्वरूप को व्यक्त करते हुए शंका के कठघरे में खड़ा कर आध्यात्मिक मुक्ति का पाठ रचती है।''2 भिरात - मातृहीन मेघावी ब्राह्मण युवक - चिता द्वारा विजातीय स्त्री से विवाह करने के कारण समाज से बाहर कर दिया जाता है।

कालांतर में शिव भक्त के रूप में ख्याति पाता है नील कंठ के नाम से साधु बनकर सारे संसार के सुख-दु:ख में शामिल होता है। यह कहानी विवाह संस्था के विजातीय सम्बन्धों की पड़ताल करती है। ''सदर दरवाज़ा'' सांकेतिक रूप में सामंती दरवाज़ा है। सामंती दरवाजे में समाज के निम्न वर्ग का प्रवेश निषिद्ध है। इस कहानी की केन्द्रीय पात्र मीरा - अविवाहित स्त्री है जो वृद्धाश्रम के प्रति समर्पित है। इस कहानी में - समाज में सामाजिक रिश्तों का लोप। रिश्तों की गर्माहट मे कमी। अभिजात्य वर्ग की रागिनी वर्मा का वृद्धाश्रम में जीवन जीने की विवशता का मार्मिक चित्रण है। भाग्य-भारतीय किसान की त्रासदी, पाप अनजाने में बहुरूपिए समाज की विडम्बना, लाजवंती शंका के कारण सम्बन्धों की खटास, को दर्शाती है। इस प्रकार - तुलसी देवी तिवारी की कहानियाँ - ग्राम्य जीवन का आख्यान प्रस्तुत करती है। समय की सच्चाईयों को उजागर करती है। जीवन स्पर्श का अहसास कराती है। चुप्पी तोड़ने की कोशिश की ज़रूरत को दर्शाती है।

तुलसी देवी तिवारी ने अपनी कहानी 'बेचैन' में स्त्रियों की उपेक्षा को कुछ इस तरह दर्शाया है - ''औरत को औरत की तरह होना

चाहिए, घरेलू औरत की सीमा घर की चौखट। दुल्हन बनकर प्रवेश और कफन ओढ़कर निर्गमन। बाकी कहाँ क्या हो रहा है? इससे कोई सरोकार रखने की क्या आवश्यकता है? जो बचा खाओ, पहनों और कमाने वालों की सेवा करो। शास्त्रों में भी लिखा है - सहो, सहो, सहना तुम्हारी नियती है। "3 जिस दिन सहनशक्ति ने जवाब दे दिया, वह अपने अंतिम प्रवास की ओर नि:श्वास छोड़ते हुए निकल पड़ती है।

तुलसी देवी तिवारी ने अपनी कहानी 'बेचैन' में इसे भली-भाँति उकेरा है - "पढ़ों लिखो तुम लोग, आर्थिक स्वतंत्रता हासिल करो, ये क्या पशुओं जैसा जीवन है। खाओ, पीओ, सोओ, बच्चे पैदा करो और मर जाओ। पूरा जीवन सेवा में बिताने के बाद भी कोई सम्मान क्यों नहीं औरतों का? क्योंकि वे प्रत्यक्ष अर्थोपार्जन से दूर हैं। खेत पति के, घर-द्वार, अन्न, पशु-प्राणी पति के, संतान तक पति की, तुम्हारा क्या है यहाँ? मैके में कुछ नहीं, ससुराल क्या तेरे बाप की है? जब तक स्वामी खुश, राज है तुम्हारा, जिस दिन तुम न भायी किसी भी प्रकार, किसी न किसी बहाने निर्वासन। समय रहते चेत जाओ।"4 तकलीफ होती है! कहने को तो सबकुछ अपना है मगर अधिकार रूप में नहीं और जब तक अधिकार रूप में वह अपना नहीं होगा, तब तक आर्थिक परावलंबन की स्थिति बनी रहेगी, जो कि परतंत्रता का प्रमुख कारण है।

ऐसा नहीं है कि समाज में स्त्री को मात्र पुरुष से ही अपने अस्तित्व का भय सताता है। यह भी देखने में आया है कि स्त्री भी स्त्री को कम प्रताड़ित नहीं करती और वह प्रताड़ना एक स्त्री के मन में दूसरी स्त्री के प्रति असुरक्षा की भावना पैदा करती है। तभी तो तुलसी देवी तिवारी 'लाजवंती' कहानी में इस शंका को कुछ इस प्रकार बतलाती है - "कुछ नहीं सुनने दूँगी, आज, कह दो इससे यह तुरंत चली जाय हमेशा के लिए। मैं भी जानती हूँ इन शहरी तितलियों को, दूसरों की ज़िंदगी में जहर घोलना तो कोई इनसे सीखे। अपना तो शादी ब्याह करना नहीं, दूसरों के घर में घुसती हैं।" लाजो अपने आपे में नहीं थी। "5 कथन से स्पष्ट होता है कि स्त्री भी स्त्री को प्रताड़ित करती है और यह भावना तब उत्पन्न होती है, जब प्रताड़ित करने वाली स्त्री के मन में पीड़िता से किसी प्रकार की असुरक्षा या भय उत्पन्न होती है।

असुरक्षा की इस भावना को स्त्री अपने साहस, उल्लास और आशा से ही कुचल सकती है। स्वतंत्रता की चेष्टा स्वतंत्रता की दहलीज पर आकर ही प्राप्त की जा सकती है और यह प्रयत्न स्त्री को स्वयं करना होगा। तुलसी देवी तिवारी ने 'रक्षा' कहानी के माध्यम से इस भावना को बखूबी अंजाम दिया है - "उसका मन कुछ और सोचने को तैयार न था। कभी-कभी न जाने क्यों उसका दिल धड़क उठता अनजानी शंका सांप की तरह फन उठाना चाहती परन्तु उल्लास और आशा की लाठी से रक्षा उसका फन कुचल देती।"6 कथन का तात्पर्य है कि संकटापन्न स्थिति से लड़ने की दृढ़ इच्छाशक्ति ही स्त्री को आसन्न संकट से निकाल सकती है।

'आख़िर कब तक' कहानी में भी तुलसी देवी तिवारी ने स्त्री-पुरुष की संपत्ति है की परंपरा जो समाज में कुरीति के रूप में घर कर गई है, को कुछ इस तरह दर्शाने का प्रयत्न किया है - "कविताओं ने दगा दिया। आज कहानी लिखने की इच्छा है। अभागी बिन्दु की कहानी, जिसे यह तक नहीं पता कि उसका दोष क्या है? क्यों वह सत्यकेतु को नहीं पा सकती? क्या इसलिए कि सत्यकेतु के पिता इतने सामर्थ्यशाली है कि वह किसी भी भावना को एक भूमि के टुकड़े के बदले क्रय कर सकते हैं या इसलिए कि बिन्दु के जन्मदाता राजमुकुट के बदले अपनी पुत्री की खुशियाँ बेच सकते हैं? या इस लिए कि वह एक मूक प्राणी है, जो सदियों से चुपचाप वह सब कुछ करने को विवश है जिससे उसके पिता, पति या पुत्र का भला हो। वह अपनी कहानी के माध्यम से पूछना चाहती है कि कब तक पुत्री बेचकर राज्य प्राप्त करने का चलन रहेगा इस संसार में?"7 प्राचीन सामाजिक परम्पराएँ जो सामाजिक संबंधों को प्रगाढ़ करने के लिए हुआ करती थी, कालान्तर में रूढ़ि का रूप धारण करते हुए स्त्री को क्रय-विक्रय की वस्तु बना डाला। लेखिका ने उक्त परम्परा के दुखद पहलू को आवाज़ देने का प्रयत्न किया है।

उपसंहार- तुलसी देवी तिवारी के साहित्य में नारी के विविध पक्षों का उत्कृष्ट संग्रह उनकी कलम से प्रस्तुत होता है। उनकी रचनाएँ नारी को समर्थ और स्वतंत्रता से भरपूर व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करती हैं। उनकी कविताओं और कहानियों में नारी को एक सकारात्मक और प्रेरणादायक चरित्र के रूप में देखा जाता है। तुलसी देवी तिवारी का साहित्य नारी के विचारों, भावनाओं, और समस्त व्यक्तित्व को मानवीय दृष्टिकोण से समझने की कोशिश करता है। उनके उपन्यास, कविताएँ और कहानियाँ नारी की स्थिति, स्वतंत्रता, और समर्पण को सार्थक बनाती हैं। वे नारी को केंद्र में रखते हैं और उसके अधिकारों और सम्मान की महत्त्वपूर्णता को प्रमोट करते हैं। इस रूप में, तुलसी देवी तिवारी का साहित्य नारी के सशक्तिकरण और समाज में उसके सहायक रूप को प्रोत्साहित करने का साधन बनता है। उनकी रचनाओं के माध्यम से हम एक समझदार और समृद्धि भरा समाज बनाने की दिशा में प्रेरित होते हैं और उनकी कलम से हमें नारी के विविध पक्षों के साथ एक मौलिक दृष्टिकोण प्राप्त होता है।

000

संदर्भ-

1.तिवारी, तुलसी देवी. सदर दरवाज़ा. रायपुर: वैभव प्रकाशन, 2008. पृ. 26, 2.तिवारी, तुलसी देवी. सदर दरवाज़ा, नीलकंठ रायपुर: वैभव प्रकाशन, 2008. पृ. 17, 3.तिवारी, तुलसी देवी. सदर दरवाज़ा, बेचैन, रायपुर: वैभव प्रकाशन, 2009. पृ. 79, 4.तिवारी, तुलसी देवी. सदर दरवाज़ा, बेचैन, रायपुर: वैभव प्रकाशन, 2009. पृ. 79, 5.तिवारी, तुलसी देवी. सदर दरवाज़ा, लाजवन्ती, रायपुर: वैभव प्रकाशन, 2009. पृ. 61, 6.तिवारी, तुलसी देवी. सदर दरवाज़ा, रक्षा, रायपुर: वैभव प्रकाशन, 2009. पृ. 102, 7.तिवारी, तुलसी. आख़िर कब तक?; गाजियाबाद: अनुभव प्रकाशन, 2012. पृ. 22

(शोध आलेख)

हिन्दी आदिवासी उपन्यासों में स्त्री: शोषण एवं संदर्भ

शोध लेखक : इन्दुबाला

शोध निर्देशक : डॉ. वंदना गजराज

इन्दुबाला
शोधार्थी
अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर

आदिवासी समाज जगंल-पर्वत-गुफाओं में रहता है। जल, जगंल, और ज़मीन उसकी मूल सम्पत्ति है। जंगलों पहाड़ों की परिस्थितियों -परिवेश में उसका जीवन व्यतीत हुआ है। नारी और पुरुष दोनों ही मिलकर सुबह से शाम तक कड़ी मेहनत करके अपना पेट भरते हैं। आदिवासी स्त्री अपने समाज के पुरुषों से ज़्यादा मेहनत मजदूरी करके घर चलाती है। हमारी समाज व्यवस्था में किसी भी जाति वर्ण, समुदाय के लोगों का केन्द्र बिन्दु स्त्री ही माना जाता है। आदिवासी स्त्री की स्थिति सामान्य स्त्रियों से अलग होती है। इस समाज की स्त्रियाँ पारिवारिक एवं सामाजिक शोषण की शिकार होती हैं। घर में पति और अन्य परिवार जनों से तथा बाहर साहूकार, सेठ, सामन्तं, ठाकुर, पुलिस, शासकीय अधिकारी द्वारा इन स्त्रियों का शोषण किया जाता है। कुछ स्त्रियाँ अपने शोषण-अत्याचार को चुपचाप सहन करती नज़र आती हैं तो कुछ अपने अस्तित्व, अस्मिता के प्रति चेतन हैं। ऐसी स्त्रियाँ शोषकों से संघर्ष करती हैं। आदिवासी समाज की स्त्रियों का दैहिक, मानसिक एवं आर्थिक शोषण होता है। इनके शोषण का विवेचन करते हुए अमरेन्द किशोर ने लिखा है- वे खेतों में मेहनत करती हैं, फिर भी उन्हें उचित मज़दूरी नहीं मिलती। क्यों नहीं मिलती। क्यों नहीं मिलती, यह गाँव के सारे भूपतियों को पता है। पूरी मज़दूरी पाने के लिए इन मज़दूरिनों को रात में भी अलग से श्रम करने पड़ते हैं। मतलब मालिक की इच्छाओं को पूरा किए बगैर पूरी मज़दूरी भला कैसे मिल सकती है। ऐसा नहीं है कि जब तक कोई महिला भूस्वामी के खाट-खाटियों पर नहीं बिछेगी, तब तक उन्हें पूरा पैसा नहीं मिलता।

'तूने जंगल में घुसकर बानर काहे पकड़ा? महाजन कह रहा था, गोर मिट का हुकुम उठाती है तो डंड कौन भरेगा? अब नहीं पकड़ूँगी वानर, लड़की घिघिया रही थी, अबकी बार जान बकस दे साऊ। जाने कैसे दें रे? तुझे तो जंगल बाबू के पास चलना ही होगा। तू जंगल बाबू का मन खुश कर दे—छूट जाएगी।' (2) नारी शोषण के बाने में आगे वे लिखते हैं-'जंगल बाबू को प्रसन्न का अर्थ हर वन वासी जानता था। महाजन ज़रूर जंगल बाबू के पास सलामी देने जा रहा था। सलामी के रूप में साथ आज अनाज नहीं, देह थी। जंगल बाबू को यदि 'बिरहोर लड़की पसंद आ गई तो उसके साथ सोएगा जंगल बाबू।' (3) 'पिंजरे में पन्ना' उपन्यास में पुलिस वालों ने जब गाड़िया आदिवासियों पर शस्त्र बनाने का आरोप लगाया और उनके डेरे की तलाशी प्रारम्भ कर दी। पुलिस स्त्रियों पर आरोप लगाती हुई कहती है कि उन्होंने घाघरे में शस्त्र छिपाए हैं। इस बात से नाराज होकर दीवी की माँ ने स्त्री शक्ति का अहसास दिलाते हुए अपनी ओढ़नी, कुरती घाघरा सब निकालकर फेंक देती है ओर कहती है-'देख लो। अच्छी तरह पड़ताल करो। ... सब हराम जादों का मुँह उतर गया। मैं-उस बख्त माँ के पेट में थी। और आगे निकल हुआ था उसका। थानेदार खी-खी करके बोला, इस जनानी के पेट में ज़रूर शस्तर होगा कोई, यह फूला हुआक्यों है? माँ ने थूक दिया उसके मुँह पर। गर्भ पर हाथ रखके बोली-बच्चा है इसमें। मेरा और मेरी धनी का।'(4) इसके बाद पुलिस ने दीवी की माँ को कैद कोठड़ी में डाल दिया। और फिर उसकी आँखें फोड़ डालीं और उसे काट कर फेंक दिया। यह भंयकर प्रसंग पुलिस व्दारा आदिवासी स्त्री शोषण का प्रमाण है। जो संघर्ष करती हुई दुनिया से विदा हो जाती है।

आदिवासी स्त्री का मानसिक एवं शारीरिक दोनों रूपों में शोषण किया जाता है। इस वर्ग की स्त्रियों की विवशता का लाभ रायसाहब जैसे शोषक लोग उठाते हैं। जंगल के आसपास उपन्यास में नारी की दुर्दशा का विवेचन यथार्थ रूप में किया गया है। आदि वासी क्षेत्र में आदमखोर जानवरों को मारने के लिए सरकार की ओर से जिस राबर्ट की नियुक्ति की जाती है वह स्वयं आदमखोर होता है। उसे रायसाहब और शासन दोनों का अभय प्राप्त होता है। एक रात उसने बितवा के घर के दरवाजे खटखटाए जब किसी ने दरवाजे नहीं खोले तो वह उसे तोड़कर अन्दर घुस गया और लोग विवश होकर दरवाजे बंद करके अपने घर में बैठे रहे। इस आदिवासी क्षेत्र में औझा भी रायसाहब को खुश करना चाहता है इसलिए उसने आदिवासी समाज की स्त्री के लिए अपने कुछ कानून बना रखे हैं। 'जिस लड़की या औरत को अग्नि-परीक्षा देनी होती है, अपनी शिकायत की सच्चाई को साबित करने के लिए।'(5) अत: इस अग्नि परीक्षा के डर से सभी

आदिवासी मौन धारण कर लेते हैं। इस संदर्भ में लेखक कहता है-'धार्मिक पाखणुवाद ने भी आदमी को बैल या भेड़-बकरी बताने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। भला यह भी कोई किसी भी स्तर पर, बुद्धि द्वारा स्वीकार करने योग्य बात है कि जिस औरत के साथ बलात्कार हो उसे सबूत के रूप में अग्नि परीक्षा देनी पड़े। इससे बढ़कर रुढ़ि वादिता और क्या हो सकती है? (6)

'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास में लुशेइ आदिवासी समाज की स्त्रियों का चित्रण किया गया है। इस समाज में स्त्री स्वतंत्र और स्वछन्द होती है। जब इस कामी को अपनी बाहों में भर लेता है तब वह सोचती है कि क्या मर्द वास्तव में इतना ताकतवर होता है। पसीने से लथपथ झा की आँखें खुली रह गई और वह सोचने लगा कि-'कोई चौबीस साल की लड़की भला कैसे एक दम वँवारी हो सकता है वह भी लुशाइयों के बेरोक-टोक समाज में। फिर दोनों सोचते रहे कि जब औरत और मर्द का संबंध इतना स्वाभाविक होता है तब इस पर इतना पर्दा क्यों होता है? जोखी जैसी स्त्री यौन शोषण से तंग आ चुकी थी। वह अपनी ज़िंदगी से ऊब गई थी। फिर भी जिन्दा रहने की ललक शेष होने के कारण ज़िंदगी को त्याग नहीं सकती थी। कई बार- वह आत्महत्या करने के बारे में सोचती है। परन्तु दूसरे ही क्षण अनुभव करती है कि ईश्वर की बनाई ये दुनिया कितनी सुन्दर है। वह वेश्या बन चुकी थी। प्रतिदिन शाम को सजती-सँवरती थी। आँखों के गोलों से सफेदी कम हो गई थी। आँखों के नीचे जामनी रंग फैलने लगा था। फिर भी उसके बाहर ट्रकों के ड्राइवर, मुर्गी, मछली भून रहे थे। सस्ते शराब की गंध उनकी भूख और बढ़ा रही थी। अपने कस्टमर पाने की उम्मीद इन्हीं लोगों के बीच थी।'(8) इस प्रकार आदिवासी स्त्री अपने जिन्दा रहने के लिए निरन्तर संघर्षरत रहती है। समाज के कारण ही उसे वेश्या बनना पड़ता है।

बटरोही के उपन्यास 'महर ठाकुरों का गाँव' में आदिवासी महर ठाकुरों की स्त्रियों को अचक परिश्रम करने के बाद भी शोषित अवस्था में दिखाया गया है। वे अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश हैं। पुरुष वर्चस्व के कारण मुखिया खिमू काकी की मृत्यु पर औरतों से सलाह लेकर क्रिया कर्म करना ठीक नहीं मानता है। हर ह्रदा से स्पष्ट कहता है-'क्या कह रहा है तू ! हम औरतों से पूछें? औरत से हम बात करे जाकर। तुम्हारे ही शान्तरों में लिखा है कि औरत जात को ज़्यादा मुँह नहीं चढ़ाना चाहिए, हस्वा। जिस औरत जात को हमने हमेशा आपने पाँवों के नीचे दबाकर रखा है, क्या कहते हो तुम हम जाकर उससे पूछें?' (9) इससे स्पष्ट है कि पुरुष सत्ता आज स्त्री वर्ग को स्वतंत्रता से वंचित रखना चाहता है।

शिव प्रसाद सिंह के 'शैलप' उपन्यास में नारी शोषण से ज़्यादा से ज़्यादा नारी शक्ति एवं संघर्ष को वर्णित किया है। उपन्यास की पात्र सब्बो कसम खाती है कि नटों की चालीस एकड़ ज़मीन जो जमींदार ने हड़प ली है उसे वह लेकर रहेगी। इसके लिए वह अपने कबीले के स्त्री-पुरुषों को एकत्र करती है और उन्हें जागृत करने का काम करती है। सब्बों यह चाहती है कि प्रत्येक आदिवासी युवती शक्तिशाली बने। वह करती भी है-'मैं अपनी हर नर कन्या को अपनी तरह उन्मुक्त और बेड़ियों को तोड़कर ज़िंदगी के लिए हर अत्याचारी से लड़ने को उकसाती रही हूँ।'(10)

'वनतरी' में स्त्री शोषण एवं संघर्ष के कई चित्र प्राप्त होते हैं। जमींदार, ठाकुर, सरकारी अधिकारी, पुलिस आदि सभी इसका देह शोषण करते हैं। उमेश बाबू अधिकारी है जो बनतरी के प्रति आकर्षित है। जब तक वह मिथिल के आश्रम में है तब तक उसे उठा लाना सम्भव नहीं होता। जुलूम सिंह आदि-वासी सुगिया तुरीन को उठा लाता है। वह उसका यौन शोषण करता हैं। गाँव का साहू भी वनतरी को भोगना चाहता है। वह उसे कहता है कि वह सुन्दर है इसलिए वह उसे एक लीटर तेल मुफ्त में देने को तैयार है। वह वनतरी को बढ़चढ़ कर बोलने और नखरें दिखाने वाली कहता है। वह कहता है कि वह यदि कहे तो ठाकुर एक रात में उसके शरीर की गर्मी ठंडी कर देगा। इतना सुनते ही वनतरी ने एक भरपूर चप्पड़ साहू को मारा और बाधिण की तरह बिफरते हुए कहा-'साले तूने मुझे पतुरिया समझा है क्या? जगंल की लड़की हूँ, आइन्दा मुँह न खोलना।' उपन्यासकार ने वनतरी के माध्यम से नारी संघर्ष को उजागर किया है। जब पंचायत में वनतरी पर यह आरोप लगाया जाता है कि वह मिथिल का साथ छोड़ दे नहीं तो पूरा गाँव दोनों को मारकर नदी में फेंक देगा तब बनतरी क्रोधित होकर कहती हैं-'परहिया की जाति तुम्हारी बपौती जाति नहीं है। तू महतो हैं, आदिवासियों को नीचा समझता है तुम्हें मेरी बिरादरी की इतनी चिन्ता है तो पहले अपना घर देख। तुम्हारे घर की बहू-बेटी ठाकुर की दिन-रात हम विस्तर होती है, तो तुम आँख मूँद लेते हो और मैं मिथिल के साथ रहती हूँ तो तुम्हें काँटा चुभता है। सुन लो गाँव वालों, मैं इसी गाँव में रहूँगी और मिथिल के साथ रहूँगी। वैं तुम्हारी पंचायत को नहीं मानती।'(11)

शासकीय अधिकारी आदिवासी स्त्री को बुरी नज़र से देखते हैं, मानों वे उनकी रखैल हों। जब बनतरी शासकीय कार्यालय में ठुमरी के परहिया टोले में पासी के संकर के लिए गई तो वहाँ के कर्मचारी रशीद ने कहा कि क्या तुम्हें इतनी प्यास लगी है। यह सुनकर ऑफिस ठहाकों से गूँज उठता है। वनतरी इस बात का प्रतिकार करते हुए कहती है-'बड़े बाबू, शर्म तो नहीं आती जो ऐसी बातें करते हो। तूने मुझे समझा क्या है, जो हर बार गाली बकते हो अब दुबारा गाली दोगे तो मैं ऐसा थप्पड़ मारुँगी कि बुढ़ापे में सारी बत्तीसी झर जाएगी।'(12) वनतरी अपने शोषण के ख़िलाफ़ है। वह हमेशा अत्याचार का विरोध करने वाली स्त्री है।

संजीव के घार उपन्यास में आदिवासी स्त्री समाज पर हुए अत्याचारों का यंथार्थ अंकन हुआ है। उपन्यास की नायिका मैना आदिवासी स्त्री की व्यथा और विवशता इस प्रकार व्यक्त करती है-'हमको याद आता, जब हम बच्चा था, खेती से चार-छ: महीना का काम चल जाता, आज एक दिन का भी नई। खेल-खतार, पेड़-रुख, कुँआ, तालाब, हम और हमरा बाल बच्चा तक आज तेजाब में गल

रहा है, भूख में जल रहा है। पहले हम चोरी की चीज़ हैं, नई जानता था, भीख कभी नई माँगा, चुगली-दलाली कभी नई किया। इज्जत कभी नई बेचा, आज हम सब करता, आदत पड़ गया है, बल्कि है, इसके बिना गुजारा नहीं।(13)

शरद सिंह का उपन्यास 'पिछले पन्ने की औरतें' स्त्री की नियति एवं त्रासदी का कच्चा चिठ्ठा है। पुरुष प्रधान समाज में थे स्त्रियाँ आर्थिक एवं सामाजिक शोषण का शिकार हो रही है। सच तो यह है कि बेड़नियाँ जनजाति की स्त्रियाँ राई नृत्य करती है लेकिन इस बड़ाने वेश्यावृत्ति की जाती है। लेकिन की भेंट श्यामा नामक बेड़नी से होती है जो माँग में सिन्दूर भरती है। वह अविवाहित है लेकिन जिसने उसका 'सिर ठकना' किया है उसी के नाम से सिन्दूर लगाती है। 'श्यामा जिस पुरुष के नाम का सिन्दूर लगाकर सरेआम घूमती है, वह उसका पति नहीं है, यह बात स्वीकार करते हुए उसे कोई हिचक नहीं है? क्या शहर में रहने वाली एक पढ़ी-लिखी औरत इतना साहस कर सकती है? शायद कभी-कभार अपवाद के रूप में, अन्यथा नहीं।(14) इस समाज की स्त्रियाँ ठाकुर की रखैल बानकर कई बच्चे पैदा करती है। ऐसे बच्चों को माँ तो मिल जाती है परन्तु न तो पिता मिलता है और न पिता का नाम।

नचनारी जैसी बेड़नी का जीवन अत्यन्त त्रासदमय होता है। एक दिन एक डाकू नचनारी का नाच देखने आया और रातभर उसका यौन शोषण किया। जब यह घटना ठाकुर को लगती है तो वह क्रोधित हो जाता है। उसे लगता है कि बेड़नी नचनारी और डकैतों में मिलीभगत हो गई है। तभी तो उसके यहाँ डाका पड़ा था। उसने नचनारी को चेतावनी देते हुए कहा कि 'वह उनका इलाका छोड़कर चली जाए वरना उसे निर्वस्त्र करके भरे बाज़ार में घुमाया जाएगा और डकैतों सें मिली-भगत के अपराध में पुलिस को सौंप दिया जाएगा।' ठाकुर के यहाँ हुई डकैती से उसका कोई संबंध नहीं था और डाकू के डर से उसे अपनी देह सौंपनी पड़ी थी। बेड़नियों की विवशता को नचनारी लाट साहब के सामने इस प्रकार वर्णित करती है-'हम बेड़नियों का कोई न कोई ठाकुर होते ही हैं, हुजूर। वह चाहे जाति का ठाकुर हो, ब्राह्मण हो या बनिया...हम लोगों के लिए तो सबके सब ठाकुर होते हैं। उन्हें अपनी अकड़ और मर्दागनी दिखाने के लिए हमसे अच्छी औरत और कहाँ मिलेगी? वे हमें अपनी बनाकर रखते हैं लेकिन ख़ुद वे हमारे कभी नहीं होते। '(15) इस वर्ग की नारी सामन्त, समाज और पुलिस से भी अपनी व्यथा नहीं कह सकती। वह परम्परा में बंधी स्त्री का जीवन जीती हैं।

भगवान दास मोरवाल के 'रेत' उपन्यास में आदिवासी कंजर समाज की नारियों को कथा के केन्द्र में रखा गया है। आदिवासी कंजर स्त्रियाँ देह व्यापार करती है। कमीशन के आधार पर भी इन लड़कियों को खरीदा-बेचा जाता है। कमला बुआ ने एक किशोरी को सांढ़े तीन लाख में खरीदा। उसका तर्क यह है कि 'छोरी सुन्दर बहुत है कम से कम यह खिलाड़ी को अपनी तरह जानेगी।' रुक्मिनी को समझते हुए कमला बुआ कहती है कि कंजर स्त्री को किसी से प्यार नहीं करना चाहिए। इस संबंध में रुक्मिनी भी स्पष्ट कहती है कि 'ग्राहक को ग्राहक ही समझना चाहिए। मैं नहीं पालती इस दामाद-जमाई का टंटा। जिसे शौक है पाले। अरे! यह क्या बात हुई कि एक बार मत्या ढकाई क्या करी, उमर भर उसकी गुलाम हो गई। जब गुलामी ही करनी थी, तो जरुरी था बुआ बनना.. व्याह रचाके भाभी ना बनती.. और बैद्जी, अगर मत्या ढकाई की उसने रकम दी है, तो बदले में मैंने भी उसे अपनी आबरू उसके हवाले की है, किसी ने किसी पर एहसान नहीं किया है।'(16) कंजर समाज के पुरुष चोरी-डकैती करते हैं। इसलिए कई बार पकड़े भी जाते हैं। उन्हें जेल से छुड़वाने के लिए कंजर स्त्रियों को अपने शरीर का सौदा करना पड़ता है। अर्थात् मुर्दों को हवालात से छुड़वाने के लिए जमानत के नाम पर दरोगाओं के साथ विस्तर गर्म करना पड़ता है।

निष्कर्षत: आदिवासी स्त्रियों की दशा समाज में किसी भी तरह से अच्छी नहीं कही जा सकती। इस वर्ग की स्त्री अन्याय एवं अत्याचार से ग्रसित नज़र आती है। इस समाज में ठेकेदार, महाजन, पुलिस, वनरक्षकों, धर्म के ठेकेदारों व्दारा शोषित हो रही है। वह इस शोषण के ख़िलाफ़ संघर्ष भी करती है परन्तु अंत में उन्हें मृत्यु को प्राप्त होना पड़ता है। इस समाज में डायन जैसी कुप्रथाएँ आज भी प्रचलित है। इसके अलावा शिक्षा का यहाँ रूप से अभार है। यौन शौषण इनकी भ्रमुखा समस्या है। हिन्दी आदिवासी उरन्यासों में स्त्री शोषण एवं संघर्ष की अनेक छाया जीवतंता के साथ अंकित हुई है। वह पुरुष की तरह स्वछन्द एवं स्वतंत्र दिखाई तो देती है परन्तु वास्तव में ऐसा होता नहीं है। उसे आर्थिक एवं सामाजिक दोनों स्तरों पर शोषण के ख़िलाफ़ संघर्ष करना पड़ता है। अन्यथा उन्हें जीवन भर यौन शोषण की विभिषिकाएँ झेलनी पड़ती है। इस वर्ग का पुरुष समाज स्त्री शोषण के ख़िलाफ़ कहीं लामबद्ध दिखाई नहीं पड़ता है।

000

संदर्भ- (1)जंगल-जंगल लूट मची है- अमरेन्द्र किशोर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ.80 (2)जो इतिहास में नहीं है- भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2005, पृ. 46 (3)वही, पृ. 47 (4)पिंजरे में पन्ना-मणि मधुकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृ.63 (5)जंगल के आसपास-शोषण वत्स, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 1993, पृ. 138 (6)वही, पृ.167 (7)जहाँ बाँस फूलते हैं-श्रीप्रकाश मिश्र, यश, पब्लिकेशन्स, दिल्ली, इ011 पृ.36 (8)वही.पृ.261 (9)महर ठाकुरों का गाँव-बटरोही, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984, पृ.18 (10)शैलूप-शिवप्रसाद सिंह, नेशनल पविलशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1989, पृ. 254 (11)वनतरी-सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986, पृ.78 (12)वही, पृ.102 (13)धार संजीव, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990 पृ.54 (14)पिछले पन्ने की औरतें- शारद सिंह, सामाजिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010 पृ.17 (15)वही, पृ.114 (16)रेत-भगवान दास मोरवाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009 पृ.32

(शोध आलेख)

गुजराती साहित्य का इतिहास: अंतर्निहित सांस्कृतिक धाराएँ

शोध लेखक : डॉ. जागृति बहन ए पटेल, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, श्री के आर कटारा आर्ट्स कॉलेज शामलाजी

सारांश- प्राचीन गुजराती, पुरानी गुजराती, प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी या 'मारू गुर्जर'कहे जाने वाले, अपने शुरुआती दिनों (1250 ईस्वी) से लेकर आज तक, गुजराती भाषी लोग गुजरात की भौगोलिक और सांस्कृतिक सीमाओं के पार भारत भर में दूर-दूर तक फैल गए हैं और प्रवास भी किया है। विदेशों में बड़ी संख्या में और अफ्रीका महाद्वीप में गुजराती आबादी बड़ी संख्या में है और वहाँ गुजराती भाषा में साहित्य भी रचा जाता है। इस प्रकार गुजराती भाषा का जो प्रारंभिक रूप अन्य प्रांतों और देशों में फैला, उसका नाम 'जूनी गुजराती'है और वह विभिन्न रूपों में आज तक जीवित है।

मुख्य शब्द- गुजराती साहित्य, इतिहास, विकास, कालखंड, सांस्कृतिक धाराएँ।

प्रस्तावना- सत्रहवीं शताब्दी में उन्हें 'गुजराती'नाम मिला। सबसे पहले महान् कवि प्रेमानंद ने इस नाम का प्रयोग किया, लेकिन केवल एक बार। पहले इसे विद्वान 'गौरजर'या 'शौरसेनी अपभ्रंश'कहते थे और आम लोग इसे प्राकृत कहते थे। गुजराती से पहले गुजरात में साहित्य की भाषा अपभ्रंश थी। अपभ्रंश के शौरसेनी संस्करण को भोजने इसे 'गौरजारी अपभ्रंश'नाम दिया है। जैन भी अपने लेखन में महाराष्ट्रीयन अपभ्रंश का प्रयोग करते हैं। सामान्यत: 900 से 1250 ई. तक इस भ्रष्ट भाषा का काल माना जाता है। फिर 1251 से 1650 तक पुरानी गुजराती का बोलबाला रहा और फिर नई गुजराती अस्तित्व में आई।

गुजराती साहित्य के कालखंड- मध्य काल- यह दो युगों को जोड़ती है, प्राचीन और मध्यकालीन; लेकिन पुरानी गुजराती से लेकर दयाराम तक फैले इस लंबे काल को 'मध्य काल'के नाम से जाना जाता है। इस काल में रचित साहित्य की विशेषताएँ समान हैं। तो यह पूरा कालखंड एक साथ बंधा हुआ है।

अर्वाचीन काल- अर्वाचीन काल का आरंभ नर्मद और दलपत (1853 ई.) से होता है। यहाँ ब्रिटिश शासन की स्थापना मूलत: एक बड़ी क्रांतिकारी घटना थी। अंग्रेज़ यहाँ अपने साथ अपना साहित्य और संस्कृति लेकर आए थे। यह यहाँ के साहित्यिक सृजन में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इन प्रारंभिक कार्यों की तुलना 1852 के उत्तर मध्यकालीन कार्यों से करने पर विषय वस्तु, शैली और अभिव्यक्ति में स्पष्ट अंतर पता चलता है। नर्मदा (1832-86) को आज तक 'अर्वाचीन काल'माना जाता है। इसके उप-विभाजन भी हैं, अर्थात्: सुधार काल (1853-86), पंडित काल (1887-1914), गांधी काल (1915-47) और स्वतंत्रता के बाद का काल (1947 के बाद)। कला के ये खंड सुविधा के लिए बनाए गए हैं। एक युग की विशेषताएँ दूसरे युग में मिल जाती हैं और कभी-कभी युग का उलटापन भी रचना के संदर्भ में देखने को मिलता है। हालाँकि, इन अवधियों की अपनी विशेषताएँ हैं।

मध्य काल- जैनियों का निर्माण: प्राचीन या मध्यकाल के आरंभ में जैन मुनियों ने प्रचुर मात्रा में साहित्य का सृजन किया। पुराने गुजराती साहित्य में जैनियों का काम बहुत बड़ा है। पुराने गुजराती प्रचार के प्रारम्भ से पहले गुजरात क्षेत्र का साहित्य अपभ्रंश भाषा में है। इसमें स्वयंभू (आठवीं सदी) और पुष्पदंत (दसवीं सदी) जैसे महान् कवि और हेमचंद्र (1089-1174) जैसे पंडित हैं।

जैन साधु पुराने गुजराती साहित्य के प्रमुख प्रणेता थे। शुरुआती वर्षों में उन्होंने गुजराती साहित्य का निर्माण जारी रखा, मुख्य रूप से पद्य में और थोड़ा गद्य में लिखा। यह साहित्य धार्मिक कथाओं के रूप में है। यह एक रचना है जिसे 'रास'और 'रासो'के नाम से जाना जाता है। उन्होंने गद्य भी कम ही लिखा। इनमें शालिभद्र सूरी की कृति भरतेश्वर बाहुबली रास 1185 सर्वप्रमुख होगी। इस कृति में दो जैन कवियों, भरत और बाहुबली की कहानी को जीवंत शैली में खूबसूरती से वर्णित किया गया है। इसके बाद महेंद्र सूरी के शिष्य धर्मा द्वारा उल्लेखनीय कार्य जम्बूसामी चरिया (1210) किया गया। सोमसुंदर (1374-446) एक महान् गद्य लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं। माणिक्य सुंदरकर्ता द्वारा लिखित सुप्रसिद्ध पृथ्वी चंदचरित (1442) एक बढ़िया और दिलचस्प गद्य कविता है।

डॉ. जागृतिबहन ए पटेल
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर,
श्री के आर कटारा आर्ट्स कॉलेज
शामलाजी
ईमेल- jagu772020@gmail.com

इस रस या रासो के अलावा 'फाग'या 'फागु'जैनियों की एक अन्य साहित्यिक रचना विशेषता है। ये मुख्यत: मौसमी कविताएँ हैं। जम्बूस्वामी या नेमिनाथ जैसी पौराणिक शख्सियतों को काव्यात्मक विषय के रूप में लिया जाता है और काव्य के इस रूप में उनके आसपास के मौसमों का वर्णन किया जाता है। क। एच। ध्रुव के अनुसार, इसमें फाल्गुन माह में होने वाले खेलों का वर्णन है, इसलिए पुरानी गुजराती में इसका नाम 'फागु'है। जैन मुनियों ने वसंत ऋतु की सुंदरता को 'फागु'में लाया और अंतत: इसे बोधवादी उपयोग में लाया। सबसे प्राचीन फाग सिरीस्थुलिभद्रफागु 1324 के आसपास जिनपद्मा सूरी द्वारा लिखा गया था। तेरहवीं शताब्दी की नेमिनाथ चतुष्पदिका विनयचंद्र (1269) द्वारा लिखित पहली ऋतुकाव्य या बारहमासी कविता है।

गैर-जैन रचनाएँ- गुजराती में महान् फागुकाव्य वसंतविलास एक गैर-जैन कवि द्वारा लिखा गया है। इस कवि के बारे में कोई निश्चित जानकारी नहीं है. ऐसा माना जाता है कि इसका निधन पंद्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। इस अवधि के दौरान बारह महीनों का वर्णन करने वाली कई 'बारमासी'कविताएँ रची गईं। धार्मिक विषयों पर इन कविताओं के बाद, सांसारिक प्रेम या युद्ध पर कविताएँ लिखने वालों में श्रीधर व्यास (1398) को अग्रणी माना जाता है। उनके द्वारा लिखित रणमल्ल छंद में ईडर के ठाकुर रणमल्ल के पराक्रम की गाथा सुन्दरता से गाई गई है। इसके अलावा, असैत की हंसौली (1361) और अब्दुर रहमान की संदेशका रस (1420 इस काल की प्रसिद्ध कविताएँ थीं। इन सभी कविताओं में दोहा, चौपाई आदि हैं।

ऐतिहासिक प्रभाव- इन सभी साहित्यों के अवलोकन के बाद इन सभी साहित्यों के प्रेरणा स्रोत नरसी मेहता की रचना की ओर रुख करना चाहिए; लेकिन उससे पहले उस समय के उत्पादन पर ऐतिहासिक प्रभाव पर भी गौर करना चाहिए। इस ऐतिहासिक प्रभाव के पीछे पूरे भारत में बदलती राजनीतिक स्थिति है। इस काल में सर्वत्र धार्मिक साहित्य का सृजन हुआ। इसका एक कारण धर्म पर लटकती भय की तलवार भी थी। मुस्लिम भीड़ ने भारत पर आक्रमण किया था और न केवल धर्म, बल्कि जीवन भी भय से ग्रस्त था। भय के कारण प्राचीन काल से मौजूद सांस्कृतिक मूल्य नष्ट होने लगे थे। संतों और कवियों ने भारत और भारतीय संस्कृति को इस स्थिति से बचाया। इस काल में सम्पूर्ण भारत में संत कवियों का जन्म हुआ। उन्होंने अपनी धर्मनिष्ठा से भारत और भारतीय संस्कृति की रक्षा की। यह भक्ति मुख्यत: प्रेमलक्षणा भक्ति थी।

अंतर्निहित सांस्कृतिक धाराएँ- यह गुजराती साहित्य में साहित्यिक विधाओं में इतिहासकारों और शोधकर्ताओं द्वारा एक सामान्य स्वीकृत मानदंड है कि इस अति प्राचीन भाषा में सबसे पहले के लेख जैन लेखकों द्वारा तैयार किए गए थे। इनकी रचना आगे चलकर रास, फगस और विलास के रूप में हुई। रस उन लंबी कविताओं का उल्लेख करते हैं जो आवश्यक प्रकृति में वीर, रोमांटिक या कथात्मक थीं। सालिभद्र सूरी के भारतेश्वरा बाहुबलिरसा (1185 ईस्वी), विजयसेन के रेवनगिरि-रस (1235 ईस्वी), अम्बादेव के समरारसा (1315 ईस्वी) और विनयप्रभा के गौतम श्वेमिरसा (1356 ईस्वी) सबसे प्रमुख हाथ हैं। गुजराती भाषा में साहित्य। इस अवधि की अन्य उल्लेखनीय प्रबन्ध या कथात्मक कविताओं में श्रीधरा का रणमल्ला चंदा (1398 ई.), मेरुतुन्गा का प्रबोधचिंतामणि, पद्मनाभ का कान्हादित्य प्रबन्ध (1456 ई.) और भीम का सदायवत्स कथा (1410 ई.) शामिल हैं। राजशेखर के नेमिनाथ-फागु (1344 ई.) और गुनवंत के वसंत-विलासा (1350 ई.) ऐसे ग्रंथों के नायाब उदाहरण हैं। विनायकचंद्र द्वारा नेमिनाथ कैटसपेडिका (1140 ए.डी.) गुजराती कविताओं की बारामासी शैली का सबसे पुराना है। गुजराती गद्य में सबसे पहला काम तरुणप्रभा के बालावबोध (1355 ई.) का था। माणिक्यसुंदरा के पृथ्वीचंद्र चरित्र (1422 ई.) एक गद्य रचना थी।

16 वीं शताब्दी के दौरान, गुजराती साहित्य, भक्ति आंदोलन के जबरदस्त बोलबाला के तहत आया था, जो धर्म को पंडितों से मुक्त करने के लिए एक लोकप्रिय सांस्कृतिक आंदोलन था। नरसिंह मेहता (1415-81 ई.) इस युग के सबसे अग्रणी कवि थे। उनकी कविताओं ने बहुत ही संत और रहस्यमय भावना को चित्रित किया और अद्वैतवाद के दर्शन का एक गहन प्रतिबिंब बोर किया। नरसिंह मेहता के गोविंदा गामाना, सुरता संग्रामा, सुदामा चरित्र और शृंगरामला भक्ति काव्य के अद्भुत और असाधारण चित्रण हैं। एक अन्य कवि, भलाना (1434-1514 ई.) ने बाना के कादम्बरी का एक शानदार प्रतिनिधित्व गुजराती में प्रस्तुत किया था। भलाना ने दासमा स्कन्ध, नलखयणा, रामबाला चरित्र और चंडी अखाना जैसे अन्य पर्याप्त और अपूरणीय कार्यों की रचना की थी। फिर भी एक अन्य कवि, मंदाना ने प्रबोध बत्तीसी, रामायण और रुक्मणी कथा जैसी अमर रचनाओं को रूप दिया। गुजराती साहित्य पर भक्ति आंदोलन के प्रभाव के इस काल के दौरान, रामायण, भगवद गीता, योगवशिष्ठ और पंचतंत्र सभी का गुजराती भाषा में अनुवाद किया गया था।

गुजराती साहित्य में 17 वीं और 18 वीं शताब्दियों में तीन महान् गुजराती कवियों, अकायदासा या अको (1591-1656), प्रेमानंद भट्टा (1636-1734) और स्यामलदास भट्टा या समला (1699-1769) द्वारा पूरी तरह से भविष्यवाणी की गई थी। अखो के अखो गीता, सीताविकरा सामवदा और अनुभव बिंदू को हमेशा वेदांत पर `सशक्त 'रचनाओं के रूप में चित्रित किया गया है। संपूर्णानंद भट्टा, जिन्हें सभी गुजराती कवियों में सबसे बड़ा माना जाता है, गुजराती भाषा और साहित्य को नई ऊँचाइयों तक ले जाने और बढ़ाने में पूरी तरह से शामिल थे। प्रेमानंद भट्टा की रचनाओं में ओखा हराना, नलखयाना, अभिमन्यु अखाना, दासमा स्कंध, सुदामा चरित्र और सुधन्वा ख्याण शामिल हैं। सामला भी एक बेहद रचनात्मक और उत्पादक कवि थे, जिन्होंने गुजराती पद्य लेखन में पद्मावती, बतिरसा पुतली, नंदा बत्रिसि, सिम्हासन बत्रिसि और मदना मोहना

जैसे अविस्मरणीय रचनाएँ लिखीं। यह अवधि भी कालजयी पुराणिक पुनरुत्थान की साक्षी बनी रही, जिसके कारण गुजराती साहित्य में भक्ति काव्य का तेजी से विकास हुआ और परिपक्वता आई। दयाराम (1767-1852) ने धार्मिक, नैतिक और रोमांटिक गीतों की रचना की जिसे गर्बी कहा जाता है। उनकी अधिकांश आधिकारिक कृतियों में भक्ति पोसाना, रसिका वल्लभ और अजामिल अखाना शामिल हैं। 19वीं सदी के मध्य के दौरान गुजराती में गिरिधारा द्वारा रामायण का लेखन किया गया था। परमानंद, ब्रह्मानंद, वल्लभ, हरिदास, धीरा भगत और दिवली बाली गुजराती साहित्य में कविता की भविष्यवाणी के इस काल के अन्य आधिकारिक 'संत कवि' थे।

19 वीं शताब्दी के मध्य से, गुजराती, अन्य क्षेत्रीय भारतीय भाषाओं की तरह, औपनिवेशिक निवास और उनके शासनकाल के कारण, ठीक पश्चिमी प्रभाव में आ गए। दलपत राम (1820-1898 और नर्मदा शंकर (1833-1886) को आधुनिक गुजराती साहित्य का पथ प्रदर्शक माना जाता है। दलपतराम के वेंचरित्र ने प्रफुल्लितता और बुद्धिमत्ता पर अपने अविश्वसनीय आदेश को चित्रित किया। नर्मदाकोसा के रूप में जाना जाने वाला पहला पहला गुजराती शब्दकोश, नर्मदा शंकर द्वारा रचित और संकलित किया गया था, जो अनिवार्य रूप से दुनिया के इतिहास के रूप में कार्य करता है, जो कि काव्यशास्त्र पर एक अधिकार के रूप में भी कार्य करता है। नर्मदा शंकर ने भी कविता की ओम्पटीन किस्मों का प्रयास किया था और कुछ अंग्रेजी छंदों को गुजराती में आसानी से रूपांतरित किया। उनकी रुक्मिणी हरण, वाना वर्णना और वीरसिम्हा को हमेशा कविताओं का उत्कृष्ट संकलन माना जाता है। गुजराती काव्य में अन्य महान् कृतियों में शामिल हैं - भोलानाथ साराभाई की ईश्वर प्रेरणामाला (1872), नरसिम्हराव दिवेटिया की स्मरण संहिता, कुसुममाला, हृदयदेव, नुपुरा झनकारा और बुद्ध चरिता; मणिशंकर रतनजी भट्ट की देवयानी, अतिजन, वसंत विजया और चक्रवाक मिथुना और बलवंतराय ठाकोर के भानकारा। नानालाल गुजराती साहित्य में इस अवधि के एक और महत्त्वपूर्ण कवि थे, जिन्होंने अपने अपादेय गद्य या छंद गद्य में अविश्वसनीय रूप से आगे बढ़ाया था। नानालाल ने अपनी पहचान और प्रतिष्ठा के लिए दो काव्य संकलनों का नाम दिया है, जैसे - वसंतोत्सव (1898) और चित्रादासन (1921), एक महाकाव्य जिसे कुरुक्षेत्र के रूप में जाना जाता है और इदुकुमारा, जयजयंत, वॉयसो गीता, संघमित्रा और जगत् प्रेरणा जैसे कई नाटक।

आधुनिक गुजराती गद्य की शुरुआत नर्मदा शंकर, मनसुखराम त्रिपाठी, नवल राम, के.एम. मुंशी ने की। गांधीजी की दक्षिणा आफ्रीकाना सत्यग्रामो इतिहासा और आत्ममाथा गुजराती में उनके दो सबसे असाधारण काम हैं। वास्तव में, स्वतंत्रता और सामाजिक समानता के लिए लगातार मजबूत संघर्ष में महात्मा गांधी के प्रमुखता के उदय के बाद, कविता की एक बड़ी मात्रा, उमाशंकर, सुंदरम, शीश, स्नेहरश्मी और बेटई जैसे कवियों द्वारा लिखी गई, मौजूदा में केंद्रित थीं। 1940 के दशक के दौरान, साम्यवादी कविता में वृद्धि देखी जा सकती थी और इसने गुजराती में प्रगतिशील साहित्य के लिए एक आंदोलन को प्रेरित किया। मेघानी, भोगीलाल गांधी, स्वप्नस्थ और अन्य लोगों ने अपने लेखन के माध्यम से वर्ग संघर्ष और धर्म से घृणा करना शुरू कर दिया। के.एम. मुंशी को समकालीन समय के गुजराती साहित्य के सबसे बहुस्तरीय और लचीले और लुभावने साहित्यिक आंकड़ों में से एक माना जाता है। के.एम. मुंशी के सबसे भारी और स्वैच्छिक कार्यों में नाटक, निबंध, लघु कथाएँ और उपन्यास शामिल हैं। उनके प्रसिद्ध उपन्यासों को गुजरातनो नाथा, पृथ्वी वल्लभ, जया सोमनाथ (1940), भगवान् परशुराम (1946) और तपस्विनी (1957) की सूची में शामिल किया गया है। नंदशंकर (1835-1905) और गोवर्धनराम त्रिपाठी (1855-1907) गुजराती साहित्य के चकाचौंध और शानदार उपन्यासकारों में से थे, जिनके प्रसिद्ध और सुप्रसिद्ध उपन्यासों में क्रमश: कार्तिक घलो (1866) और सरस्वती चंद्र शामिल हैं।। रणछोड़भाई उदयाराम (1837-1923) को लगभग हमेशा ललिता सूखा दर्शन नाटक के साथ गुजराती में नाटक-लेखन की कला में ग्राउंडब्रेकर और ट्रेलब्लेज़र के रूप में सम्मानित किया जाता है।

समापन- गुजराती में स्वतंत्रता के बाद के गद्य साहित्य में पारंपरिक और आधुनिक दो अलग-अलग प्रवृत्तियाँ थीं। पूर्व में नैतिक मूल्यों के साथ अधिक निपटा गया और इसके मुख्य लेखक गुलाबदास ब्रोकर, मनसुखलाल झावेरी, विष्णुप्रसाद त्रिवेदी और अन्य थे। जबकि अस्तित्ववाद, अतियथार्थवाद और प्रतीकवाद ने बाद को प्रभावित किया है। हालाँकि, आधुनिकतावादी नैतिक मूल्यों और धार्मिक विश्वासों से दूर होना चाहते हैं। इस प्रवृत्ति के प्रतिष्ठित लेखकों में चंद्रकांत बक्सी, सुरेश जोशी, मधु राय, रघुवीर चौधरी, सरोज पाठक और अन्य शामिल हैं। गुजराती गद्य ने दो सौ साल से भी कम समय में तेजी से विकास और साहित्यिक कृत्यों को दर्ज किया है और अब इसे भारतीय साहित्य में सामने वाले पीठिकाओं में गिना जा सकता है।

000

संदर्भ-

1.डिवेटिया, एनबी गुजराती भाषा और साहित्य, 2 खंड, बॉम्बे, 1921, 1932। 2.झावेरी, केएम गुजराती साहित्य में आगे के मील के पत्थर, बॉम्बे, 1924। 3. झावेरी, केएम द प्रेजेंट स्टेट ऑफ गुजराती लिटरेचर, बॉम्बे, 1934।4.झावेरी, एमएम माइलस्टोन्स इन गुजराती लिटरेचर, बॉम्बे, 1914। 5.महाराष्ट्र राज्य गजेटियर्स, भाषा और साहित्य खंड, चौथा अध्याय, बॉम्बे, 1971। 6.मुंशी, केएम गुजरात एंड इट्स लिटरेचर, बॉम्बे, 1954। 7.स्कॉट, एचआर गुजराती पोएट्री, बॉम्बे, 1914। 8.त्रिपाठी, गोवर्धनराम, गुजरात के शास्त्रीय कवि और समाज और नैतिकता पर उनका प्रभाव, बॉम्बे, 1958। 9.शर्मा, गिरधर प्रसाद, ए हिस्ट्री ऑफ गुजराती लिटरेचर, आगरा, 1962।

(शोध आलेख)

अर्चना चतुर्वेदी के साहित्य में नारी चित्रण

शोध लेखक : प्रकाश महादेव निकम, हिन्दी विभाग शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापूर

शोध निर्देशक : प्रो. डॉ. सुनील बापू बनसोडे, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग जयसिंगपुर कॉलेज, जयसिंगपुर।

प्रकाश महादेव निकम
हिन्दी विभाग शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापूर

साहित्य समाज का लिखित चित्र है। साहित्य समाज का वह आईना है जिसमें समाज के विविध रूपों को हम देखते है। साहित्यकार जब साहित्यकृती का निर्माण करता है, तब समाज की युगिन परिस्थितियो का विचार करता है। युगिन परिस्थितियों के आधार पर ही वह समाज को साहित्य में प्रतिबिंबिंत करता है। समाज और साहित्य का बहुत ही गहरा संबंध है। समाज और मनुष्य का जीवन इनका एक अनोखा रिश्ता कायम रहा है। इसलिए समाजशास्त्र के विद्वान ऑरिस्टॉटल कहते है कि "मनुष्य समाजशील प्राणी है।"1 वह समाज में रहते वक्त समाज के हर इकाई से जुड जाता है। समाज की रचना मनुष्य के लिए है। स्त्री और पुरुष समाज के दो महत्त्वपूर्ण घटक है। इन घटकों के आधार पर समाज के कुछ नियम बने। स्त्री-पुरुष और अन्य घटको का समाज मे स्थान निश्चित हुआ है। समाज नित्य परिवर्तनशील है। इस परिवर्तन के साथ साहित्य में भी परिवर्तन होता है। साहित्य ज़रूर परिवर्तनशिलता के साथ आगे बढे वह अपना अतीत कभी भूलता नही और मनुष्य को अपने अतीत से कभी दूर नही करता। सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनितिक, धार्मिक, शैक्षणिक, आर्थिक, हर घटक का प्रभाव मनुष्य जीवन पर रहा है। इसी प्रभाव को देखकर साहित्य आगे बढा है।

भारतीय समाज पुरुष प्रधान संस्कृति का रहा है। इसमें स्त्री को दर समय विशिष्ट स्थान मिला है। प्रागैतिहासिक काल में नारी नर से श्रेष्ठ थी। वैदिक काल में पूज्य और सन्माननीय थी। उत्तर वैदिक युग में वह सहयोगिनी बनाम बाधा बन गई। मध्ययुग में नारी भोग की वस्तू बन गई तो वह आधुनिकता के हर बदलते दौर के साथ ख़ुद को बदलती गई। इस तरह वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक जो भी साहित्य निर्माण हुआ उस साहित्य के निर्माता साहित्य कारों ने नारी का परिवर्तनवादी चित्रण अपणे साहित्य में किया है। अपने साहित्य में नारी चित्रण करने वाले साहित्यकारों में आदिकाल के कवियों में कवि कबीर और तुलसीदास है। रीतिकाल के कवि बिहार और घनानंन्द है। आधुनिक काल के भारतेन्दु बाबु हरिश्चंद्र से लेकर प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, मोहन राकेश, फणिश्वरनाथ रेणु, जैनेद्र जैसे अनेक लेखकों ने नारी का चित्रण अलग-अलग रूप में किया है। आधुनिक काल में साहित्य में व्यंग्य साहित्य यह साहित्य की विधा प्रखरता से उभरकर सामने आई। इसी परंपरा में हरिशंकर परसाई ने विनोद और हास के साथ नारी का चित्रण अपने साहित्य के माध्यम से पाठको के सामने रखा। इसी व्यंग्य साहित्य की परंपरा की लेखिका अर्चना चतुर्वेदी है। इन्होंने समाज में रहनेवाली स्त्री के रूप को अतीत की धाराओं से जोडकर तो कभी आधुनिक परिस्थितीयो के आधार पर खुलकर

सामने रखा है। आधुनिक युग में नारी अपने सभी आधिकारों को प्राप्त कर चुकी है तो कही-कही जगह वह अपने साहित्य में खुलकर दर्शाती है।

नारी अबला नही वह सबला बनी है। जब तक वह सबला बनकर समाज के नियमों का उल्लंघन नही करती तो वह एक आदर्श रूप है, और मूल्यहीन स्वैरता का अवलंब करती है तो वह समाज के लिए एक घातक रूप बन जाती है। अर्चना जी इसी रूप को और स्वैरता तथा घिनौनी वृत्ती को लक्ष बनाकर 'मॉडर्न युग की सावित्री' की कहानी में मॉडर्न सावित्री का चित्रण करती है। सावित्री को सामने रखकर वैवाहिक जीवन में पुरुषों से बराबरी करनेवाली सावित्री कॉल सेंटर में काम करती है। इसी वजह से वह अपने पति के साथ हफ़्ते में एक ही दिन रहती है। उसके और उसके पति का वैवाहिक जीवन हफ़्ते में एक दिन का ही रहा है। रात में वह नशापान करती है। उसे अपने पति की कोई फ़िक्र नहीं है। वह मर भी जाए तो उसे कोई फरक नही पड़ता। पुरानी सावित्री तो अपने पति सत्यवान की जान बचाने यमराज का पीछा करती उसके पास अपने पति के प्राण माँगने गई थी। लेकिन आज की सावित्री को अपने पति के प्राणों की चिंता नही है। वह यमराज से कहती है कि? ''मुझे उसकी कोई ज़रूरत नहीं। यमराज जी ने सोचा लगता है अब मैं भी प्राचीन सावित्री की तरह बुध्दिमानी का प्रदर्शन करेगी, बोले 'अब तुम कहोगी मुझे संतान चाहिए और बिना सत्यवान के संतान कैसे होगी?'' ''इस पर सावित्री बोली, संतान के लिए मुझे सत्यवान की आवश्यकता नही वो तो मैं कृत्रिम गर्भधान के जरिये भी प्राप्त कर लूँगी। इससे तो वैसे भी मैं उब चुकी थी।''2 इस तरह आधुनिक जगत् में नारी स्वतंत्रता के साथ अपनी ज़िंदगी जी रही है। जिसको समाज और संस्कृतिका कोई लेना-देना नही है। जब यम सत्यवान की जान लेकर जा रहे थे तब सावित्री यमराज से कहती है कि 'तुम्हारा मोबाइल नंबर... तुम बहुत हैडसम हो... और मैं आज़ाद'' इस तरह पर पुरुष पर डोरे डालने वाली आज़ाद नारी का घिनौना रूप यहाँ दिखाई पडता है।

रेडिओ चाची, कहानी में जिस तरह रेडिओ हर जानकारी घर-घर मे देता है उसी तरह अपने घर में आई नई वस्तु का विज्ञापन मोहल्ले में करने वाली 'बत्तों चाची' के स्वभाव का वर्णन किया है। बार-बार पति और बेटे के कहने पर भी बत्तो चाची अपनी अमीरी और पैसों का प्रदर्शन करती फिरती है। घर का टेप रेकॉर्ड ज़ोर की आवाज़ में लगाना। फ़ोन पर ज़ोर-ज़ोर से बोलना, एक दिन तो चाची को पत्ता चला की उनका बेटा आटिमैटिक चूल्हा ला रहा है तो ''चाची निकल पड़ी अपनी शेखी बघारने''3 अनपढ़ गवार चाची घर में नई वस्तुओं का इस्तेमाल कैसे करते है, यह भी समझ नहीं पाती और फ्रिज में आलू के पराठे रखती है और फ्रिजवाले से कहती है कि गरम पराठे जम गए गर्म ही न रहे। इस बात पर फ्रिजवाला ग़ुस्सा हो जाता है और उन्हे समझाता है।

लड़के को रिश्ते आने पर उसकी बातचीत करत समय दहेज जादा मिले इस वजह से कोई न कोई बहाना बनाकर अपने घर में जो महँगी और रईजदार चीजें है उस पर चर्चा करती है। इसी कारण ही उसे रेडिओ चाची के नाम से सब जानते थे। एक प्रदर्शनकारी स्त्री और एक अनपढ़ स्त्री का स्वभाव, लालच सी भरी बुद्धि का नारी रूप का चित्रन बड़े ही घरेलू प्रसंगों से जोडकर लेखिका बड़े ही मजेदार रूप से करती हैं।

'जैसे को तैसा कहानी में कल्लू चार-चार बार शादी करते है। अपनी पत्नी को वह कभी इज्जत ही नहीं देता। हमेशा अपनी पत्नियों की वह पिटाई करता रहता है। इस वजह से पहली तीन पत्नियाँ भाग गईं। जानवरों जैसा व्यवहार करनेवाला कल्लू अपनी पत्नियों पर लात-घुसें से प्रहार करता है। लड़कियाँ पैदा करने पर बीबी मर गई तो उनको मायके पहुँचा दिया। लडकी मतलब बोझ समझने वाले कल्लू हमेशा पत्नियों को इस्तेमाल की चीज़ समझते है। कल्लू ''इस बार बिहार के किसी गाँव की ग़रीब कम उम्र लड़की खरीद लाये और शुरू हो गया जानवरो जैसा व्यवहार घर के दो बच्चों का बोंझ उसके कंधो पर डाल दिया था और रात को पत्नी धर्म भी ज़ोर-जबरदस्ती से वसूल ही लिया जाता था। 'क्यों कि कल्लू जी 'ना' सुनने के आदि नहीं थे। बेचारी बच्ची टाइप पत्नी, हर वक्त डरी-डरी रहती''4 इस तरह आज भी समाज में नारी का रूप मध्ययुगीन रूप जैसा है। जिस तरह मध्य युग और स्वांतत्र्यपूर्व काल में नारी को भोग की वस्तू समझा जाता था। नारी के साथ अनमेल विवाह करके उस पर जिम्मेदारियों का बोझ रखकर अत्याचार किया जाता था। उसी तरह यथार्थ वादी रूप में भी नारी का यही चित्रन अर्चना चतुर्वेदी करती है। जो पुरुष प्रधान विचार धरा की शिकार बनी है तो दूसरी तरफ अपने अत्याचार के ख़िलाफ़ लड़कर अपने पति की जमकर पिटाई करनेवाली कल्लू की पत्नी का वर्णन लेखिका करती है। तो कल्लू की पत्नी अपने पती के सामने ही प्रेमी के संग रास रचाती है। नारी जीवन के आधुनिक व्याभिचारी वृत्ति को भी लेखिका सामने रखती है। नारी की दुर्बलता में अन्याय सहन करने की वृत्ति और बगावत पे उतर जाए तो उसमें निर्माण स्वतंत्रता और संस्कृति विघातक कृत्य करनेवाली नारी का चित्रन कहानी में बड़ा ही कलापूर्णता से किया है।

'एक अद्द चायनीज माँगता' कहानी में दहेज की प्रथा से त्रस्त नारी जीवन को सामने रखा है। दहेज की वजह से नारी को अनेक यातनाएँ सहन करनी पड़ती हैं। ग़रीब माता-पिता अपनी लड़की का ब्याह कम दहेज लेनेवाले घर में ही करना चाहते है। क्योंकि उनके पास दहेज में देने के लिए रुपये नहीं होते है। सस्ते बजेटवाला छोरा ढूँढ़कर शादी करने के लिए मन्नों काकी संतो काकी से कहती है। ''कम बजट का छोरा कहाँ से लाऊँ''5 तब मन्नों काकी चायनीज दामाद ढूँढ़ने को कहती है। जो चायनीज चीजों की तरह सस्ता होता है। परिस्थितियों के अनुरूप दहेज के रिवाज के आड़ में लड़कियों का शोषण किस तरह होता है और उसके प्रति घरवालों की विचार करने की स्थिति को सामने रखा है। आज भी समाज में नारी को बोझ समझा जाता है, यह बड़ी दुर्भाग्य की बात है। नारी कोई व्यवहार की चीज़ नहीं जिसका सौदा किया जाए। लेखिका ऐसे प्रसंगो को

सामने रखकर लड़कियों के प्रति, समाज में किस तरह का दृष्टिकोण रखा जाता है, यह स्पष्ट करती है उन्हें आज भी बोझ समझा जाता है यह सरासर ग़लत है। इस अन्याय के प्रति विचारों को सामने रखकर नारी के प्रति होने वाले अन्याय और उसका संघर्षपूर्ण जीवन लेखिका ने चित्रित किया है।

चिडियाँ रोती क्यों है? कहानी में चिड़िया दो जो है वह बलात्कार से पीड़ित हैं। आज भी समाज में लड़कियों पर बलात्कार हो रहे हैं। लड़कियों की सुंदरता, हसना, खेलना और खुला संचार करना आज भी समाज में घातक है जब किसी बाज जैसे इन्सान की नज़र उस पर पड़ जाती है, तो उस पर बलात्कार हो जाता है। ऐसे ही चिड़िया दो के जीवन में हुआ। बलात्कार की घटना के बाद उसका शरीर जिन्दा रहा, पर वह अंदर से मर गई, अपने सपनों के साथ। वो अब कही जाना नहीं चाहती थी, यह सोचकर कि लोग क्या कहेंगे?

लेकिन एक दिन चिड़िया के माँ-बाप अन्य लोग उसके पास आए और उसे समझाते है, "बेटी तुम उड़ो पहले की तरह, हम सब मिलकर उस दुष्ट बाज को सबक सिखाएँगे...."6 और उसका जीने का हौसला बढ़ाते हैं और वह चिड़िया जो लड़कियों का प्रतीक है, वह सभल जाती है। फिर से अपनी नई दुनिया बनाती है। फिर से हँसना-खेलना शुरू करती है।

आज जो बलात्कार पीड़ित नारी है वह अगर धैर्य से न्याय माँगने की कोशिश करेगीं तो उसे न्याय ज़रूर मिलेगा। अगर उसके घरवाले उसके साथ हर संकट में खड़े रहेंगे और समाज क्या कहेगा इसका विचार न करते ख़ुद के बारे में सोचेगी तो वह अपना जीवन अत्याचारियों को सबक सिखाकर फिर से सुखी बना सकती हैं। यही परिवर्तनवादी दृष्टिकोण इस कहानी में अर्चना सामने रखती है। पति-पत्नी बनाम विक्रम बेताल कहानी में नारी का बेताल रूप भी दिखाया है। वह हर वक्त बेताल की तरह अपनी इच्छा पूरी करने की कोशिश करती है। आधुनिक युग में सांसारिक जीवन में इसका सबसे बड़ा शिकार पति बन जाता है। वह हमेशा अपने पति से सवाल करती रहती है- "मैं कैसे लग रही हूँ?"7 तो पत्नी को बहुत सुन्दर ऐसा कहना पड़ता है। अगर मैं मोटी हो जाऊँ तो आप मुझसे प्यार करेंगें? मज़ाक में भी अगर कुछ बोलेंगे तो पति की खैर नहीं। यदि मैं मर जाऊँ तो आप दूसरी शादी करेंगे? तो पति को नहीं जानू मैं तुम्हारे बिना जिन्दा नहीं रह सकता ऐसा कहना पड़ता है। नहीं कहेगा तो शोर मचाएँगी और पति पर आरोप करती रहेंगी। इस तरह अपनी हर एक बात को मनवाने और हर वक्त अपने हर बात को अपने हिसाब से बेताल की तरह विचार करनेवाली नारी का रूप लेखिका बडे ही युक्तिपूर्ण चातुर्य के साथ पाठक के सामने रखती है।

निष्कर्ष - अर्चना चतुर्वेदी अपनी कहानीयों द्वारा नारी की आधुनिक दौर की स्थिति, उसका बदलता आधुनिक विचार, समाज में उसकी स्थिति, उस पर होनेवाले अत्याचार और उसी अत्याचारों का सामना करके अपने परिवार और समाज की सहायता से उभरनेवाली नारी घर परिवार में हुकूमत जमाकर अपनी विचार धारा से जीनेवाली, दहेज समस्या से परिशान नारी, माँ के कर्त्तव्य को पूरा करनेवाली नारी का चित्रण करके सभी नारी समुदाय को वह सचेत करके उनमें चेतना जगाती है।

000

संदर्भ- 1. प्रा. पी. के. कुलकर्णी - समाजशास्त्र परिचय: ग्रामीण एवं नागरी पृ. क्र. 1, प्रथम संस्करण, 17 अगस्त, 2006 2.अर्चना चतुर्वेदी - मर्द शिकार पर है...., पृ. 16, प्रथम संस्करण, 2014, साहित्य संचार प्रकाशन, दिल्ली. 3.अर्चना चतुर्वेदी - मर्द शिकार पर है..., पृ. क्र. 32, 2014, साहित्य संचार प्रकाशन, दिल्ली. 4. अर्चना चतुर्वेदी, घूरो मगर प्यार से, पृ. 75, प्रथम संस्करण, 2020, भावना प्रकाशन, दिल्ली. 5. अर्चना चतुर्वेदी - मर्द शिकार पर है... पृ. क्र. 29, प्रथम संस्करण, 2014, साहित्य संचार प्रकाशन, दिल्ली. 6. अर्चना चतुर्वेदी - शराफत का टोकरा, पृ.क्र. 27, प्रथम संस्करण, 2014, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 7. वहीं, पृ. क्र. 47

नई पुस्तक

(कहानी संग्रह)

टूटी पेंसिल

लेखक : हंसा दीप

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर यह कहानी संग्रह हाल में ही सामने आया है। इसमें हंसा दीप की अठारह नई कहानियाँ संकलित हैं। इस पुस्तक में संकलित कहानियाँ हैं- टूटी पेंसिल, घास, उत्सर्जन, अमर्त्य, श्वान, जिंदा इतिहास, आसमान, दो अलहदा छोर, सिरहाने का जंगल, विखंडित, हलाहल, कुहासा, अप्रत्याशित, हाईवे 401, आईना, पहिए, मूक सूरज, पेड़। स्वयं हंसा दीप इस संग्रह के बारे में कहती हैं- टूटी पेंसिल कहानी संग्रह की सभी, अठारह कहानियाँ वैश्विक धरातल पर मानवीय संवेदनाओं की एकरूपता को उकेरने का प्रयास करती हैं। चाहे परिपार्श्व में मेरी कर्म भूमि कैनेडा-अमेरिका हो, या मेरी जन्मभूमि भारत हो, सरहदों के पार भी मन स्वच्छंद विचरण करता है। आभासी जगत को, सोशल मीडिया के मंचों को, जीवन का एक अभिन्न अंग स्वीकार करके संपूर्ण विश्व जैसे हमारी मुट्ठी में समा गया है। हज़ारों मील लंबी दूरियाँ हमने पाट ली हैं। अपनी-अपनी कला से कलाकार दिलों की दूरियाँ पाटने की भी भरसक कोशिश कर रहे हैं।

000

(शोध आलेख)

अशोक वाजपेयी के काव्य में प्रतीक योजना

शोध लेखक : पिंकी देवी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)

पिंकी देवी
गाँव किशनपुरा, डाकखाना बिशनपुरा,
तहसील व जिला जीन्द (हरियाणा)
ईमेल- sarhaya.a@gmail.com

शोध सार- साहित्य में शब्दों का कोशगत अर्थ ग्रहण नहीं किया जाता, इसलिए काव्यभाषा में प्रतीकों का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है। काव्यभाषा ऐसा शाब्दिक व्यापार है जो शब्द की लक्षणा और व्यंजना शक्तियों पर आधारित होता है और प्रतीकों में ये शक्तियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। कोई भी कवि अथवा रचनाकार प्रतीकों के माध्यम से कविता की संवेदनात्मकता को बनाए रखता है।

रचनाकार अपने युग, परिवेश व परिस्थितियों से प्रभावित होकर तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल बिंब एवं प्रतीकों का उपयोग करके विसंगतियों एवं समस्याओं की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित करता है।

'प्रतीक' शब्द का अभिधात्मक अर्थ है - संकेत या चिह्न अर्थात् प्रतीक ऐसे चिह्न है जिनसे कवि का कथ्य सार्थक, अर्थगर्भित व सम्प्रेषणीय बनता है। प्रतीक शब्द के संबंध में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं -

प्रतीक शब्द को अंग्रेजी के सिंबल का हिन्दी पर्याय मानते हुए डॉ. बलभद्र प्रसाद ने लिखा है - "सिंबल-सं (1) प्रतीक, प्रतिरूप, मूर्ति, प्रतिमूर्ति (2) चिह्न, संकेत, निशान, लक्षण (जैसे - ग्रहों के लिए ज्योतिष के चिह्न, रासायनिक तत्वों के सूचक वर्ण, वर्णमाला, गणित के चिह्न, तारा चिह्न। क्रिया सं. (1) प्रतीक होना (2) प्रतीक या चिह्न द्वारा व्यक्त करना, प्रतीक रूप में कहना।"(1)

डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त ने प्रतीक की महत्ता के विषय में कहा है - "प्रतीकों में प्रस्तुत और अप्रस्तुत का ऐसा संयोग रहता है जिससे वह कथन को अत्यन्त रोचक एवं आकर्षक रूप प्रदान कर देते हैं। (2)

इस प्रकार कहा जा सकता है कि रचनाकार अपनी विशिष्ट, सूक्ष्म एवं जटिल अनुभूतियों को प्राय: मूर्त रूप देने के लिए प्रतीकों का सहारा लेता है। कम शब्दों के माध्यम से अपने कथ्य को प्रभावी व संप्रेषणीय बनाने के लिए प्रतीकों की महत्ती भूमिका है।

अशोक वाजपेयी समकालीन हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य कवि, आलोचक, अनुवादक, कला प्रेमी व संपादक हैं। अपनी सृजनशीलता व मुखरता के कारण हिन्दी साहित्य में उन्होंने अपनी विलक्षण पहचान बनाई है। शब्दों के माध्यम से उन्होंने अपने काव्य की संवेदनशीलता को इतना सम्प्रेषणीय बना दिया कि शब्द काव्य में सजीव हो उठते हैं। तत्कालीन विसंगतियों व समस्याओं की ओर पाठक का ध्यानाकर्षित करने हेतु उन्होंने काव्य में अनेक बिंबों व अलंकारों का प्रयोग किया है जो उनको और भी अधिक ग्राह्य बनाता है। अशोक वाजपेयी ने अपनी रचनाओं में प्राकृतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व ऐतिहासिक जीवन से संबंधित अनेक सार्थक प्रतीकों का प्रयोग किया है।

प्राकृतिक प्रतीक- अशोक वाजपेयी ने अनेक प्राकृतिक वस्तुओं का प्रतीक रूप में सार्थक प्रयोग किया है जो कविता की संवेदनात्मकता को कायम रखने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई है। 'शहर अब भी संभावना है' काव्यसंग्रह की 'युवा जंगल', 'साँझ: शिशु जन्म', 'सुबह', 'वह पत्ती', 'वसन्तगीत', 'हरी दीवार': एक पुरानी परिचिता के लिए', 'सूर्यास्त', 'उषाओं के गर्भ में', 'उषा', 'स्टेशन पर विदा', 'सूर्योदय से पूर्व' 'कवि-जागरण', 'स्मरण: नागफनी' आदि कविताओं में कवि ने प्राकृतिक प्रतीकों का भरपूर प्रयोग किया है। 'युवा जंगल' कविता में युवा जंगल मन के उत्साह व हरी उँगलियाँ खुशहाली का प्रतीक हैं - "एक युवा जंगल मुझे / अपनी हरी उँगलियों से बुलाता है।"(3)

"तत्पुरुष' काव्य संकलन की 'पूर्णिमा' कविता में 'चन्द्रोदय' यौवन का प्रतीक है - "पूर्णिमा का चन्द्रोदय / उसके शरीर में।" (4)

'कहीं नहीं वहीं' काव्य संग्रह में जंगल, वापसी, बारिश, चिड़िया, बगिया, कविताओं में पक्षी और चिड़िया आशावादी मन का प्रतीक हैं। 'सिर्फ इतनी सी उम्मीद है' कविता में चींटी को निस्सार मानव का प्रतीक बताया है। 'वापसी' कविता में आशावादी मन को पक्षी के माध्यम से

कवि ने प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है- ''हो सकता है हम लौटें / पक्षी की तरह / और तुम्हारी बगिया में किसी नीम पर बसेरा करें। ''(5)

सामाजिक प्रतीक- साहित्य में समाज प्रतिबिंबित होता है। अशोक वाजपेयी ने समाज के विभिन्न पहलूओं को उजागर करने के लिए अनेक सामाजिक प्रतीकों का प्रयोग अपने काव्य में किया है। 'कहीं नहीं वहीं' काव्यसंग्रह को 'हम' कविता में आदमी का लुप्त होना प्रार्थना में डूबी हुई भीड़ में गायब हुए बच्चे के प्रतीक के माध्यम से प्रस्तुत किया है- ''कोई नहीं देख पाएगा / हमारा न होना / जैसे प्रार्थना में डूबी भीड़ से / लो हो गए बच्चे को / कोई नहीं देख पाता।''(6)

'रिवाज नहीं रहा' कविता में कवि ने बेपरवाही के लिए कूड़ेदान तथा स्वार्थपरता के लिए थैले व ब्रीफकेस का प्रतीक रूप में प्रयोग किया है।

''दूसरों के दुख आँख बचाकर, हम कूड़ेदान में फेंक देते हैं / लेकिन अपने स्वार्थ तहाकर रखते हैं थैले या ब्रीफकेस में।''(7)

'आविन्यों' काव्यसंग्रह की कविता 'कीचड़ सने जूते' में कविता का शीर्षक ही कामकाजी व मेहनती आदमी की मेहनत का प्रतीक है। ''अगर किसी सयानी समझ या अन्तर्दृष्टि या अध्यात्म तक कविता पहुँचने की कोशिश करती या पहुँच पाती है तो इसी रोज़मर्रा के सहारे-उसी रोज़-व-रोज़ के अपरिहार्य झंझट से गुज़र कर। कविता अपने कीचड़-सने जूतों से ही स्वर्ग प्रवेश करती है।''(8)

'घेराबन्द शहर से रपट' कविता में कवि ने युद्ध के भीषण प्रभाव आने वाली पीढ़ी पर दिखाने के लिए 'कुत्तों' और 'बिल्ली' प्रतीकों का प्रयोग किया है- ''युद्ध की वजह से हम बच्चों की एक नई किस्म पैदा कर पाए हैं / हमारे बच्चे किस्से पसंद नहीं करते वे मार-काट खेलते हैं / जागे हों और सोए वे सूप रोटी और हड्डियों का सपना देखते हैं बिल्कुल कुत्तों और बिल्लियों की तरह।''(9)

'टोकनी' कविता में कवि मनुष्यता के लिए टोकनी को प्रतीक रूप में प्रस्तुत करते हैं। वर्तमान समय में मनुष्यता खतरे में है इसका आभास इस कविता में कवि बड़े ही सटीक प्रतीक के माध्यम से करवाया है- ''यकायक पता चला कि टोकनी नहीं है / पहले होती थी / जिसमें कई दुख और हरी-भरी सब्जियाँ रखा करते थे / अब नहीं / दुख रखने की जगहें धीरे-धीरे कम होती जा रही है।''(10)

'सड़क पर एक आदमी' कविता में आदमी के लिए शब्द व दुनिया के लिए शब्दकोश को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है। ''वह आदमी जा रहा है / जैसे शब्दकोश से / एक शब्द जा रहा है / लोप की ओर ''(11)

सांस्कृतिक प्रतीक- सांस्कृति किसी भी देश व काल की अमूल्य धरोहर होती है। अपनी कविताओं में अशोक वाजपेयी ने पौराणिक पात्रों व चिह्नों का प्रयोग किया है जो उनके काव्य में आकांक्षा का भाव जागृत करते हैं। 'शहर अब भी संभावना है' काव्यसंग्रह की कविता 'लौटकर जब आऊँगा' में मृत्यु के देवता के लिए नीले घुड़सवार को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है- ''क्या मैं तुमसे कहूँगा / खुश हो माँ, अन्त आ गया है / जिसकी तुम्हें प्रतीक्षा थी / क्योंकि मैंने देखा है / नीले अश्व पर आरूढ़ / भव्य अवतारी पुरुष को।''(12)

'रामचरितमानस' ने समाज में आदर्श व्यक्तित्व की छाप छोड़ी है जिसमें सहनशीलता व कर्त्तव्यपरायणता प्रतिबिंबित होती है। माँ के उसी आदर्श व्यक्तित्व को प्रतीक रूप में प्रस्तुत करती कविता 'स्वर्ग में नरक' की कुछ पंक्तियाँ- ''अभी भी अभ्यास या आस्था से / अपने बेटे-बेटियों / उनके बच्चों के लिए / सप्ताह में तीन-चार दिन / वह करती होगी / उपवास / अभी भी स्वर्ग के ऐश्वर्य के आतंक को / वह सहती होगी / रामचरितमानस के पाठ से।''(13)

धार्मिक प्रतीक- धर्म मनुष्य में सही व ग़लत का भेद समझने की शक्ति को जाग्रत करता है। कवि अपनी माँ से अपने लौटकर आने के लिए कहते हैं। 'लौटकर जब आऊँगा' कविता में समाज की संकीर्ण मानसिकता से संघर्ष करने के दौरान कवि अपनी माँ के प्रिय शोकगीत को प्रतीक रूप में प्रस्तुत करते हैं- ''गिद्धो और चीलों की चीत्कारों के बीच / माँ तुम्हारा प्रिय शोकगीत / 'रघुपति राघव राजा राम?''(14)

कबीरदास से प्रभावित अशोक वाजपेयी के राम दशरथ पुत्र राम के समान वैभव सम्पन्न कुल में नहीं जन्मे अपितु निर्गुण व निराकार राम के समान हैं जिससे सामान्य जन भी प्रश्न पूछ सकता है और अपनी समस्याओं का समाधान कर सकता है। 'अगर इतने से' काव्य संग्रह की कविता 'हथेली पर सिर' कविता में हरि, राम शब्दों का प्रयोग प्रतीक रूप में किया गया है- ''और पीड़ा की प्राचीन कगारों पर / पड़े लगे हरि को भूलना कठिन था / पुराने बूर्जों और ढहते मन्दिरों के पीछे उमड़ती भीड़ से / बचते हुए / मैं अपना सिर काटकर हथेली पर रखने को तैयार हूँ / लेकिन पूछता हूँ राम से / कि उसकी हथेली पर / क्या उसका सिर है?''(15)

'कुछ रफू कुछ थिगड़े' काव्य संग्रह की कविता 'काम लेना बन्द' कविता में कवि ने भगवान् की मूर्ति को बूढ़ा व मिट्टी का माधो कहकर शक्तिहीन ईश्वर की ओर इशारा किया है - ''मैंने देवताओं से काम लेना बन्द कर दिया है / वे बूढ़े हो गए हैं, / कई बार मुझे लगता है कि / वे अब मिट्टी के माधो बनकर रह गए है / जिन पर पवित्रता धूल की तरह जमी भर है / जो एक फूँक या झाड़न से उड़ जा सकती है। / सगुन-असगुन के कामों में भी उनकी अब कोई भूमिका नहीं बची।''(16)

आध्यात्मिक प्रतीक- अशोक वाजपेयी की कविताओं में आध्यात्मिक प्रतीकों का प्रयोग उनकी आध्यात्मिकता को प्रतिबिंबित करता है। अपनी गहन अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने अध्यात्म से संबंधित अनेक प्रतीकों को अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। 'प्रार्थना' कविता में कवि ने अच्छे कर्मों के लिए रेत को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है- ''प्रभु / मैं जानता हूँ कि मेरे दिन गिनती के हैं / अधिक नहीं बचे हैं / बस इतने कि मैं वह रेत जमा कर सकूँ / जिससे वे मेरा चेहरा ढँक देंगें।।(17)

'फाहा-फाहा उड़ते समय से' कविता में

कवि ने साधना के प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग किया है- ''यह निराकाश / निरातप / विस्संख्य निश्शून्य अनंत / सुतपा के चेहरे वाला / कौन है?(18)

पौराणिक प्रतीक- अशोक वाजपेयी ने अपनी संप्रेषणीयता को पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से भी प्रभावशाली बनाया है। प्रलय के बाद सृष्टि को पुनर्जन्म से संबंधित प्रतीकों का प्रयोग 'तत्पुरुष' काव्यसंग्रह की कविता 'अगर समय होता' कविता में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जिसमें आधुनिक युग की नैतिकता के चक्रव्यूह में फँसे सामान्य जन को सचेत किया गया है - ''तुम्हारे पास समय होता / तो तुम्हें मैं ले चलता / उस कगार पर / जहाँ से दिखते हैं तीनों लोक / और प्रलय के बाद / जलधि पर तैरता / पत्ते पर लेटा / अँगूठा चूसता शिशु / जहाँ ध्यानमग्न बैठे हैं / न जाने कब से / महाकाल, गरुड़ और पद्मपाणि / बैकुण्ठ के पास रँभाती कामधेनु''(19)

'अगर इतने से' काव्यसंग्रह की कविता 'बच्चे एक दिन' में बच्चों को जागरुक मनुष्य का प्रतीक माना गया है जो एक दिन अपने अतीत के प्रति जागरुक होकर अपनी परम्परा को पहचान पाएँगें - 'बच्चे एक दिन यमलोक पर धावा बोलेगें / और छुड़ाकर ले आएँगे / सब पुरखों को / वापस पृथ्वी पर।''(20)

'डगमग' कविता में कवि ने अपनी नातिन के बाल्यावस्था के भोलेपन पर आनंदित पवित्रता के लिए ब्रह्मांड, आदिकाव्य व ऋग्वेद की ऋचाओं व देव प्रतिमाओं को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है- ''डगमगाता है / आदिकाव्य, ऋग्वेद की ऋचाएँ / मन्दिरों में विजड़ित देव प्रतिमाएँ / वह डगमग चलती है / तो सारा ब्रह्मांड थम जाता है।''(21)

राजनीतिक प्रतीक- अशोक वाजपेयी एक मुखर कवि है जिन्होंने आज के लोकतांत्रिक समय में विभिन्न राजनीतिक प्रतीकों के माध्यम से भ्रष्ट राजनीति पर व्यंग्य किया है। 'तत्पुरुष' काव्य संग्रह की अन्ततः कविता की दमकते रथ पर आरूढ़ राजपुरुष के नगरागमन को कवि ने सत्ता का प्रतीक माना है। अत्याचारियों की क्रूर प्रवृति को उजागर करने के लिए कवि ने सिंह, चीते व भेड़िए जैसे प्रतीकों का प्रयोग किया है। 'तत्पुरुष' संग्रह की 'कुछ तो' कविता में राजनीतिक प्रतीक- 'लुप्त हो जाएँगे सारे हिंस्र पशु / सिंह, चीते और भेड़िए।''(22)

अशोक वाजपेयी के काव्य में शोषितों, दलितों व पीड़ितों के लिए संवेदना है वे श्रमिक वर्ग के हितैषी हैं। 'घास में दुबका आकाश' काव्यसंग्रह की कविता एक आदिम कवि का प्रत्यावर्तन में कवि ने साधारण मनुष्य के जीवन के लिए विभिन्न प्रतीकों का प्रयोग किया है- ''मैं एक जीवित सभ्यता लाया हूँ लोगों / तुमने देखा है सड़ने लगे है नगर और फल / पड़ोस एक सड़ांध देता धुँआ है।''(23)

'कुम्हार' शीर्षक कविता में कवि ने राजनीति की क्रूरता के लिए कीचड़ को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है- ''मिट्टी का कीचड़ होता तो फिर भी रास्ता निकालता / इस कीचड़ में तो खून, नफरत, ज़िंदगी की कई बहशतें / विलाप, आँसू और बदले एक-दूसरे में सने हुए हैं, और कभी-कभी ऐसा लगता है कि पता नही कितने मरे हुए लोग / इस कीचड़ में से आर्तनाद कर रहे हैं''(24)

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अशोक वाजपेयी ने प्रतीकों का प्रयोग कर अपने असीमित भावों को सीमित रूप में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। सादृश्य-विधान के द्वारा उन्होंने अपने काव्य को ओर अधिक ग्राह्य व संप्रेषणीय बनाया है। प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व पौराणिक प्रतीकों के प्रयोग से कवि की उत्कृष्ट भाषिक भंगिमा का परिचय मिलता है। अशोक वाजपेयी की काव्य भाषा को सादृश्यमूलक भाषा की पराकाष्ठा कहना उचित है।

000

संदर्भ- 1.सत्यप्रकाश बलभ्रद प्रसाद मिश्र, मानक अंग्रेजी कोश, पृ. 1372, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग 1983 2.डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त, साहित्य शैली के सिद्धान्त, पृ. 140, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली, 1971, 3.संपादक अमिताभ राय, सेतु संग्रह: कविता अशोक वाजपेयी (खण्ड-1) पृ. 55, कविता - युवा जंगल, (प्रथम संस्करण 2020) सेतु प्रकाशन, 4.वही, कविता- पूर्णिमा, पृ. 243, 5.वही, कविता - सिर्फ इतनी-सी उम्मीद है, पृ. 390, 6.वही, हम (कविता), पृ. 392, 7.नंद किशोर नवल, खुल गया है द्वार एक, पृ. 148, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, 2014, 8.संपादक अमिताभ राय, सेतु समग्र: कविता अशोक वाजपेयी (खण्ड-1) पृ. 493, कविता - कीचड़ - सने जूते (प्र.सं॰ 2020), 9.संपादक अमिताभ राय, सेतु समग्र: कविता अशोक वाजपेयी (खण्ड-3) पृ. 294, कविता - घेराबन्द शहर से रपट, (2020) सेतु प्रकाशन।, 10.संपादक अमिताभ राय, सेतु समग्र: कविता अशोक वाजपेयी (खण्ड-1) भूमिका, पृ. XVII (2020), 11.वही, कविता - सड़क पर एक आदमी, पृ. 285, 12.वही, कविता - लौटकर जब आऊँगा, पृ. 106, 13.वही, कविता - स्वर्ग में नरक, पृ. 144, 14.वही, कविता - लौटकर जब आऊँगा, पृ. 106, 15.वही, हथेली पर सिर (कविता), पृ. 147, 16.संपादक अमिताभ राय, सेतु समग्र: कविता अशोक वाजपेयी (खण्ड-2) पृ. 208 कविता - 'काम लेना बन्द'(2020) सेतु प्रकाशन। 17.संपादक अमिताभ राय, सेतु समग्र: कविता अशोक वाजपेयी (खण्ड-3) पृ. 300, कविता - प्रार्थना, सेतु प्रकाशन, 2020, 18.संपादक अमिताभ राय, सेतु समग्र: कविता अशोक वाजपेयी (खण्ड-1) पृ. 440, कविता - फाहा-फाहा उड़ते समय से, 2020, 19.वही, कविता - अगर समय होता, पृ. 211, 20.वही, बच्चे एक दिन (कविता), पृ. 202, 21.नंद किशोर नवल, खुल गया है द्वार एक, राजकमल प्रकाशन, पृ. 157, नई दिल्ली - 110002, 2014, 22.संपादक अमिताभ राय, सेतु समग्र: कविता अशोक वाजपेयी (खण्ड-1) पृ. 224, कविता - कुछ तो, सेतु प्रकाशन, 2020, 23.अशोक वाजपेयी, घास में दुबका आकाश, पृ. 138, वाणी प्रकाशन 2014, 24.संपादक अमिताभ राय, सेतु समग्र: कविता अशोक वाजपेयी (खण्ड-2) कविता - शताब्दी के अन्त के कगार पर (कुम्हार), सेतु प्रकाशन, 2020

(शोध आलेख)

हिन्दी कथा साहित्य के 21वीं सदी में वृद्ध विमर्श का अध्ययन

शोध लेखक : कुलदीप कुमार
लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय
जालंधर, पंजाब

शोध निर्देशक : डॉ रीता सिंह
सहायक आचार्य कुलदीप कुमार
राजकीय डिग्री महाविद्यालय
रिवालसर, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश 175023

कुलदीप कुमार
लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय
जालंधर, पंजाब
मोबाइल- 8219095475
ईमेल- kuldeepkuku99@gmail.com

प्रस्तावना- वर्तमान समय में विडंबना यह है कि जिस नींव की वजह से परिवार की संकल्पना की जाती है उसी से आज का युवा वर्ग हेय यानी नफ़रत करने लगा है। उनसे बात करने से कतराते हैं। यहाँ तक कि उन्हें अपना बोझ समझ कर या तो अपने से हमेशा के लिए अलग कर देते हैं या स्वयं ही बेगाना बनाकर अकेला छोड़कर निकल पड़ते हैं। जिसके परिणामस्वरूप वृद्ध माता-पिता प्रवासी जीवन जीने को मजबूर हो जाते हैं। प्रवासी का अर्थ केवल देश के बाहर जाकर बस जाने वाले व्यक्ति को प्रवासी नहीं कहा जाता बल्कि देश में रह कर भी अपने मूल स्थान से हट कर कहीं और जाकर निवास करने की प्रक्रिया को प्रवास कहा जा सकता है।

'प्रवास' शब्द में 'प्र' शब्द का अर्थ है- अलग या दूसरे जबकि 'वास' का अर्थ है- निवास करना। अर्थात् 'प्रवास' का शाब्दिक अर्थ हुआ- अपने मूल स्थान से हटकर किसी अन्य स्थान पर जाकर बस जाना। यहाँ वृद्धों के प्रवासी जीवन से तात्पर्य है- अपने परिवार से अलग होकर प्रवास में जीवन यापन करना। जैसे- वृद्ध आश्रम या अस्पताल में जाकर बस जाना या बसा दिया जाना। अपनों के होते हुए भी उनसे अलग होकर रहना अर्थात् अपनों से दूर हटकर प्रवास करना। वास्तव में देखा जाए तो अपनों के अमानवीय व्यवहार के कारण आज वृद्धों की यह स्थिति है कि वे प्रवास में जीवन यापन करने को विवश है।

वैश्वीकरण ने हमें इस कदर प्रभावित किया है कि पाश्चात्य जीवन प्रणाली और एकल परिवार को ही सब कुछ मान बैठे हैं। सच्चाई यह है कि जिन बुजुर्गों ने हमें अपनी उँगली पकड़ कर हमारी नन्ही सी हाथों को थामकर हमें चलाना सिखाया उन्हीं को आज दुत्कार और नकार रहे हैं। यहाँ तक कि उनके बुढ़ापे में लाठी बनने की अपेक्षा हम उन्हें बोझ समझने लगे हैं। वृद्धों की स्थिति पर ध्यानाकर्षित करते हुए डॉ. मधुकर पांडवी ने 'कला का जोखिम' में सच्चाई प्रकट किया है कि "आज की जड़ित, पीड़ित, पराधीन होती हुई सभ्यता सम्पूर्ण रूप से स्वतंत्र रह सके और स्वतंत्र रहकर ही अपने अलगाव का अतिक्रमण कर सके।"1 यही कारण है कि यह सोच हमारी मानसिकता के साथ-साथ हमारे स्वार्थी जीवन प्रणाली को दर्शाने लगा है। जिसके चलते संयुक्त परिवार विघटित होने लगा है। इसके साथ ही साथ गाँवों से शहर की ओर पलायन बढ़ा, खेत-खलियान के स्थान पर सीमेंट-बालू ने धारण कर लिया और रेत की फसलें आज लहलहाने लगी। आज सबसे अधिक यह पाया जा रहा है कि खेत की कमी आ गई और खेत का स्थान आज कल-कारखानों ने ले लिया। आज एक ओर जहाँ स्त्री, दलित, आदिवासी विमर्श आदि की गूँज चारों ओर सुनाई पड़ रही है। परन्तु वृद्ध की समस्याओं की गूँज उस रूप में उभरता हुआ नहीं दिखाई दे रहा है जिस रूप में होना चाहिए। जबकि एक माता-पिता अपने बच्चों से बस यही चाहत रखता है कि बुढ़ापे में उसका बच्चा उसके साथ रहे। प्राचीन काल से ही यह माना जाता रहा है कि "यद्दपि पोष मातरं पुत्र: प्रभुदितों ध्यान। / इतदगे अन्तणो भवाम्यहतौ पितरौ ममां।।"2

अर्थात् "जिन माता-पिता ने अपने अथक प्रयत्नों से पाल-पोस कर मुझे बड़ा किया है, अब मेरे बड़े होने पर जन वे अशक्त हो गए हैं तो वे 'जनक-जननी' किसी भी प्रकार से पीड़ित न हों, इस हेतु मैं सेवा, सत्कार से उन्हें संतुष्ट कर ऋण के भार से मुक्ति कर रहा हूँ।" यजुर्वेद में यह दिया गया श्लोक, हमें अपने माता-पिता और अपने बुजुर्गों के प्रति अपने कर्त्तव्यों को पूरा करने की शिक्षा देता है और बुजुर्गों का सम्मान करने का मार्ग प्रशस्त करता है।

आज हमारे समाज में वृद्ध लोगों को दोयम दर्जे के व्यवहार का सामना करना पड़ रहा है। देश में तेजी से सामाजिक परिवर्तनों का यह दौर चालू है और इस कारण वृद्धों की समस्याएँ विकराल रूप धारण कर रही है। इसका मुख्य कारण देश में उत्पादन एवं मृत्यु दर में कमी आना या मृत्यु दर का घटना। जबकि राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जनसंख्या की गतिशीलता से हैं। विगत दशकों में स्वास्थ्य सुविधाओं में गंभीर बीमारियों के कारण मृत्यु दर में गिरावट आई है। साथ ही वृद्धों की जनसंख्या में वृद्धि पायी गई है। विश्व स्तर पर 7.1 प्रतिशत वृद्धों की जनसंख्या

में वृद्धि हो रही है जबकि 55 वर्ष आयु वाले वृद्धों की जनसंख्या में 2.2 प्रतिशत की दर से वृद्धि हो रही है। देश में बहुत ही जल्द यह विषमता आने वाली है कि वृद्धजन, जो कि जनसंख्या का अनुत्पादन वर्ग है, वह शीघ्र ही उत्पादन वर्ग से बड़ा होने वाला है।

"अंतिम अरण्य" उपन्यास- "अंतिम अरण्य" सन 2000 में प्रकाशित निर्मल वर्मा का अंतिम उपन्यास है। यह उपन्यास उन के अन्य उपन्यासों के समान होते हुए भी कहीं उनसे भिन्न है। निर्मल वर्मा के सभी उपन्यास मानव संवेदना के उस अतल को छूते हैं जहाँ अनेक ज्वालामुखी सोते हैं। एक हल्का धुआँ कुहासे की तरह उठता रहता है जो संवेदना से भरे मन के होने का पता देता है पर ये ज्वालामुखी फूटते नहीं हैं और बाहर की बजाय भीतर की तरफ खुलते हैं, अपने ही मन की परतें खोलते हुए पाठक को "विचार" के अनजाने तल पर ले जाकर छोड़ देते हैं अपनी-अपनी विचार- यात्रा करने के लिये। 'अंतिम अरण्य' उपन्यास वृद्धों की स्थिति एवं उसकी नियति से सम्बंधित है। साथ ही साथ व्यक्ति की असीम कल्पनाओं एवं उपेक्षाओं से युक्त है। क्योंकि उम्र का यह पड़ाव अपनों से हर अपनी अगली पीढ़ी से अपेक्षाएँ कर बैठता है परन्तु जब उनकी उपेक्षाओं की कसौटी पर नई पीढ़ी नहीं उतर पाती है तभी यह मानसिक टकराहट की स्थिति उत्पन्न होती है। इसमें ऐसे चरित्र भी है जो अँधेरे की यातना से घिरे इस धरती के अधूरे आत्मखंडित व्यक्तित्व है। जिसकी पूर्णता को कलाकृति अपने सत्य से निर्मित करती है। मेहरा साहब एक ऐसे ही पात्र है जो कि द्वन्द्वात्मक परिस्थितियों से घिरा हुआ है। वे औरों की तरह कमज़ोर, खांसते हुए चरित्र वाले व्यक्ति नहीं है बल्कि उस सघन यात्री के सामान है जिनके जीवन में स्मृतियाँ उनका पीछा नहीं छोड़ती। इसके बावजूद भी अनकही यातनाओं उन्हें स्पर्श कर ही जाती। अत: मूल रूप से इसमें वृद्ध जीवन की स्मृति, इतिहास, प्रकृति, जीवन, प्रतीक, मिथक, आदि जैसे शांत भाव है।

"अंतिम अरण्य" भी पाठक को सोच की ऐसी यात्रा पर ले जाता है जो मेहरा साहब की जीवन की अंतिम यात्रा के रूप में है। निर्मल वर्मा ने यह उपन्यास प्रथम पुरुष में लिखा है। लेखक कहानी के पात्रों के बीच रहता है "मैं" बन कर, कहानी वही सुना रहा है, स्थितियों और चरित्रों पर टिप्पणी दे रहा है। निर्मल वर्मा अपने उपन्यास अधिकतर इस "मैं" के माध्यम से ही जीते हैं। "अंतिम अरण्य" में लेखक उपन्यास के पात्र के माध्यम से ही कहानी में आया है। "उसे मेहरा साहब की पत्नी ने विज्ञापन दे कर बुलाया है ताकि वह मेहरा साहब के जीवन के बारे में, उनकी यादों को ब्यौराबद्ध कर सके। लेखक उस छोटे से शहर में अपने जीवन से बच कर दूसरों के जीवन में शामिल हो जाता है, मेहरा साहब, उनकी पत्नी, उनकी बेटी, अन्नाजी, डा. सिंह, निरंजन बाबू, मुरलीधर ..सबके जीवन के अतीत और वर्तमान में गूँथ जाता है। "3 यहाँ पहाड़ की निस्तब्धता में प्रत्येक का जीवन मानो संसार के शोर से बच कर आत्मविलोचन में लीन है। सब पात्र अपने भीतरी और बाहरी संसार के बीच में कहीं टँगे दिखते हैं। निर्मल वर्मा के उपन्यासों में यह बाहरी संसार उतना सक्षम और विराट रूप में नहीं दिखाई देता जैसा कि अन्य लेखकों की रचनाओं में दिखाई देता है। कई समाजवादी-मार्क्सवादी आलोचक इस बात से नाराज़ रहे होंगे। निर्मल वर्मा के उपन्यासों में यह संसार अपनी सच्चाई के साथ केवल उपस्थित रहता है, यानी उसका होना केवल संदर्भ वश है, पात्र समाज में ही रहते हैं, समाज के दिये सुख-दुख, अभाव-भाव को अन्य प्राणियों के समान सहते हैं पर यह समाज इतना ताकतवर नहीं हो पाता कि वह पात्रों को तोड़े या बनाए या बदले। इन उपन्यासों में आपसी रिश्ते, संबंध अधिक ताकतवर होते हैं और वही पात्र को संजोते और बिखराते हैं।

निर्मल वर्मा की लेखन शैली की यह विशेषता है कि वह कहानी नही बल्कि दृश्य और वातावरण प्रस्तुत करते हैं। इन दृश्यों में भी, वह दृश्य की ऊपरी तह तोड़, केवल दृश्य के भीतर ही नहीं बैठते हैं बल्कि उस दृश्य को उसकी भीतर और बाहरी विशेषताओं समेत पूरी समग्रता के साथ ईमानदारी से प्रस्तुत कर देते हैं। "अंतिम अरण्य" में भी कहानी या घटनाएँ कम और दृश्य अधिक हैं, इन दृश्यों की परतें हैं जो उपन्यास के कथानक के आगे बढ़ने के साथ-साथ उधड़ती हैं और उपन्यास के चरित्रों के भीतर का पूरा एक संसार खड़ा कर देती हैं। एक और बात ध्यान देने की है कि निर्मल जी के उपन्यासों में चरित्रों का "उपन्यासों की परम्परा के अनुसार" विकास नहीं होता है यानी "प्रारंभ, मध्य और चरम" की अवस्थाएँ नहीं आती हैं। पात्र कथानक के उतार-चढ़ाव और तनाव के बीच अपनी विभिन्न प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करता हुआ, हमारे सामने खुलता जाता है यानि चरित्र विकास की ऊर्ध्वोन्मुखी यात्रा करने की अपेक्षा, कथानक के समानांतर एक आत्मोन्मुखी यात्रा करते हैं, एक ऐसी यात्रा जो उपन्यास की कहानी समाप्त हो जाने के बाद भी समाप्त नहीं होती।

निर्मल वर्मा के उपन्यासों में सब कुछ मन की भूमि पर सार्थक बनने की चेष्टा करता हुआ दिखाई देता है। प्रकृति इस उपन्यास में भी उनके अन्य उपन्यासों की तरह पात्रों की मन: स्थिति को बाहरी कैनवास पर "री क्रियेट" करने का काम कर रही है, मतलब यह कि अन्य लेखकों से बिल्कुल अलग हटकर निर्मल वर्मा प्रकृति (बाहर) द्वारा पात्रों को प्रभावित होते हुए नहीं दिखाते बल्कि पात्रों की मन स्थिति से प्रकृति प्रभावित होते हुए दिखाते हैं जैसा कि इस उपन्यास में भी है।

"अंतिम अरण्य" तीन भागों में बँटा हुआ है। पहले भाग में कहानी का प्रारंभ लेखक द्वारा पहाड़ में बसे उस छोटे से शहर में पहुँचने से होता है। दूसरे दृश्य में मेहरा साहब बहुत बीमार हो जाते हैं और तीसरे दृश्य से पूर्व उनकी मृत्यु हो जाती है पर कहानी यहाँ समाप्त नहीं होती, लेखक मेहरा साहब के फूल लेकर नदी में अर्पित करने जाता है और पक्षियों को तर्पण का भोजन खिलाता है। मृत्यु और जीवन की विवेचना की तरह जो घटना वहाँ घटती है वह उपन्यास के उपसंहार के रूप में है। निर्मल वर्मा तर्पण के भोजन को खाने आए गिद्धों के बारे में लिखते हैं "आप सोचते हैं, ये अपनी भूख मिटाने आए हैं..वे

उन तृष्णाओं को चुगने आते हैं, जो लोग पीछे छोड़ जाते हैं। ये न आते, तो जिन्हें आप साथ लाए हैं..उनकी प्रेतात्मा भूखी-प्यासी भटकती रहती...आप क्या सोचते हैं-देह के जलने के बाद मन भी मर जाता है? आपको मालूम नहीं, कितना कुछ पीछे छूट जाता है। आप सौभाग्यवान हैं कि मैंने बुलाया और ये आ गए..कभी-कभी तो लोग घंटों बाट जोहते रहते हैं और ये कहीं दिखाई नहीं देते। " इस उपन्यास में मृत्यु की प्रतीक्षा में जीवन का और मृत्यु के बाद तर्पण के माध्यम से जीव का दुर्लभ विवेचन देखने को मिलता है।

श्रीलाल शुक्ल इस उपन्यास के विषय में लिखते हैं "निश्चय ही, बाहर से शान्त और तटस्थ सी दिखती हुई यह कुछ विलक्षण दुनिया है। या निर्मल यह लक्षित करा रहे हैं कि लोगों के भीतर गहनता से प्रवेश करने की प्रवृति हो तो दुनिया का सहज से सहज दिखने वाला कोना भी विलक्षण लगेगा?"4

"पत्थर ऊपर पानी" उपन्यास- रवीन्द्र वर्मा ने 'पत्थर ऊपर पानी' में संबंधों के गिरावट को शब्दों में लाने का उपक्रम किया है जो पत्थर से भी ज़्यादा कठोर और संवेदन शून्य होती जा रही है। दरअसल वह पानी सूख गया है जो रिश्ते-नातों और संबंधों की जड़ें सींचता था और आत्मीयता की शाखें हरी-भरी रखता था। "संबंधों के साथ ही व्यक्ति और वक्त भी व्यतीत होते गए हैं। यह गुज़र जाने का भाव गहरे मार्मिक मृत्युबोध को व्यक्त करता है। रिश्ते टूटते हैं तो मर जाते हैं। नैना और पौ. चंद्रा हों या सीतादेवी और उनके पुत्र इसी भयानक आपदा को झेलते हैं। "5 इस छोटे उपन्यास में मृत्यु का बड़ा अहसास कथा-प्रसंग भर नहीं है। "संबंधों के अंत को गहराने वाली लेखकीय दार्शनिक युक्ति-मात्र भी उसे नहीं कह सकते। वह एक स्थायी पीड़ा और ऐसी लड़ी है जिसमें हम जीवन को खोकर उसे फिर से पाते हैं। यही खोने-पाने का महान् अनुभव यहाँ मृत्यु की त्रासदी में उजागर होता है। इस मायने में यह जीवन के अनुभव को रचना में महसूस करना है।"6

इस उपन्यास की काव्यात्मक भाषा एवं अन्य उल्लेखनीय विशेषता है। बिम्ब रूपक में बदलकर आशयों को विस्तार और बड़े अर्थ देते हैं। वस्तुत: जीवन के विच्छिन्न सुरताल को पकड़ने की इच्छा और बची हुई गूँज को सुरक्षित रखने की सद्भावना की प्रस्तुति के लिए इस भाषिक विधान से बेहतर और कोई विकल्प नहीं हो सकता था। इस भाषा में गद्य का गाम्भीर्य और स्पष्ट वाक्य-विन्यास के साथ कविता की स्वत: स्फूर्त शक्ति समन्वित है। इस संदर्भ में यह कथा रचना कविता का आस्वाद भी उपलब्ध कराती है।

21वीं सदी में आते-आते आधुनिक जीवन शैली और भौतिकता के प्रभाव से संयुक्त परिवार प्रणाली नष्ट-भ्रष्ट हो गई और संस्कारों में भी पलीता लग गया। नैतिक मूल्य जर्जर होकर गिर रहे हैं, परंपरागत संस्कार पश्चिमीकरण की भेंट चढ़ गए हैं। पूँजी, पैसे और भौतिकता ने नए मूल्य और रिश्ते स्थापित कर लिए। "विश्व बाज़ारवाद के पीछे अपने खतरनाक मनसूबे के लिए अंतरराष्ट्रीय अपराधी सरगना की तरह खड़ा उत्तर-पूँजीवादी तमाम प्राचीन सभ्यताओं को हाँक कर ले जाता, आधुनिकता और उसकी गुलामी में लगा पश्चिम का विज्ञानवाद संचार प्रौद्योगिकी के विषय हैं, जो हिन्दी उपन्यास वैचारकी और चिंताओं को रेखांकित करता है।

वृद्धों की चिंता को हिन्दी साहित्य में 'वृद्ध विमर्श' के रूप में उद्घाटित किया जा रहा है। बुजुर्गों को केंद्र में रखकर हिन्दी कथा साहित्य में लेखन हो रहा है। वृद्ध विमर्श समकालीन दौर का महत्त्वपूर्ण विमर्श है। आज भारत में ही नहीं, अभी तो वैश्विक स्तर पर वृद्धों की स्थिति पर चिंतन हो रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने पहल करते हुए 14 दिसंबर 1990 को निर्णय लिया कि 1 अक्तूबर अंतरराष्ट्रीय बुज़ुर्ग दिवस के रूप में मनाया जाएगा। आज हम देख रहे हैं कि आए दिन वृद्धाश्रमों की संख्या बढ़ रही है। परिवार में बुज़ुर्ग व्यर्थ होते जा रहे हैं। आज का युवा वर्ग टी.वी और इंटरनेट में ही अपनी दुनिया तलाश रहा है। उनकी दोस्ती-रिश्तेदारी सब इंटरनेट में सिमट कर रह गई है। इसका परिणाम यह है कि - "अब टी.वी की चकाचौंध में वृद्धों की बातें धुँधली पड़ गई हैं।"7

निष्कर्ष- हिन्दी कथा साहित्य बुजुर्गों की समस्याओं को अपना विषय बनाकर लेखन कर रहा है। समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं, घटने का नाम नहीं ले रहीं हैं। वृद्धाश्रमों की स्थापना इसी का परिणाम हैं। आदमी का अनुपयोगी हो जाना ही वृद्धावस्था की सबसे बड़ी कठिनाई है। अनुपयोगिता का एहसास होते ही व्यक्ति के गतिशील जीवन में रुकावट-सी आ जाती हैं। मान-सम्मान, प्रेम-आदर में कटौती महसूस होने लगती है। उसकी मन: स्थिति में अनायास ही बदलाव आ जाता हैं। समय काटने हेतु विविध आयामों को ढूँढ़ना पड़ता हैं। शारीरिक कमजोरी की वजह से वह अपने को मानसिक रूप से भी कमज़ोर समझने लग जाता हैं। पीढ़ी का अंतर बताकर जब घर-परिवार के सदस्य उसकी बात को नकारने लगते हैं, तब अनुपयोगिता का एहसास ओर गहरा हो जाता हैं। जीवनानुभावों का, विचारधाराओं का जब अनादर होने लगता हैं तो वह बुज़ुर्ग अपने को समाज की एक व्यर्थ इकाई समझने लगता हैं और तब उसकी समस्या हल होने के बजाय अधिक विकट रूप धारण करती हैं। कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य में वृद्धों की समस्याओं को 'वृद्ध विमर्श' के रूप में उठाया जा रहा है। इस विषय पर अनेक कहानियाँ और उपन्यास लिखें जा रहें हैं। इस प्रकार वृद्ध विमर्श में 21वीं सदी के हिन्दी कथाकार अपने कथा साहित्य से वृद्धों की स्थिति को बेबाकी से चित्रण कर रहें है तथा उनके पक्ष में वातावरण बनाने में सफल हो रहें है।

000

संदर्भ- 1. डॉ. मधुकर पांडवी, पृ. सं. - 45, 2 http://www.hindisamay.com, 3. "अंतिम अरण्य", निर्मल वर्मा, पृ. सं. - 19, 4. श्रीलाल शुक्ल, पृ. सं. - 67, 5. "पत्थर ऊपर पानी", रविंद्र वर्मा, पृ. सं. - 72, 6. सिंह विजय बहादुर - उपन्यास समय और संवेदना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 19, 7. मार्टिन मेकवेल - मेरी कथा: संघर्ष और भविष्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृष्ठ 100

(शोध आलेख)

प्रभा खेतान की सशक्त यात्रा: 'अन्या' से 'अनन्या' तक

शोध लेखक : पिंकी शोधार्थी, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

शोध पत्र सार - "अन्या से अनन्या" प्रभा खेतान की आत्मकथा है, जो उनकी जीवन यात्रा का एक स्पष्ट और लचीला अन्वेषण प्रस्तुत करती है। यह आत्मकथा एक नारीवादी आवाज़ को प्रस्तुत करती है जो पिछले कुछ वर्षों में मजबूत हुई है और अपने अनुभवों के बारे में खुलकर बोलती है। यह ऐसे समाज में एक महिला के जीवन की चुनौतियों पर हुई जीत पर एक अद्वितीय और व्यक्तिगत दृष्टिकोण प्रदान करती है जहाँ महिलाओं की आवाज़ और कहानियों को अक्सर दबा दिया गया है या हाशिए पर डाल दिया गया है। प्रभा खेतान की कहानी सिर्फ एक निजी संस्मरण नहीं है बल्कि यह महिलाओं के शोषण के प्रति समाज के प्रतिरोध का प्रतिबिंब भी है। उनके अनुभव, चुनौतियाँ और उन बाधाओं का प्रतीक हैं जिनका महिलाओं को जीवन के विभिन्न पहलुओं में सामना करना पड़ता है। उनकी आत्मकथा उनके जीवन की आंतरिक यात्रा को उजागर करती है, जो संघर्ष और जीत से परिपूर्ण है। यह न केवल उनकी व्यक्तिगत यात्रा है बल्कि पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं के व्यापक संघर्षों का प्रतिबिंब भी है। प्रभा खेतान की कहानी दूसरों को प्रेरित करने, सामाजिक मानदंडों को चुनौती देने और अधिक समावेशी और न्यायसंगत भविष्य का मार्ग प्रशस्त करने के लिए महिलाओं द्वारा अपनी कहानियों और अनुभवों को खुलकर साझा करने के महत्त्व को दर्शाती है। यह महिलाओं की ताकत और लचीलेपन का एक शक्तिशाली प्रमाण है और नारीवादी आवाजों की बढ़ती आवाज़ में योगदान देता है।

पिंकी
सुपुत्री श्री घनश्याम
शोधार्थी, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक

भूमिका- "अन्या से अनन्या" प्रभा खेतान द्वारा लिखी गई एक आत्मकथा है, और यह उनके जीवन के अनुभवों और व्यक्तिगत यात्रा का जीता-जागता दस्तावेज़ है। इस आत्मकथा में, प्रभा खेतान एक नारीवादी आवाज़ पेश करती हैं जो पिछले कुछ वर्षों में और अधिक प्रमुख और मुखर हो गई है। वह दुनिया पर एक अद्वितीय और व्यक्तिगत दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, एक ऐसे समाज में एक महिला के जीवन की चुनौतियों और जीत को उजागर करती है जहाँ महिलाओं की आवाज़ और कहानियों को अक्सर दबा दिया गया है या हाशिए पर डाल दिया गया है।

इस आत्मकथा के बारे में अभयकुमार दुबे ने लिखा है -"प्रभा खेतान ने आत्मकथा लिखकर स्त्री जीवन की दुर्बलताओं के प्रामाणिक ब्यौरे पेश किए और उनके आईने में समाज को मजबूर किया है कि, वह स्त्री-पुरुष संबंधो पर एक बार फिर से सोचे।"1

प्रभा खेतान की आत्मकथा का मूल्यांकन करते हुए डॉ. सरजूप्रसाद मिश्र ने लिखा है - 'अन्या से अनन्या प्रभा खेतान नामक लेखिका की नियति का इतिवृत्त भले ही हो, भारतीय नारी की दशा का दर्पण तो यह निश्चित ही है।"2

"अन्या से अनन्या" शीर्षक अपने आप में 'अन्य' से 'अद्वितीय' या 'असाधारण' होने की यात्रा का सुझाव देता है। इस आत्मकथा के संदर्भ में, यह एक व्यक्ति, विशेष रूप से एक महिला, के समाज में 'सिर्फ एक अन्य व्यक्ति' के रूप में समझे जाने से लेकर एक विशिष्ट और उल्लेखनीय व्यक्ति बनने तक के परिवर्तन का प्रतीक है। प्रभा खेतान की कहानी व्यक्तिगत विकास, आत्म-खोज और सशक्तिकरण में से एक है, जहाँ वह अपने ऊपर लगाई गई सामाजिक अपेक्षाओं से एक अद्वितीय और प्रामाणिक आत्म तक विकसित होती है। आत्मकथा सिर्फ एक व्यक्तिगत संस्मरण नहीं है, बल्कि महिलाओं की आवाज़ और आख्यानों के प्रति समाज के प्रतिरोध का प्रतिबिंब भी है। प्रभा खेतान के अनुभव और चुनौतियाँ उन बाधाओं के प्रतीक हैं जिनका महिलाओं को जीवन के विभिन्न पहलुओं में सामना करना पड़ता है। अपने जीवन के बारे में उनकी स्पष्ट और खुली चर्चा उन पारंपरिक मानदंडों और मूल्यों की आलोचना है जो सदियों से महिलाओं की प्रगति और अभिव्यक्ति में बाधा बने हुए हैं। "अन्या से अनन्या" के पन्नों में पाठक लेखक के जीवन की आंतरिक यात्रा का चित्रण पा सकते हैं। संघर्ष, संघर्ष और जीत पूरी कहानी में अंतर्निहित हैं। प्रभा खेतान की कहानी न केवल उनकी व्यक्तिगत यात्रा के बारे में है बल्कि पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं के व्यापक संघर्षों को प्रतिबिंबित करने वाली एक दर्पण भी है। उनके व्यक्तिगत और पेशेवर दोनों अनुभव, पारंपरिक भूमिकाओं और अपेक्षाओं से मुक्त होने की कोशिश करते समय महिलाओं के सामने आने वाली चुनौतियों की अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

प्रभा खेतान की कहानी व्यक्तिगत विकास, आत्म-खोज, और शक्तिप्राप्ति की है, जहाँ उन्होंने अपनी जीवन पर डाली गई सामाजिक अपेक्षाओं से अपने आत्मा के असली रूप का विकास किया है। इस आत्मकथा के पन्नों में पाठक लेखिका की व्यक्तिगत यात्रा की प्रत्येक चुनौती, विरोध, और विजय का अंदाज़ पा सकते हैं। प्रभा खैतान की कहानी केवल उनकी व्यक्तिगत यात्रा ही नहीं है, बल्कि एक समाज के सामाजिक निर्माण और संचालन के सामान्य नियमों और मूल्यों की प्रगति और अभिव्यक्ति में महिलाओं की रुकावटों की भी छाया है। उनके व्यक्तिगत और व्यावसायिक अनुभव से यह भी दिखता है कि महिलाएँ जब विभिन्न भूमिकाओं और अपेक्षाओं से मुक्त होने की कोशिश करती हैं, तो वे किस प्रकार की चुनौतियों का सामना करती हैं।

"अन्या से अनन्या" एक प्रभावशाली आत्मकथा है जो महिलाओं की शक्ति और साक्षात्कार के रूप में कार्य करती है। प्रभा खेतान की कथा न केवल उनकी अद्वितीय जीवन को प्रदर्शित करती है, बल्कि फेमिनिस्ट आवाजों की बढ़ती संख्या में एक योगदान भी करती है। यह महत्त्वपूर्ण बनाता है कि महिलाएँ अपनी कहानियाँ और अनुभवों को खुले दिल से साझा करने के रूप में अपनाती हैं, ताकि वे दूसरों को प्रेरित कर सकें, समाज के मानदंडों को चुनौती दें, और आख़िरकार एक औरत-सशक्तिकरण और समाज में और ज़्यादा समावेशी और समान भविष्य की दिशा में मार्ग प्रशस्त करें। "हंस पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित प्रभा खेतान कृत 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा को जहाँ एक बोल्ड और निर्भीक आत्मस्वीकृत की साहसिक गाथा के रूप में अंकुठ प्रशंसाएँ मिली वहीं बेशर्म और निर्लज्ज स्त्री द्वारा अपने आपको चौराहे पर नंगा करने की कुत्सित बेशर्मी का नाम भी इसे दिया गया है..।"3

"प्रभा खेतान एक निर्भीक और साहसी महिला थी। उन्होंने अपनी जीवनगाथा को बिना किसी हिचकिचाहट के सबके सामने रखा। उस समय के सामाजिक रूढ़िवादी विचारधाराओं को प्रस्तुत किया, जिसके कारण वह अनेकों की नजरों में खटकने लगी थी। इसलिए, अपनी आत्मकथा लिखने के अवसर पर वह कहती है- 'वास्तव में, आत्मकथा लिखना स्वर्गिया का नृत्य है, जैसे कि आप चौराहे पर एक-एक करके कपड़े उतारते जाते हैं। लेखक के मन में आत्मप्रदर्शन का भाव किसी-न-किसी रूप में मौजूद रहता है, और मन के किसी कोने में एक हल्की सी इच्छा रहती है कि लोग उसे ग़लत नहीं समझें, और जो कुछ भी वह लिख रहा है, उसे सही परिप्रेक्ष्य में देखा जाए...।"4

प्रभा खेतान हिन्दी भाषा की एक प्रतिष्ठित उपन्यासकार, कवयित्री, नारीवादी विचारक और सामाजिक कार्यकर्ता थीं। उन्हें कोलकाता चैंबर ऑफ कॉमर्स की एकमात्र महिला अध्यक्ष होने का गौरव प्राप्त हुआ। वह केन्द्रीय हिन्दी संस्थान की सदस्य थीं। उन्हें वैश्विक बाज़ार और औद्योगिक जगत् की गहरी समझ थी और उन्हें हिन्दी साहित्य जगत् में एक नारीवादी लेखिका के रूप में हमेशा याद किया जाएगा। हालाँकि, इन सभी सफलताओं की राह में उन्हें कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। वह जीवन के हर मोड़ पर संघर्ष करती रहीं, कभी व्यक्तिगत स्तर पर तो कभी सामाजिक स्तर पर। लेकिन हिम्मत न

हारते हुए वह लगातार अपने जीवन पथ पर आगे बढ़ती रहीं। उनका जन्म पुराने जमाने के मारवाड़ी परिवार में हुआ था, जो बेटी के जन्म से खुश नहीं थे। साथ ही, उसके गहरे रंग के कारण उसके परिवार ने अनिच्छा से उसे अपनाया, जिससे उसकी स्थिति और जटिल हो गई। परिणामस्वरूप, वह बचपन से ही अपने परिवार और माँ के प्यार और देखभाल से वंचित हो गई। उनकी माँ भी उन्हें पसंद नहीं करती थीं, इसलिए उनका पालन-पोषण एक नर्स ने किया। उनका उपेक्षित बचपन इस प्रकार प्रकट होता है "बचपन की ओर मुड़ती हूँ और कभी-कभी सोचती हूँ कि आख़िर कैसे मैंने यह त्रासदी झेली। आख़िर मैं जिन्दा कैसे रह गई, एक बड़ी वाहियात सी ज़िंदगी जो थी।"5

इसलिए, प्रभा खेतान की आत्मकथा उनके पूरे जीवन में कई प्रतिकूलताओं का सामना करने में उनकी ताकत और लचीलेपन का एक प्रमाण है। "किसी के जीवन में परिवार और माँ के स्नेह और प्यार की कमी मन पर गहरा प्रभाव डालती है और जो लोग ऐसी परिस्थितियों का अनुभव करते हैं उनमें अक्सर विद्रोह करने की प्रवृत्ति विकसित हो जाती है। प्रभा खेतान भी इसकी अपवाद नहीं थीं. एक मारवाड़ी परिवार में जहाँ लड़की का जन्म पाप माना जाता था, उसने इस परंपरा का उल्लंघन किया और चमड़े के व्यापार व्यवसाय में कदम रखा, जिसमें आमतौर पर पुरुषों का वर्चस्व होता था। "महिला उद्यमी प्रभा खेतान के लिए मारवाड़ी पुरुषों की दुनिया में प्रवेश करना कितना दुस्साहस था। ऐसे समाज में जहाँ लड़की का जन्म पाप माना जाता था, उन्होंने मानदंडों को चुनौती दी और साहसपूर्वक चमड़े के व्यापार व्यवसाय में लगी रहीं। जिसके बारे में बायोग्राफी में एक लाइन का ज़िक्र है" "महिला उद्योगपति प्रभा खेतान का यही दुस्साहस क्या कम रहा कि वह मारवाड़ी पुरुषों की दुनिया में घुसपैठ करती है।"6

जब जीवन की यात्रा कठिनाइयों से भरी होती है, तो यह अक्सर एक व्यक्ति को बहादुर और लचीले व्यक्ति में बदल देती है। प्रभा खेतान भी इस परिवर्तन की अपवाद नहीं थीं। उसे सामाजिक परंपराओं की बहुत कम परवाह थी और वह दुनिया के फैसलों से नहीं डरती थी। नतीजतन, उन्होंने खुले तौर पर डॉ. सराफ के प्रति अपने प्यार को स्वीकार किया, "यहाँ तक कि विवाह की संस्था को भी चुनौती दी, जिसे भारतीय संस्कृति में एक पवित्र परंपरा के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है। विवाहित महिलाओं को समाज में उच्च सम्मान दिया जाता है, लेकिन अविवाहित महिलाओं, विशेषकर प्रेम संबंधों वाली महिलाओं को अक्सर उस सम्मान से वंचित किया जाता है।"7

डॉ. सराफ, जो पहले से शादीशुदा थे और प्रभा से उम्र में काफी बड़े थे, उनसे प्यार करते थे और उन्होंने खुले तौर पर ख़ुद को डॉ. सराफ की प्रेमिका घोषित कर दिया था। वह जानती थी कि जीवन में उसे कभी भी पत्नी का दर्जा नहीं मिलेगा। फिर भी, उसने साहसपूर्वक और ईमानदारी से अपना जीवन उसकी प्रेमिका के रूप में जीया, अपना पूरा अस्तित्व उसे समर्पित कर दिया। प्रभा खेतान एक सफल, निपुण और दृढ़निश्चयी महिला थीं, जिन्होंने साहसपूर्वक पारंपरिक परंपराओं को चुनौती दी, क्योंकि उन्होंने कभी भी अपने प्रेमी की शरण नहीं ली, बल्कि जीवन में अपना अनूठा रास्ता बनाया। उनकी कहानी सामाजिक मानदंडों और चुनौतियों का सामना करने में उनके अटूट साहस और लचीलेपन का प्रमाण है।

"मैं प्रभा खेतान... मैं कौन हूँ? क्या मेरी कोई पहचान नहीं है? मैं सधवा नहीं, क्योंकि मेरी शादी नहीं हुई, मैं विधवा नहीं...क्योंकि कोई दिवंगत पति नहीं, मैं कोठे पर बैठी हुई रंडी भी नहीं... क्योंकि मैं अपने देह का व्यापार नहीं करती, स्वावलम्बी हूँ, अपना भरण-पोषण ख़ुद करती हैं। स्वेच्छा सेएक जीवन का वरण किया है।"8

निष्कर्ष- निष्कर्षत: "अन्या से अनन्या" महज़ एक आत्मकथा से कहीं अधिक है, यह महिलाओं की ताकत और लचीलेपन का एक शक्तिशाली प्रमाण है, जिसे प्रभा खेतान के जीवन और अनुभवों के माध्यम से दर्शाया गया है। उनकी स्पष्ट कथा उन सामाजिक मानदंडों को चुनौती देती है जिन्होंने पीढ़ियों से महिलाओं की आवाज़ को दबा दिया है। यह पुस्तक पारंपरिक भूमिकाओं और अपेक्षाओं से मुक्त होने पर महिलाओं द्वारा सामना किए जाने वाले संघर्षों को प्रतिबिंबित करने का काम करती है। प्रभा खेतान की कहानी महिलाओं द्वारा दूसरों को प्रेरित करने, सामाजिक मानदंडों को चुनौती देने और अधिक समावेशी और न्यायसंगत समाज का मार्ग प्रशस्त करने के लिए अपने अनुभवों को खुलकर साझा करने के महत्त्व की एक आकर्षक याद दिलाती है। बेटी के जन्म को शर्मसार करने वाले समाज से एक सफल उद्यमी बनने और अपरंपरागत प्रेम को अपनाने तक की उनकी यात्रा उनके अटूट साहस को उजागर करती है। यह उन महिलाओं के लचीलेपन और दृढ़ संकल्प का प्रमाण है जो अपनी शर्तों पर जीवन जीने के लिए सामाजिक अपेक्षाओं को चुनौती देती हैं।

"अन्या से अनन्या" सिर्फ एक आत्मकथा नहीं है; यह महिलाओं के लिए साहसपूर्वक अपनी कहानियों और अनुभवों को साझा करने का आह्वान है, जो समाज के मानदंडों को चुनौती देने और नया आकार देने वाली नारीवादी आवाजों की बढ़ती आवाज़ में योगदान देता है।

प्रभा खेतान का जीवन एक प्रेरणा और अनुस्मारक के रूप में कार्य करता है कि पारंपरिक भूमिकाओं से मुक्त होकर अधिक समावेशी और न्यायसंगत भविष्य का निर्माण किया जा सकता है।

000

संदर्भ-

1.हंस पत्रिका, नवम्बर 2008, पृष्ठ सं. 70 2.सरजू प्रसाद मिश्र, हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाएँ, पृष्ठ सं. 111 3.प्रभा खेतान, अन्या से अनन्या, , राजकमल प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 15 4.वही, पृष्ठ सं. 135 5.वही, पृष्ठ सं. 152 6.वही, पृष्ठ सं. 21 7.सरजू प्रसाद मिश्र, हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाएँ, पृष्ठ सं. 220 8.वही, पृष्ठ सं. 44

(शोध आलेख)

नारी मन : विविध प्रश्नों का निवास स्थान

शोध लेखक : पल्लवी देवी
(पी.एच.डी शोधार्थी)
हिन्दी विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय,
जम्मू - 180006

शोध सारांश - प्राय: जब मानव-समाज की संरचना की कल्पना की जाती है तो स्त्री और पुरुष दोनों उसके ऐसे महत्त्वपूर्ण अंश के रूप में सामने प्रस्तुत होते हैं कि उन में से यदि एक को उससे अलग करके देखा जाए तो एक पूर्ण मानव-समाज की संकल्पना अपूर्ण रह जाती है। समाज रूपी गाड़ी को चलाने में पुरुष और स्त्री स्वरूप दोनों पहियों की समान भूमिका रहती है लेकिन इसी मानव-समाज में जहाँ पुरुष को अपना जीवन अपनी इच्छानुसार स्वतंत्र रूप से व्यतीत करने के साथ-साथ अपने मन के प्रश्नों, इच्छाओं, अभिलाषाओं, आकांक्षाओं, शारीरिक आवश्यकताओं और काम-भावनाओं को अभिव्यक्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता है, वहीं स्त्री के लिए यह स्वतंत्रता केवल नाम-मात्र की है। समाज ने नारी को अपने अंतर्मन के प्रश्नों को व्यक्त करने हेतु बहुत ही कम अवसर प्रदान किए हैं किन्तु यदि कभी उसे मौका दिया भी है तो उसके प्रश्नों का उचित उत्तर नहीं दे पाया है। उसे सदैव यही सिखाया जाता है कि वह अपने मन में उठ रहे प्रश्नों को मन में ही दबाकर रखे। ऐसे ही प्रश्नों की अभिव्यक्ति और उनके उचित उत्तर की तलाश में भटक रहे नारी पात्रों का चित्रण विभा रानी ने अपने नाटकों में किया है।

बीज शब्द - संरचना, मानव-समाज, संकल्पना, साहित्यकार, हिन्दी साहित्य, वास्तविक रूप, दर्शन, अविस्मरणीय योगदान।

वर्तमान में बहुत से साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से हिन्दी साहित्य की समृद्धि हेतु और समाज के वास्तविक रूप को चित्रित करने के साथ-साथ उसका उचित मार्ग-दर्शन करने हेतु अपना अविस्मरणीय योगदान देने में संलग्न हैं। ऐसे साहित्यकारों में विभा रानी का नाम भी काफी प्रसिद्ध है। वह एक सशक्त एवं सुप्रसिद्ध नाट्य लेखिका हैं। वह नाट्य विधा को सामाजिक परिवर्तन का सबसे प्रभावशाली माध्यम मानती है क्योंकि समस्त साहित्यिक विधाओं में नाटक ही एक ऐसी विधा है, जिसका समाज के साथ सीधा और घनिष्ठ संबंध होता है। नाटक एक ऐसी कला है जिसके द्वारा व्यक्ति के भावों और विचारों को रंगमंच पर प्रभावपूर्ण रंगमंचीय उपकरणों तथा भंगिमाओं सहित दर्शाया जाता है।

इन्होंने 'आओ तनिक प्रेम करें' और 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो' दोनों नाटकों में स्त्री-मन को विविध प्रश्नों के निवास स्थान स्वरूप चित्रित किया है। 'मन' को शरीर के ऐसे हिस्से तथा प्रक्रिया के रूप में स्वीकारा जाता है जिससे मनुष्य किसी विषय को समझने और उस पर चिंतन कर पाने में सक्षम होता है। मनुष्य मन में समय के साथ-साथ विभिन्न इच्छाएँ, लालसाएँ, वासनाएँ, स्वप्न, उत्तर तथा प्रश्न जन्म लेते हैं, जिनकी स्पष्ट रूप से गणना नहीं की जा सकती है। इसी प्रकार यदि स्त्री-मन में झाँक कर देखा जाए तो वहाँ अनेक ऐसे प्रश्न मिलेंगे जो उत्तर पाने के लिए व्याकुल हैं। स्त्री कभी समाज, परिवार, अपनों, बेगानों तो कभी स्वयं से ही प्रश्न करने लगती है परन्तु उसे अधिकांश प्रश्नों के उत्तर नहीं मिल पाते और वे 'प्रश्न' मात्र प्रश्न ही बनकर रह जाते हैं जो जीवन के अंतिम क्षण तक उसकी आत्मा को कचोटते रहते हैं।

'आओं तनिक प्रेम करें' नाटक में ऐसे ही प्रश्नों की कचोट को सहन करता स्त्री-हृदय दृष्टिगोचर होता है। सपन अपनी आधी ज़िंदगी जी चुकी है किन्तु वह जीवन उसने अपनी इच्छानुसार व्यतीत नहीं किया है। अपनी ही ज़िंदगी अपनी मर्जी से जीने का अधिकार उसे नहीं है, इस संदर्भ में वह पति से प्रश्न करती है, "... आख़िरकार यह देह मेरी है, आत्मा मेरी है, इच्छाएँ और कामनाएँ मेरी हैं, तो क्या इन सबके साथ रहने का, जीने का मेरा अपना कोई अधिकार नहीं?"1 इसी तरह वह उससे यह भी पूछती है कि स्त्री को प्रत्येक रूप में पुरुष के प्रेम-प्रसंग सुनने और अपने छुपाए रखने के लिए आख़िर क्यों विवश होना पड़ता है -

"... कोई लड़की अगर किसी से प्रेम करे तो उसे क्यों जीवन-भर सबसे छुपाकर रखना होता है? ...उसके प्रेम की कथा सुनने की ताब क्यों किसी में नहीं होती? न बाप, न भाई, न पति, न

पल्लवी देवी
खन्दवाल, जम्मू - 181101
जम्मू-कश्मीर
मोबाईल- 7051229384
ईमेल- pallvibhagat090@gmail.com

बेटा?" लेकिन औरत माँ, बहन, बीवी, बेटी बनकर सबकी प्रेम-कहानियाँ सुनती रहे। "2 पति द्वारा अपने प्रश्नों का कोई भी उत्तर न पाकर वह और भी ज़्यादा असमंजस में पड़ जाती है। जब उसे समझ नहीं आता कि वह इन प्रश्नों के उत्तर किससे माँगे, तब वह ख़ुद स ही प्रश्न करने लगती है -

"...प्रेम, पुरुष, प्रेमी ... हम लोगों को अपने जीवन का यह सबसे अहम हिस्सा सभी से दबाकर, छुपाकर क्यों रखना होता है? किसी पुरुष में क्यों यह ताकत नहीं कि वह अपने जीवन के दूसरे हिस्से का राग सुने, उसका रंग देखे, उसके रस को छुए?"3 वह चाहती तो है कि जिस प्रकार पुरुष अपने प्रेम सम्बन्धों को सहजता से सबके समक्ष प्रदर्शित करता है, उसी प्रकार वह स्त्री-जीवन के सत्य को भी जानने की हिम्मत रखे परन्तु वह जानती है कि प्रत्येक पुरुष में इतनी सहनशीलता नहीं है कि वह स्त्री की प्रेम-कहानी सुन सके इसलिए जब वह यही असमर्थता अपने पति में भी देखती है तो उसका मन विद्रोह कर उठता है, "एकबारगी मन विद्रोह भी कर उठा कि जब ये सुना सकते हैं अपनी प्रेम-कहानी, वह भी एक नहीं, तीन-तीन, तो मैं क्यों नहीं?"4 वह अपने भीतर के विद्रोह को प्रत्यक्ष रूप देने की शक्ति तो रखती है किन्तु वह स्वयं भी सत्य को उदघाटित कर पाने में सक्षम नहीं हो पाती है क्योंकि वर्तमान में अतीत के पन्नों को पुन: पढ़ना, उसे याद करना उसके लिए आसान नहीं होता। उससे भी ज़्यादा वह अपने घर-परिवार की ख़ुशी और रिश्ते नातों को देखकर चुप रह जाती है कि कहीं उन रिश्तों में कड़वाहट न आ जाए।

'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो' नाटक के नारी पात्रों के मन में भी अनेक प्रश्न उत्पन्न होते दिखाई पड़ते हैं। विभा ने इस नाटक में मिथिला की एक लोककथा का वर्णन किया है, जिसमें एक भाई का अपनी बहन को पत्नी बनाने का संकल्प और माता-पिता का उस संकल्प को पूर्ण करने का निश्चय एक बेटी के मन को चकनाचूर कर देता है। उनका निर्णय उसे प्रश्न करने पर विवश कर देता है कि आख़िर क्यों उसके साथ ऐसा अन्याय किया जा रहा है। विवेच्य कृति में चंपाकली को जब ज्ञात होता है कि उसके भाई के साथ विवाह करने के अनैतिक संकल्प को पूर्ण करवाने में उसके माँ-पिताजी भी सहयोगी बन रहे हैं तो तब उसके मन में प्रश्न उठता है कि क्या एक बेटी का उसके माँ-बाप के जीवन में कोई महत्त्व नहीं है -

"माँ-पिताजी? वे कैसे मान गए? क्या बेटी का अस्तित्व इस संसार मंर कुछ भी नहीं? ... वह बेटा है, इसलिए यह पूरी की पूरी दुनिया, इसके नियम-कानून ... सब उसके हो गए? हमारे लिए कुछ भी नही?"5

एक पुत्री के लिए उसकी माता ईश्वर का दूसरा रूप होती है। वह जितना विश्वास ईश्वर पर करती है उतना ही विश्वास माँ पर भी करती है। माँ की छत्र-छाया में वह स्वयं के साथ कुछ भी अनुचित होने के बारे में सोच तक नहीं पाती किन्तु जब एक स्त्री ही पुत्री की अपेक्षा पुत्र के प्रति अधिक प्रेम-भाव रखने लगती है और पति के भय से पुत्र के अनुचित कर्म में उसका साथ देने हेतु तैयार हो जाती है तब बेटी के समक्ष उसका ईश्वरीय स्वरूप झूठा पड़ जाता है। ऐसा ही विश्वास चंपाकली को अपनी माँ पर होता है परन्तु जब सत्य उसके सामने आता है तब वह असहाय होकर उससे पूछने लगती है -

"माँ ... तुम भी पुत्र-मोह में इतना जकड़ गई? और सुहाग के भय से काँपकर इस अधर्म के लिए तैयार हो गई?"6 यह लोककथा बहुत ही आश्चर्यजनक है जिसे सामान्य जन या भारतीय सभ्यता सरलता से स्वीकार नहीं कर सकती है।

परिवार और अपने मित्रों के साथ खेले गए नाटक में अंकिता राजकुमारी चंपाकली की भूमिका निभाती है। चंपाकली पर अपनों द्वारा हुआ अत्याचार उसे सोचने पर विवश कर देता है कि क्या औरत सिर्फ भोग-सामग्री है, उसके अलावा क्या उसका कोई महत्त्व नहीं है। वह सामाजिक सम्बन्धों पर प्रश्न चिन्ह लगाती हुई अपनी माँ से कहती है, "ममा ... नाते-रिश्ते क्या इतने हलके हो गए हैं? हम क्या केवल इस्तेमाल के लिए हैं? Just use and throw ही हमारी नियति है क्या?"7

स्त्री चाहे आधुनिक समय की हो या फिर प्राचीन समय की, अधिकांश पुरुष उसे यौन-सुख प्राप्ति का साधन ही मानते आ रहे हैं। आधुनिक युग से पूर्व समाज प्राचीन मान्यताओं से जकड़ा हुआ था इसलिए स्त्री के साथ अन्याय होता था तो यह धारणा पूर्ण सत्य नहीं हो सकती क्योंकि आज जब समाज में पुरानी रूढ़ियों का खण्डन हो रहा है, आधुनिक सोच लोगों में पनप रही है, तब भी उसकी स्थिति में कोई विशेष अंतर देखने को नहीं मिल पा रहा है। वह आज भी कहीं न कहीं किसी रूप में प्रताड़ित की जा रही है। चंपाकली और अंकिता दोनों को केन्द्र में रखते हुए इशिता नाटक के अन्त में यही प्रश्न उठाती हुई नज़र आती है -

"उस जमाने में भी यह सब होता था, आज भी हो रहा है, तो हम बदले कहाँ?"8 इस तरह देखें तो ज्ञात होता है कि प्रत्येक स्त्री-हृदय अनगिनत प्रश्नों का निवास-स्थान है। वह इन तमाम प्रश्नों का उत्तर पाकर उनसे मुक्त होना चाहती है किन्तु उसे कोई भी स्पष्ट उत्तर नहीं मिल पा रहा है और वह इन्हीं प्रश्नों के साथ जीने के लिए विवश है।

निष्कर्ष - विभा रानी हिन्दी-साहित्य जगत् की एक सशक्त और सुप्रसिद्ध महिला नाटककार है। इनके द्वारा रचित 'आओ तनिक प्रेम करें' और 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो' दोनों नाटकों में नारी मन का सूक्ष्म चित्रण प्रस्तुत हुआ है। इन्होंने सपन और अंकिता को माध्यम बनाकर नारी मन में उठने वाले विविध प्रश्नों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। वह नारी को पुरुष के समान एक मनुष्य के रूप में देखने की इच्छुक है और समाज को भी यह संदेश देती है कि वह नारी के मन को समझने का सफल प्रयत्न करें और उसके मन में उठ रहे प्रश्नों के तूफान को शांत करें।

000

संदर्भ-

1-विभा रानी, आओ तनिक प्रेम करें, पृ. 49, 2-वही, पृ. 50, 3-वही, पृ. 50, 4-वही, पृ. 50, 5-विभा रानी, अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो, पृ. 50, 6-वही, पृ. 50, 7-वही, पृ. 40-41, 8-वही, पृ. 85,

(शोध आलेख)

धर्मवीर भारती की कहानी कला बन्द गली का आखिरी मकान' के विशेष संदर्भ में

शोध लेखक : डॉ. रीता दूबे
असिस्टेंट प्रोफेसर सीएम कॉलेज, दरभंगा

बीज शब्द :- धर्मवीर भारती, बंद गली का आखिरी मकान, स्वतंत्रता, कल्पनाशक्ति पितृसत्तात्मक समाज, आधुनिकता, ऐन्द्रिय बोध, रूपक, भावात्माक अनुभव आदि

धर्मवीर भारती का लेखन हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। संपादन, कथा, साहित्य, रिपोतोर्ज, डायरी और उपन्यास के साथ-साथ कविता लेखन में अपनी लेखनी की सिद्धहस्तता को धर्मवीर भारती ने सिद्ध किया। धर्मयुग के अपने संपादन काल में सिर्फ नई प्रतिमाओं को ही नहीं गढ़ा हर विषय को अपने विचारों के साँचे में ढाला। धर्म, राजनीति, साहित्य, फिल्म कला कोई भी विषय उनसे अछूता नहीं था। एक तरफ गुनाहों का देवता जैसा रुमानी उपन्यास तो दूसरी तरफ 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' जैसा प्रयोगवादी उपन्यास धर्मवीर भरती के सृजनशील कला का साक्ष्य है।

1946 में धर्मवीर भारती के कथा संग्रह 'मुर्दो का गाँव' का पहला संस्करण 21 साल की उम्र में प्रकाशित हुआ था। यह वह दौर था जब बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा था। और अंग्रेजी सरकार वेलफेयर स्टेट होने का ढोंग करती रही और लोगों को मरने के लिए छोड़ चुकी थी। धर्मवीर भारती ने ऐसे समय में भूख से तड़पती जनता को अपने कथा साहित्य में स्थान दिया।

इस कथा संग्रह मे कुल 9 कहानियाँ हैं। पहली कहानी मुर्दों का गाँव है। दूसरी कहानी 'एक बच्ची की कीमत' है। भूख के लिए अपनी ही बच्ची को बेचती औरत की मार्मिक आँखें पाठक को उद्वेलित कर देती हैं। मनुष्य का मनुष्य से ही विश्वास उठना 'आदमी का गोश्त' कहानी के मूल में है।

'बंद गली का आखिरी मकान' कहानी संग्रह 1969 में प्रकाशित हुआ था। इस कहानी संग्रह में कुल चार कहानियाँ हैं। संग्रह की पहली कहानी 'गुलकी बन्नो' (1955) में 'सावित्री नंबर' (1962) में 'यह मेरे लिए नहीं' 1963 में लिखी गई। कहानी संग्रह की आखिरी कहानी 'बंद गली का आखिरी मकान' (1969) में लिखी गई थी। इस कथा संग्रह की ख़ास बात यह है कि इसकी सभी कहानियाँ अलग-अलग समय अंतराल पर लिये जाने के बावजूद भी अपने भीतर के एकसूत्रता को त्यागती नहीं हैं।

इन कहानियाँ का परिवेश इलाहाबाद के गाँव, मुहल्ले और गलियाँ हैं। ये वही गलियाँ हैं जिनमें धर्मवीर भारती का जन्म हुआ और उनका बचपन बीता। बंद गली का आखिरी मकान संग्रह सहमे हुए लोग जीवन का प्रमाणिक दस्तावेज है। सीलन से भरे घर, टूटे मन अंदर बाहर अंधकार हर चीज़ में कुढ़न, गलियों के टूटते रिश्ते इस कहानी संग्रह की विशेषता है।

'भात के बदले लात धाबै' यह कहानी की एक पंक्ति मात्र नहीं बल्कि भारतीय स्त्री जीवन का संपूर्ण सार है। आर्थिक मानसिक रूप से परिवार और ससुराल पर निर्भर स्त्री के जीवन का सार यही है कि दो वक्त की रोटी के बदले उसपर की जाने वाली हिंसा जायज है। तभी तो पच्चीस साल की गुल्की के चेहरे पर झुर्रियाँ आने लगी थी उसकी कमर दोहरी हो गई जैसे की अस्सी वर्ष की बुढ़िया। स्त्री के जीवन की गणित यही है कि वह पत्नी न होकर घर की नौकरानी है। स्वयं के अस्तित्व को नकारकर परिवार को ही सब कुछ मान लेने वाली स्त्री को बचपन से ही यह पाठ पढ़ाया जाता है कि परिवार के लिए ही उसका जीवन है। यह विचार इतने बारीकी से जन्म से ही बुना जाने लगता है कि स्त्री धीरे-धीरे इस बुनावट को ही हकीकत मानने लगती है। फ्रेंच स्त्रीवादी रचनाकार 'सिमोन द बोउबर' ने लिखा भी है कि 'स्त्री पैदा नहीं होती बनायी जाती है।'

पितृसत्तात्मक समाज की संरचना उसी बारीकियों के जटिल बुनावट को उधेड़कर रखने वाले संवाद इस कहानी की आत्मा है। गुल्की का पति उसे अपनी दूसरी पत्नी, और बेटे की सेवा कराने के लिए लेने आया है। उस समय इतने कष्ट सहती आई गुल्की सती के लाख समझाने के बाद भी कहती है-"पति से हमने अपराध किया तो भगवान् ने बच्चा छीन लिया, अब भगवान् हमें छमा कर देंगे? तुम्हारे जीजा जी को भगवान् बनाये रखें... फिर संतान होगी तब तो सौत का राज नहीं चलेगा।"1

आज विमर्शों के इस दौर में स्त्रीवादी दृष्टिकोण से इस कहानी के अंत से गुल्की के चरित्र से

डॉ. रीता दूबे
असिस्टेंट प्रोफेसर सीएम कॉलेज,
दरभंगा

हम भले ही सहमत न हों लेकिन युगीन यथार्थ और संवेदना के लक्ष्य को यह कहानी भलीभाँति परिलक्षित करती है। आगे वह आदमी जो गुल्की का पति है बुआ से कहता है- "इसे ले तो जा रहे हैं पर इतना कह देते हैं आप भी समझा दें उसे कि रहना हो तो दासी बनकर रहे। न दूध की न पूत की, हमारे कौन काम की, पर हाँ औरतिया की सेवा करे उसका बच्चा खिलावे, झाड़ू बुहारु करें तो रोटी खाय पड़ी रहे। हमारा हाथ बड़ा जालिम है। एक बार कूबड़ निकला अगली बार परान निकलेगा"।2

यह कहानी कहनी गुल्की के माध्यम से सामाजिक सत्य बोध का साक्षात्कार करने वाली कहानी है। स्त्री जीवन के मनोविज्ञान, संघर्ष, सुख-दुख, आशा, आकांक्षाएँ यहाँ अपने पूरे परिवेश के साथ अभिव्यक्त हुए हैं। गुल्की का अपने पति के साथ उसकी शर्तों को स्वीरकारे हुए साथ जाना पारम्परिक स्त्री जीवन के दर्द को दर्शाता है।

स्वीतंत्रता के बाद भारतीय गाँवों में अनेक परिवर्तन हुए। ग्रामीण विकास की योजनाएँ चालू की गई तथा ग्रामीण व्यक्तियों के रहन-सहन में भी परिवर्तन आया। गाँवों के विकास के साथ-साथ शहरों में भी परिवर्तन हुए, यातायात की सुविधाएँ, बिजली तथा आधुनिकता की गंध का तो सूत्रपात हो गया किन्तु किसी भी स्थान, व्यक्ति के संस्कारों में एकाएक परिवर्तन नहीं होता। धर्मवीर भारती के कहानियों के मूल में वह कस्बाई जीवन है जिसमें न तो महानगरों की आपाधापी है न ही गाँव की रुमानियत बल्कि मुहल्लों की आम जीवन की कहानियाँ हैं। ऐसी कहानियाँ जिसमें पारिवारिक संबंधों की उष्मा, नरमाहट और सरोकार अब नहीं है। ऐसी ही कहानी 'सावित्री नम्बंर दो' है। इस कहानी में भाषा और ऐन्द्रिय बोध के सहारे जिस रचना को गढ़ा है वह महत्त्वपूर्ण सवाल खड़े करती है। सावित्री और उसके पति के बीच जो रिश्ता है उसकी पड़ताल करते हुए स्वयं सावित्री कहानी में एक जगह कहती है- "तुम्हें क्या मालूम की घृणा मन को उतना नहीं तोड़ती जितना यह ठंडा, कृतज्ञता और सौजन्य भरा दिखावा जो हर क्षण मुझे यह अनुभूति दे जाता है कि असलियत में तो मर ही चुकी हूँ। मेरे प्रति मेरी पति का यह आदर-भाव भी वैसा ही है जैसा मृत शरीर के प्रति होता है।"3

सावित्री का उपरोक्त कथन स्त्री पुरुष संबंध तक सीमित न रहकर धीरे-धीरे संवेदनाहीन होते जाते पूरे मध्यमवर्गीय समाज को एक आईना दिखाता है।

धर्मवीर भारती ने अपनी कल्पनाशक्ति के उपयोग के द्वारा इन कहानियों में जीवन की प्रत्यक्ष और आंतरिक असंगतियों को उभारा है। वस्तु सत्य को रचने की जिस यथार्थवादी दृष्टि का परिचय उनकी कहानियों में मिलता है वह महत्त्वपूर्ण है। ऐसी ही एक कहानी है 'यह मेरे लिए नहीं' कहानी कोई फैंटैसी में गढ़ी हुई या प्रतीकों की चक्करदार कहानी नहीं बल्कि यह पात्रों के चारित्रिक विकास की कहानी है।

कथानक की दृष्टि से इस कहानी में जीवन का सामान्य-सा परिवेश उभरता है, जिसमें आदमी सतत संघर्ष करता हुआ आज जी रहा है। माँ और बेटे के बीच जिस तनाव, दूरी और एक निश्चित लगाव के ताने-बाने की रचना धर्मवीर भारती ने की है वह महत्त्वपूर्ण है। "माँ के हाथ काँप रहे थे। सिर्फ इशारा करके रह गई। दीनू ने देखा दीवार ओर फर्श के बीच एक चौड़ी सी दरार फट आई थी। माँ उसमें गिट्टी भर रही थी।"4 दीनू ओर उसकी माँ का भी यही रिश्ता था सिर्फ घरों में सीलन और अंधेरा नहीं था बल्कि अभाव, गरीबी और जीवन संघर्ष झेलते-झेलते यह सीलन माँ बेटे के दिलों के साथ ही साथ उसके रिश्ते, में भी उतर आया थ। भावनात्मकता अनुभव के रूप ही विवध नहीं होती बल्कि उसकी प्रकृति भी विविध होती है। तभी तो कहानी के अंत में दीनू को समझ आ जाता है कि जीवन की असली सार्थकता इस 'मैं' अहम् के विसर्जन में है।" इदन्न मम- वह जो दीनू है, यह जो 'मैं' है यह भी मेरे लिए नही।"5

धर्मवीर भारती के कहानियों की विशेषता रही है कि उन्होंने कहानी के पात्रों के माध्यम से जीवन के सार-तत्व की व्याख्या की है। एक कहानी में वह कहते हैं- "जब तक लड़ाई का उद्देश्य स्पष्ट हो तब तक अपने-अपने ढंग से जीवट भी आदमी को बचाता है और डर भी। मगर जब लड़ाई का अर्थ ही मालूम न हो तो जीवट और डर दोनों यकसाँ बेकार। सिर्फ एक खोखली थकान।"6

भारतीय समाज की परत दर परत पड़ताल करती उनकी कहानियों का पाठ ग्रहण करने के लिए हमें उसे पूरे सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। ये कहानियाँ अर्थ की दृष्टि से वैविध्यापूर्ण है उसे किसी एक स्तर पर पढ़ने के अपने खतरे हैं, जैसे हेमिग्वें की कहानी 'किलर्स' स्तरीय पाठ के आधार पर उसे हम हत्यारों के मनोविज्ञान की ही कहानी कह सकते हैं। किन्तु कहानी का वास्तविक अर्थ उसके कथात्मक स्तर पर प्राप्त नहीं किया जा सकता। उसके लिए पूरे सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में जीवन को देखना होगा।7

जातियों में बंटे समाज ओर गरीबों से घृणा का जो यथार्थ हम समाज में देखते हैं उसका चित्रण भी देखने को मिलता है। 'उसके घर का पचड़ा वे जानें, .. पर मुंशीजी को नहीं आने देंगे। खून बह जाएगा, लाठी चल जाएगी, लहास पर लहास पड़ जाएगी। बिरादरी है, कोई मज़ाक नहीं।"8

बंद गली का आखिरी मकान सहमे घुटे लोक जीवन का प्रमाणिक दस्तावेज है। लेकिन इसके बरक्स जीवन की आशा और उम्मीद की झलक भी इन कहानियों की ही विशेषता है। जीवन के यथार्थ को दर्शाते हुए भी उसके मूल उद्देश्य और सार्थकता के प्रश्ने से लगातार नए निर्माण का प्रयत्न धर्मवीर भारती की कहानी कला की प्रमुख विशेषता है।

000

संदर्भ-

1. बंद गली का आखिरी मकान - धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ 2008 पृष्ठर संख्यान-26, 2. वही पृष्ठ संख्या- 22, 3. वही पृष्ठ संख्या- 26, 4. वही पृष्ठ संख्या- 67, 5. वही पृष्ठ संख्या- 69, 6. वही पृष्ठ संख्या- 78, 7. हिन्दी कहानी प्रक्रिया और पाठ 'सुरेन्द्र चौधरी, राधा कृष्ण् प्रकाशन 1995, 8. वही पृष्ठ संख्या -75

(शोध आलेख)

आधुनिक भारतीय अंग्रेजी साहित्य: समय के साथ बदलती रूपरेखा

डॉ. हेमंतकुमार ए पटेल
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, श्री के आर कटारा आर्ट्स कॉलेज शामलाजी

सारांश- उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में पूर्वी भारतीय कंपनियों ने भारत की व्यापारिक संरचना पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया था। व्यवसाय और वित्तीय क्षेत्रों पर उनकी पकड़ धीरे-धीरे भारत की सामाजिक संरचना में फैल गई और इससे आम लोगों की जीवनशैली और उनकी आजीविका प्रभावित हुई। समय के साथ भारतीय साहित्य भी संस्कृति में इस बदलाव और देश की क्रमिक भाषाई प्रगति से प्रभावित हुआ। साहित्यिक उन्नति के साथ-साथ प्रगति के क्रम में अंग्रेजी भाषा का भी समावेश हुआ। कहानियाँ और कविताएँ भी तत्कालीन सामाजिक संरचना पर आधारित थीं, जिससे आधुनिक भारतीय साहित्य का विकास हुआ। भारतीय अंग्रेजी साहित्य (आईईएल) भारत के लेखकों द्वारा किए गए उस कार्य को संदर्भित करता है, जो पूरी तरह से अंग्रेजी भाषा में लिखते हैं और जिनकी मूल या सह-मूल भाषा भारत की कई क्षेत्रीय और स्वदेशी भाषाओं में से एक हो सकती है। भारतीय अंग्रेजी साहित्य भी प्रवासी भारतीयों के सहयोगियों के कार्यों से गहराई से जुड़ा हुआ है, जो भारत में पैदा हुए थे लेकिन वर्तमान में कहीं और रहते हैं।

मुख्य शब्द- साहित्यिक इतिहास, तत्कालीन समाज, रचना एवं जीवनशैली, भाषा, विकास।

प्रस्तावना- आधुनिक भारतीय साहित्य का विकास पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से देखा गया जो ईस्ट इंडियन कंपनी द्वारा देश में अपने आगमन के साथ लाया गया था। अंग्रेजी भाषा कई संस्थानों में आधिकारिक तौर पर पढ़ाई जा रही थी और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए इसका उपयोग किया जाता था, जिससे अंग्रेजी भारत में कुलीन समाज का एक अभिन्न अंग बन गई थी। साहित्य से जुड़े लोग प्रवृत्ति में इस बदलाव से प्रभावित हो रहे थे और कविताओं और उपन्यासों की रचना करने लगे।

अंग्रेजी में भारतीय लेखन का इतिहास- अंग्रेजी में भारतीय लेखन का इतिहास भारत में ब्रिटिश राज से जुड़ा है। तोरु दत्त अंग्रेजी में लिखने वाले पहले भारतीय कवि थे। हेनरीलुईविवियनडेओर्जियो और सरोजिनी नायडू जैसे कवियों ने अपनी कविताओं में देशभक्ति की भावनाओं को उजागर किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर अपनी महान् रचना गीतांजलि के लिए वर्ष 1913 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित होने वाले पहले एशियाई बने ; भक्ति गीत की एक पुस्तक. टैगोर ने बांग्ला में लिखा और स्वयं उस पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद किया। मुल्क राज आनंद, राजा राव और आरके नारायण की तिकड़ी ने अंग्रेजी में भारतीय लेखन को बहुत आगे बढ़ाया। भारत में साहित्यिक परिदृश्य में इस तिकड़ी के प्रवेश ने इस शैली को महान् ऊँचाइयों तक पहुँचाया।

अंग्रेजी साहित्य की समय के साथ बदलती रूपरेखा- भारत में अंग्रेजी भाषा और साहित्य का इतिहास ईस्ट इंडिया कंपनी के भारत में आगमन के साथ शुरू होता है। यह सब 1608 की गर्मियों में शुरू हुआ जब मुगलों के दरबार में सम्राट जहाँगीर ने ब्रिटिश नौसेना अभियान हेक्टर के कमांडर कैप्टन विलियम हॉकिन्स का स्वागत किया। यह किसी अंग्रेज़ और अंग्रेज़ के साथ भारत की पहली मुलाकात थी। जहाँगीर ने बाद में राजा जेम्स चतुर्थ के विशेष अनुरोध पर ब्रिटेन को एक स्थायी बंदरगाह और कारखाना खोलने की अनुमति दी, जिसे उनके राजदूत सर थॉमस रो ने अवगत कराया था। अंग्रेज़ यहीं रहने वाले थे।

जैसे ही ईस्ट इंडिया कंपनी ने दक्षिणी प्रायद्वीप में अपना विस्तार किया, अंग्रेजी भाषा को नए प्रभाव मिलने लगे। लेकिन पहली अंग्रेजी किताब को भुनाने में अभी भी समय था। 17वीं सदी के अंत में भारत में प्रिंटिंग प्रेस का आगमन हुआ लेकिन प्रकाशन मुख्यत: बाइबिल या सरकारी आदेशों की छपाई तक ही सीमित था। फिर आए अख़बार। 1779 में भारत में हिक्कीज़ बंगाल गजट नाम का पहला अंग्रेजी समाचार पत्र प्रकाशित हुआ था।

अपने प्रारंभिक चरण में, अंग्रेजी में भारतीय लेखन उपन्यास के पश्चिमी कला रूप से काफी प्रभावित था। शुरुआती भारतीय अंग्रेजी भाषा के लेखकों के लिए यह सामान्य बात थी कि वे उन

डॉ. हेमंतकुमार ए पटेल
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर,
श्री के आर कटारा आर्ट्स कॉलेज
शामलाजी
ईमेल- mitalahemant@gmail.com

अनुभवों को व्यक्त करने के लिए भारतीय शब्दों के साथ अंग्रेजी का उपयोग करते थे जो मुख्य रूप से भारतीय थे। इस कदम के पीछे मुख्य कारण यह था कि अधिकांश पाठक या तो ब्रिटिश या ब्रिटिश शिक्षित भारतीय थे। आने वाली शताब्दी में, लेखन मुख्यत: इतिहास इतिवृत्त और सरकारी राजपत्र लिखने तक ही सीमित रह गया।

20वीं सदी की शुरुआत में, जब ब्रिटिशों ने भारत पर कब्ज़ा कर लिया, तो लेखकों की एक नई पीढ़ी उभरने लगी। ये लेखक मूलत: ब्रिटिश थे जिनका जन्म या पालन-पोषण या दोनों भारत में हुआ था। उनके लेखन में भारतीय विषय और भावनाएँ शामिल थीं लेकिन कहानी कहने का तरीका मुख्यत: पश्चिमी था। हालाँकि, संदर्भ को दर्शाने के लिए देशी शब्दों का उपयोग करने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी। इस समूह में रुडयार्डकिपलिंग, जिमकॉर्बेट और जॉर्जऑरवेल जैसे अन्य लोग शामिल थे। 'किम', 'द जंगल बुक', '1984', 'एनिमल फार्म' और 'द मैन-ईटर्स ऑफ कुमाऊँ' आदि किताबें अंग्रेजी भाषी दुनिया भर में पसंद की गईं और पढ़ी गईं। वास्तव में, उस युग की कुछ रचनाएँ आज भी अंग्रेजी साहित्य की उत्कृष्ट कृतियाँ मानी जाती हैं। उस काल में, मूल निवासियों का प्रतिनिधित्व रवीन्द्र नाथ टैगोर और सरोजिनी नायडू जैसे लोग करते थे। दरअसल, गीतांजलि ने टैगोर को साल 1913 में साहित्य का नोबेल पुरस्कार जीतने में मदद की थी।

जब भारत आकांक्षा और पुनर्निर्माण के युग से गुज़र रहा था, तब 3 दशकों से अधिक समय तक शांति थी। ईएमफोस्टर की 'ए पैसेजटू इंडियन', ईएलबाशम की 'द वंडरदैटवाज़ इंडिया' और नीरद सी चौधरी की ऑटोबायोग्राफी 'ऑफ एनअननोन इंडियन' जैसी कुछ छिटपुट रचनाओं ने हालाँकि मंच पर आग लगा दी, लेकिन उत्प्रेरक और विस्फोट करने में असफल रहीं।

सत्तर के दशक के उत्तरार्ध में कॉन्वेंट, बोर्डिंग स्कूल से शिक्षित और उपन्यासकारों और लेखकों की एक नई पीढ़ी सामने आने लगी। सलमान रुश्दी, विक्रम सेठ, अमिताभ घोष और डोमिनिकलेपियरे जैसे लोगों ने साहित्य जगत् में आग लगा दी। रुश्दी की मिडनाइटचिल्ड्रेन ने 1981में बुकर जीता और यह संदेश ज़ोर से और स्पष्ट रूप से दिया कि भारतीय यहाँ रहने के लिए हैं। अरुंधति रॉय और किरण देसाई ने क्रमश: वर्ष 1997 और 2006 में मैनबुकर जीतकर यह उपलब्धि दोहराई। इस बीच, पंकज मिश्रा, चेतन भगत, झुम्पालाहिड़ी, विलियमडेलरिम्पल, हरि कुंजुरु जैसे लेखकों की एक नई पीढ़ी अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य पर आई है और उनके लेखन को दुनिया भर में सराहा जा रहा है। झुम्पालाहिड़ी और उनके काम का विशेष उल्लेख; उनके काम की प्रेरणा सांस्कृतिक प्रवासी भारतीयों और पहचान संकट से उत्पन्न भावनात्मक संकट से उत्पन्न होती है, जिससे भारतीय तब पीड़ित होते हैं जब वे अपनी संस्कृति और भौगोलिक सेटिंग की सीमाओं से बाहर रहते हैं। उन्हें 2000 में 'द इंटरप्रेटर ऑफ मैलाडीज' नामक लघु कहानियों के प्रसिद्ध संकलन के लिए पुलित्जर पुरस्कार का प्रतिष्ठित सम्मान मिला। वह अमेरिकी राष्ट्रपति की समिति में कला और मानविकी विभाग की एक सक्रिय सदस्य हैं। उनकी नियुक्ति स्वयं राष्ट्रपति बराकओबामा ने की थी।

भारत 1947 में ब्रिटेन से स्वतंत्र हो गया, और 1965 तक अंग्रेजी भाषा को समाप्त कर दिया जाना था। हालाँकि, आज अंग्रेजी और हिन्दी आधिकारिक भाषाएँ हैं। भारतीय अंग्रेजी की विशेषता है कि, वह द्रव्यवाचकसंज्ञाओं को गिनती संज्ञाओं के रूप में मानती है, "क्या यह नहीं है?" का बार-बार उपयोग होता है। टैग, अधिक यौगिकों का उपयोग, और पूर्वसर्गों का एक अलग उपयोग। अपने विशिष्ट स्वाद के साथ, भारतीय अंग्रेजी लेखन वहाँ बना रहेगा। अंग्रेजी बोलने वाली जनसंख्या में वृद्धि के साथ, भविष्य अंधकारमय ही दिखता है।

समापन- उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में साहित्यिक कार्यों की प्रवृत्ति में उल्लेखनीय बदलाव देखा गया, जिसने आधुनिक भारतीय साहित्य के विकास की शुरुआत को चिह्नित किया। प्रवृत्ति में यह बदलाव भारत के समाज पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रभाव के कारण देखा गया। 19वीं सदी के उत्तरार्ध से लेखक ज़्यादातर उन सामाजिक बुराइयों और बुराइयों को इंगित करने में लगे हुए थे जो वर्ग विभाजन के आधार पर तत्कालीन सामाजिक पैटर्न और लोगों के एक-दूसरे के प्रति दृष्टिकोण में प्रचलित थीं। बीसवीं सदी के प्रारंभ से लेकर उत्तरार्ध के समाज में विकास के दौरान, समाज की तत्कालीन स्थिति पर ध्यान देने वाली साहित्यिक कृतियों से लेकर पश्चिमी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के प्रति व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण की ओर बदलाव देखा गया। आधुनिक भारतीय साहित्य की शुरुआत ज़्यादातर तत्कालीन सामाजिक मानकों से प्रभावित थी जो समाज पर साम्राज्यवाद के प्रभाव और उस काल में व्याप्त असमानता और वर्ग संघर्ष को दर्शाती रही। प्रवृत्ति में यह बदलाव धीरे-धीरे बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में महाश्वेता देवी, आरकेनारायणनऔर रस्किनबॉन्ड के कार्यों के माध्यम से सामने आया, जिन्होंने दुनिया के दोनों हिस्सों की संस्कृति के मिश्रण के प्रभाव को प्रतिबिंबित किया।

000

संदर्भ- 1. होसकोटे, रंजीत (सं.). संबंधित होने के कारण: चौदह समकालीन भारतीय कवि। वाइकिंग/पेंगुइनबुक्स इंडिया, नई दिल्ली, 2002। 2. सिंह, बिजेंदर। "इंडियन राइटिंग इन इंग्लिश: क्रिटिकलइनसाइट्स। " नई दिल्ली, ऑथर्सप्रेस, 2014। 3. श्रीकांत, रजनी. द वर्ल्डनेक्स्ट डोर: साउथ एशियन अमेरिकन लिटरेचर एंड द आइडिया ऑफ अमेरिका'। एशियाई अमेरिकी इतिहास और संस्कृति। फिलाडेल्फिया: टेम्पल यूपी, 2004। 4. पार्थसारथी, आर. (सं.). दस बीसवीं सदी के भारतीय कवि (भारत में नई कविता)। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1976। 5. महापात्रा, जयंत और शर्मा, युयुत्सु (सं.). दस: द न्यू इंडियन पोएट्स। नई दिल्ली: निराला प्रकाशन, 1993।

(शोध आलेख)

साहित्य में नारी की भूमिका

शोध लेखक : डॉ. सीमा रानी
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, दुजाना

सारांश- भारतीय साहित्य में नारी का स्थान महत्त्वपूर्ण है, जिसने समय के साथ अपनी उच्चतम रूप में परिणामी स्वरूपता को प्रस्तुत किया है। यह आलेख उन साहित्यिक प्रस्थानों की सूची प्रस्तुत करता है, जो नारी की स्वतंत्रता, सामरिक सहानुभूति और आत्म-मूल्य समर्पित करते हैं। आलेख का मुख्य उद्देश्य साहित्य में नारी की भूमिका को विश्लेषण करना है, उसके विभिन्न पहलुओं को समझना है, और इसे एक साहित्यिक दृष्टिकोण से उजागर करना है। यह आलेख नारी के साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम से समाज में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका पर चर्चा करता है और उसके साहित्यिक योगदान को मानवाधिकार, सामाजिक न्याय और साहित्य कला के संदर्भ में परिचय करता है। यह आलेख साहित्य में नारी की भूमिका को एक नए नज़रिये से देखने का प्रयास करता है, जिससे समाज में सामाजिक समर्थन और समर्थन की दिशा में बदलाव आ सकता है।

आलेख का मुख्य भाग- साहित्य, समाज की आत्मा और सोच का परिचायक होता है। इसमें नारी की भूमिका, उसकी सांस्कृतिक विविधता, समर्थन और समृद्धि में उसका योगदान विस्तार से विचार किया जाता है। साहित्य में नारी की भूमिका विविधता, साहित्यिक उत्पत्ति, उसके सामाजिक प्रभाव और समृद्धि में उसका स्थान को अन्वेषण करता है।

साहित्यिक सामर्थ्य और नारी- साहित्य हमेशा से समाज की रूपरेखा और सोच में परिवर्तन का कारण बना है। नारी भूमिका इस साहित्यिक सामर्थ्य में भी एक महत्त्वपूर्ण धारा है। विभिन्न साहित्यिक आंदोलनों, रचनाओं और चिंतन के माध्यम से साहित्य ने नारी को समृद्धि, स्वतंत्रता, और समाज में उच्चता की ओर प्रवृत्ति किया है। इसमें उदाहरण के रूप में बृजमोहन भाग्गा की 'आँधी का नंगा पाँव' की रचना है जिसमें साहित्य के माध्यम से नारी के जीवन की जटिलताओं को छूने का प्रयास किया गया है।

नारी साहित्य की रचनाएँ- नारी साहित्य का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है जो उनकी अनुभूतियों, विचारों, और अद्वितीयता को साझा करता है। इसमें कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास, और नाटक शामिल होते हैं जो नारी के जीवन के विभिन्न पहलुओं को छूने का प्रयास करते हैं। इस बहुपक्षीय दृष्टिकोण से, 'मैं हूँ गुलाबी, मैं हूँ सुर्जीत, मैं हूँ रेखा, मैं हूँ मदर, मैं हूँ सविता, मैं हूँ कीर्ति, मं हूँ

डॉ. सीमा रानी
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, दुजाना
(124102), जिला- झज्जर, हरियाणा
मोबाइल- 9466201997
ईमेल- shimakundu1972@gmail.com

सरोज, मैं हूँ सावित्री।' जैसे शेरों के माध्यम से साहित्यिक आत्मविवेक को साझा करती हैं।

उपन्यास और नारी- उपन्यास, साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण रूप है जो नारी की जीवनी, संघर्ष, और समर्पण को बेहतरीन तरीके से बयान करता है। एक ऐसा उपन्यास है 'आग का दरिया' जिसमें शान्ति देवी नारी के माध्यम से उन्हें तात्कालिक समाज में स्थान पाने के लिए दिखा रही हैं। इसमें उपन्यास के कई स्थानों पर स्थानीय जीवन के उदाहरणों का समर्पण है जो नारी को समाज में सहजता से स्थान बनाने में मदद करता है।

कविता में नारी- कविता, सभी भावनाओं और अनुभूतियों को सुंदरता से बयान करने का एक अद्वितीय तरीका है। "तू एक पतंग है, हवा में उड़ने के लिए नहीं, बल्कि सभी आसमानों को छूने के लिए" जैसी कविताएँ समाज में नारी की महत्त्वपूर्णता को बड़े सुंदरता और साहस से प्रस्तुत करती हैं। इनका उदाहरण सर्वश्रेष्ठ कविताओं में से एक है, जो साहित्य में नारी के साहित्यिक संरचना को आदर्शता से दिखाता है।

शेरो-शायरी का महत्त्व- शेरो-शायरी, हिन्दी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है जो भाषा को सुंदरता से बढ़ाता है और अद्भुत विचारों को साझा करता है। इसे नारी की भूमिका को समझने में एक महत्त्वपूर्ण माध्यम माना जा सकता है। एक शेर जैसे "नारी एक किताब है, जिसमें हर पन्ना एक नया दृष्टिकोण है।" हमें यह सिखाता है कि नारी एक अद्वितीय और समृद्धि में योगदान करने वाला अनमोल ज्ञान स्रोत है।

नारी साहित्य के विभिन्न आयाम- नारी साहित्य में कई आयाम होते हैं जो उसकी भूमिका को समझाने में मदद करते हैं।

परंपरागत नारी साहित्य: इसमें संस्कृति, परंपरा, और समाज के विभिन्न पहलुओं को बयान करने का प्रयास किया जाता है। इसमें 'पारिनायकी' जैसी रचनाएँ शामिल हैं जो नारी की समर्पितता और संस्कृति में उसके महत्त्वपूर्ण स्थान को बयान करती हैं।

सामाजिक नारी साहित्य- इसमें समाज की चुनौतियों और समाज में नारी के स्थान पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। 'लज्जा' जैसी रचनाएँ इस दिशा में बडेज महत्त्वपूर्ण हैं जो सामाजिक परिवर्तन की माँग करती हैं।

स्वतंत्र नारी साहित्य- इसमें नारी की स्वतंत्रता, समृद्धि, और स्वाधीनता की राहों को बताने का प्रयास किया जाता है। 'बीता समय' जैसी रचनाएँ इस दिशा में आदर्श बदलती हैं और नारी को समृद्धि की ऊँचाइयों तक पहुँचाने की बात करती हैं।

नारी साहित्य में चुनौतियाँ और निराशा- नारी साहित्य को बढ़ावा देने के बावजूद, कुछ लोग इसे चुनौतियों का सामना करते हुए देखते हैं। स्त्री अपराध, उसकी स्वतंत्रता, और उसका समर्थन समाज में अभी भी मुद्दे हैं। रचनात्मक स्वतंत्रता में कमी, प्रतिष्ठा में अंतर और सामाजिक स्थिति में उच्चता के मुद्दे नारी साहित्य को भी काबू में रखते हैं। 'एक अन्तर्दृष्टि' जैसी रचनाएँ इस मुद्दे पर विचार करने का एक अच्छा उदाहरण हैं जो समाज में नारी की स्थिति को बदलने की ज़रूरत को आगे बढ़ाने का प्रयास करती हैं।

आधुनिकता में नारी साहित्य- आधुनिक युग में नारी साहित्य की भूमिका और महत्त्व और भी बढ़ गई है। विदेशी लेखिकाओं की रचनाओं के माध्यम से भी नारी साहित्य का प्रभाव भारतीय समाज में बढ़ा है। माध्यम के साथ बदलते-बदलते, नारी साहित्य ने आधुनिक समाज में नारी की भूमिका को एक नए समर्थन और स्वतंत्रता के स्तर पर उठाया है। इसमें 'हैरीपोटर मोम' जैसी रचनाएँ शामिल हैं जो नारी की जीवनी में विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत करती हैं और समृद्धि में उसका सहारा बनाती हैं।

नारी साहित्य का सामाजिक प्रभाव- नारी साहित्य का सामाजिक प्रभाव विश्व को नारी के संदर्भ में नए दृष्टिकोण प्रदान करता है। यह समाज में नारी के स्थान, उसकी स्वतंत्रता और उसका समर्थन में विकास करने का कारगर माध्यम है। साहित्य के माध्यम से नारी को समाज में एक सकारात्मक दिशा में बदलने की दिशा में प्रेरित किया जा सकता है, जिससे समृद्धि, समाज और सभी के बीच समर्थन बढ़ सकता है।

नारी साहित्य का भविष्य- नारी साहित्य का भविष्य बहुतंत्रिक और समृद्धि का है। यह आगे बढ़कर समाज में नारी के स्थान, स्वतंत्रता और समर्थन को बढ़ावा देने के लिए एक महत्त्वपूर्ण रूप से योगदान करेगा। आधुनिक साहित्यिक रचनाओं, कविताओं और कहानियों के माध्यम से नारी साहित्य ने समृद्धि के पथ पर एक सकारात्मक बदलाव की दिशा में प्रेरित किया है और इसका योगदान हमारे समाज को सशक्त और समृद्धि की दिशा में बदलने में महत्त्वपूर्ण है।

निष्कर्ष- नारी साहित्य ने समृद्धि, समाज और साहित्य की दुनिया में एक नई धारा बनाई है। इसमें साहित्यिक रचनाओं, कविताओं और कहानियों के माध्यम से नारी की भूमिका को समझाने का प्रयास किया जा रहा है। यह साहित्य में नारी के साहित्यिक संरचना को बदलने का कारगर माध्यम है और इसे समृद्धि के पथ पर मार्गदर्शन करता है। नारी साहित्य का भविष्य बहुतंत्रिक और सकारात्मक है और यह समाज में सामाजिक परिवर्तन में एक महत्त्वपूर्ण योगदान करेगा।

000

संदर्भ- 1.सीमा, ररसर्शस्कॉलर. "हिदी पद्य साहित्य में नारी हिमर्श आधुहनक हिदी-साहित्य में नारी." Universal Research Reports 4.10 (2017): 6-9. 2.सुदेश कुमारी. "साहित्य में नारी: अस्तित्व के लिए संघर्ष." Universal Research Reports 5.1 (2018): 110-116. 3.आभा तिवारी. "स्वातंत्र्योतर उपन्यास साहित्य में चित्रित नारी जीवन." Research Journal of Humanities and Social Sciences 1.3 (2010): 77-79. 4.जीवन लाल. "हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श." International Journal of Advances in Social Sciences 2.1 (2014): 12-14. 5.Savalia, Bhavana N. महादेवी वर्मा के समग्र साहित्य में नारी चेतना. Diss. Saurashtra University, 2006. 6.जीवन लाल. "मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों मे स्त्री संघर्ष." International Journal of Reviews& Research in Social Sciences 2.1 (2014): 07-09.

(शोध आलेख)

एथलीट प्रदर्शन पर योग का प्रभाव : शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भ में

शोध लेखक : ईशान चौहान, प्रेरणा त्यागी, लक्ष्मीकांत नागर

शोध निर्देशक : डॉ. चिंताहरण बेताल, सहायक प्रोफेसर

ईशान चौहान, प्रेरणा त्यागी, लक्ष्मीकांत नागर, प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान विभाग हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर, उत्तराखंड 249161

मोबाईल- 9736994007

ईमेल- ishanc.yoga@gmail.com

सारांश - यह अध्ययन शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भ में एथलीट (खिलाड़ी) के प्रदर्शन पर योग के प्रभावों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। विशेष प्रकार के खेल और एथलीट की आवश्यकता के अनुसार योग की विभिन्न तकनीके उपलब्ध है, जिससे यह इनकी तैयारी के लिए योग एक बहुआयामी विकासात्मक उपकरण के रूप में मान्य होता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है की योग खेल से संबंधित चोटों तथा अन्य विकारों की रोकथाम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, ख़ासकर उन खेलों में जहाँ मांसपेशियों और जोड़ों पर अधिक दबाव पड़ता है। योगासन और प्राणायाम के अभ्यास मांसपेशियों मे लचीलापन और ताकत को बढ़ाते हैं, जिससे एथलीट में खेल चोटों तथा अन्य विकारों के प्रति उच्च प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है। मानसिक स्वास्थ्य के लिए योग की विभिन्न तकनीक जैसे ध्यान, योगनिद्रा, शिथिलीकरण और प्राणायाम तनाव प्रबंधन और एकाग्रता में सुधार करती हैं, जो उच्च दबाव और प्रतिस्पर्धी परिस्थितियों में भी खिलाड़ी को शांत, एकाग्र और केंद्रित रहने में सहायता करता है। यह अध्ययन, खेल प्रशिक्षण कार्यक्रमों में योग की अहम् भूमिका को उजागर करते हुए, इसे एक महत्त्वपूर्ण खेल विकासात्मक घटक के रूप में शामिल करने की अनुशंसा करती है।

कूट शब्द - योग, एथलीट प्रदर्शन, खेल चोट, योगनिद्रा, शिथिलीकरण, लचीलापन, तनाव प्रबंधन।

परिचय- खेल का विश्व भर में व्यापक प्रसार है और इसके साथ ही एथलीट (खिलाड़ी) के लिए शारीरिक और मानसिक चुनौतियाँ भी बढ़ रही हैं। विशेष रूप से एथलीट में मांसपेशीय विकारों और खेल-संबंधित चोट लगने की संभावना अत्यधिक होती है(1)(2)(3)। एथलीट अधिकांशत: मानसिक विकारों से प्रभवित होते है, जैसे कि भोजन संबंधित विकार, चिंता, अवसाद आदि। संभवत: उनसे अपेक्षित खेल के उत्तम प्रदर्शन और प्रतिस्पर्धी वातावरण के दबाव से ये समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिए उनके मानसिक स्वास्थ्य का ध्यान रखना और उन्हे समर्थन प्रदान करना आवश्यक है (4)(5)। साथ ही एथलीट को अपनी चिकित्सा और प्रशिक्षण कार्यक्रमों में क्षति की सक्रिय रोकथाम के उपाय लागू करने की आवश्यकता है, जिससे चोट और पुन: चोट की दर में कमी आ जाए और खेल प्रदर्शन में सुधार हो (6)। चिकित्सा और खेल चोटों के रोकथाम के उपायों के महत्त्व को समझते हुए ग्रिली कैडियू (2021) का अध्ययन यह स्पष्ट करता है, कि योग का अभ्यास से वयस्क एथलीट के स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। यह दर्शाता है कि योग का अभ्यास न केवल चोटों की रोकथाम में मदद कर सकता है, बल्कि उनके खेल प्रदर्शन में भी सुधार ला सकता है। योगासन से शरीर मे लचीलापन बढ़ता हैं, जो चोटों के जोखिमो को कम करता है और मांसपेशी समूहों को मजबूत बनाता है(8)। योग न केवल शारीरिक स्वास्थ्य और खेल चोटों से बचाव के लिए लाभकारी है, बल्कि यह एथलीट के मानसिक स्वास्थ्य को भी सुधारता है। यह उनके खेल प्रदर्शन और दैनिक जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाता है, आत्म-विश्वास में वृद्धि, अधिक ऊर्जावान बनाता और ध्यान केंद्रित करने में मदद करता है। यह संतुलन शारीरिक और मानसिक सजगता की वृद्धि करते हुए चोटों से बचाव करता है। योग से तनाव का प्रबंधन, शारीरिक क्षमता में वृद्धि, मानसिक शांति, सामाजिक संपर्क, और खेल प्रदर्शन में सुधार करता है (9)।

योग भारतवर्ष की एक प्राचीन आध्यात्मिक साधना पद्धति है, जो विश्व भर में अपनी विविधता और लाभों के लिए प्रसिद्ध है। इसमें आसन (शारीरिक मुद्राएँ), प्राणायाम (नियंत्रित श्वसन विधि), बंध, मुद्रा, ध्यान, योगनिद्रा और शिथिलीकरण आदि का एक समन्वित संयोजन है। योग के विभिन्न रूपों में हठयोग, राजयोग, भक्ति योग, कर्म योग, और ज्ञान योग आदि शामिल हैं। योग का प्रत्येक रूप अपनी विशिष्ट तकनीकों और लक्ष्यों के साथ विकसित हुआ है (10)(11)। इन विभिन्न प्रकार के योग का उद्देश्य शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक रूप से व्यक्ति एवं समाज का विकास करना है। यह खेल प्रदर्शन को भी प्रभावी बनाता हैं, एथलीट प्रदर्शन जो कि मुख्यत: खेल और शारीरिक गतिविधियों में व्यक्ति की क्षमता को दर्शाता है। यह मांसपेशियों की ताकत, लचीलापन, सहनशक्ति, और समन्वय पर निर्भर करता है। योग के अभ्यास से ये सभी क्षेत्र मजबूत होते हैं, जिससे एथलीट का सम्पूर्ण खेल प्रदर्शन उत्कृष्ट होता है।

अध्ययन का उद्देश्य- इस शोध अध्यनन का उद्देश्य एथलीट प्रदर्शन पर योग का क्या प्रभाव पड़ता है, उसका आकलन करना तथा इस हेतु विभिन वैज्ञानिक शोध अध्ययनों के परिणामों का पुन: समीक्षा करना। यह खेल विज्ञान और एथलीट प्रशिक्षण तथा एथलीट्स के स्वास्थ्य और प्रदर्शन में योग की भूमिका को स्पष्ट करेगा।

अध्ययन विधि- इस अध्ययन हेतु विभिन वैज्ञानिक शोध अध्ययनों से गुणात्मक आँकड़ों का संकलन किया गया तथा परिणामों का आकलन हेतु वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन विधि को अपनाया गया है।

योग का खेल प्रदर्शन पर प्रभाव:

योग न केवल रोग निवरणात्मक और स्वास्थ्य उन्नयनक है, बल्कि उपचारात्मक भी है। परिणामस्वरूप, योग से खिलाड़ी के चोटों की रोकथाम और उपचार में मदद मिलती है। विशेषकर ऐसे खेल प्रदर्शन में जहाँ विशिष्ट मांसपेशी समूहों का अधिक इस्तेमाल होता है, योग खिलाड़ी के शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ खेल प्रदर्शन में भी सुधार करता है। योग इन्हें मजबूत और संतुलित रखने में सहायक है (12)(13)। इसके मनो-शारीरिक प्रभाव तथा लाभों को वैज्ञानिक तथ्यों के अध्ययनों के आधार पर निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता हैं-

तालिका- 1.1.(एथलीट पर योग का शारीरिक प्रभाव)

योग का प्रभावशारीरिक लाभ- प्रतिरक्षा प्रणाली पर प्रभाव योग के प्रभाव से खिलाड़ियों के शरीर की आंतरिक प्रतिरक्षा प्रणाली में वृद्धि होती है, जो की शरीर को बाहरी खतरों से सुरक्षा प्रदान करती है, म्यूकोसल इम्यून फंक्शन में सुधार होता है(14)। श्वसन संस्थान और हृदय की क्षमता पर प्रभावप्राणायाम के अभ्यास से प्रति यूनिट कार्य में कम ऑक्सीजन खपत के साथ रक्त लैक्टेट स्तर कम होता है(17)। खिलाड़ी उत्कृष्ट और कुशल बनते हैं। इससे श्वसन क्षमता में महत्त्वपूर्ण वृद्धि होती है, जो प्रशिक्षण और प्रतियोगिताओं में एथलीट द्वारा हासिल की गई उच्च प्रदर्शन में परिलक्षित होती है(18)। फेफड़ों की क्षमता और हृदय स्वास्थ्य में सुधार करता है(15)(16)।

पाचन संस्थान एवं लिवर एंजाइमस् पर प्रभावयोग आसनों का नियमित अभ्यास पाचन प्रणाली की कार्यक्षमता में सुधार लाता है(19)। रक्त लिपिड और (alanine aminotransferase) एलेनिन एमिनोट्रांस्फेरेज़लिवर एंजाइमस् में सुधार करता है(20)। अस्थि संस्थान, मांसपेशियों ओर जोड़ों पर प्रभावमांसपेशियों मे तनाव को कम करता है, जोड़ों को शक्तिशाली और लचीलेपन को बढ़ाता है, योग का अभ्यास अस्थि संस्थान को सुदृढ़ एवं संतुलित बनाता है तथा हड्डियों के घनत्व में वृद्धि करता है(21)(22)(15)।

रक्त- परिसंचरण संस्थान पर प्रभाव नियमित योग अभ्यास रक्त संचार को संतुलित करता है। लाल रक्त कोशिकाओं और हीमोग्लोबिन की मात्रा को बढ़ता है(23)(20)।

तंत्रिका तंत्र और मस्तिष्क पर प्रभावश्वास की गति और हृदय दर को कम करके तंत्रिका तंत्र पर सकारात्मक प्रभाव डालता हैं(24)(21)(15)। मस्तिष्क संबंधी संज्ञानात्मक कार्यों (neuro-cognitive functions) को उत्तम बनाता है(25)। ऊर्जा अवरोधों को मुक्त कर शरीर के विभिन्न भागों मे रुके हुए अपशिष्ट पदार्थों को निष्काषित करता है।

अन्य लाभ योग अभ्यास से खिलाड़ियों की पेट की मांसपेशीयो की स्थिरता, लचीलापन, स्थैर्य संतुलन, मांसपेशीय ऊर्जा व ताकत, सहनशक्ति, चोटों से बचाव, मूत्र कैटेकोलामाइन, लार कॉर्टिसोल और बोध क्षमता में सुधार करने के लिए उपयुक्त होता है (22)(26)(27)(28)। खिलाड़ियों के स्वास्थ्य में वृद्धि और चोट लगने की संभावना कम होती है। (29) योग से खिलाड़ीयो में शक्ति, स्थिरता, जीवन की गुणवत्ता और शरीर की सजगता में सुधार लाता है। (33)

तालिका 1.2.(योग का एथलीट के मानसिक स्तर पर प्रभाव)

योग का प्रभावमानसिक लाभ- तनाव एवं चिंता प्रबंधन और भावनात्मक संतुलन पर प्रभावयोग खिलाड़ियों में चिंता, क्रोध, थकान, एवं तनाव को कम करने मे मदद करता है। भावनात्मक संतुलन, जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि होती है(28)(30)(22)(31)। योग मानसिक स्वास्थ्य और खेल प्रदर्शन में लाभकारी प्रभाव डालते हैं

एकाग्रता और ध्यान पर प्रभाव योग एकाग्रता को बढ़ाता है, जिससे ध्यान केंद्रित करने मे सहायता मिलती है, (32)(22)

आत्मविश्वासयोग आत्मविश्वास को दृढ़ करता है, जिससे खिलाड़ी के प्रदर्शन में गुणवता आती है (30)।

चित्र 1.1 योग का एथलीट्स पर मनो - शारीरिक प्रभाव- परिचर्चा -इस अध्ययन में योग के एथलीट प्रदर्शन पर पड़ने वाले प्रभावों का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है, जिसमें योग के शारीरिक और मानसिक लाभों को स्पष्ट किया गया है। अनेक शोध अध्ययनो से प्राप्त परिणाम यह दर्शाते है कि योग एथलीट के लिए केवल एक शारीरिक अभ्यास ही नहीं है, बल्कि यह उनक शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक स्वास्थ्य को उत्कृष्ट बनाता है। शारीरिक लाभों के संदर्भ में योग चोटों की रोकथाम में महत्त्वपूर्ण है, विशेषकर उन खेल प्रदर्शन में जहाँ मांसपेशियों और जोड़ों पर अधिक दबाव पड़ता है। योगासन और प्राणायाम जैसे अभ्यासो से मांसपेशियों में लचीलापन में वृद्धि, आंतरिक और बाहरी अंगों में ताकत बढती हैं, जिससे खिलाड़ी की शारीरिक एवं मानसिक प्रतिरोधक क्षमता में सुधार होता है। मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भ में योग में ध्यान, योगनिद्रा, शिथिलीकरण और प्राणायाम की अनेक तकनीकों के माध्यम से एथलीट में तनाव प्रबंधन और एकाग्रता में सुधार करने में सहायता मिलती है। यह उन्हें खेल के दौरान उच्च दबाव और प्रतिस्पर्धी परिस्थितियों में शांत और केंद्रित रहने में सहायता करता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के योग विशेष खेल विधि और एथलीट की विशिष्ट ज़रूरतों के अनुरूप हो सकता है। उदाहरण के लिए, हठयोग के आसन शारीरिक सहनशक्ति और लचीलेपन को बढ़ाते हैं, जबकि राजयोग और ध्यान एथलीट की मानसिक शांति और एकाग्रता के विकास में सहायक हैं। इस प्रकार, यह अध्ययन योग को एक बहुआयामी उपकरण के रूप में प्रस्तुत करता है, जो एथलीट के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को संवर्धित करता है और उनके खेल प्रदर्शन को बढ़ाता है। इसलिए, योग को खेल प्रशिक्षण कार्यक्रमों में एक महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में शामिल करने की अनुशंसा की जाती है। (1) योग खेल पुनर्वास में शारीरिक और मानसिक दोनों पहलुओं को सम्बोधित करते हुए, लचीलापन, शक्ति, संतुलन, दर्द प्रबंधन और मानसिक विकास में सुधार करके इसकी प्रभावशीलता सिद्ध करता है, जिससे खिलाड़ियों के स्वास्थ्य और प्रदर्शन में लाभ होता है। (19)

निष्कर्ष - योग एथलीट के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को सुधारता है, जिससे उनका खेल प्रदर्शन उत्कृष्ट होता है, योगासन, ध्यान, योगनिद्रा, शिथिलीकरण और प्राणायाम से चोटों की रोकथाम, मांसपेशियों की ताकत बढ़ती है, और मानसिक शांति और एकाग्रता में सुधार होता हैं। इसलिए, योग को खेल प्रशिक्षण में एक आवश्यक घटक के रूप में शामिल किया जाना चाहिए क्यूंकी एथलीट के खेल प्रदर्शन में योग का सकारात्मक प्रभाव सुस्पष्ट है।

000

संदर्भ- 1.हलप्पा एन.जी. मस्कुलोस्केलेटल चोटों/विकारों और मानसिक विकारों के लिए निवारक और प्रबंधन रणनीति के रूप में व्यायाम और खेल विज्ञान के भीतर योग का एकीकरण - साहित्य की समीक्षा। जर्नल ऑफ़ बॉडीवर्क एंड मूवमेंट थैरेपीज़। 2023 अप्रैल;34:34-40। 2.फेट डी, ट्रॉमपीटर के, प्लैटन पी. विशिष्ट खेलों में पीठ दर्द: 1114 एथलीटों पर एक क्रॉस-सेक्शनल अध्ययन। स्मिथ बी, संपादक। एक और। 2017 जून 29;12(6):e0180130। 3.वासेर जेजी, ट्रिप बी, ब्रूनर एमएल, बेली डीआर, लेइट्ज़ आरएस, ज़ेरेम्स्की जेएल, एट अल। किशोर महिला खिलाड़ियों में वॉलीबॉल से संबंधित चोटें: एक प्रारंभिक रिपोर्ट। चिकित्सक औरखेल की दवा। 2021 जुलाई 3;49(3):323-30। 4.ओवेरेबो टीएच, इवरसन ए, सुंडगॉट-बोर्गेन जे, नुडसन एकेएस, रेनेफ्लोट ए, पेंसगार्ड एएम। संभ्रांत खेलों में मानसिक स्वास्थ्य समस्याएं: नॉर्वेजियन संभ्रांत एथलीटों के एक नमूने के बीच मानसिक संकट और मानसिक विकारों के वितरण में अंतर। बीएमजे ओपन स्पोर्ट एक्सरसाइज मेड। 2023 जुलाई;9(3):e001538। 5.वेबर एसआर, विंकेलमैन जेडके, मोन्स्मा ईवी, एरेन्ट एसएम, टोरेस-मैक्गी टीएम। कॉलेजिएट छात्र-एथलीटों में अवसाद, चिंता और आत्म-सम्मान की एक परीक्षा। IJERPH. 2023 जनवरी 10;20(2):1211। 6.मफ़ुल्ली एन, लोंगो यूजी, स्पीज़िया एफ, डेनारो वी. युवा एथलीटों में खेल चोटें: दीर्घकालिक परिणाम और रोकथाम रणनीतियाँ। फिजिशियन और

स्पोर्ट्समेडिसिन। 2010 जून;38(2):29-34. 7.ग्रिली कैडियक्स ई, जेम सी, डुपुइस जी। मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य और प्रतिस्पर्धी एथलीटों के प्रदर्शन पर योग हस्तक्षेप के प्रभाव: एक व्यवस्थित समीक्षा। खेल और व्यायाम में विज्ञान के जे. 2021 मई;3(2):158-66। 8.भौमिक भुनिया जी, रे यू.एस. मांसपेशियों की ताकत, शरीर के लचीलेपन और संतुलन में सुधारयोआसन और योआ श्वास क्रिया द्वारा कम निरोधक प्रभाव के साथ: एक गैर-यादृच्छिक नियंत्रित अध्ययन। जर्नल ऑफ आयुर्वेद एंड इंटीग्रेटिव मेडिसिन. 2024 जनवरी;15(1):100815. 9.पोल्सग्रोव जे, हॉस डी, लॉकयर आर. योगाभ्यास के 8-सप्ताह पर एथलीट परिप्रेक्ष्य। योग अनुसंधान (इंटरनेट)। 2019 जुलाई 12 (उद्धृत 2024 फ़रवरी 24); यहाँ उपलब्ध है: http://spotlightonresearch.com/yoga-research/athlete-perspectives 10.बेताल सी. हठयोग की भूमिका। नई दिल्ली: युनिवर्सीति पब्लिकेशना; 2017. 11.कामाख्या कुमार. योग महाविज्ञान. 2. संशोधिता एवं संवर्धिता संस्कार। नई दिल्ली: सैटैन्डार्ड पाब्लिसारसा (इंदिया); 2011. 12.लारोइया डॉ.पी.के., सिंह जी. "योग खेल प्रदर्शन को बढ़ाता है"। www.theyogicjournal.com (इंटरनेट)। 2019 दिसंबर 30;5(1)(28-29)। यहाँ उपलब्ध है: www.theyogicjournal.com 13.नाइके. यह ठीक इसी प्रकार है कि योग खेल प्रदर्शन को कैसे बढ़ा सकता है (इंटरनेट)। 2021. यहाँ उपलब्ध: https://www.nike.com/a/yoga-for-athletes-performance 14.एडा एन, शिमिज़ु के, सुज़ुकी एस, तानबे वाई, ली ई, अकामा टी। लार बीटा-डिफेंसिन 2 पर योग व्यायाम के प्रभाव। यूर जे एपल फिजियोल। 2013 अक्टूबर;113(10):2621-7. 15.सत्यानंद. आसन प्राणायाम मुद्रा बंध। 4. एड., रिप्र. बिहार, भारत: योग प्रकाशन ट्रस्ट; 2009. 544 पी. 16.बेनावाइड्स-पिनज़ोन डब्ल्यूएफ, टोरेस जेएल। मध्यवर्ती ऊँचाई पर गतिहीन वयस्कों में फेफड़ों के कार्य और लैक्टेट कैनेटीक्स पर योग (प्राणायाम) का प्रभाव। रेव फैक मेड. 2017 जुलाई 1;65(3):467-72। 17.राजू पीएस, माधवी एस, प्रसाद केवी, रेड्डी एमवी, रेड्डी एमई, सहाय बीके, एट अल। एथलीटों में योग और शारीरिक व्यायाम के प्रभावों की तुलना। इंडियन जे मेड रेस. 1994अगस्त;100:81-6. 18.मोरेनो मोलिना डी, हर्नांडेज़ फर्नांडीज़ ए, पेरेज़नेवियो ई. शैक्षिक संदर्भों मंक एक समावेशी खेल के रूप में योग का विश्लेषण। शिक्षा विज्ञान. 2020 जून 17;10(6):162। 19.कृष्णमूर्ति एमएन. खेल चिकित्सा और पुनर्वास के भाग के रूप में योग। इंट जे योग. 2023;16(2):61-3. 20.यू डीएच. बुजुर्गों में शारीरिक संरचना, शारीरिक स्वास्थ्य, रक्त लिपिड और यकृत समारोह संकेतक पर नृत्य खेल और योग कार्यक्रम का प्रभाव। व्यायाम विज्ञान. 2020 फ़रवरी 28;29(1):51-9। 21.कुडलैकोवा के, एक्लेस डीडब्ल्यू, डाइफ़ेनबैक के. अलग-अलग कुशल एथलीटों में विश्राम कौशल का उपयोग। खेल और व्यायाम का मनोविज्ञान. 2013 जुलाई;14(4):468-75।

22.पोल्सग्रोवएमजे, एग्लस्टोन बी, लॉकयर आर। कॉलेज एथलीटों के लचीलेपन और संतुलन पर 10 सप्ताह के योग अभ्यास का प्रभाव। इंट जे योग. 2016;9(1):27. 23.KÖKÉNY T. एथलीट के बुनियादी शारीरिक मापदंडों को बढ़ाया गयादैनिक जीवन प्रणाली में योग की श्वास तकनीक का अभ्यास करें। 2021;4.(1-5.). 24.पीटर आर, सूद एस, धवन ए. एचआरवी के स्पेक्ट्रल पैरामीटर्सयोग अभ्यासकर्ताओं, एथलीटों और गतिहीन पुरुषों में। इंडियन जे फिजियोल फार्माकोल। 2015;59(4):380-7. 25.हलप्पा एनजी, झा के, यूवी, सिंह एच. वयस्क एथलीटों के बीच तंत्रिका-संज्ञानात्मक कार्यों पर एक अतिरिक्त हस्तक्षेप के रूप में योग का प्रभाव: एक पायलट अध्ययन। क्यूरियस (इंटरनेट)। 2023 सितम्बर 6 (उद्धृत 2024 फरवरी 27); यहाँ उपलब्ध है: https://www.cureus.com/articles/153312-impact-of-yoga-as-an-add-on-intervention-on-neurocognitive-functions-among-adult-athletes-a-pilot-study 26.ट्रान एमडी, होली आरजी, लैशब्रुक जे, एम्स्टर्डम ईए। शारीरिक फिटनेस के स्वास्थ्य संबंधी पहलुओं पर हठ योग अभ्यास का प्रभाव। निवारक कार्डियोलॉजी. 2001 अक्टूबर;4(4):165-70। 27.राव एमआर, इटागी आरके, श्रीनिवासन टीएम। बिना लक्षण वाले पुरुष क्रिकेट खिलाड़ियों के बीच मांसपेशियों की कार्यप्रणाली को सुविधाजनक बनाने में योग का प्रभाव: अनुदैर्ध्य यादृच्छिक नियंत्रित अध्ययन। जर्नल ऑफ़ बॉडीवर्क एंड मूवमेंट थैरेपीज़। 2021 जुलाई;27:287-93। 28.ग्रानाथ जे, इंगवार्सन एस, वॉन थिएल यू, लुंडबर्ग यू। तनाव प्रबंधन: संज्ञानात्मक का एक यादृच्छिक अध्ययनव्यवहार थेरेपी और योग. संज्ञानात्मक व्यवहार थेरेपी. 2006 मार्च;35(1):3-10. 29.हुइहुई एक्स. योग अभ्यास करने वाले कॉलेज के छात्रों के लिए चोट की रोकथाम। रेव ब्रास मेडएस्पोर्टे। 2023;29:e2022_0731. 30.कुसुमा डीडब्ल्यूवाई, बिन डब्ल्यू. मानसिक स्वास्थ्य पर योग कार्यक्रम का प्रभाव: प्रतिस्पर्धी चिंतासेमारंग बैडमिंटन एथलीटों में। केमास. 2017 जुलाई 28;13(1):121-30। 31.कनौजिया एस, सरस्वती पी, अंशू नल, सिंह एन, सिंह एस, कटारिया एन, एट अल। युवा एथलीटों में मनोवैज्ञानिक सहसंबंधों पर योग और दिमागीपन का प्रभाव: एक मेटा-विश्लेषण। जे आयुर्वेद इंटीग्र मेड. 2023;14(3):100725. 32.शर्मा एल. खेलों में योग के लाभ-एक अध्ययन। शारीरिक शिक्षा, खेल और स्वास्थ्य के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल (इंटरनेट)। 2015;1(3)(30-32). यहाँ उपलब्ध है: www.kheljournal.com 33.गेर्गुज़, अरास बेराम जी. जूनियर टेनिस खिलाड़ियों में कोर स्थिरीकरण और शारीरिक फिटनेस पर टेलीरेहैबिलिटेशन के साथ लागू योग प्रशिक्षण के प्रभाव: एक यादृच्छिक नियंत्रित परीक्षण। पूरक मेड रेस। 2023;30(5):431-9.

(शोध आलेख)

गढ़वाल में दुर्गविधान परंपरा का स्थापत्त्यीय अध्ययन: कोट/क्वाठा के विशेष संदर्भ में

शोध लेखक :
नागेन्द्र रावत
सहायक आचार्य एवं शोध निर्देशक,
आई.सी.एस.एस.आर इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग,
हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय,
श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड
9411737647
nagendra.rawat957@gmail.com

राजपाल सिंह नेगी
आचार्य एवं सह- शोध निर्देशक,
आई.सी.एस.एस.आर इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग,
हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय,
श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड
rajpal.negi2301@gmail.com

मेधा भट्ट
शोध सहायक, आई.सी.एस.एस.आर
इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग,
हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय,
श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड
kanabhatt5@gmail.com

शोध सारांश- गढ़वाल में सर्वेक्षित कोट/क्वाठा प्राचीन भारतीय दुर्गविधान परंपरा के उदाहरण हैं जो मध्य काल तथा उत्तर मध्यकाल में निर्मित किये गए। यह स्थापत्यीय संरचना अपने विभिन्न अवयवों के कारण दुर्ग विधान परंपरा में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं जिनमे इसका चतुरश्र विन्यास प्रमुख है। उर्ध्वछंद में यह संरचना द्वितलीय होती है जिसमें सुरक्षा के दृष्टिगत मात्र एक प्रवेश द्वार बनाया जाता है शेष संरचना चारों दिशाओं से बंद होती है जिसके मध्य में एक खुला प्रांगण होता है। क्वोठे में निर्मित यह एकल द्वार प्रवेश और निकास दोनों प्रयोजनों हेतु प्रयुक्त होता है, जो न केवल कोठा की सुरक्षा हेतु महत्त्वपूर्ण है अपितु यह कोठा के प्रमुख आकर्षणों में भी सर्वोपरि होता है। सुरक्षा एवं भोगोलिक परिस्थितियों के कारन कोठे की खिड़कियाँ को भी योजनाबद्ध तरीके से छोटी और उथली बनाया जाता है। कोट/ कोठा निर्माण की मुख्य उपयोगिता पदाधिकारी-जनों की सुरक्षा होती है, जो राजकीय और स्थानीय स्थापत्य के साथ मिलकर एक नए वास्तुशिल्प को जन्म देती है। यह कोट/ कोठा गढ़वाल हिमालय के ना केवल वास्तुकला में अपितु सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक इतिहास पर भी प्रकाश डालता है। किन्तु विलक्षण वास्तुकला एवं विभिन्न महत्ताओं के उपरांत भी इन स्थापत्तीय संरचनाओं पर पूर्व में कोई स्वतंत्र एवं केन्द्रित शोध कार्य नहीं किया गया अस्तु वर्णित विषय के सामरिक महत्त्व के दृष्टिगत प्रस्तुत शोध कार्य किया गया।

मूल शब्द: दुर्ग विधान, गढ़वाल, कोट, कोठा वास्तुकला

परिचय- भारतीय इतिहास में किला, पुर, कोट, दुर्ग एवं गढ़ आदि जैसे शब्द सुरक्षित स्थान के लिए प्रयुक्त किए गए हैं। सामरिक सुरक्षा में महत्त्व रखने के कारण ही प्रथम नगरीकरण (सिंधुघाटी सभ्यता) से लेकर द्वितीय नगरीकरण तथा मध्य काल तक दुर्ग निर्माण परंपरा सदा ही प्रयोग में रही। जिसके पुरातात्त्विक प्रमाण धौलावीरा, कोटदीजी, कालीबंगा सहित राजगीर, हस्तिनापुर (पुराना किला) आदि स्थानों से तथा साहित्यिक प्रमाण ऋग्वेद, वैदिक कल्पसूत्र, स्मृतिशास्त्र, नीतिशास्त्र, पुराण और शिल्पशात्रों में मिलते हैं। दुर्ग निर्माण परंपरा के साक्ष्य मध्य हिमालयी क्षेत्र के गढ़वाल भाग में भी मिलते हैं जिनकी प्राचीनता सातवीं सदी ईस्वी तक जाती है, परवर्ती काल में विशाल दुर्गों की अपेक्षा छोटे कोठों का निर्माण प्रारंभ हुआ जोकि दुर्ग विधान परम्परा के आधार पर ही बनाये गए। गढ़वाल हिमालय में कोट/क्वाठा शब्द का प्रयोग किलाबंदी/ दुर्गविधान/ आवासीय वास्तुकलाकेलिए किया गया है। यह कोट ग्राम समाज के कुलीन वर्ग से संबंधित है, जोराजनैतिक अथवा धार्मिक रूप से विशिष्ट पदाधिकारियों के लिए बनवाए जाते थे। हालाँकि, कोटशब्द की उत्पत्ति के संबंध में कई मतभेद हैं किन्तु कतिपय विद्वानों के अनुसार, कोट शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द "कोट्ट" से हुई है, जिसका उपयोग एक सुदृढ़ दुर्ग संरचना के लिए किया जाता है। एक मत के अनुसार कोठा शब्द संस्कृतके"कोष्ठक"से लिया गया है, जिसका अर्थ है- चारों ओर से घिरा हुआ अथवा सुरक्षित। अत: कहा जा सकता है कि, उपलब्ध सभी मतों के अनुसार कोट शब्दका प्रयोग ऐसे स्थान के लिए किया गया है, जो संरचना में बंद होता है तथा सुरक्षित होता है। इस प्रकार, गढ़वाल में निर्मित कोट /क्वोठा/कोठा की वास्तुकला को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि कोठा /क्वोठा शब्दकोट शब्द का स्थानीय संस्करण है जो समयानुरूप अपभ्रंश होता गया। प्रस्तुत शोध कार्य हेतु किये गए सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि गढ़वाल क्षेत्र में बीस से अधिक संरचनाएँ हैं, जींगे कोट / कोठा की श्रेणी में रखा जा सकता हैं। कोट / कोठा अपनी विशिष्ट स्थापत्य के कारण अनूठा है, किन्तु इस विषय पर शोध की दृष्टि से बहुत सीमित कार्य किया

गया है, फलत: इस शोध पत्र को गढ़वाल के कोठों पर केन्द्रित किया गया है जिसमें प्रमुख रूप से कोठे के स्थापत्य पर सविस्तार विश्लेषण किया गया है।

शोध क्षेत्र- प्रस्तुत शोधकार्य उत्तराखंड के गढ़वाल क्षेत्र में केंद्रित है। गढ़वाल उत्तराखण्ड राज्य की एक प्रशासनिक इकाई है जिसमे चमोली, रुद्रप्रयाग, पौड़ी गढ़वाल, टिहरी गढ़वाल, उत्तरकाशी, हरिद्वार और देहरादून सात जनपद सम्मिलित हैं।

शोध का उद्देश्य एवं महत्त्व- प्रस्तुत शोध का प्रमुख उद्देश्य गढ़वाल के विभिन्न क्षेत्रों में निर्मित कोट / कोठों की स्थिति निश्चित करना, साथ ही इन स्थानों पर क्षेत्र भ्रमण कर कोठों की वर्तमान स्थिति एवं इनके स्थापत्य की विशेषताओं को प्रकाश में लाना जोकि, गढ़वाल के मध्य कालीन तथा उत्तर मध्य कालीन दुर्ग निर्माण परंपरा के साथ साथ गढ़वाल के स्थापत्य कला में नया अध्याय जोड़ने में सहायक होगा।

शोध प्रणाली- प्रस्तुत शोधकार्य हेतु वर्णात्मक तथा विश्लेषणात्मक विधि दोनों का प्रयोग किया गया है। शोध उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए विभिन्न चरणों में कार्य किया गयाहै। प्रथम चरण में पूर्ववर्ती शोध कार्यों का अध्ययन किया गया जिससे शोध समस्या को समझने में सरलता हुई एवं शोध समस्या का औचित्य भी निर्धारित किया गया। पूर्ववर्ती साहित्य की विस्तृत समीक्षा से ज्ञात हुआ कि गढ़वाल हिमालय के क्वोठा पर बहुत हीसीमित शोधकार्य हुआ है। अगले चरण में गढ़वाल हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में कोठों/ क्वोठा की पहचान के लिए क्षेत्रीय भ्रमण किए गए। इस कार्य के दौरान विस्तृत प्रलेखन भी किया गया है, जिसमें मुख्य रूप से रेखाचित्र, माप, फोटोग्राफ़ी, वीडियोग्राफ़ीऔर डिजिटल टोपोग्राफ़िकल सर्वे का कार्य शामिल है। शोध के तीसरे एवं अंतिम चरण में संकलित जानकारियों का विश्लेषण किया गयातथा परिणाम निर्धारित किये गए जिनका विवरण निम्नवत है।

कोट/क्वोठा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि- उत्तराखण्ड के मध्यकालीन (प्रशासनिक) इतिहास में थोकदारों का महत्त्वपूर्ण स्थान एवं प्रभाव रहा है, लेकिन 19वीं शताब्दी के मध्य में सुदर्शन शाह द्वारा किये गए एकीकरण के बाद, थोकदारों के विशेषाधिकार कम हो गए। थोकदारों के अधिकारों में भूमि का अधिकार, पुलिस कर्त्तव्य और हथियार रखना सम्मिलित था। गढ़वाल में सन1856 के समझौते के उपरांत कई परिवर्तन आए, जिसमें थोकदारों के अधिकारों को कम कर दिया गया और पुलिस की ज़िम्मेदारियों को ग्राम प्रधानों से स्थानांतरित कर दिया गया। किन्तु उल्लेखनीय है कि, अधिकारों में कमी के उपरांत भी थोकदारों का स्तर समाज में ऊँचा ही रहा, उनका निवास स्थान अन्य वर्ग से भिन्न होता था, अधिकतर कोट/क्वोठा उनके निवास स्थान एवं जागीर का हिस्सा रहे, आज भी कई कोट/क्वोठे थोकदारों की संपत्ति का हिस्सा हैं। कोट/क्वोठा न केवल आवासीय संरचनाओं के रूप में बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों के केंद्र के रूप में भी चिह्नित थे। इन कोठों को गाँव से जुड़ी विभिन्न गतिविधियों को सुविधाजनक बनाने, धार्मिक समारोहों, सभाओं और सामुदायिक कार्यक्रमों के लिएउपयोग मेंलायाजाता था। कई ऐसे कोट/क्वोठा का भी उद्धरण मिलता है जो थोकदारों की सम्पति न होकर अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्ति विशेष जैसे महंत या रावल के निवास स्थान के रूप में उभर कर आए, ऐसे कोट/क्वोठा धार्मिक स्थल के पास स्थित हैं। उदाहरण के तौर पर गोपेश्वर का कोठा, जोशीमठ का कोठा और उखीमठ का कोठा।

कोट /कोठा का स्थापत्य- पूर्वोल्लिखित है कि, कोट/क्वोठा एक दुर्गविधान संरचना है जो गढ़वाल के प्रशासनिक इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। यह संरचना अपनी उपयोगिता के साथ-साथ एक विशिष्ट वास्तुकला को भी प्रदर्शित करती है जो कि एक राजकीय एवं स्थानीय(लोक) स्थापत्य के एक अद्भुत मिश्रण के रूप में उभर कर आती है। कोट या क्वोठा द्वितलीय संरचना होती है, जिसका तलछंद वर्गाकार होता है। इस संरचना के दो महवपूर्ण अंग हैं, पहला केंद्र में उपस्थित चौक/प्रांगण और दूसरा एक बड़ा एकल प्रवेश द्वार जो इसे अन्य स्थानीय स्थापत्य से भिन्न बनाते हैं। कोट/क्वोठा कई आकार, आकृति या माप में बनाए जा सकते हैं; किन्तु एकल प्रवेश द्वार एवं केंद्र का प्रांगण सभी कोठों में एक समान तत्त्व है। इस प्रकार, इन समान विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए, गढ़वाल के विभिन्न क्षेत्रों में वर्तमान अध्ययन के दौरान 20 से अधिक कोट/क्वोठा की सूची तैयार की गई है। इन सभी 20 कोट/क्वोठा में से केवल एक कोठा आयताकार में है, जो सारकोट गाँव, चमोली गढ़वाल में स्थित है, बाक़ीसभी कोठे सामान्य वर्गाकार में हैं। सर्वेक्षण से यह भी पता चला है कि सबसे छोटा कोठा गोपेश्वर में प्राचीन शिव मंदिर परिसर में बनाया गया है, जो मंदिर का एक अभिन्न अंग है जिसे 'रावल निवास' (मुख्य पुजारी का निवास) के रूप में जाना जाता है। यह कोठा 15×15 मीटर वर्ग क्षेत्र में बना है, जिसमें पारंपरिक दो मंज़िलें हैं और पूर्वी दिशा में एक प्रवेश द्वार है। गढ़वाल के सबसे बड़े कोठों में से एक ईडा गाँव, पौडी गढ़वाल में स्थित है, जो नेगी परिवार से संबंधरखताहै। यह कुल 23×23 मीटर वर्ग क्षेत्र में फैला है। यह कोठा दो मंज़िला है और इसकी पूर्वदिशा में एक विशाल और अलंकृत प्रवेश द्वार है। इन दो मंज़िला कोठों का निर्माण मिट्टी, पत्थर के खंड, काष्ठ और पठाल (स्लैब्स) के संयुक्त उपयोग से किया गया है;जो न केवल उन्हें मज़बूती प्रदान करता है, अपितुउन्हें भूकंप प्रतिरोधी भी बनाता है। कमरों की संख्या कोठे के आकार पर भी निर्भर करती है, जैसे- रावल निवास, गोपेश्वर में केवल 22 कमरे हैं, लेकिन ईडा के कोठे में कुल 48 कमरे हैं। कमरे का आकार भी उसकी उपयोगिता के आधार पर निर्भर करता है। यहदेखा गया है निचले तल के कमरे निवास के लिए कम और भण्डारण के लिए प्रयोग में लाए जाते थे, इसलिए इनका आकर ऊपरी तल के कमरों से थोड़ा कम होता था। कोठे की ऊपरी मंज़िल पर एक विस्तृत स्थान होता है, जिसे स्थानीय भाषा मेंडंड्याली /छज्जा/तिबारी कहा जाता है। डंड्याली एक आयताकार बरामदा है, जिसकी लंबाई इसकी

चौड़ाई से अधिक होती है। डंड्यालीके स्तंभों की विशेषता उनकी सादगी है, जिनमें विस्तृत अलंकरण का अभाव है। यहीं विस्तृत स्थान ऊपरी तल के सभी कमरों को आपस में जोड़ने के लिए प्रयोग मेंलाया जाता है। इसी क्रम में छज्जा, पठाल (स्लेट्स) के क्रमबद्ध सजावट से बना विस्तृत स्थान होता है। छज्जा आकार में छोटा और कम चौड़ा होता है और स्तंभरहित होता है। इसी क्रम में एक और इस तरह का विस्तृत स्थान है जिसे तिबारी कहा जाता है, जो चार स्तंभों वाले तीन लम्बे गवाक्ष (खिड़कियाँ)को संदर्भित करता है. तिबारी, दंडालयी के अपेक्षा अलंकृत अधिक एवं विस्तृत होती है। इसके स्तंभ बहुत अलंकृत होते हैं, जो आपस में जुड़ कर तीन विशाल गवाक्ष (खिड़कियाँ) की संरचना बनाते हैं। जिस कारण इसे ति-बारी (तीन खिड़कियाँ) कहाँ जाताहै। उसी प्रकार द्विबारी (तीन स्तंभों वाली दो लम्बी खिड़कियाँ), चौबारी (पाँच स्तंभों वाली चार लम्बी खिड़कियाँ) इसी क्रम में नौ खिडकियों और दस स्तम्भ के साथ नौबरी का भी उद्धरण मिलता है। लेकिन तिबारी गढ़वाल हिमालय क्षेत्र में सबसे अधिक अपनाई जाने वाली संरचना है। यह तिबारी कोठे के अलावा आम जन के घरों का भी एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।

केंद्रीय प्रांगण- चारों ओर से बंद इस संरचना के केंद्र में एक चौक या प्रांगण होता है, जो इसे अन्य पारम्परिक संरचनाओं से भिन्न बनाकर एक विशिष्ट पहचान प्रदान करता है। यह प्रांगण छत रहित होता है जो कि प्राकृतिक प्रकाश और हवा के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। यह केंद्रीय प्रांगण यहाँ की निवासियों तथा गाँव के लिए सामाजिक और धार्मिक उपयोगिता भी रखता है, उदाहरणतार्थ - गाँव के भंडारण के कार्य, गाँव से सम्बंधित पूजा पाठ के कार्य, त्यौहार आदि के सामूहिक उत्सव आदि कार्यों के लिए भी यह केंद्रीय प्रांगण की उपयोगिता रही है।

एकल प्रवेश द्वार- कोठे का एक महत्त्वपूर्ण अंग है इसका काष्ठ निर्मित विशाल एकल प्रवेश द्वार भी होता हैजोकिविभिन्न अलंकरणों से सुसज्जित होता है। यह एकल द्वार कोठे की संरचना को सुरक्षा की दृष्टिसे एक दुर्गीय संरचना का रूप देता है। किसी भी संरचना में प्रवेश द्वार एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा होता है, जिसे न केवल वास्तुकला का एक प्रमुख घटक माना जाता है, वरन इसमें प्रयुक्त आकार, अलंकरण और रूपांकन संरचना आदि उस कोठेके निवासियों की पहचान और उनके सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति को भी दर्शाते हैं। जैसा कि पूर्वोल्लिखित है कि क्वोठा, थोकदार या अन्य विशिष्ट व्यक्तियों के लिए बनाए जाते थे, जो उनकी सुरक्षा एवं समाज में भिन्न स्तर को दर्शातेथे। गढ़वाल हिमालय के कोठों में सामान्य रूप से उत्तरी या उत्तर-पूर्वी दिशा में एक ही प्रवेश द्वार होता है। द्वार में तीन प्रमुख तत्त्व होते हैं यथा- ऊर्ध्वाधर-सीधी चौखट, दो क्षैतिज भाग (द्वार स्तंभ) और शीर्ष पर ललाट-बिम्ब(क्षैतिज स्तम्भ)। पारंपरिक रूप से सुसज्जित यह एकल द्वार बहुत ही अलंकरण पूर्ण बनाए जाते हैं, जिनमें भिन्न प्रकार के ज्यामितिक, प्राकृतिक प्रतीकऔर अन्य अलंकृतहोते हैं। ललाट-बिम्ब पर गणेश की प्रतिमा होती है। कोठे का द्वार सिर्फ़ काष्ठ का बना होता है। द्वार को भिन्नऔर अलंकृत बनाने के लिए छज्जे और द्वार के बीच में काष्ठ से बने अलग-अलग प्रकार के जानवरों एवं पक्षियों के प्रतीकात्मक रूप भी बनाएजाते है।

गवाक्ष (खिड़कियाँ)

कोठे की खिड़कियों का शिल्प भी सुरक्षा के दृष्टिगत बनाया जाता है। खिड़कियोंकी माप अधिकतम 24" x 10" तकसीमित होती हैऔर वेआकार में संकीर्ण होती हैं। ऐसा वास्तुशिल्प कार्यात्मकता और सुंदरता दोनों उद्देश्यों को पूरा करता है। खिड़कियों की उथली/संकीर्ण प्रकृति गोपनीयता और सुरक्षा के स्तर को बनाए रखने के लिए बनाई जाती है। जिससे भीतर से बाहर देखने के लिए पर्याप्त स्थान होता है, किन्तु बाहर से भीतर नहीं देखा जा सकता।

निष्कर्ष- उपरोक्त विवरण दर्शाता है कि गढ़वाल में प्राप्त कोट/ कोठा प्राचीन भारतीय दुर्गविधान परंपरा का एक लोकरूप है। यह कोट चारों दिशा से बंद एककिलेबंद संरचना है, जिसमें प्रवेश एवं निकास के लिए एकल द्वार का निर्माण किया जाता है। यह एकल द्वार कोठे के भीतर प्रवेश करनेवालों की निगरानी के लिए महवपूर्ण अंग है। कोठे को दुर्गविधान परंपरा का उद्धरण इसलिए भी कहा जा सकता हैक्योंकिजिसप्रकार दुर्ग किसी व्यक्ति विशेष की सुरक्षा के लिए बनाए जाते थे, ठीक उसी तरह कोठे भी थोकदार या रावल/महंतआदि के निवास स्थान के रूप में प्रयुक्त किए जाते थे। क्वोठे की खिड़कियाँ भी सुरक्षा की दृष्टि से ही छोटी एवं उथली बनाई जाती हैं। इससे विदित होता है कि कोठे के निर्माण की मुख्य उपयोगिता सुरक्षा है। इसके संदर्भ में अंत में यह कहा जा सकता है कि राजकीय स्थापत्य, स्थानीय स्थापत्य के साथ मिल कर एक नए वास्तुशिल्प को जन्म देता है, जो न केवल मूर्त धरोहर के तौर पर महत्त्वपूर्ण है, बल्कि गढ़वाक के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, और प्रशासनिक इतिहास का भी महत्त्वपूर्ण अंग है।

आभार- प्रस्तुत शोध पत्र के लेखक, शोध कार्य करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने हेतु आईसीएसएसआर, नई दिल्ली के सहृदय आभारी हैं। साथ ही शोध क्षेत्र के ग्राम प्रधान एवं स्थानीय लोगो का भी साक्षात्कार हेतु आभार व्यक्त करते हैं। हम इतिहास एवं पुरातत्व विभाग एचएनबीजीयू के पुस्तकालय के भी सुचारू रूप से पुस्तक, शोध ग्रन्थ एवं अन्य साहित्य उपलब्ध करने हेतु आभार व्यक्त करते हैं।

संदर्भ- Begde, P. V. (1982). Forts and Palaces of India. Sagar Publications, Burrow, T., &Emeneau, M. B. (1984). A Dravidian etymological dictionary, . Oxford University Press. Negi, R.P.S. (2023, August). Kotha (Personal communication). Saklani, A. (1987). The History of a Himalayan Princely State Change, Conflicts and Awakening. Durga Publications Delhi. Pauw, E. K. (1896). Report on the Tenth Settlement of Garthwal District. North- westrern province and Owadh Government.

(शोध आलेख)

हरिशंकर परसाईं : वैचारिकी में व्यंग्य और व्यंग्य में वैचारिकी

शोध लेखक : डॉ. मंटू कुमार साव
सहायक प्राध्यापक
कालिम्पोंग कॉलेज
कालिम्पोंग-734301

डॉ. मंटू कुमार साव
138/1, पद्मापुकुर रोड
पीओ- फिंगापारा
ज़िला - नॉर्थ 24 परगना
वेस्ट बंगाल 743129

प्रस्तावना - हरिशंकर परसाई हिन्दी जगत् के ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने व्यंग्य को अपनी वैचारिकी से जोड़कर विधा के तर्ज पर पाठक के सामने रखा। उनके लिए व्यंग्य मनोरंजन की वस्तु नहीं अपितु समाज और जीवन में व्याप्त असंख्य प्रश्नों के सामने एक सवाल हैं जिनका जबाव भारतीय जन को खोजना है। भले ही उनकी रचनाएँ हमारे मन को गुदगुदाती है, चेहरे पर हँसी की हलकी झलक छोड़ जाती है पर कहीं न कहीं हमारे दिल को कुरेद कर चली जाती है कि आज़ाद भारत में आम जन के सपनों का क्या हुआ? उनका वैचारिक लक्ष्य सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था के पाटों में पिसती-सिसकती आम जन की पीड़ा है।

हरिशंकर परसाई का साहित्य स्वातंत्र्योत्तर भारत के निम्नमध्यवर्गीय एवं निम्नवर्गीय जनसमूह का महागाथा है। उनकी रचनाएँ सिर्फ किताबी नहीं बल्कि समकालीन जीवन और जाने-पहचाने लोगों को अपने तरीके से देखने का ढंग भी है। "उनके यहाँ गेंहू, चावल, मिटटी का तेल, राशन की दूकान, कांस्टेबल, प्राइमरी स्कूल के मुदर्रिस, आवारा छोकरे, कुत्ते, किराये का मकान, बीमारियाँ, बिना टिकट रेल यात्रा, सत्यनारायण की कथा, पाकेटमार आदि मिलेगा, दूसरी ओर कांट्रैक्टर, दलाल, एम्.एल.ए., मंत्री उद्योगपति, सेठ, गुण्डे, पुरोहित, पुलिस, प्रिंसिपल आदि। ... भारत के परस्पर विरोधी दो पक्ष मिलेंगे यहाँ। एक ग़रीब, मशक्कत करनेवाला, ईमानदार वंचित भारत है जो दबा तो है लेकिन अपनी स्थिति से उबरने की छठपटाहट भी है। दूसरा वह भारत है जो शोषक, ढोंगी, पाखंडी और सत्तावान है। दोनों सक्रिय है। दोनों की परस्पर विरोधी सक्रियता ही वर्तमान भारत का ऐतिहासिक परिदृश्य है।"1 यही कारण है कि परसाई ने अपने व्यंग्य-निबंधों के माध्यम से समकालीन भारत की व्यापक महागाथा रची है।

हिन्दी साहित्य में व्यंग्य को स्वतंत्र एवं गंभीर विधा को गंभीरता के साथ पठनीय और धारदार बनाने वाले हरिशंकर परसाई का व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही जीवटता से भरा है। घोर देहाती गाँव में जन्मे परसाई अल्पायु में ही अपनी माता को खोने का दु:ख और कम उम्र में आर्थिक संकट और लाचारी ने उनके अन्दर हीनता बोध को पैदा नही होने दिया बल्कि जीवन में लड़कर और संघर्ष में अपने को आम जन के साथ संघर्ष करने के लिए तैयार किया। यही जीवन संघर्ष उनकी लेखन को मजबूती प्रदान करता हैं। स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में सत्ता-स्वार्थ की राजनीति जिस प्रकार जन विरोधी ताकत बनाकर उभरी और उसने आम आदमी से उसके स्वतंत्र नागरिकता होने का अधिकार छीन लिया, वह परसाई के लिए असह्य हो गया था। भारतीय जन-साधारण के लिए स्वाधीनता मात्र एक राजनीतिक घटना नहीं थी। वह एक स्वप्न था - परिवर्तन का, नई व्यवस्था का, स्वराज का। किन्तु छलपरक मूल्यविहीन राजनीति तथा भ्रष्ट प्रशासन तंत्र ने मिलकर भारतीय लोकतंत्र को संपन्न शासक वर्ग के हाथ की कठपुतली बनाकर रख दिया। शासक और शोषक का गठबंधन लोकतान्त्रिक व्यवस्था से बराबर खिलवाड़ करता रहा है। इस चक्रव्यूह ने जनसाधारण के लिए जो स्थितियाँ पैदा की हैं उनमें गरीबी, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचारी, अशिक्षा, स्वास्थ्य जैसी अनेक समस्याएँ तो हैं ही लेकिन उससे भी बढ़कर दंश इस बार का है कि जनता को बराबर बेवकूफ बनाया जा रहा है।"2 आम जन को बेवकूफ बनाने की प्रक्रिया आज भी जारी है और वह भी नए-नए चेहरे के साथ। यही कारण है कि परसाई अपनी लेखनी में पहली प्रतिबद्धता जन-सामान्य के प्रति समर्पित करते हैं। इस प्रतिबद्धता के सामने जो भी आए- चाहे वह इमरजेंसी लगाने वाली चापलूस संस्कृति की कांग्रेस हो, चाहे क्रांति का बिगुल बजाकर सत्ता में आने वाली जनता पार्टी, सभी पर अपनी कलम की धार को अजमाए हैं और सवाल करते हैं कि कंधे से कंधा मिलकर आजादी की लड़ाई में आम जन के साथ आप सत्ताधारियों ने क्या समुचित न्याय किया, उनके सपनों को तोड़ने में तनिक भी दु:ख नहीं हुआ? वास्तव में

उनकी लेखनी में सबसे गौर करने वाली बात यहाँ है कि वह अपनी लिखने में सीधे-सीधे टकराने की हिम्मत रखते हैं। वह ख़ुद ही लिखते है - 'मेरा कर्त्तव्य है कि मैं सन्नाटा तोडूं।' इनका यह सन्नाटा तोड़ने की प्रक्रिया सिर्फ राजनैतिक स्तर पर नही बल्कि सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक स्तर पर भी ज़ोरदार हुआ है। सच कहा जाए तो परसाई का व्यंग्य समय की धड़कन पहचानने का एक सरल माध्यम हैं जहाँ आलोचना, यथार्थ, सृजन और कल्पना एक साथ दिखाई देता है। वह ख़ुद कहते हैं कि "सच्चा व्यंग्य जीवन की समीक्षा है। व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, अत्याचारों, मिथ्याचारों और पाखंडों का पर्दाफाश करता है। वह मनुष्य को सोचने के लिए बाध्य करता है और अन्याय से लड़ने के लिए तैयार करता है।"3 उनकी रचनाएँ उनके इस कथ्य की गवाह हैं।

हरिशंकर परसाई एक तरह से वर्तमानता के रचनाकार है। वर्तमान समय की समस्यायों को वह अपने लेखन का आधार बनाते है और कहते भी हैं कि 'जो हमारे सामने घटित हो रहा है, वही हमें सबसे ज़्यादा प्रभावित करता है। भूत और भविष्य को वर्तमान ही जोड़ता है।' वह दृढ़ता से यह भी कहतें हैं कि 'जो अपने युग के प्रति ईमानदार नहीं है, वह अनंतकाल के प्रति क्या ईमानदार होगा।' यही वर्तमानता में जीने वाले परसाई जी अपने समय के राजनैतिक मुद्दों से लड़ते हुए नज़र आते हैं। उनके निबन्ध-'ठिठुरता हुआ गणतंत्र', 'बैरंग शुभकामना और जनतंत्र', 'कहाँ है भारत-भाग्यविधाता', 'शर्म! शर्म! संस्कृति', 'तुसी हुकुम करो जी!', 'जाँच कमीशन:सरकार का कुल्ला', 'मानव-आत्मा और अमेरिकी हूटर' और 'भारत को चाहिए:जादूगर और साधू' में समकालीन प्रशासन-आश्वाशन और राजनेताओं के चरित्र पर लगे मुखौटे को बेनकाव कर दिया है। परमानन्द श्रीवास्तव परसाई जी पर लिखते हैं कि-" परसाई के पीछे एक राजनैतिक दृष्टि भी है। राजनीति और साहित्य के बीच जो संवाद संबंध पिछले दो दशकों से बना है या सीधी घनिष्ठता कायम हुई है उसकी स्पष्ट छाया परसाई के व्यंग्य लेखन पर है।"4 यही कारण है कि राजनैतिक मुद्दों को सामने रखकर परसाई जी अपनी लेखनी में तीन शब्दों पर ज़्यादा ज़ोर देते हैं वे शब्द हैं- जनतंत्र, गणतंत्र और लोकतंत्र। परसाई जी अपनी वैचारिकी में आमजन, जनजीवन और जनसंवेदना को ज़्यादा महत्त्वपूर्ण मानते हैं। प्रजातान्त्रिक देश की मूल उक्ति -जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा, को अपनी रचना के मूल मन्त्र की तरह गृहित करते हैं। अपने निबंध में एक जगह कहते हैं कि "मेरे आसपास 'प्रजातंत्र बचाओ' के नारे लग रहे हैं। इतने ज़्यादा बचने वाले हो गए हैं कि प्रजातंत्र का बचना मुश्किल दिखता है जनतंत्र बचने के पहले सवाल उठता है- किसके लिए बचाएँ ? जनतंत्र बच गया और फालतू पड़ा रहा, तो किस काम का।"5 आज जनतंत्र में जन ख़त्म हो गया है सिर्फ तंत्र बचा है और यह तंत्र जन के लिए खतरनाक हैं। इस तंत्र में जो व्यवस्था पनप रही है वह आमजन के बुनियादी सुविधाओं की उगाही तो नही कर रहा पर अपना पेट ज़रूर भर रहा है। परसाई जी इस तंत्र में चल रहे जन विरोधी षड्यंत्र को जनता के सामने लाते हैं। बड़े ही व्यंग्यात्मक अंदाज़ में अपने विचार को रखते हैं-"जनतंत्र की सब्जी में जो जन का छिलका चिपका रहता है उसे छील दो और खालिस तंत्र को पका लो। आदर्शों का मसाला और कागजी कार्यक्रमों का नमक डालो और नौकरशाही की चम्मच से खाओं।"6 आज इस जनविरोधी समाज में इसी वर्ग की ही हुकूमत चलती है। यह वर्ग सीना ठोक कर कहता है कि- "भैया हम तो सौ बात की एक बात जानते हैं कि अपने को बचने से जनतंत्र बचेगा। अपने को बचने से ही दुनिया बचाती है।"7 परसाई की नज़र इस व्यवस्था के हर षड्यंत्र पर है और जन विरोधी इस सोच के विपक्ष में खड़े होकर अपनी लेखनी को और मजबूती के साथ प्रस्तुत करते हैं।

परसाई जी की वैचारिकी उनकी जीवन-दृष्टि की संगति में दिखाई देती है और उनकी यही जीवन- दृष्टि सामाजिक सरोकार को लेकर चलती है। यही कारण है कि उनके व्यंग्य रचनाओं में सामाजिक सौन्दर्यबोध को बहुत करीबी से समझा जा सकता है और सामाजिकता के साथ नैतिक मूल्यों की पहचान भी की जा सकती है। सामाजिक सौंदर्यबोध और वैचारिक को जोड़कर देखेंगे तो परसाई के कई ऐसे निबंध (विकलांग श्राद्ध का दौर, हरिजन का पीटने का यज्ञ, हस्ती मिटती नहीं हमारी, इस्लाम के कोड़े, यह युग 'मिसफिट का है!, न्याय का दरवाज़ा आदि) हैं जहाँ सामाजिक कुरूपता और विभस्तता को देख सकते हैं। जिस तरह से हमारे गणतंत्र का बुद्धि-विवेक ठिठुर सा गया है ठीक उसी तरह आज श्रद्धा का भाव स्वर्थानुरूप हो गया है। आज हृदय पर अति बुद्धिवाद का वर्चश्व हो गया। आज हृदय में पल रही संवेदना को मशीनी संस्कृति में अपने अधीन कर लिया है। आज "श्रद्धा पुराने अख़बार की तरह रद्दी में बिक रही है। विश्वास की फसल को तुषार मार गया। इतिहास में शायद कभी किसी जाति को इस तरह श्रद्धा और विश्व से हीन नहीं किया गया होगा। जिस नेत्रृत्व पर श्रद्धा थी, उसे नंगा किया जा रहा है। जो नया नेतृत्व आया है, वह उतावली में अपने कपड़े ख़ुद उतार रहा है।"8 आज मिलावटी श्रद्धा का प्रचलन है। श्रधेय बनने और बनाने की होड़ लगी हुई है। इस श्रद्धा और श्रधेय की फैक्ट्री में संवेदना की कोई जगह नही है। सभी अपने आज मनीषी-बुद्धिजीवियों की नस्ल को शंका की दृष्टि से देखा जाने लगा है। परसाई जी इसपर चोट करते हैं- "यह चरण छूने का मौसम नहीं, लात मारने का मौसम है। मारो लात और क्रान्तिकारी बन जाओ।"9 आज के युवा पीढ़ी को यह समझना होगा कि हम जिस संक्रमण में जी रहे हैं क्या उसका कोई सामजिक सरोकार है ?

आज का समय बुद्धिहीन, तर्कहीन और धर्माधीन का है। आज जीवन में निराशा ज़्यादा है। आज तर्कहीन और उन्मादी लोगों की संख्या में बहुत ज़्यादा बढ़ोत्तरी हुई है। चाहे बाबरी-राम मंदिर का मामला हो, ज्ञानव्यापी-मथुरा, काशी-काबा का मामला हो, कश्मीर या पाकिस्तान अधिकृत का मामला हो, वोट बैंक की राजनीति हो, NRC-CAA का

मामला हो-सभी मुद्दों में देश की युवा पीढ़ी झुण्ड बनाकर अपने को इस अग्नि में कूद पड़ा है। इस मामले में पहले कांग्रेस ने रोटी सेंकी है अब उस गरम तबे पर भाजपा वाले सेंक रहे है। भाजपा राष्ट्रीय सुरक्षा और राष्ट्रवादी मुद्दों की आड़ में हिन्दू एकीकरण को बढ़ावा दे रहा है, पाकिस्तान-बांग्लादेश घुसपैठिया और रोहंगिया शरणार्थी, इस्लाम जिन्दबाद और अल्लाह हो अकबर के नारे के भय ने भारत में हिन्दू को एकजूट होने और करने में ज़्यादा फायदा बीजेपी को हुआ है। ऐसा नहीं है कि भाजपा को छोड़कर भारत के अन्य पार्टियों ने इस तरह जन्तात्रन्त्रिक मूल्यों का हनन करके जन जीवन को गर्त में ले जाने का काम किया है। कश्मीर में पंडितों का पलायन, गोधरा कांड, सिख हत्या, मुलायम सिंह यादव के राज में हिन्दू पर गोलियाँ चलवाना आदि ऐसी कई घटनाएँ है जिसपर आज युवा पीढ़ी उन्मादी रूप में एक सांप्रदायिक माहौल के साथ जी है। यह संक्रमण लोगो में अविश्वास, घृणा, रोष, बदले की भावना को बढ़ा रहा है। परसाई आज के इस संक्रमण काल को देखकर चिंतित हैं। अपने निबंध में इस उन्मादी चेहरे को चित्रित करते हैं-"दिशाहीन, बेकार, हताश, नकारवादी, विध्वंसवादी युवकों की यह भीड़ बहुत ख़तरनाक होती है। इसका प्रयोग ख़तरनाक विचारधारा वाले महत्वाकांक्षी व्यक्ति और समूह कर सकते हैं। "10 वास्तव में धार्मिक उन्माद पैदा करना, अंधविश्वास फैलाना, लोगो की अज्ञानी और क्रूर बनाना राजसत्ता, धर्मसत्ता और पुरुष सत्ता का पुराना हथकंडा रहा है।

स्वातंत्रोत्तर भारत में पूँजीवाद के विकास का दबाव आज जन पर सबसे ज़्यादा पड़ा है जिसके कारण लोगों की कर्मठता के स्वरूप में परिवर्तन हो गया है। यह परिवर्तन ही मिसफिट वाले युग को जन्म देता है। इस मिसफिट वाली व्यवस्था की कसौटी में जो फीट नहीं है उसे मिस्सिंग कर दिया जाता है। यह आज के प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष है। "प्रजातंत्र में सबसे बड़ा दोष है तो यह कि इसमें योग्यता की मान्यता नहीं मिलती, लोकप्रियता को मिलती है। हाथ गिने जाते हैं, सिर नही तौले जाते। जो कुछ निश्चित मत अपनी पेटी में गिरवा सके वह सबकुछ हो जाता है और यह शायद हमारे प्रजातंत्र में होता है कि गुण्डे भी चुनाव में जीतकर शासन करने पहुँच जाते हैं, जुए के फण्ड चलाने वाले, शराबखोरी करने वाले, गुंडागिरी करने वाले बड़े-बड़े निर्वाचन पदों पर हमारे ही प्रदेश में हैं। यह प्रजातंत्र है भाई।"11 इनके द्वारा बनाये गए प्रजातान्त्रिक समाज में प्रजा का कोई स्थान नहीं है। वह सिर्फ एक वोट बैंक है जिसको पंचवर्षीय चुनाव के लिए उपयोग में लाते हैं और एक दिन का देवता बनाकर बाकी दिनों के लिए गटर का कीड़ा बनने के लिए छोड़ देते हैं।

आज सांस्कृतिक संक्रमण, वैश्विक संकुचन और बाज़ारवादी विचारधारा का है। जहाँ सिर्फ उपभोक्ता ही उपभोक्ता है। संवेदना आज भोग से शुरू होता है और अंत ठीक उसके पीछे। हर तबके का समाज अब एक वैश्विक बाज़ार में बदल गया है। भूमण्डलीकरण, बाज़ारवाद, नव संस्कृतिवाद, नव उपनिवेशवाद, नव उपभोक्तावाद जैसे शब्द अब हमारे जेहन में भर दिए गए हैं। आज इस शब्दजाल में कोई नहीं बच सका है। 'शर्म!शर्म! संस्कृति', 'विज्ञापन में बिकती नारी', 'वो जरा वाईफ है न', 'लुच्चन की भीड़', 'विज्ञापन संस्कृति', 'शोभा बढ़ने के लिए' आदि परसाई के ऐसे निबंध हैं जहाँ समाज में फैली विज्ञापन संस्कृति के माया जाल से ग्रसित लोगों की दबी चीखे सुनायी देंगी। आज की इस विज्ञापन संस्कृति में 'आर्थिक तंगी रहेगी पर पैसों का इन्तेजाम हो जाएगा। क्योंकि अख़बार के भाग्यफल में यही लिखा है' जैसी मानसिकता बनकर रह गई है। अब हम अपने अन्दर की तार्किकता को ख़त्म करके अख़बार द्वारा बनाये गए भाग्य पर विश्वास करने लगे हैं। आज विज्ञापन ने घर को दूकान बनाकर रख दिया है। आज की इस संस्कृति में कुरूपता सबसे बड़ा अभिशाप है। आज जो सुन्दर नही वह मानव नहीं। परसाई जी अपने निबंध में कहते हैं कि " इस देश की सारी सुन्दर स्त्रियाँ कम्पनियों की नौकरानियाँ हैं। उनका काम कंपनी की तरफ से पुरुषों को फुसलाना है. ... सौदर्य स्त्री की वह मोहिनी शक्ति है, जिससे वशीभूत होकर पुरुष रद्दी सामान खरीद लेते हैं।"12 परसाई जी को दु:ख इस बात की है कि 'आज हम किस संकृति में जी रहे हैं? '

निष्कर्षत: परसाई जी का निबंध 'आज़ाद भारत का सृजनात्मक कहानी है। इनके निबंधो में वर्तमान भारत की यथार्थ स्थितियों को नए सन्दर्भों के साथ आकलन किया जा सकता है। सामान्य सामाजिक स्थितियों को परसाई ने वैचारिक चिन्तन को प्रस्तुत किया है। स्वतंत्र भारत के सकारात्मक-नकारात्मक सभी पहलुओं की परसाई ने बखूबी पड़ताल की है। परसाई की सृजनशील दृष्टि निम्नवर्गीय सामान्य आदमी से प्रारम्भ होकर बहुराष्ट्रीय समस्याओं तक को अपने भीतर समेटती है। परसाई व्यंग्य के माध्यम से सृजन और संहार दोनों एक साथ करते हैं। परसाई का व्यंग्य जब शोषक वर्ग के प्रति होता है तो वह उस वर्ग के प्रति घृणा और आक्रोश उत्पन्न करता है। "परसाई के पास अत्यंत सूक्ष्मदर्शी और संवेदना शील दृष्टि है, जो एक्सरे की तरह आदमी की कमजोरियाँ क्या हैं और गुण क्या हैं, इसकी पहचान कर लेती है।" 13

000

संदर्भ- 1.विश्वनाथ त्रिपाठी, भारतीय साहित्य के निर्माता- हरिशंकर परसाई, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ-61 2.डॉ. निर्मला जैन, सं., निबंधो की दुनिया-हरिशंकर परसाई, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ- 9-10 3.कमला प्रसाद, सं. परसाई रचनावली, खंड-6 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण - 1989, पृष्ठ-242 4.(कमला प्रसाद, सं. आँखन देखी, वाणी प्रकाशन, नै दिल्ली, द्वितीय संस्करण -2000, पृष्ठ-150) 5.वही-25 6.वही- 25 7.वही- 25 8.वही-53-54 9.वही-54 10.वही-66 11.वही- 68 12.वही-118 13.विश्वनाथ त्रिपाठी, भारतीय साहित्य के निर्माता- हरिशंकर परसाई, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ-61

(शोध आलेख)

राजमाता जीजाबाई का संघर्ष और राष्ट्र निर्माण में उनकी भूमिका

शोध लेखक : डॉ. पीयूष कमल
सहायक आचार्य
शैक्षिक सर्वेक्षण प्रभाग (ई.एस.डी.)
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद
(एन.सी.ई.आर.टी.)-नई दिल्ली

भारत भूमि वीर सपूतों को जन्म देने वाली वीरांगना माताओं की भूमि रही है। ऐसी ही एक वीरांगना माँ थीं- जीजाबाई। जिन्होंने शिवाजी जैसे वीर पुत्र को जन्म दिया। भारतीय इतिहास को जितनी बार भी पढ़ा जाए या लिखा जाए आप उसमें से जीजाबाई की मराठा साम्राज्य गठन में भूमिका और दूर-गामी नीतियों को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते। जीजाबाई या जिजाऊ का जन्म 12 जनवरी 1598 को सिंधखेड राज्य क्षेत्र (वर्तमान अहमदनगर महाराष्ट्र) में हुआ था। उनके पिता लखुजी जाधव थे, जो निजाम शाही सुल्तान के दरबार में एक जागीरदार थे। लखुजी निज़ाम के राज्य के एक लघु भाग के जागीरदार थे। उनकी माता का नाम महालसाबाई जाधव था। जीजाबाई एक बेहद प्रभावीशाली और बुद्धिमान महिला थी। जिन्होनें न सिर्फ मराठा साम्राज्य को स्थापित करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई बल्कि मराठा साम्राज्य की नींव को मजबूती देने में भी अपना विशेष योगदान दिया और अपना पूरा जीवन मराठा साम्राज्य की स्थापना के लिए समर्पित कर दिया। सच्चे अर्थों में राष्ट्रमाता ऐसी वीरांगना थी जिन्होंने अपने कौशल और प्रतिभा के दम पर अपने पुत्र को शूरवीर बना दिया।

महर्षि वेदव्यास की यह पंक्तियाँ जो माँ के सम्मान में लिखी गई है- 'नास्ति मातृसमा छाया, नास्ति मातृसमा गति:। नास्ति मातृसमं त्राणं, नास्ति मातृसमा प्रिया।।' अर्थात ''माँ के समान कोई छाया नहीं है, माँ के जैसा कोई सहारा नहीं है, माँ के जैसा कोई रक्षक नहीं है और माँ से ज़्यादा कोई प्रिय नहीं है।'' प्रस्तुत पंक्तियाँ जीजाबाई पर बिल्कुल सही बैठती है। माँ और उसके गर्भ में पल रहे शिशु के संदर्भ में भारतीय सनातन संस्कृति में यह बात भी प्रमाणिक है कि जब कोई स्त्री गर्भ धारण करती हैं और माँ बनने की भूमिका में होती है, तब उसे जिस प्रकार का सामाजिक और पारिवारिक वातावरण मिलता है। जिस प्रकार के विचार उसके मन, मष्तिष्क में उस समय पनपते हैं। वह गर्भ में पल रहे बच्चे के लिए जो इच्छाएँ रखती है। उन सबका प्रभाव बच्चे के विकास और जीवन पर उसी के अनुरूप पड़ता है। वैदिक परंपरा के मानने वाले का ऐसा विश्वास है की वेदों में ऐसे अनेक संस्कार एवं स्तुतियाँ उपलब्ध हैं, अगर जिनको नियमानुसार अनुष्ठान पूर्वक करने से पैदा होने वाले बच्चे में भाव के अनुरूप होनहार होने की आशाएँ पुष्ट होती हैं।

यह बात स्वत: सिद्ध है कि बालक के निर्माण में माँ कि भूमिका सर्वाधिक होती है। प्रत्येक माँ बालक की प्रथम गुरु तथा माँ की गोद प्रथम विद्यालय होता है। ऐसे ही सौभाग्यशाली बालकों में से एक थे शिवा (शिवाजी), जिनकी माँ का नाम था- जीजाबाई शाहजी भोंसले। शिवाजी के जन्म के समय उनके पिता शाहजी, मुस्तफाखान की कैद में थे। जिस कारण शिवाजी बचपन में

अपने पिता के स्नेह से वंचित रहे और जब उनकी उम्र लगभग 12 वर्ष हुई तब पिता से उनकी पहली भेंट हुई थी। इतने साल जीजाबाई ने पुत्र शिवाजी और अपने अन्य बच्चों का लालन-पालन स्वत: ही किया। जीजाबाई ने शिवाजी और अन्य बच्चों में ऐसे संस्कारों और आदर्शों का बीजारोपण जन्म से ही किया, जो जीवन भर उनके सभी के लिए प्रेरणास्रोत बने रहे।

शिवाजी की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही उनकी माँ के देख रेख में ही प्रारम्भ हुई। जीजाबाई शिवाजी की प्रथम गुरु और मार्गदर्शक थी। जीजाबाई ने राष्ट्र निर्माण को ध्यान में रखकर शिवाजी की ऐसी शिक्षा-दीक्षा की जो मराठा साम्राज्य की पुन: स्थापना में सहायक सिद्ध हुई। जीजाबाई एक चपल, चतुर, दूरदर्शी, साहसी, निर्भीक, कूटनीतिज्ञ, बुद्धिमान सोच वाली राष्ट्रभक्त महिला थी। जीजाबाई एक आस्तिक विचारों वाली धार्मिक महिला भी थी। मराठा इतिहास में लिखा गया है कि एक समय राज्य में जब स्त्रियों के प्रति हो रहे दुर्व्यवहार और दुर्दशा को समाप्त करने के लिए जीजाबाई ने माँ भवानी (कुलदेवी) के मंदिर जाकर स्त्रियों की दशा को सुधारने के उपाय सुझाने की प्रार्थना की। तभी कुलदेवी ने उन्हें उनके पुत्र के माध्यम से स्त्रियों की दुर्दशा में सुधार का आशीर्वाद दिया था। जीजाबाई बचपन से ही शिवा (शिवाजी) को रामायण, महाभारत, वेद, गीता जैसे पवित्र ग्रंथों की प्रेरणादायक कहानी सुनाया करती थीं। उन्होंने शिवाजी को ना केवल भारत की प्राचीन सभ्यता, संस्कृति और धर्म से परिचित कराया अपितु नारी का स्वाभिमान, सम्मान और उनकी रक्षा करने का पाठ भी पढ़ाया। यही कारण था कि शिवाजी हमेशा ही नारी जाति को सम्मान की दृष्टि से देखते और उनके आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहते थे।

कर्नाटक युद्ध में जब जीजाबाई के पति शाहजी और उनके ज्येष्ठ पुत्र संभाजी, अफजल खान के साथ युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो गए। जब यह समाचार जीजाबाई तक पहुँचा तब जीजाबाई ने पति की मृत्यु का समाचार सुनते ही, उस समय की प्रथा के अनुरूप अपने पति के साथ सती होने का निर्णय ले लिया था। परंतु शिवाजी की ओर देखते हुए उन्होंने सती होने के निर्णय का परित्याग कर दिया। मुगलों से बदला लेने और उनसे अपना खोया राज्य को पुन: प्राप्ति करने का संकल्प लेते हुए स्वयं को शिवाजी के पालन-पोषण और देखभाल में समर्पित कर दिया। जीजाबाई छत्रपति की केवल माँ ही नहीं थीं, बल्कि उनकी मित्र और पिता भी थीं। पति की अनुपस्थिति में शिवाजी के प्रति उनके कर्त्तव्य और योगदान को भुलाया नहीं जा सकता हैं। उनका संपूर्ण जीवन साहस, बलिदान और त्याग से ओतप्रोत था। जीजाबाई ने स्व:कौशल से शिवाजी को तलवारबाजी, घुड़सवारी, आत्मरक्षा, भाला चलाने की कला, आदि युद्ध-कौशल तथा सभी नीतियाँ सिखाई। जीजाबाई ने अपनी दूरदर्शिता, कूटनीतिज्ञ सोच और चातुर्य की बदौलत शिवाजी को इस योग्य बनाया कि वे 17 वर्ष के अल्प आयु में ही दुश्मनों के साथ दो-दो हाथ करने के लिए तैयार थे। निरंतर प्रयास से शिवाजी में धीरे-धीरे नायक के वे सभी गुण समाविष्ट होने लगे। जिनके फलस्वरूप शिवाजी ने किशोरावस्था में ही एक छोटी सी सैनिक टुकड़ी बना ली थी किसका नेतृत्त्व भी शिवाजी करते थे। किशोर बालवीरों की इस सैनिक टुकड़ी ने शिवनेर किले की छोटी-छोटी जागीरों को अपने कब्जे में लेना आरंभ कर दिया। माँ जीजाबाई टुकड़ी के प्रत्येक सैनिक को हमेशा प्रोत्साहित करती और उन्हें पुत्रवत स्नेह देतीं। जीजाबाई से सीखे ज्ञान और युद्ध कौशल की बदौलत शिवाजी ने युद्ध के मैदान में अनेक शासकों और मुगल आक्रांताओं को पीछे हटने के लिए विवश किया और अनेक वीरगति को प्राप्त हुए। मुगल आक्रांताओं से सिंहगढ़ किले पर विजय प्राप्त करने में भी जीजाबाई की महती भूमिका रही थी। इस वीरांगना माँ ने ही दुर्ग की प्राप्ति के लिए शिवाजी को प्रेरित किया। प्रसंग मिलता है कि एक बार क्रोधित होते हुए जीजाबाई ने आवेश में कटु शब्दों का प्रयोग करते हुए शिवाजी को बोला था कि "आज से ही तुम्हें! अपने आपको मेरा पुत्र कहना छोड़ देना चाहिए। तुम चूड़ियाँ पहन लो और घर की चारदीवारी के अंदर कैद रहो। मैं स्वयं फ़ौज के साथ सिंहगढ़ के किले पर आक्रमण करूँगी और किले पर लगे उस विदेशी झंडे को उतार कर फेंक दूँगी।" जीजाबाई के यह कटु वचन शिवाजी के कोमल मन में बाणों के समान चुभें और इन शब्दों ने उनका पूरा जीवन बदल दिया। शिवाजी ने तत्काल फौज का नेतृत्व करते हुए सिंहगढ़ दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में उन्हें विजयश्री प्राप्त हुई और शिवाजी ने सिंहगढ़ के दुर्ग पर विजय पताका फ़हरा दी। जिसके परिणामस्वरूप मराठा साम्राज्य की खोई हुई प्रतिष्ठा पुन: प्राप्त हो गई। जीजाबाई के आवेग में कहे इन शब्दों ने एक साधारण से शिवा को महान् योद्धा की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया और इतिहास के पन्नों में उनका नाम स्वर्ण अक्षरों से सदैव के लिए अमर हो गया। जीजाबाई की सूझ-बूझ से कई अवसरों पर मराठा साम्राज्य में ऐसे फैसले लिए गए, जिनकी वजह से 'हिन्दू-स्वराज' स्थापित हो सका। जीजाबाई की धर्मनिष्ठा का प्रभाव उनके पुत्र पर भी पड़ा। इसी कारण हम देखते है कि शिवाजी भी अपनी माँ के समान 'कुलदेवी' के उपासक थे। 'कुलदेवी' में उनकी अटूट श्रद्धा थी। किसी भी शुभ कार्य के प्राम्भ से पहले वो सदैव अपनी अपनी 'कुलदेवी' की पूजा करते थे। जीवनपर्यन्त माँ जीजाबाई शिवाजी की परम आराध्य बनीं रहीं और उनके संस्कारों शिवाजी के रोम -रोम में दैदीप्यमान रहे। जिनका परिणाम था कि शिवाजी ताउम्र एक निडर-निर्भीक योद्धा, संस्कारवान राजनेता, आस्थावान नायक, राष्ट्रभक्त, गौ रक्षक और कुशल प्रशासक बने रहे।

जीजाबाई सच्चे अर्थों में एक वीरांगना थीं, आज भी शिवाजी को याद करने से पहले उनकी पूज्य माताश्री 'जीजाबाई' को याद किया जाता है। छत्रपति शिवाजी महाराज ने युद्ध की एक नई शैली 'शिवसूत्र' विकसित की जो गोरिल्ला युद्ध पर आधारित थी। 1674 तक उन्होंने उन सारे क्षेत्रों पर पुन: अधिकार कर लिया जो पुरंदर की संधि (1665) के समय

संधि के अनुरूप उन्हें मुगलों को सौंपने पड़े थे। इसके बाद शिवाजी महाराज ने स्वतंत्र 'हिन्दवी साम्राज्य' की स्थापना की ओर कदम बढ़ाया जहाँ रायगढ़ में उनका राज्याभिषेक किया गय। जिसके बाद शिवाजी 'छत्रपति श्री शिवाजी महाराज' कहलाए। ख़ुशी के इन्हीं पलों के साथ दुर्भाग्यवश 12 दिन बाद, 17 जून, 1974 को माता जीजाबाई के स्वर्ग लोक सिधार गई अर्थात पंचतत्व में विलीन हो गई। परणामस्वरूप शिवाजी महाराज का 4 अक्टूबर 1674 को पुन: राज्याभिषेक किया गया था। माँ की मृत्यु के पश्चात माँ की दी हुई शिक्षा-दीक्षा, आदर्श और संस्कार ही शिवाजी के प्रेरणाश्रोत बने। उन आदर्शों पर चलकर वीर शिवाजी ने मराठा साम्राज्य के विस्तार में अपना जीवन समर्पित कर दिया। हम सब जानते है कि मराठा साम्राज्य की नींव छत्रपति शिवाजी महाराज ने रखी। लेकिन बहुत कम लोगों को यह पता होगा कि वास्तव में मराठा साम्राज्य की स्थापना की प्रेरणा स्रोत माता जीजाबाई ही थीं।

निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते हैं कि जीजाबाई की आत्मनिर्भरता, निर्णयकारी रणनीतियाँ, चपलता, साहस, त्याग, सतर्कता, निडरता, कूटनीति और शिवाजी को दी गई शिक्षाओं का परिणाम ही मराठा साम्राज्य का स्थापित होना है। जीजाबाई का जीवन चरित्र अन्याय एवं सामाजिक बुराइयों की समाप्ति हेतु समर्पित रहा। जीजाबाई नारी शक्ति की उपासक और प्रेरणा थी और हैं। उन्होंने हमेशा महिलाओं की रक्षा एंव मान-सम्मान को बचाने की बात तार्किकता से की। जीजाबाई ने अपने पुत्र को राष्ट्रहित के लिए तैयार करते हुए 'हिन्दू स्वराज्य' का सपना देखा था। जिसे उनके पुत्र ने पूरा किया। सच्चे अर्थों में शिवाजी 'हिन्दू-हृदय सम्राट' हैं। जीजाबाई की प्रेरक कहानियों और आदर्शों ने शिवाजी में वीरता, धर्मनिष्ठा, धैर्य और मर्यादा आदि गुणों को रोपित किया, जिससे शिवाजी के बाल हृदय में स्वाधीनता की लौ प्रज्वलित हुई। जीजाबाई के मार्गदर्शन में ही शिवाजी में युद्ध नीति कौशलों और नैतिक संस्कारों का विकास हुआ। जीजाबाई के दिए हुए संस्कारों की वजह से ही शिवा आगे चलकर हिन्दू समाज के संरक्षक और गौरव बने। उन्होंने स्वतंत्र और महान् शासक की तरह अपने नाम का सिक्का चलवाया और साथ ही 'छत्रपति शिवाजी महाराज' के नाम से अपने आप को स्थापित किया। शिवाजी ने एक मातृभक्त की तरह सदैव अपनी सभी सफलताओं का श्रेय अपनी माँ जीजाबाई को दिया, जो उनके लिए सदैव प्रेरणापुंज रहीं। जीजाबाई ने अपना सम्पूर्ण जीवन अपने पुत्र को मराठा साम्राज्य का महान्तम शासक बनाने में न्यौछावर कर दिया। जीजाबाई की शौर्य-गाथा, साहस, और संघर्ष भरी कहानियाँ हमें महिला सशक्तिकरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका को भी समझने में मदद करती हैं। उनका यह सच्चा योगदान भारतीय इतिहास में अविस्मरणीय है। माँ जीजाबाई की शिक्षाएँ और आदर्श जीवन सदैव लोक कल्याण के पवित्र दीप को दैदीप्यमान किए हुए हैं और उनका जीवन दर्शन और शिक्षाएँ आज भी प्रत्येक बालक-बालिका को वीर, साहसी और राष्ट्रभक्त बनने की प्रेरणा देता है।

000

संदर्भ- घटवाई प्रिया. 2020. माता जीजाबाई. नई दिल्ली. प्रभात प्रकाशन; प्रथम संस्करण। अग्रवाल एस.के. 2019. माता जीजाबाई: द वारियर क्वीन ऑफ़ महाराष्ट्र. नई दिल्ली. प्रभात प्रकाशन। केलुस्कर. के. ए. 1921. द लाइफ ऑफ़ शिवाजी महाराज: फाउंडर ऑफ़ थे मराठा एम्पायर. ट्रांसलेटेड बय एन.एस. टकखाव फ्रॉम मराठी वर्क। रिट्राइवड फ्रॉम File:///C:/Users/Dell/Desktop/The LifeofShivajiMaharaj_10252256.pdf, राजमाता जीजाबाई का इतिहास.2016. एडिटोरियल टीम ऑफ़ https://www.gyanipandit.com/jijabai-history-in-hindi-with-information/, मनोज मुंतशिर. 2022. जीजाबाई ने पिता की तरह शिवाजी को सिखाई थी शूरवीरता और बना दिया था 'छत्रपति,

https://www.bhaskar.com/magazine/rasrang/news/jijabai-taught-valor-to-shivaji-like-a-father-and-made-him-chhatrapati-129950973.html

नई पुस्तक

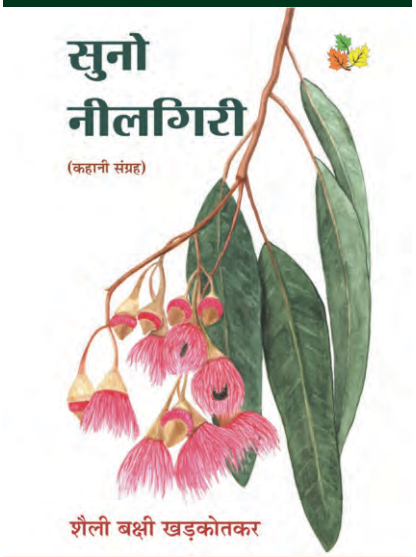

(कहानी संग्रह)

सुनो नीलगिरी

लेखक : शैली बक्षी खड़कोतकर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

शैली बक्षी खड़कोतकर का यह कहानी संग्रह अभी हाल में ही शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आया है। इसमें उनकी इंद्रधनुष, उड़ चलूँ तुझ संग रे..., दौड़, नदी, तुम बहती रहो...!, घड़ी दो घड़ी, विद्याक़सम, अपराजिता, बजरंगबली के चने, शुभारंभ, तितली-से पल-छिन, और आसमान ख़ाली हो गया, मंगलकामना, साजन-साजन!, हम, तुम और दिन, सुनो नीलगिरी...! कहानियाँ संकलित की गयी हैं। शैली अपनी कहानियों को लेकर कहती हैं- लेखन में ज़रूरी अनुशासन को साधना अगली चुनौती थी, इसके लिए अभ्यास करना पड़ा। जब लिखने का मन होता तो किसी दूसरे ज़रूरी काम में उलझी होती और जब लिखने बैठती, तो विचारशून्य हो जाती। पहले मुझे लगता ये सब मेरी सीमाएँ हैं। लेकिन जैसे-जैसे कहानियों की दुनिया में रमती गई, तो समझा कि किसी भी लेखक की कोई सीमा नहीं होती। चंद कच्ची- पक्की, बिखरी कहानियों को समेटकर आपके सामने रखते हुए संकोच भी है और संतोष भी है।

000

(शोध आलेख)

उत्तराखंड के दो दशक और विकास : पर्यटन और कृषि के दृष्टिकोण से एक वर्णनात्मक अध्ययन

शोध लेखक : अंकित उछोली, शोध छात्र, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, पौड़ी, उत्तराखंड 246174
मोबाइल- 8126655975
ईमेल- uchholiankit18@gmail.com

शोध निर्देशक : प्रोफेसर किरन डंगवाल, प्रोफेसर, समाजशास्त्र एवं समाज कार्य विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर

शोध सार- अपनी विषम भौगौलिक परिस्थितियों व समग्र विकास में सम्मिलित न होने के कारण वर्ष 2000 में उत्तराखंड भारत के 27 वें राज्य के रूप में अस्तित्व में आया। अपने अस्तित्व के दो दशक बाद भी उत्तराखंड विकट भौगोलिक परिस्थिति एवं विकास के विभिन्न आयामों में जूझ रहा है। प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यटन की अपार संभावनाओं के बावजूद उपजाऊ कृषि योग्य भूमि की अपर्याप्तता, पर्यटन के लिए स्पष्ट नीति, रोज़गार के अवसरों, पलायन, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सम्बंधी सुविधाओं के अभाव में विकास की गति थम सी गई है। अत: विकास के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डालते हुए यह अध्ययन उत्तराखंड में कृषि व पर्यटन क्षेत्र के संसाधनों एवं इन क्षेत्रों के विकास में आ रही प्रमुख चुनौतियों को मुख्य रूप से उजागर करता है। तत्पश्चात यह अध्ययन उपरोक्त विकास के आयामों में उपलब्ध अवसरों का भी विवरणात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन के परिणाम दर्शाते हैं कि उत्तराखंड में पर्यटन व कृषि सहित विभिन्न क्षेत्रों में विकास एवं रोज़गार की अपार संभावनाएँ मौजूद हैं जिसके लिए अतिशीघ्र राज्य केंद्रित ठोस एवं स्पष्ट कार्ययोजना के निर्माण की आवश्यकता है अन्यथा उत्तराखंड समान भौगौलिक परिस्थिति एवं पर्यटन संचालित पर्वतीय राज्यों (हिमांचल, जम्मू व कश्मीर एव पूर्वोत्तर) की तुलना में पीछे रह जाएगा।

मुख्य शब्द- उत्तराखंड, विकास, पर्यटन, कृषि पीछे रह जाएगा।

उत्तराखंड के दो दशक और विकास के आयाम: एक वर्णनात्मक अध्ययन

प्रस्तावना- उत्तराखंड राज्य भारत के 27वें राज्य के रूप में 9 नवंबर 2000 को अस्तित्व में आया। राज्य बनने के पीछे जो मुख्य कारण थे उसमें इस पहाड़ी क्षेत्र की उपेक्षा होना व मैदानी क्षेत्र की तुलना में यहाँ की विकट भौगोलिक परिस्थिति थी। राज्य बनने से पूर्व पहाड़ी क्षेत्र के लोगों ने महसूस किया कि विकास के क्षेत्र में उनकी अनदेखी हो रही है। यह क्षेत्र मैदानी क्षेत्र की बहुलता वाले उत्तर प्रदेश राज्य का हिस्सा था, जिसकी भौगोलिक परिस्थिति शेष राज्य से पुर्णत: भिन्न थी। इस लिए पहाड़ के इस क्षेत्र के लिए एक अलग योजना बनाने की आवश्यकता थी लेकिन पहाड़ के अनुकूल योजना न होने के कारण विकास इस क्षेत्र से कोसों दूर था। राज्य आंदोलन के समय ऐसी परिस्थितियों पर जनकवि अतुल शर्मा जी ने लिखा कि "विकास की कहानी गाँव से है दूर-दूर क्यों, नदी पास है मगर यह पानी दूर दूर क्यों"।

राज्य के लोगों को यह लगता था कि विभिन्न प्राकृतिक संसाधन होने के बाद भी विकास योजनाएँ दूरस्थ पहाड़ी क्षेत्र के लोगों तक नहीं पहुँच रही है इसलिए राज्य बनाने के लिए एक बड़ा संघर्ष हुआ, सं घर्ष ने आगे जाकर बड़े जनांदोलन का रूप लिया और अंतत: नए राज्य के रूप में उत्तराखंड राज्य की स्थापना हुई। नए राज्य के रूप में पिछले दो दशकों में राज्य ने कई क्षेत्रों में विकास किया है। उत्तराखंड ने इन दो दशकों में प्रति व्यक्ति आय, सकल घरेलू उत्पाद में राष्ट्रीय औसत से आगे निकलने समेत कई उपलब्धियाँ अपने नाम की हैं लेकिन अगर अन्य पहलुओं की बात करें तो हम देखते हैं कि शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार एवं अन्य मूलभूत आवश्यकताओं की बदहाली की समस्याओं से राज्य घिरा हुआ है। आज विभिन्न उपलब्धियों के बाद भी राज्य के पहाड़ी और मैदानी जिलों, शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच असमानताएँ तेजी से बढ़ रही है इससे यह स्पष्ट होता है कि राज्य बनने के दो दशकों के बाद भी उसकी मूल स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। आज विकास के विभिन्न आयामों की कसौटी पर

राज्य को देखें तो राज्य को कई क्षेत्रों में गंभीरता से कार्य करने की आवश्यकता है।

शोध के उद्देश्य- 1उत्तराखंड में कृषि व पर्यटन क्षेत्र के विकास में उत्पन्न चुनौतियों का अध्ययन करना। 2उत्तराखंड में कृषि व पर्यटन क्षेत्र के विकास के लिए सरकार द्वारा किये जा रहे प्रयासों का अध्ययन करना। 3उत्तराखंड में कृषि व पर्यटन क्षेत्र के विकास में आ रही प्रमुख चुनौतियों के संदर्भ में सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध प्रविधि: प्रस्तुत शोध पत्र में वर्णात्मक विधि का प्रयोग किया गया है तथा द्वितीयक आँकड़ों का प्रयोग किया गया है।

उत्तराखंड और विकास के प्रमुख आयाम:

1.कृषि- उत्तराखंड एक नव स्थापित राज्य है जिसमें कुल पहाड़ी क्षेत्र 64 प्रतिशत है। उत्तराखंड की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर है। उत्तराखंड के कुल क्षेत्रफल के 25 प्रतिशत की तुलना 2 में 75 प्रतिशत से अधिक कामकाजी आबादी कृषि करती है लेकिन आज संपूर्ण उत्तराखंड कृषि क्षेत्र में कई प्रकार की चुनौतियों से घिरा हुआ है। 1 आँकड़ों की ओर देखें तो ज्ञात होता हैं कि प्रत्येक वर्ष पर्वतीय क्षेत्र में तीन प्रतिशत कृषि भूमि कम हो रही है और पिछले 25 वर्षों में 30 प्रतिशत कृषि क्षेत्र घट गया है।2 लोग कृषि योग्य भूमि को गैर कृषि भूमि बनाकर उसमें विभिन्न प्रकार का निर्माण कार्य कर रहे हैं जिसका असर उत्पादन व निर्माण क्षेत्र दोनों पर पड़ रहा है। राज्य गठन के समय उत्तराखंड में 776191 हेक्टेयर कृषि भूमि थी लेकिन अप्रैल 2011 में हम देखें तो यह कृषि भूमि 723164 हेक्टेयर बच गई इसका अर्थ है कि 11 वर्षों में 53027 हेक्टेयर कृषि भूमि कम हुई है अर्थात हर वर्ष लगभग 4500 हैक्टेयर खेती योग्य भूमि उत्तराखंड में कम हो रही है। पर्वतीय क्षेत्रों में निवास करने वाले 90 प्रतिशत लोग कृषि पर निर्भर हैं जबकि यहाँ के पर्वतीय क्षेत्र में केवल 20 प्रतिशत भूमि ही कृषि योग्य बची है, बाकी 80 प्रतिशत भूमि या तो प्रयोग में नही है या बेची जा चुकी है। यदि हम 20 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि की बात करें तो हम पाते हैं कि 12 प्रतिशत सिंचित भूमि है व शेष 8 प्रतिशत कृषि भूमि वर्षा पर आधारित है।2

उत्तराखंड में पर्वतीय कृषि 95 प्रतिशत वर्षा पर आधारित है, उत्तराखंड राज्य बनने के बाद लगातार विभिन्न प्रकार के निर्माण कार्य किये गए, सड़कों का जाल बिछाया गया। इन सभी कारणों से पारम्परिक प्राकृतिक जल स्रोतो को भारी नुकसान हुआ है। पानी की कमी को पूरा करने के लिए सरकार द्वारा समय समय पर जल जीवन मिशन, जलागम, हर घर जल हर घर नल जैसी परियोजनाएँ लगातार चला रही है जिसके अंतर्गत पानी को लोगों तक पहुँचाने व प्राकृतिक स्रोतों का संरक्षण करने की विभिन्न योजनाएँ सरकार द्वारा संचालित हो रही हैं। इसके अतिरिक्त पानी की कमी को दूर करने के लिए उत्तराखंड में वर्षा जल संग्रहण व विभिन्न स्थानों पर टैंको का निर्माण किया जाना एक अच्छा विकल्प जल संरक्षण हेतु साबित हो सकता है।3 इसके अलावा उत्तराखंड में कृषि क्षेत्र में कुछ अन्य चुनौतियाँ जिनमें उत्पादन की कमी, लगातार बढ़ता नगरीकरण, बढ़ती आबादी, जंगली जानवरों का संकट, रासायनिक खाद का बढ़ता प्रयोग, खेती के लिए लोगों का घटता रुझान, पलायन, सरकारी योजनाओं पर निर्भरता व जंगल में आग लगना कृषि क्षेत्र में बन रही प्रमुख बाधाएँ हैं, जिनका समाधान किये बिना कृषि क्षेत्र में उन्नति करना संभव नहीं है।3

2.पर्यटन- संपूर्ण विश्व में पर्यटन अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख स्रोत है। वर्तमान समय में भारत के विभिन्न राज्यों के साथ साथ उत्तराखण्ड में भी पर्यटन क्षेत्र नए आयाम विकसित कर रहा है। वर्तमान में उत्तराखंड में पर्यटन के विभिन्न स्वरूप दिखाई देते हैं जिसमें धार्मिक, सांस्कृतिक व साहसिक पर्यटन ही मुख्य है। उत्तराखण्ड को देवभूमि भी कहा जाता है, राज्य में धार्मिक यात्राओं का विशेष महत्त्व है।4 उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध चार धामों केदारनाथ, बद्रीनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री में करोड़ों तीर्थयात्री देश-विदेशों से यात्रा के लिए पहुँचते हैं। को रोना काल के बाद वर्ष 2022 में पर्यटन विभाग, उत्तराखण्ड के आँकड़ों के अनुसार 5 करोड़ 35 लाख पर्यटकों ने उत्तराखण्ड की यात्रा की, वहीं 2023 के पहले 3 महीनों में 1 करोड़ से अधिक यात्रीयों ने उत्तराखण्ड की यात्रा की। 5 उत्तराखंड सरकार द्वारा पर्यटन को बढ़ावा देने व राज्य के युवाओं को पर्यटन से जोड़कर रोज़गार देने के लिए राज्य में वीर चंद्र सिंह गढ़वाली पर्यटन स्वरोज़गार योजना, उत्तराखंड ग्रामीण पर्यटन उत्थान योजना, दीन दयाल उपाध्याय गृह आवास (होम स्टे) विकास योजना, अतिथि उत्तराखंड गृह आवास (होम स्टे) पंजीकरण, ट्रैकिंग टैक्शन सेंटर होम स्टे अनुदान योजना जैसी विभिन्न योजनाएँ चलाई जा रही है। इन सभी योजनाओं में प्रमुख वीर चंद्र सिंह गढ़वाली पर्यटन स्वरोज़गार योजना के अंतर्गत यदि कोई युवा पर्यटन संबंधी किसी भी प्रकार का कोई रोज़गार शुरु करता है अथवा रोज़गार हेतु कोई वाहन खरीदता है तो सरकार द्वारा इस योजना के अंतर्गत पहाड़ी क्षेत्र में रहने वाले युवाओं को 33 प्रतिशत जो अधिकतम 15 लाख रुपये व मैदानी क्षेत्र के युवाओं को 25 प्रतिशत जो अधिकतम 10 लाख रुपये तक की सब्सिडी दी जाती है। इसके साथ ही वर्ष 2023 में पर्यटन में निवेश को बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा नई पर्यटन नीति भी लागू की गई है। इन सभी प्रयासों के बाद हम विश्लेषण करें तो जहाँ एक तरफ राज्य में पर्यटन के प्रति पर्यटकों का रुझान लगातार बढ़ रहा है वहीं दूसरी ओर सरकार द्वारा पर्यटन के लिए बजट आवंटन को देखें तो हम पाते हैं कि राज्य में वर्ष 2004-05 में पर्यटन पर कुल बजट का 0.67 प्रतिशत खर्च हुआ जबकि 2020-21 में कुल बजट का 0.46 प्रतिशत हिस्सा ही पर्यटन के लिए रखा गया।6 अर्थात स्पष्ट है कि पर्यटन के लिए सरकार के द्वारा बजट में बढ़ोतरी नहीं की गई बल्कि पर्यटन के लिए आवंटित बजट को कम किया गया है, जबकि प्रदेश में धार्मिक पर्यटन के अतिरिक्त पर्यटन के विभिन्न स्वरूप विकसित हुए हैं जिसमें आध्यात्मिक, साहसिक, वन्य जीव पर्यटन जैसे स्वरूप उभरकर सामने आए हैं। वर्तमान

समय में पर्यटन उत्तराखण्ड का सबसे व्यापक रोज़गार स्त्रोत के रूप में उभरकर सामने आया है। विश्व प्रसिद्ध चार धामों के अतिरिक्त विभिन्न धार्मिक स्थल जागेश्वर, त्रिजुगीनारायण, बैजनाथ, तुंगनाथ, रुद्रनाथ, गोलू देवता आदि के साथ साथ पर्वतों पर बसे विभिन्न नगर नैनीताल, मसूरी, रानीखेत, कौसानी, धनौल्टी आदि विश्व प्रसिद्ध पर्यटक स्थल है। राज्य में इस सभी दर्शनीय स्थलों के साथ साथ साहसिक पर्यटन- रिवर राफ्टिंग, पैराग्लाइडिंग, बंजी जंपिंग, ट्रैकिंग, माउण्ट्रेनिंग की भी अपार संभावनाएँ है। पर्यटन के इन विभिन्न स्वरुपों के साथ साथ आज राज्य में ग्रामीण पर्यटन को भी प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। उत्तराखंड में जहाँ एक तरफ जहाँ पर्यटक स्थलों के स्थानीय समुदायों को बड़ी मात्रा में रोज़गार मिल रहा है वहीं दूसरी ओर स्थानीय समुदायों में पर्यटन के चलते होने वाले सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तनों के साथ साथ अनियंत्रित पर्यटन पर्यावरणीय चिंताओं के साथ साथ स्थानीय लोगों के अस्तित्व के लिए चुनौती बन रहा है। इसके अतिरिक्त विषम भौगोलिक परिस्थितियों वाले राज्य में समय समय पर प्राकृतिक आपदाओं का घटित होना भी पर्यटन के लिए एक गंभीर चुनौती है।

निष्कर्ष- उत्तराखण्ड एक ऐसा पर्वतीय राज्य है जो अपने अस्तित्व के बाद से ही विकास की निश्चित दिशा में आगे बढ़ रहा है। उत्तराखंड की सभी समस्याएँ एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं लेकिन समाधान के लिहाज से उनका दृष्टिकोण अलग-अलग है। आज पहाड़ी क्षेत्रों में अधिकतर गाँव पलायन के कारण खाली होने की स्थिति में हैं वहीं कोरोना महामारी के दौरान बड़ी संख्या में लोगों का गाँवों की ओर लौटना सरकार के लिए एक अवसर के रूप में साबित हुआ है। कोरोना में गाँवों की ओर लौटे लोगों के लिए सरकार द्वारा स्वरोज़गार संबंधी विभिन्न योजनाएँ चलाई जा रही हैं लेकिन धरातल पर कोई विशेष सकारात्मक प्रभाव नहीं दिखाई दे रहा है। आज उत्तराखंड के पास विभिन्न क्षेत्रों में संभावनाएँ तो मौजूद हैं लेकिन उन संभावनाओं के लिए एक विधिवत योजना की आवश्यकता है जो पहाड़ी क्षेत्रों के अनुरूप हो। इन संभावनाओं में पर्यटन व कृषि महत्त्वपूर्ण है। उत्तराखंड की अधिकतर जनसंख्या कृषि पर आधारित है लेकिन कम पैदावार व जंगली जानवरों द्वारा कृषि को पहुँचाए जा रहे नुकसान के कारण यहाँ के निवासियों का कृषि की ओर से रुझान लगातार कम हो रहा है, इसलिए कृषि में नई तकनीकों व विपणन सुविधाओं को बढ़ाकर स्थानीय लोगों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। कृषि के क्षेत्र के साथ साथ धार्मिक पर्यटन व ग्रामीण पर्यटन को प्रोत्साहित करके स्थानीय लोगों को रोज़गार दिए जाने के लिए एक विधिवत योजना की आवश्यकता है। रोज़गार के साथ ही आज प्रदेशभर में गाँव के गाँव खाली होने के मुख्य कारणों में शिक्षा व स्वास्थ्य सुविधाएँ भी हैं। स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार के लिए पर्वतीय क्षेत्रों के अस्पतालों में उचित मात्रा में चिकित्सकों की नियुक्ति के साथ साथ चिकित्सा उपकरणों की उपलब्धता बढ़ाए जाने की आवश्यकता है। इसके साथ ही शिक्षा व्यवस्था में सुधार हेतु सरकारी विद्यालयों में पर्याप्त मात्रा में शिक्षकों की नियुक्ति करने के साथ साथ शिक्षको पर पढ़ाने के अतिरिक्त कामों के बोझ को कम किए जाने की आवश्यकता है। प्रदेश में शिक्षा व स्वास्थ्य के बजट में आवश्यकतानुसार बढ़ोत्तरी करके इन समस्याओं का निदान किया जा सकता है। राज्य में पर्यटन का क्षेत्र रोज़गार के बड़े अवसर के रूप में हमारे सामने है, लेकिन राज्य में अभी भी तीर्थाटन ही मुख्य रूप से लोगों के लिए आकर्षण का केंद्र रहा है, राज्य में कई स्थान ऐसे हैं जिनमें पर्यटन की अपार संभावनाएँ हैं इसलिए आज राज्य को एक ऐसी पर्यटन नीति की आवश्यकता है जो तीर्थाटन, साहसिक पर्यटन के साथ साथ ग्रामीण पर्यटन को भी समुचित रूप से प्रोत्साहित करे।

सुझाव- 1: उत्तराखंड में स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों, मानवीय संसाधनों, वित्तीय संसाधनों व भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार नीतियों का निर्माण किया जाना चाहिए तथा इन नीतियों के अनुपालन की कारगर व्यवस्था बनाई जानी चाहिए। 2: कृषि, पशुपालन, लघु उद्योग, वन संबंधी कार्यक्रमों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को सुनिश्चित किया जाना चाहिए। 3: पर्वतीय क्षेत्रों में पलायन को रोकने के लिए ग्रामीण पर्यटन के लिए अलग नीति बनाई जानी चाहिए व लघु उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। 4: कृषि उत्पादन में बढ़ोतरी के लिए कृषि क्षेत्र में वैज्ञानिक साधनों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए व समय-समय पर ग्रामीण क्षेत्र के किसानों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए। 5: उत्तराखंड के विभिन्न हिस्सों में उत्पादित किए जा रहे घरेलू उत्पादों के विपणन के लिए सरकार द्वारा एक स्पष्ट नीति बनाई जानी चाहिए। 6: उत्तराखंड में पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए राज्य केंद्रित ठोस एवं स्पष्ट कार्ययोजना के निर्माण किया जाना चाहिए।

000

संदर्भ- 1. Rana, Kiran. Livelihood Opportunities Through Agriculture and Allied Field in the Mid-hills of Uttarakhand.2019, www.phytojournal.com/specialissue?year=2019&vol=8&issue=5S&ArticleId=8885. 2. शुक्ला स्कन्द. "पहाड़ों पर लगातार घट रहा खेती का रकबा हर वर्ष तीन फीसद कम हो रही कृषि भूमि", जागरण 21 अक्टूबर 2020, www.jagran.com/uttarakhand/nainital-area-of-agriculture(1)is-continuously-decreasing-in-the-mountain-district-20922425.html.3 3. लोहानी गिरीश पहाड़ी क्षेत्र में सिमटती सामाजिक सोच और पर्वतीय कृषि काफल ट्री, 30 जून 2019, www.kafaltree.com/agriculture-in-the-hilly-areas-of-uttarakhand. 4. तिवारी निलेश, पर्यटन : स्थानीय कला, संस्कृति, एवं रोज़गार को बढ़ाने में सहायक कुरुक्षेत्र भा.सु.प्र.म. नई दिल्ली अप्रैल 2019 पृ.सं 8 -11 5. अमर उजाला, 27 सितंबर 2023 6. अमर उजाला, 5 नवंबर 2022

(शोध आलेख)

आदिवासी क्षेत्रों के माध्यमिक विद्यालयों में आईसीटी की उपयोगिता एवं भाषा व संस्कृति की भूमिका

शोध लेखक : अनुपम सिंह (शोधार्थी), नवनीत कुमार सिंह (शोधार्थी), डॉ. अरुण कुमार (असिस्टेंट प्रोफेसर)
शिक्षा शास्त्र विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय अमरकंटक (मध्य प्रदेश)

नवनीत कुमार सिंह,
जंगल तुलसी राम बिछिया, निकट पोस्ट ऑफ़िस बिछिया, गोरखपुर -273014 उप्र
मोबाइल- 98889801425
ईमेल- navnitsingh09@gmail.com

सारांश- आदिवासी छात्रों के उत्थान के लिए उनके परिवेश से जुड़कर उन्हें पठन पाठन का एक सुयोग्य अवसर उपलब्ध करना जिससे कि उनका आत्मविश्वास जागृत हो और वह अपनी सांस्कृतिक व विरासत को बढ़ाकर अपने समाज और देश में अपनी सफलता का परचम आसानी से लहरा पाएँ। सरकार की आदिवासी विकास नीतियाँ और एनजीओ के हस्तक्षेप आदिवासी स्थितियों की वास्तविकताओं में निहित नहीं हैं। आदिवासियों की कोई कमी नहीं है भारत में पिछले 70 वर्षों में हजारों की लागत से जो विकास योजनाएँ शुरू की गईं करोड़ों रुपये खर्च हो गए, फिर भी आदिवासी समुदाय की दुर्दशा नहीं सुधरी। ऐसा नहीं है कि अधिकारी हैं जमीनी हकीकत से वाकिफ हैं आदिवासियों के विकास से संबंधित प्रमुख मुद्दे गरीबी से संबंधित हैं, शिक्षा स्वास्थ्य और भूमि 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में देश की कुल जनसंख्या का 8.6% भाग किसका है ? पेपर का उद्देश्य आदिवासियों में आईसीटी का उपयोग और अपनी भाषा व संस्कृति संबंधी मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करना और इसके उपायोंगो व महत्वों पर प्रकाश डालना है। इसके अतिरिक्त, व्यक्तिगत शिक्षण को पूरक बनाने के अवसर को उभारना और सरल बनाने वाले सॉफ़्टवेयर की उपलब्धता के कारण आभासी शिक्षण सामग्री की प्रस्तुति, विभिन्न गतिविधियों का प्रदर्शन, और छात्रों को फीडबैक प्रदान करना और वह समायोजित करना छात्रों और शिक्षकों के बीच बातचीत आम तौर पर, शिक्षकों द्वारा आईसीटी के उपयोग को दो स्तरों में विभाजित किया जा सकता है।

बीज शब्द : आदिवासी समाज, आईसीटी, भाषा, संस्कृति की भूमिका।

प्रस्तावना- दुनिया भर में शैक्षिक प्रणालियों का लक्ष्य डिजिटल विकसित करना है, छात्रों की योग्यता इस प्रकार, पाठ्यक्रम विकसित हुआ। शैक्षिक केन्द्रों में उपयोग में कौशल प्राप्त करना शामिल है परिवर्तन संबंधी जानकारी खोजने, मूल्यांकन करने, संग्रहीत करने, उत्पादन करने, प्रस्तुत करने और पूर्व करने की तकनीक। अध्ययन की वस्तु होने के अलावा, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) का विकास हो रहा है एक शिक्षण उपकरण के रूप में कई शैक्षिक प्रणालियों ने इसकी माँग की है।

उपकरण और बुनियादी ढांचे का प्रावधान किया गया है राष्ट्रीय स्तर पर विकसित की गई आईसीटी नीतियों का प्रारंभिक बिंदु प्रसंग हाल के वर्षों में, कुछ देशों ने विशिष्ट विकास किया है। स्कूलों में आईसीटी अवसंरचना के प्रावधान के लिए कार्यक्रम, जैसे कि स्पेन (2.0 स्कूल प्रोग्राम), हंगरी (द डिजिटल) का मामला स्कूल योजना, इटली (इंटेलिजेंट स्कूल प्रोग्राम), और तुर्की (द फातिह परियोजना)। यह प्रावधान घरों तक भी बढ़ाया गया कम आय वाले परिवारों के छात्र, जैसे यूनाइटेड किंगडम में और सिंगापुर (होम एक्सेस प्रोग्राम)। रिपोर्ट के अनुसार वाचिएरी (2013) द्वारा तैयार, इस संबंध में पहल की गई है अंदर और बाहर दोनों देशों में आईसीटी नीतियों की सामान्य प्रवृत्ति यूरोप, लेकिन उन्होंने अलग रणनीति अपनाई है। हालाँकि हंगरी, चेक गणराज्य, पुर्तगाल, जर्मनी, एस्टोनिया और इटली स्पेन, यूनाइटेड किंगडम जैसे अन्य देशों में कुछ आवश्यकताओं को पूरा करने वाले स्कूलों या यहाँ तक कि कक्षाओं को अनुदान प्रदान करें। संयुक्त राज्य अमेरिका और सिंगापुर ने सभी स्कूलों को कवर करने का प्रयास किया है। एक तिहाई में मामला, फ्रांस, इटली, माल्टा, पोलैंड, पुर्तगाल और जैसे देश इज़राइल, शिक्षा मंत्रालय, डब्ल्यू के सहयोग से निजी कंपनियाँ, प्रोत्साहन देती हैं ताकि छात्रों या परिवारों को लाभ हो नेटबुक और, कुछ मामलों में, ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी। अधिकांश देशों में पाठ्यक्रम में आईसीटी एकीकरण के संबंध में एक पाठ्यक्रम रूपरेखा है, जो सामान्य दिशानिर्देशों को निर्दिष्ट करती है। आईसीटी ये दिशानिर्देश विभिन्न क्षेत्रों, इलाकों में स्थापित किए गए हैं। राज्य, समुदाय और, कुछ मामलों में, यहाँ तक कि स्कूल आयरलैंड। केवल साइप्रस और तुर्की जैसे देशों में ही पाठ्यक्रम है पूरी तरह से शिक्षा मंत्रालय द्वारा परिभाषित पर ध्यान केंद्रित करते समय आईसीटी योग्यता जो छात्रों को हासिल करनी चाहिए, यूनाइटेड किंगडम, इटली, नॉर्वे, बेल्जियम, ऑस्ट्रिया जैसे देशों की कार्रवाइयाँ, हंगरी और चेक

गणराज्य पर ज़ोर दिया जाना चाहिए। इन मे देशों में, इस प्रकार की योग्यता के लक्ष्य व्यापक रूप से निर्दिष्ट हैं। अन्य यूरोपीय देशों में, ये लक्ष्य से हैं अधिक सामान्य शब्द स्पैनिश संदर्भ पर ध्यान केंद्रित करते हुए जहाँ यह अध्ययन आयोजित किया गया था, कार्यान्वयन के लिए जो नीतियाँ विकसित की गईं शिक्षा में आईसीटी को, उनके प्रारंभिक काल में (1980 के दशक में), एथेना कार्यक्रम के माध्यम से केंद्र सरकार द्वारा बढ़ावा दिया गया था, जिसे बाद में राष्ट्रीय सूचना कार्यक्रम के नाम से जाना गया और संचार प्रौद्योगिकी इस कार्यक्रम में कंप्यूटर विज्ञान से संबंधित रेटिंग विषयों को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया, प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए स्कूलों को कंप्यूटर उपलब्ध कराना (जैसे, नामांकन, ग्रेडिंग, रिकॉर्ड रखना), और पहला प्रयास शिक्षकों को आईसीटी के उपयोग का प्रशिक्षण देना। 1990 के दशक के दौरान और 2009 तक, प्रत्येक स्वायत्त समुदाय ने अपनी स्वयं की पहल विकसित की (उदाहरण के लिए, स्कूलों में कंप्यूटर कक्षों का निर्माण, शिक्षकों को प्रशिक्षण देना, उत्पादन करना)। डिजिटल शैक्षिक सामग्री)। इस पहल में वह सब कुछ समान था यह था कि उन्हें केंद्र सरकार द्वारा वित्त पोषित किया गया था। (मेनेसिस, फैब्रेग्यूज़, जैकोवकिस, और रोड्रिग्ज़-गोमेज़, 2014) 2009-2012 तक ऐसा नहीं हुआ था कि 2.0 स्कूल प्रोग्राम की बदौलत एक सच्ची राष्ट्रव्यापी नीति स्थापित की गई जिसके तहत विभिन्न स्वायत्त समुदायों ने समान लक्ष्यों और गतिविधियों को बढ़ावा दिया। ये गतिविधियाँ सबसे बड़ी कक्षाएँ उपलब्ध कराने पर केंद्रित थीं मॉडल के तत्वावधान में उपकरणों की संभावित मात्रा वन-टू-वन के रूप में जाना जाता है, इसे प्रति बच्चा एक लैपटॉप भी कहा जाता है। इसके बाद, बजट के समानांतर विकेंद्रीकरण हुआ कटौती, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्तिगत और भिन्न गतिविधियाँ हुईं। विभिन्न स्वायत्त समुदाय (क्षेत्र एवं अन्य, 2014) हम संदर्भ देते है शैक्षिक सामग्री, टैबलेट, के साथ डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म का उपयोग वायरलेस तकनीक, डिजिटल ब्लैकबोर्ड, अपना स्वयं का उपकरण लाएँ (बीवाईओडी) मॉडल, ब्लॉग और विकी और वर्चुअल का निर्माण कक्षाओं कंप्यूटिंग में काफी विकास हुआ है। अपेक्षाकृत तेज़ ब्रॉडबैंड के माध्यम से लगभग सभी स्कूल ऑनलाइन हो रहे हैं नेटवर्क इसके अतिरिक्त, 82% स्कूलों के पास एक वेबसाइट और वर्चुअल है सीखने की जगह, एक आँकड़ा जो स्पष्ट रूप से 61% के औसत को पार करता है यूरोपीय संघ के देशों के लिए मनाया गया उच्च स्तर के उपकरण और ब्रॉडबैंड पहुँच के बावजूद, स्पेन यूरोपीय देशों के औसत से नीचे है कक्षाओं में आईसीटी का उपयोग। विशेष रूप से, यह उन पाँच देशों में से एक है इस प्रकार के उपयोग का प्रतिशत सबसे कम है। आठवीं कक्षा के केवल 52% स्पेनिश छात्रों ने सीखने के उद्देश्यों के लिए स्कूल के कंप्यूटर का उपयोग करने की घोषणा की पाठ के दौरान कम से कम साप्ताहिक (यूरोपीय आयोग, 2013, पृष्ठ 61)। स्पैनिश माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के लिए प्राप्त परिणाम 2013 टीचिंग एंड लर्निंग इंटरनेशनल स्टडी में भाग लिया (TALIS) समान हैं। इनमें से कुल 19.6% शिक्षकों ने कहा कि वे कक्षा शिक्षण में आईसीटी का उपयोग कभी नहीं या लगभग कभी नहीं, और 43.4% कहा कि वे ऐसा कभी-कभार ही करते हैं संक्षेप में, हमने कंप्यूटर के लिए कम उपयोग दर स्थापित की है स्पेनिश माध्यमिक विद्यालयों में संसाधन। हालाँकि, की उपलब्धता आईसीटी बुनियादी ढांचा ऊँचा है, और शिक्षा प्रशासन के पास भी है शिक्षण में आईसीटी को शामिल करने के लिए विकसित नीतियाँ। यह विरोधाभासी स्थिति स्पैनिश मामले को विशेष रूप से दिलचस्प बनाती है। इस मुद्दे की समझ बढ़ाने के प्रयास में, यह अध्ययन आईसीटी के उपयोग से जुड़े चर का विश्लेषण प्रस्तुत करता है देश के डेटा का उपयोग करके स्पेन में माध्यमिक-शिक्षा कक्षाएँ टैलिस 2013 आईसीटी उपयोग से जुड़े कारक कंप्यूटर-उपकरण उपलब्धता (अकबुलुत, केसिम, और ओडाबासी, 2007; ली, 2002; टैलेंट-रनल्स एट अल., 2006), छात्र-शिक्षक अनुपात (एर्दोग्दु और एर्दोग्दु, 2015), स्कूल नेतृत्व (सुअरेज़, अल्मेरिच, ओरेलाना, और बेलोच, 2012) और आईसीटी की उपस्थिति पाठ्यक्रम (अकबुलुत, 2009) स्कूल से संबंधित चर हैं के संभावित प्रभावों के कारण अध्ययन किया गया है। कक्षाओं में आईसीटी का परिचय अध्ययन के नतीजे बताते हैं कि इन चरों का प्रभाव छोटा है, विशेषकर अन्य की तुलना में परिवर्तन के प्रति खुलापन और उचित स्कूल नीतियों जैसे कारक (टॉन्डेउर, वाल्के, और वैन ब्राक, 2008)। इसी तरह, पेलग्रम और वूग्ट (2009) शैक्षिक केंद्रों में नेतृत्व की आवश्यकता का हवाला देते हैं शिक्षकों में नए आईसीटी-आधारित शिक्षण का उपयोग करने की इच्छा को प्रोत्साहित करता है तरीके, आईसीटी योग्यता के उच्च स्तर का अधिग्रहण, और एक सहयोगी संस्कृति का विकास जो बढ़ावा देता है शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया में आईसीटी का परिचय। इस में संबंध में, अकबुलुत (2009) यह भी इंगित करता है कि लर्निंग कम्युनिटी नीतियाँ ऐसे कारक हैं जो आईसीटी के उपयोग से जुड़े हैं। शिक्षकों के संबंध में जो विशेषताएँ जुड़ी हुई हैं आईसीटी के उपयोग में अनुभव, सिखाया जाने वाला ग्रेड, उम्र, लिंग शामिल हैं उम्र के मामले (शेरर एट अल., 2015) और लिंग (सुआरेज़ एट अल., 2012;वैन ब्राक, 2001)। अन्य उल्लेखनीय गुणों में शिक्षक शामिल हैं प्रतिबद्धता और कौशल (एर्टमर, ओटेनब्रिट-लेफ्टविच, और यॉर्क, 2007; फ्रेज़र और बेली, 2004; कोहलर और मिश्रा, 2009), वार्ड आईसीटी के प्रति उनका रवैया (एंडरसन और मैनिंगर, 2007; बास, कुबियात्को, और मूरत, 2016), उनका ध्यान विशेष शिक्षा और स्वास्थ्य से संबंधित है आईसीटी (अकबुलुट, 2009), आईसीटी उपयोग में उनकी आत्म-प्रभावकारिता (क्रेजन्स, वैन) सीकर, वर्म्यूलेन, और वैन ब्यूरेन, 2013; रोहतगी, शेरेर, और हैटलेविक, 2016), प्रौद्योगिकियों के उपयोग के संबंध में उनकी मान्यताएँ(बास एट अल., 2016), उनके प्रौद्योगिकी के उपयोग का

प्रकार (बाई, मू, झाँग, बोसवेल, और रोज़ेल, 2016), उनके पद्धतिगत विचार हैं रचनावाद के साथ गठबंधन (कोहलर और मिश्रा, 2005; पेटको, 2012; प्रेस्ट्रिज, 2012), और एक दूसरे के साथ उनके समन्वित प्रयास आईसीटी को शामिल करने और उपयोग करने के लिए केंद्र (बिंगिमलास, 2009; टोंडेउर एट अल., 2008; वोंग और ली, 2008)। एबिट और केलेट (2007) इसकी पुष्टि करते हैं कंप्यूटर प्रौद्योगिकी में रुचि का स्तर 41% दर्शाता है तकनीकी विज्ञान को शामिल करने में शिक्षक की आत्म-प्रभावकारिता की भावनाओं मंक भिन्नता। इसके अलावा, वान ब्रैक (2001) सकारात्मक रहते हुए चेतावनी देते हैं प्रौद्योगिकी के प्रति दृष्टिकोण आईसीटी के समावेशन को प्रभावित कर सकता है कक्षा में, उनके प्रभाव की क्षमता द्वारा मध्यस्थता की जाती है तकनीकी नवीनता, जिसे वह भविष्यवक्ता मानता है सबसे बड़ी व्याख्यात्मक शक्ति के साथ। अकबुलुत एट अल. (2007) राज्य उस सामग्री और शिक्षाशास्त्र को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। आदिवासी माध्यमिक विद्यालयों में आईसीटी के उपयोग के कई कारक हो सकते हैं जो शिक्षकों, स्कूल के ढांचे, और भाषा-संस्कृति की भूमिका के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण होते हैं। निम्नलिखित कुछ कारक हैं :

शिक्षक की विशेषता - आदिवासी माध्यमिक विद्यालयों में आईसीटी का सफल उपयोग करने के लिए शिक्षकों की विशेषताओं का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। वे टेक्नोलॉजी को समझने और उसका उपयोग करने के लिए प्रशिक्षित होने चाहिए, ताकि वे विद्यार्थियों को टेक्नोलॉजी के माध्यम से शिक्षा प्रदान कर सकें।

स्कूल का बुनियादी ढ़ाचा - अच्छा संरचनित और स्थायी बुनियादी ढांचा आईसीटी के उपयोग के लिए आवश्यक है। इसमें विद्यालयों में कंप्यूटर लैब, इंटरनेट कनेक्शन, विद्यालय प्रबंधन सॉफ्टवेयर शामिल हो सकता है।

भाषा और संस्कृति की भूमिका - आदिवासी माध्यमिक विद्यालयों में आईसीटी के उपयोग को स्थानीय भाषा और संस्कृति के संदर्भ में विकसित किया जाना चाहिए। विद्यालयों को स्थानीय भाषा में सामग्री तैयार करने और शिक्षा के साधनों को स्थानीय संस्कृति के साथ जोड़ने की आवश्यकता है। इससे विद्यार्थियों को अधिक संबंधित महसूस होता है और उनका शैक्षिक अनुभव विशेष बनता है।

अधिक उपयोगी शिक्षा सामग्री - आईसीटी के उपयोग से, आदिवासी छात्रों को उनकी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत सहित आधुनिक शिक्षा सामग्री तक पहुँच मिलती है। वे अधिक उपयोगी और मनोरंजनात्मक सामग्री के माध्यम से अपनी पठन-पुस्तक और गणित की कौशल को बढ़ा सकते हैं।

तकनीकी ज्ञान और कौशलों का विकास - आईसीटी के उपयोग से, आदिवासी छात्रों को आधुनिक तकनीकी ज्ञान और कौशलों का विकास होता है, जो उन्हें आगे बढ़ने के लिए तैयार करता है। यह उन्हें आधुनिक दुनिया में समावेशित करता है और उनकी रोज़गार के अवसरों को बढ़ाता है।

नेटवर्किंग- आईसीटी के माध्यम से, आदिवासी छात्र अन्य छात्रों के साथ नेटवर्किंग कर सकते हैं, जो उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञता और अनुभव प्रदान कर सकते हैं। यह उन्हें समाज में अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए मदद करता है और उनके व्यावसायिक नेटवर्क को बढ़ावा देता है।

प्रतियोगिता में भाग लेना - आईसीटी के माध्यम से, छात्रों को विभिन्न प्रतियोगिताओं में भाग लेने का अवसर मिलता है। यह उन्हें अपने कौशलों को परिक्षण करने का मौका देता है और प्रगति को मापने में मदद करता है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्तर्वार्ता - आईसीटी के माध्यम से, आदिवासी छात्रों को अन्य देशों के छात्रों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्तर्वार्ता करने का अवसर मिलता है। यह उनकी विश्वव्यापी सोच और अंतर्राष्ट्रीय समझ को बढ़ावा देता है। इन कारकों के संयोजन से, आदिवासी माध्यमिक विद्यालयों में आईसीटी का उपयोग विद्यार्थियों की शिक्षा में महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकता है और उन्हें आधुनिक तकनीकी ज्ञान और समाज में समावेशित होने की संभावनाएँ प्रदान कर सकता है।

निष्कर्ष- आदिवासी माध्यमिक विद्यालयों मे शिक्षा की व्यस्थाओ मे सुधार के लिए आईसीटी का संचालन एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पहल है जिसके साथ ही साथ विद्यालयों मे विद्यार्थी की उपस्थिति को बढ़ावा देता है। जिससे की सहजता व अभिरुची के साथ सीखने का प्रयाश करते है। साथ ही उनके मात्रभाषा से जुड़कर उनको शिक्षा प्रदान किया जाता है जिससे की विद्यार्थी मे आत्मविश्वाश जागृत होता है। तो छात्र विद्यालयों मे होने वाले किसी भी कार्यक्रमों मे अपनी संस्कृति से जुड़कर अपनी सभ्यता का परिचय देते है वह केवल अपने विद्यालयों के स्तर पर ही नहीं बल्कि अपने समाज व देश का भी नाम रोशन करते है।

संदर्भ- Ameri, A (2019) Tribal Communities and Social Change, Book Shores, Pitampura, Delhi. Dash, L N (2011) Health and India's Development Challenge, Regal Publications. Verma, R C (2002) Indian Tribes Through the Ages, Director, Publications Division, Ministry of Information and Broadcasing, Government of India, Patiala House, New Delhi.

https://en.wikipedia.org/wiki/Adivasi Aesaert, K., & van Braak, J. (2015). Gender and socioeconomic related differences in performance based ICT competences. Computers & Education, 84, 8e25. http://dx.doi.org/10.1016/j.compedu.2014.12.017. Akbulut, Y. (2009). Investigating underlying components of the ICT Indicators measurement scale: The extended version. Journal of Educational Computing Research, 40(4), 405e427. http://dx.doi.org/10.2190/EC.40.4.b. Anderson, S. E., & Maninger, R. M. (2007). Preservice teachers' abilities, beliefs, and intentions regarding technology integration. Journal of Educational Computing Research, 37(2), 151e172. Angrist, J., & Lavy, V. (2002). New evidence on classroom computers and pupil learning. The Economic Journal, 112(482), 735e765. http://dx.doi.org/10.1111/ 1468-0297.00068. Singh, N.K., Singh, A. and Ahmed S. (2023) Cultural, linguistic and political change in the tribal communities of Madhya Pradesh through the impact of education. Journal of Bahuri Nahi Avna, 24(03), pp. 223-225.

(शोध आलेख)

राजकुमार राकेश के उपन्यास : 'कंदील' में सामाजिक युगबोध

शोध लेखक : डॉ. पूजा

समाज का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप - रामचन्द्र वर्मा ने समाज शब्द को तत्सम् स्वीकारते हुए उसके अनेक अर्थ प्रस्तुत किए - 'समाज-पु. (सं.)(1) बहुत से लोगों का गिरोह या झुण्ड जैसे सत्संग समाज। (2) एक जगह रहने वाले अथवा एक ही प्रकार का काम करने वाले लोगों का वर्ग, दल या समूह। (3) आयोजन तैयारी।1

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने समाज का अर्थ समूह ही स्वीकारा है - 'समाज (सं.) (1) लोगों का समूह (2) सभा मण्डली, परिषद, (3) उत्सव, जुलुस या कोई अन्य समारोह, (4) तैयारी, (5) सामान, समाज 2

समाज शब्द की उपर्युक्त लिखी व्युत्पतियों एवं अर्थों के विवेचन से यह परिणाम निकलता है कि 'अज' से 'सम' उपसर्ग एवं 'घञ' प्रत्यय है। अज् का अर्थ है 'नञ' समास के अनुसार जो कभी पैदा न हो, होता है। समाज का जन्म नहीं होता है बल्कि विभिन्न व्यक्तियों या प्राणियों द्वारा इसका निर्माण होता है जिनमें सम् उपसर्ग अनुसार सांस्कृतिक होती है।

समाज की परिभाषा - डॉ. कुँवरपाल सिंह के अनुसार समाज की परिभाषा एक ऐसे संगठन के रूप में की जा सकती है जो निरन्तर विकसित होता रहता है तथा जिसके प्रमुख क्रियाकलाप किसी दैवी शक्ति पर नहीं बल्कि उत्पादन प्रणाली के विकास पर आधारित होते हैं।3

अत: समाज एक ऐसी व्यवस्था है जो मनुष्य को संचालित करती है। समाज सामाजिक रिश्तों का एक जाल है। प्राय: हम समाज को एक ऐसा संगठन भी कह सकते है जिसकी बुनियाद पारस्परिक सहयोग पर टिकी है। सामाजिक मन व्यष्टि-मनों का समूह है। इसलिए वह व्यष्टि मन से ऊँचा होता है। संक्षेप में समाज एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें वर्ग और व्यवस्था बंटे हुए है। शासन व्यवस्था भी केन्द्र और प्रान्तों में विभाजित है। स्त्री और पुरुषों के कत्र्तव्य बंटे हुए है। समाज एक विकासशील व्यवस्था है यह सहयोग का संगठन है।

समाज का स्वरूप - 'समाज' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ, अनेक धारणाएँ समाज के संदर्भ में प्रचलित रही। सामान्यत: समाज शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के समूह अथवा झुण्ड के रूप में किया जाता है। व्यक्तियों के समूह रूप में इक्ट्ठा होने से समाज नहीं बनता इसके लिए आपसी सहयोग और व्यवस्था की अपेक्षा भी होती है। समाज व्यक्तियों का समूह नहीं बल्कि व्यक्तियों के बीच पाया जाने वाला पारस्परिक संबंध होता है। समाज कोई मूर्त संगठन नहीं है। इसको देखा या स्पर्श नहीं किया जा सकता है।

समाज में व्यक्ति का मूल्य सर्वाधिक है समाज मानव के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि समाज ही मनुष्य का रक्षक है। मनुष्य आवश्यकताओं का पूँज है यदि उसकी प्रमुख ज़रूरते पूरी न हो तो जीवन सुरक्षित न रहें। इन ज़रूरतों की पूर्ति के लिए अन्य व्यक्तियों से संबंध स्थापित करके उनका सहयोग प्राप्त करके ज़रूरतों की पूर्ति की जाती है। मानव की प्रवृत क्रियाकलाप उसकी चेतनाशक्ति, सामाजिक उत्थान, पतन के मूल में विद्यमान रहती है। व्यक्ति का जीवन सामाजिक जीवन में प्रवेश पाकर ही विराट की ओर अग्रसर होता है।

एक साहित्यकार भी सामाजिक प्राणी होता है। अत: उस पर भी अपने समय की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। अपने साहित्य में उनको अपनी जीवन शैली में अंकित करता है। प्रत्येक साहित्य अपने युग परिवेश की चितवृतियों व परिस्थितियों से प्रभावित होता है। राजकुमार राकेश जैसा साहित्यकार सजग, विवेकशील, जागरूक साहित्यकार इन प्रभाव से कैसे बच सकता है। उन्होंने समाज के हर पहलू जैसे - संयुक्त परिवार, एकल परिवार, विवाह, जाति व्यवस्था, सामाजिक बुराईयाँ, समाज में स्त्री की स्थिति, लोगों में मेल-जोल की भावना इत्यादि सभी पक्षों को लेखक ने अपने उपन्यास कंदील में चित्रित किया है।

1. परिवार - परिवार एक सार्वभौम, भावात्मक लघु संगठन है जिसका अस्तित्व इतिहास के चरण में किसी न किसी रूप में अवश्य रहा है। जिस प्रकार समग्र देश के जीवन को सुव्यवस्थित

डॉ. पूजा सुपुत्री श्री बुद्धराम
द्वारा श्री आज़ाद कुमार
गाँव- धाँसू
हिसार, हरियाणा

रखने के लिए स्वच्छ समाज की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार सामाजिक जीवन के निगमन और सुचालन एवं उसको नैरन्तर्य कायम रखने के लिए परिवार की महत्ती आवश्यकता होती है। परिवार में सबकी अलग-अलग पहचान, अलग स्थिति होती है। परिवार समाज का आधार है।

डॉ. उषा लाल ने परिवार के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए लिखा है, ''कालान्तर में कहीं कुछ भी बदला हो, लेकिन परिवार की अवधारणा अटल और सक्षम बनी रही है जिसके केन्द्र में माता-पिता तथा बच्चे रहते हैं तथा ऊपर की पीढ़ी में दादा-दादी इत्यादि। इसके अलावा यदि परिवार में चाचा-चाची या ताया आदि भी रहते है तो ऐसा परिवार संयुक्त परिवार की परिधि में आता है जबकि परिवार में केवल माता-पिता व बच्चों के इकट्ठे रहने की स्थिति में परिवार एकल हो जाता है।''4

इस प्रकार समाज में मुख्य रूप से परिवार के दो रूप सामने आते है- (क) संयुक्त परिवार (ख) एकांकी परिवार या एकल परिवार।

1.संयुक्त परिवार - समाज की सभी संस्थाओं में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण संस्था परिवार है। जीवन में आनन्द और जीवन में रुचि का कारण एक सीमा तक परिवार है। परिवार भारतीय जीवन का मूल अंग है। ''संयुक्त परिवार वह है जो निवास, भोजन, धर्म, कर्म व आर्थिक दृष्टि से संयुक्त होता है। माता-पिता, उनके पुत्र, पत्र-वधुएँ, श्राद्ध, धर्म, कर्म एक साथ करते है। सम्पति का स्वामित्व उत्पादन और उपभोग सम्मिलित रूप से होता है।''5

राजकुमार राकेश जी के 'कंदील' उपन्यास में संयुक्त परिवार को भली-भाँति चित्रित किया गया है उपन्यास में रणसिंह व पार्वती का परिवार एक संयुक्त परिवार है। इस संयुक्त परिवार में रणसिंह, उसकी पत्नी पार्वती, उनके तीन लड़कें, दो बहुएँ व उनके बच्चे सब एक साथ रहते हैं। उपन्यास में लेखक ने रणसिंह और हिम्मती एवं श्रमशील पार्वती के परिवार के सुख-दुख के अनेकों प्रसंगों का विस्तार से वर्णन किया गया है। परिवार में एक बार सूखे का संकट आता है तो कभी बाढ के कारण उनके घर के पशु मर जाते है। खेत-खलियान नष्ट हो जाते है यह परिवार हिम्मत के साथ इन सब आपदाओं को झेलता है। घर में भैंस को पाला जाता है उसके कारण घर में दूध दही भरपूर मात्रा में उपलब्ध रहते थे। लेकिन दुर्भाग्य वश भैंसों के मर जाने से उन्हें दूध आदिबाहर से ही खरीदना पड़ता था। कर्जा लेकर भैंस खरीदी और अपने बच्चों का पालन पोषण किया।

संयुक्त परिवार में विशेषकर स्त्रियों को ही घर का सभी काम करना पड़ता है। कंदील उपन्यास में घर का सारा बोझ पार्वती पर ही है। उसके तीनों लड़कों का रोज़गार ना होने के कारण तथा बहुओं का बालथनी होने के कारण व रणसिंह का बीमारी के कारण परिवार का सारा भार उसी पर था। बाद में बड़े लड़के को जेल हो जाती है उसको देखते हुए छोटे लड़के ने बाहर काम करने का फैसला लिया और उससे छोटा फौज में भर्ती हो जाता है। ऐसा होने पर पूरे परिवार का बोझ पार्वती व रणसिंह पर आ जाता है। सभी लोगों को पता है यदि पार्वती ना हो तो यह परिवार टूट कर बिखर जाता पूरे गाँव वाले उसको हौंसले वाली स्त्री समझते थे।

ऐसी स्थिति में खेत खलियान का पूरा काम भी पार्वती व रणसिंह को ही सँभालना पड़ता है संयुक्त परिवार में सम्बन्धों में काफी बिखराव देखने को मिलता है। 'कंदील' उपन्यास में परिवार के आपसी सम्बन्धों में काफी प्रेम व आपसी सद्भाव की भावना विद्यमान है। इस उपन्यास में पिता-पुत्र, पत्नी, पति दाम्पत्य संबंध आदि सम्बन्धों में अपनेपन की भावना दिखाई है।

2.एकल परिवार या एकांकी परिवार- एकल परिवार का उदाहरण राजकुमार राकेश के उपन्यास 'कंदील' में प्रमुख रूप से देखा जा सकता है। उपन्यास में सीताराम, संतु व टेकू फौजी के परिवार को एकल परिवार के रूप में दर्शाया है।

परिवार के इन सदस्यों को भी जब रोज़गार के लिए बाहर निकलना पड़ता है तो धीरे-धीरे परिवार के सदस्यों की संख्या कम हो जाती है घर में सिर्फ पति-पत्नी ही रह जाते है।

सीताराम कहता है, ''म्हारे कौन दो चार है जो घर से दूर खटने को भेज दे। म्हारा तो ई कल्हो कल्हा है। ई तो फजूल चला गया था मेरी मर्जी के ख़िलाफ़। मजूरी सजूरी इसके बस में थोडे ही न है। घसेंरो के पुत्तर है अपने घर में घास काहे ना काटे। अपनी नज़र में रहेगा तो खरा लगेगा।''6

अत: कहा जा सकता है कि औद्योगिक तथा आर्थिक समस्या के कारण भी संयुक्त परिवार से सदस्यों के बाहर चले जाने के कारण एकल परिवार का विकास होता है।

सामाजिक संरचना

1.जाति व्यवस्था- उपन्यास में रणसिंह का बेटा रिंकू टेकू फौजी की लड़की बंदो दोनों एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। लेकिन अलग-अलग जाति के होने के कारण पूरे गाँव में उनकी चर्चाएँ होने लगती है। उपन्यास में कोलां पार्वती से कहती है, ''बोबो बंदो को ईब होल्या है पियार। तुमारे रिंकू के साथ टांका भिड़ गया है। रिंकू उसके पीछे पागल हुआ फिरता है... जहाँ देखो दोनों छिपछिपा के मिलते है... पर मुसकल ई पड़ने को है जे जातपात का सवाल ईब आ खड़े होने वाला है। घर गाँव की बात है। तुमारी जात बरादरी में कैसे बात पचने वाली हुई।''7

उपन्यास में पार्वती को अपनी चालीस साल पुरानी कहानी याद आ जाती है। जब वो अपना सब कुछ छोड़कर रणसिंह के पीछे प्यार में पागल हुई अपने भाइ करमसिंह से भी लड़-भिड़ ली थी वह अपने प्यार को पाना चाहती थी। ''आज उसके बेटे रिंकू का तकरीबन वैसा ही प्यार जात का तलबगार हो लिया था। 8 इस उद्धरण से जाति-पाति के कठोर पाशों के अस्तित्व का पता चलता है कि जाति प्रथा का दुष्परिणाम यह होता है कि जाति के कारण परिवार व गाँव वालो की सहमति न मिलने के कारण उपन्यास में रिंकू व बंदो दोनों भाग जाते हैं।

2.विवाह- समाज में विवाह संस्कार को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मान जाता है। विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक

स्त्रियों के साथ होने वाला वह संबंध है जो प्रथा या कानून द्वारा स्वीकार्य होता है। इस संबंध में दोनों पक्षों और उनसे उत्पन्न बच्चों के अधिकार और कर्त्तव्यों का समावेश होता है। प्राय: भारतीय दृष्टिकोण से विवाह को एक धार्मिक संस्कारण माना जाता है। हमारी हिन्दू सभ्यता में उसी विवाह को सम्मान दिया जाता है जिस विवाह में परिवार एवम् समाज की सहमति शामिल हो अन्यथा भागकर शादी करने वालों को बहुत बार समाज के विरोध एवं परिवार के विरोध का भी सामना करना पड़ता है। राजकुमार राकेश के उपन्यास 'कंदील' में रणसिंह व पार्वती दोनों प्रेम विवाह कर लेते है जिसके कारण पार्वती के परिवार वाले उसकी जान के दुश्मन बन जाते है उसका भाई उसके विवाह के ख़िलाफ़ है उसकी जान लेना चाहता है। उसको जान से मारने की धमकी देता है। गंडासा लेके पीछे घूमता है। पार्वतजी इसका डटकर सामना करती है। वह अपना घर-परिवार छोड़कर रणसिंह के पास आ जाती है तथा अपने भाई से कहती है कर लो जो करना है। परन्तु उसका भाई भी उस प्रेम-विवाह के लिए मान जाता है।

रणसिंह कहता है, ''इस ठुठ अनपढ़ गवार के पीछे तू कैसे बावली हुई दूनिया झान छोड़ के भाग ली थी। अपने बड़े भाई करमसिंह को कैसी आँख दिखाई थी भूल गई क्या। बोई करमसिंह हाथ में दरात लेके हुंबर डुंबर के न आता था, मेरे को धमकाने .....।9

3.सामाजिक बुराईयाँ- वर्तमान समाज में अनेकों प्रकार की सामाजिक बुराईयाँ फैली हुई है। शराब पीना, जुआ खेलना, हुक्का पीना, सुल्फा पीना, नशे की चीजों का सेवन आदि आज की युवा पीढ़ी में यह ऐसे फैल रहा है जैसे मानो कोई वायरस फैलता है। अनेक प्रकार की बीमारियों से ग्रस्त रहता है। राजकुमार राकेश ने अपने उपन्यास 'कंदील' में सामाजिक बुराईयों को उजागर किया है।

उपन्यास में लेखक ने दिखाया है कि उदास गाँव के लगभग सभी व्यक्ति शराब, भाँग तथा तम्बाकू का सेवन करते है। मानों उन लोगों ने इन सब नशों का मानो अपने जीवन में शामिल कर लिया हो उपन्यास में करमसिंह कहता है, ''इस उदास गाँव में इस विचारी रम और अपने भगड के चार सूट्टे के रिवाय दूसरा कुछ है भी तो नहीं। ई बी टेम पे न पिएँगे तो बूझ मरमरा लेगें। ''10 उपन्यास में टेकू कहता है, 'चार दिन खुशी-खुशी जिएगा तो दुनिया झान में सुख भोगेगा कि नई। जिस रोज़ भंगड़ बूटी से डमाक गरम न करेगा तो समझ ले दुनिया में परलै मच जाएगी। ''11 ''जमके पियो जमके स्मैक घोटो, जम के सुल्फा पिओ, जम के खाओ और जम के सो जाओ। सब मुक्त का माल। ''12 उपन्यास में नशे को इतने अन्धे तरीके से इस्तेमाल किया जाता है।

4.छुआछूत- छुआछूत हिन्दू समाज की बहुत पुरानी बीमारी रही है छुआछूत की भावनाएँ धार्मिक अन्धविश्वास के कारण हिन्दू समाज में आज भी देखने को मिलता है। भारत के आज़ाद होने के बाद अछूत समस्या पर विशेष ध्यान दिया गया और किसी को अछूत कहने पर भी दोषी व्यक्ति घोषित कर दिया गया। आज भी नीची जात के लोगों को अछूत समझा जाता है चाहे वह कितना भी विद्वान क्यों न हो। ऐसे ही उदाहरण हमें 'कंदील' उपन्यास में भी देखने को मिलते हैं।

उपन्यास में टेकू फौजी का नीची जात से होने के कारण उसे अपने ही गाँव व दोस्तों के बीच अछूत समझा जाता है इस पर टेकू को बुरा लगता है ठंठूओं, मितरो, ईब तुम बताओ मेरी क्या गलती है हुई जो मैं इधर छूत वाले घर में पैदा हो गया। मेरी मरजी से तो ईब ई हुआ नई। ''13 टेकू कहता है कि तुम सब कभी इस गाँव से बाहर नहीं निकले इसलिए तो ऐसा मानते हो मैंने सारी दुनिया देखी है। ''पूरा हिन्दुस्तान इन पैरों से गाहया है कारगिल में पाकिस्तान के छ: जवान अपने इन हाथों से हलाल किए है। दिल्ली में राष्ट्रपति ने इस बहादरी के लिए मेरे गले में मैडल डाला। कहाँ गई तब मेरी जात....। बड़े-बड़े बाह्मण-बणिए और सारे के सारे करू कराड़ इस बहादर टेकचंद को सल्यूट मार रहे थे।''14

लेखक राजकुमार राकेश के उपन्यास 'कंदील' में छुआछूत को लेकर दिखावे की भावना का भी रूप इंगित करता है। उपन्यास में टेकू फौजी के दोस्त रणसिंह, संतु, सीताराम, डूमणु आदि के उसके साथ बैठकर शराब पीते है। भाँग की बूटी टेकू से मलवाते हैं तथा बुटी घोटते वक्त उसकी जात-पात की बात करते है।

उपन्यास में चतरभुज पांडे जो एक ब्राह्मण हैं उन्हें जेल में रहने के बाद ये मालूम होता है कि जातपात छुआछूत सब बेकार की बातें है वह अपने पापों का प्रायश्चित करता है। हवालात में उन्होंने मुझसे पानी माँगा, खाना मेरे हाथ से मंगवाया तो मैं बहुत हैरान था इस पर पांडे जी ने कहा ''हियाँ इस हवालात में आके मालूम चला जे पूरी जिनगानी अकारथ चली गई। ईब समझ आया जे ईश्वर ने हमको इस हवालात में कुछ जरूरी बात समझने को भेजा है।''15

राजकुमार राकेश ने अपने उपन्यास 'कंदील' में समाज के अन्दर फैली विभिन्न बुराईयों को सबके सामने उदृगाटित किया है। उसके साथ छुआछूत जाति-पाति जिसके कारण आज समाज ऐसी दिशा की तरफ जा रहा है जिसका भविष्य में होने वाले दुष्परिणामों के बारे में अवगत नही है।

समाज में सिर्फ लोगों को समझाया जा सकता है अन्तिम निर्णय तो स्वयं मनुष्य को ही लेना होता है। इस तरह राजकुमार राकेश ने भी अपने उपन्यास 'कंदील' में समझाने का प्रयास किया है।

000

संदर्भ- 1.रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, (पाँचवा खण्ड) पृष्ठ सं. 284, 2.डॉ. भोलानाथ तिवारी, तुलसी शब्दसागर, पृष्ठ सं. 445, 3.डॉ. कुँवरपाल सिंह, हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना, पृष्ठ सं. 17, 4.डॉ. उषा लाल, हरियाणा की हिन्दी कहानी, पृष्ठ सं. 284, 5.हरिदत्त वेदालंकार, हिन्दू परिवार मीमांसा, पृष्ठ सं. 23, 6.राजकुमार राकेश, कंदील, पृष्ठ सं. 250, 7.वही, पृष्ठ सं. 39, 8.वही, पृष्ठ सं. 41, 9.वही, पृष्ठ सं. 99, 10.वही, पृष्ठ सं. 295, 11.वही, पृष्ठ सं. 116, 12.वही, पृष्ठ सं. 109, 13.वही, पृष्ठ सं. 152, 14.वही, पृष्ठ सं. 152, 15.वही, पृष्ठ सं. 152

(शोध आलेख)

'सूखते चिनार' में चित्रित 'कश्मीर' का राजनैतिक स्वरूप

शोध लेखक : डॉ. सविता
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग दयानन्द महाविद्यालय; हिसार

आज हर जगह हमें राजनीति के दर्शन होते है। आधुनिक युग में हम बहुत अधिक राजनीतिकरण के युग में जी रहे हैं। आज राजनीति शब्द बहुअर्थी हो गया है। राजनीति शब्द का अर्थ है, "राजनीति संबंधी। अंग्रेजी में राजनीति का अर्थ है, "Politics Relating of Politias होता है।"1

डॉ. कृष्ण कुमार अग्रवाल के अनुसार "शासक वर्ग द्वारा निर्धारित समाज एवं शासन व्यवस्था नीति राजनीति है।"2

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मानक हिन्दी कोष के अनुसार राजनीति के दो अर्थ है, "वह नीति या पद्धति जिसके अनुसार किसी राज्य का प्रशासन किया जाता है या होता है। गुटों वर्गों आदि की पारस्परिक स्पर्धा वाली स्वार्थपूर्ण नीति"3 किसी भी राज्य को सुचारू ढंग से चलाने के लिए उसके नीति, नियम, विधि बनाई जाती है। उन नियमों का पालन करना उस राज्य के लिए अनिवार्य होता है। हम कह सकते है कि राजनीति राज्य द्वारा बनाई गई नीति से सम्बन्धित है। हर राष्ट्र का विकास उसके राजनेताओं द्वारा बनाई गई नीतियों पर निर्भर होता है।

वर्तमान दृष्टि में कश्मीर की राजनैतिक स्थिति - विलय पत्र के अनुसार कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है। कश्मीर में भारतीय फौज को भेजा गया था। अलगाववादी नेता इस सत्य को अच्छी तरह जानते है कि वे युवाओं को आसानी से अपने भ्रम जाल में फंसा लेगें। युवाओं को ग़लत रास्ते दिखाकर ऐसे नेता किस प्रकार किशोरों के भविष्य से खिलवाड़ करते हैं। इस बात को लेखिका ने 'सूखते चिनार' उपन्यास में बहुत ही गहराई से उठाया है। "कश्मीर की युवा पीढी का हुनर जाया हो रहा है बंदूक के घोड़े को दबाने में।"4 लेखिका कश्मीरी युवाओं के भविष्य को लेकर बहुत चिंतित है। नेता व अलगाववादी नेतायों को युवाओं के भविष्य की कोई चिंता नही है। युवाओं का भविष्य अंधकारमय हो जाता है। परिवार का चिराग व जेहाद की आग में झुलस जाने पर परिवार टूट जाता है। लेकिन ये धर्मान्ध लोग किसी के वर्तमान व भविष्य में रुचि न लेकर मात्र अपनी स्थिति को मजबूत करने में ही रुचि दिखाते हैं। "कश्मीर के सबसे बड़े गुनहगार वे ही लोग है। 'आबतक' को किसने देखा है पर उस अनजाने 'आबतक' के लिए जीती जागती दुनिया को दोजख में धकेल देना कहाँ की बुद्धिमानी है।"5 मासूम युवाओं को उल्टे सीधे सपने दिखाकर ग़लत रासते पर ले जाने वाले नेता किसी के नहीं होते।

राजनेताओं का स्वार्थ - लेखिका मधु कांकरिया ने राजनेताओं के स्वार्थी चेहरे पर लगे मुखौटें को उतारने की कोशिश की है। चुनाव के समय नेता बड़े-बड़े वादे करते हैं। भोली-भाली जनता को मूर्ख बनाकर उनका कीमती वोट हासिल करते हैं। हमारे सैनिक देश की सुरक्षा के लिए खून को पानी की तरह बहाते हैं। सर्दी, गर्मी, बरसात धूप सभी को सहकर मातृभूमि की रक्षा करते हैं। लेकिन ये नेता कुर्सी पर बैठे-बैठे उदारता का उदाहरण बनने के लिए भूमि का समझौता कर लेते हैं। इस बात का तनिक भी विचार नहीं आता कि इस टूकड़े के लिए कितने वीरों को अपनी जान गंवानी पड़ी हैं।

यहाँ लेखिका नेताओं पर कटाक्ष करते हुए कहती है, "हमारे जवान सरहद पर खून बहाते हैं। एक इंच भूमि के लिए कुर्बानी देते हैं और हमारे नेता टेबुल पर बैठकर उसी भूमि का समझौता कर लेते हैं। जिसके लिए हमारे जवान शहीद हुए थे।"6 यहाँ लेखिका सवाल उठाती है कि जिस ज़मीन के टुकड़े के लिए हमारे सैनिक शहीद होते हैं। उसी भूमि पर समझौता कर लिया जाता है तो हमारे सैनिकों की शहादत का क्या मूल्य रहा।

लेखिका प्रश्न करती है कि इन्हें हमारे दुख का या शहीद के परिवार के दुख का एहसास नहीं हो सकता। लेखिका नेताओं के प्रति क्षोभ से भरकर कहती है, "जब तक इन नेताओं के ख़ुद के बेटे नहीं शामिल होंगे आर्मी में, ये नहीं समझ पाएँगें शहीदों के दर्द को।"7 राजनेताओं को जनता के दर्द में कोई रुचि नही है। इनका बस एक मात्र लक्ष्य है अपना स्वार्थ सिद्धि करना। जनता भी अब जागरूक हो रही है। वो भी अब सोचने पर मजबूर हो गए है कि किस तरह नेताओं के बैंक का बैलंस निरन्तर बढ़ता जा रहा है। जनता की हालत तो बद से बदत्तर होते जा रही है। आज भी

डॉ. सविता
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग दयानन्द महाविद्यालय
हिसार
ईमेल- jangusavita@gmail.com

कश्मीर में हिन्दू व डोगराओं का जीवन सुरक्षित नहीं है बेकसूर लोग मारे जा रहे हैं। "आए दिन बेकसूर लोगों की मौत से आम कश्मीरी आवास का भरोसा दिल्ली सरकार से उठ गया है .... चलो मरे साथ कल तुम्हें दिखाऊँगा शहीदों के स्मारक। बोलते बोलते भावुक हो गए संदीप।"8

लेखिका के मन में अकारण मरने वालों के प्रति करूणा का भाव है। कश्मीर में सेना व जनता के सिर पर हर वक्त खतरे की तलवार टंगी है और नेता अधिकत्तर समय विदेशी दौरों में व्यस्त रहते हैं। नेताओं का ध्यान अपनी सुख सुविधाओं पर रहता है। उन्हें इस बात से कोई फर्क नही रहता कि भारतीय सैनिक किस तरह से अपना जीवन यापन कर रहे हैं। संदीप सिद्धार्थ को बताता है कि टेपोरीनुमा आंतकी युवाओं ने गृहमंत्री मुफ्ती मोहम्मद सईद की बेटी डॉ. रूबैया का अपहरण कर लिया। इन आतंकियों ने गृहमंत्री से डॉ. रूबैया के बदले पाँच खूंखार आतंकियों को रिहाई की माँग की। आर्मी सुरक्षा सलाहकार स्थानीय पुलिस सभी का मानना था कि आतंकियों की बात न मानी जाए। यदि आज उनकी बात मान ली गई तो वे आगे चलकर वे कश्मीर में आतंक मचाऐंगे। लेकिन मुफ्ती साहब ने तुरंत घटने टेक लिए।

उक्त पंक्तियों में लेखिका ने गृहमंत्री मुफ्ती साहब को बेटी की सुरक्षा के लिए कश्मीर की सुरक्षा, शान्ति व सैनिकों को दाँव पर लगाते दिखाया है, "लेकिन जनाब तब किसको फ़िक्र थी कश्मीर की या भारतीय जवानों की। गृहमंत्री को चिंता थी तो सिर्फ अपनी लाड़ली की। सुरक्षा कर्मियों, फौज और पुलिस सभी की सलाह को धता बताते हुए नकारा सरकार झुक गई.... छोड़ दो बिटिया को हम छोड़ देंगे तुम्हारे पाँच-पाँच खूंखार उग्रवादियों को।"9

नेताओं को अपने स्वार्थ से ज़्यादा किसी भी चीज़ की चिंता नही है। ऐसे लोगों के कारण ही राजनीति एक ऐसा गंदा खेल है जिसमें आम आदमी नही जाना चाहता। वर्तमान समय में आम जनता का फर्ज भी बनता है कि वह ऐसे नेता का चुनाव करें जो अपना स्वार्थ ना देखते हुए जनता के हित के लिए कार्य करें। नेता योग्य, उज्ज्वल चरित्र, कर्मनिष्ठ, मेहनती, ईमानदार, श्रेष्ठ विचारधारा वाले व्यक्ति को राज्य सभा, विधानसभा में पहुँचाए।

भारतीय फौज के प्रति कश्मीरियों में नफरत - लेखिका मधु कांकरिया ने उपन्यास 'सूखते चिनार' कश्मीर में हिन्दू, मुसलमानों के बीच बढ़ती खाई का दिल को झकझोरने वाला चित्रण किया है। यहाँ पर लेखिका बताना चाहती है कि क्या वास्तव में हिन्दू ऐसा ही है। जैसा कश्मीरी मुसलमान हिन्दुओं को समझते है। कश्मीरी युवक बशीर अहमद को संदीप मिलने के लिए बुलाते है। लेकिन बशीर के मन में हिन्दुओं के प्रति डर पहले से या ऊपर से गाँव वाले भी बशीर को डरा देते है। संदीप हैरा हो जाता है। बशीर अहमद के शब्दों में लेखिका ने कश्मीरियों का हिन्दुओं के प्रति भय उजागर किया है, "साहब जी मैं बहुत डर गया था। मुझे गाव वालों ने कहा, मत जाओं वहाँ सारे हिन्दू मिलकर पीटेंगे तुम्हें।"10

कश्मीरी जनता भारतीय सैनिकों द्वारा समय-समय पर की गई हिंसात्मक कार्यवाहियों को देखकर सोचने लगे हैं कि किसी को कश्मीरी जनता की परवाह नहीं एक जैसे तैसे कब्जाने के चक्कर में, दूसरे ने इसे अपने अहम से जोड़ लिया है। रूबीना स्पष्ट शब्दों में मेजर संदीप से कहती है, "कश्मीर से हिन्दुस्तान फौज वापिस बुला लेनी चाहिए।"11

कश्मीर में रहकर फौजी अजीब स्थिति का सामना कर रहे हैं। फौजियों को कश्मीर में उन्हीं लोगों की सुरक्षा की जिम्मेदारी सौंपी गई है जो उनसे नफरत करते हैं। हर समय सैनिकों को मारने के लिए किशोरों को पत्थर थमा कर आगे कर देते हैं। आख़िर क्यों सैनिक कश्मीरियों की नफरत को झेल रहे हैं।

कश्मीरियों को समझना चाहिए कि वे केवल अपनी डयूटी कर रहे हैं। उन्हें किसी भी युवा को चोट पहुँचाकर खुशी नही मिलती। कश्मीर हर छोटी से छोटी जानकारी सेना के लिए जरूरी होती है और ये जानकारी कश्मीरी अपने लोगों के बीच बाँटते है इसलिए कश्मीर को शान्त रखने के लिए हमें मुसलमान दिखना पड़ता है ताकि हमें हिन्दू समझकर हमसे न डरें। क्योंकि हमारा लक्ष्य इन्हें डराना या भय पैदा करना नहीं। हमारा लक्ष्य शान्ति की स्थापना करना है। क्योंकि वहाँ रहने वाले प्रत्येक नागरिक की सुरक्षा की जा सके।

पुलिस प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार - प्रत्येक राज्य में कानून व्यवस्था को बनाए रखने की जिम्मेदारी पुलिस प्रशासन की होती है। ताकि प्रत्येक व्यक्ति को उसका अधिकार मिले। समाज को उपद्रव्य मचाने वालों से घुटकारा दिलाया जा सके। गुण्डों को चोरों को पुलिस का डर बना रहे इससे समाज में रहने वालों का जीना आसान हो जाता है।

लेखिका कहती है जमील जब जेहादी बन जाता है तो उसके परिवार पर दु:खों का पहाड़ टूट जाता है। आर्मी वाले व पुलिस वाले दोनों मिलकर टार्चर करते हैं जमील के परिवार पर पुलिस वालों ने इस घर की सबसे कमज़ोर कड़ी रूबीना का यौवन और हमीद का कोमल बालमन को पकड़ लिया और परिवार को तोड़ने के लिए इन्ही कड़ियों पर प्रहार शुरू कर दिया। पुलिस उनके घरवालों पर अत्याचार पर अत्याचार करके हद पार कर देते है। "हमीद मार खाता पर मुँह नही खोलता। पुलिस का ग़ुस्सा और बढ़ जाता है। वह उनके घर आ धमकती। जहाँ अड्डा मारती सिगरेट के छल्ले उड़ाती उसकी जवान बहन रूबीना को घूरती। उससे गन्दे-गन्दे मज़ाक करती। भद्दे इशारे करती। उसके सामने माँ-बहन की ऐसी अश्लील और भद्दी गालियाँ निकालती कि जमील के अब्बू रो पड़ते।"12

'सूखते चिनार' उपन्यास में पुलिस का यह नया रूप नही है। पुलिस महकमा ऐसी बेहूदा हरकतों से हमेशा चर्चा में रहा है। पुलिस प्रताड़ना से मर जाना मारपीट में अंदरूनी चोट मारना, पुलिस कस्टडी में बलात्कार जैसी घटनाएँ भी हो रही है। जो पुलिस प्रशासन को दुनिया के सामने शर्मसार करती है।

"पुलिस हर सप्ताह हमीद को थाने बुलाती, उसे पीट-पीट नीला कर देती, उसके बदन पर पिटाई के निशान न उभरे इसलिए

उसे गीले कम्बल में लपेट कर पीटती।''13 पुलिस की छवि आम आदमी की नजरों में अच्छी नही है। पुलिस में जमील के परिवार पर खूब ज्यादतियाँ की, उत्पीड़न किया, यातनाएँ दी, पूछताछ के नाम पर खूब पीटा हमीद को। यहाँ पर लेखिका बताना चाहती है कि यदि पुलिस भक्षक बन जाए तो समाज को न्याय कौन दिलाएगा।

फौज की कार्यशैली पर प्रश्न चिह्न - मधु कांकरिया आर्मी की जीव शैली एवम् कार्यशैली पर प्रश्न चिह्न लगाया है क्या उनके कार्य करने का तरीका ठीक है? क्या उसमें कुछ बदलाव होना चाहिए। संदीप आर्मी में रहकर ही जान पाया, आर्मी की कार्य शेली को। यहाँ संदीप ने अपने भाई सिद्धार्थ को बताया कि एक समय था जब हम 'आप्रेशन फ्राइडे' पर थे। नेता हम पर लगातार दबाव बना रहे थे आतंकियों को पकड़ने का। तो किस तरह से एक अनैतिक तरीके से एक मासूम को मारकर उसे खूंखार आतंकी घोषित कर दिया। संदीप बताता है, ''हमने गाँव के एक नौजवान को पकड़ा उसका अपराध सिर्फ इतना भर था कि उसके दोस्त का भाई आतंकी था..... बरहाल हमारी नजरे उस पर टिकी थी जैसे ही वह निकला हमारे कमाण्डों ने उसे ढेर कर दिया और शव के पास ए.के. सैतालिस रख दी।''14

लेखिका के कमन में सैनिकों की कार्यशैली को लेकर क्षोभ है। सैनिक जिन पर जनता आँख मूंदकर विश्वास करती है और सेना ऐसे अनैतिक कार्य करने में संकोच नही करते किस तरह नैतिकता से इतना गिर जाते है कि एक निर्दोष को मारकर शर्मशार होने की बजाए झूठी शान का ढिढोरा पीटते है, ''हमारे कमाण्डों ने नौजवान की लाश के पास ए.के. सैतालिस रख फोटो खिंचवाई और मीडिया को बताया कि हमने एक खूंखार आतंकवादी को ढेर किया।''15 संदीप फौजी के इस प्रकार के अमाननीय कृत्यों को देखकर हताश हो जाता है। संदीप महसूस करता है कि हम कश्मीर के रक्षक न होकर राक्षस हैं। जमील के केस का जिक्र करते हुए सिद्धार्थ को संदीप बताता है मैं चाहता था जमील का आत्मसमर्पण करवाया जाए। ऐसी कच्ची कोमल कोमलों को समझा बुझा कर सही रास्ता दिखाया जाए क्योंकि एक मौका देने का फर्ज तो आर्मी का भी होना चाहिए। लेकिन संदीप की यह बात सुनकर कर्नल आर्य गुस्से से लाल हो गए थे मानों जेहादियों के लिए उन्होंने एक ही सजा सोच रखी है मौत। कर्नल आर्य जैसे अधिकारियों की सूची में पहला और अन्तिम अक्षर एक ही है मिलिटेन्ट का जड़ से सफाया कर्नल आर्य संदीप को समझाते है। ''पागल मत बना। सफाया करना ही हमारी पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। बिना जड़ से उखाड़े बात नहीं बनती। आत्मसमर्पण की तो तभी सोचनी जब किसी कारण से हम ऐसा नहीं कर पाए।''17

महिलाओं की मिलिटेंसी में सहभागिता - कश्मीर में लड़के तो जेहाद की तरफ जाते ही जाते है लेकिन अब इस आग में कूदने से लड़कियाँ पीछे नही हैं। युवतियों पर आसानी से किसी को शक भी नही होता और इस बात का फायदा उठाकर लड़कियाँ बड़े-बड़े काम को अन्जाम दे देती हैं। 'सूखते चिनार' उपन्यास में भी लड़कियों की इसी प्रवृति को दिखाना चाहती है। संदीप सिद्धार्थ को श्रीनगर एयरपोर्ट पर छोड़ने जा रहा था। रास्ते में संदीप एक काले बुर्के वाली औरत को देखता है, जो बारिश में भीगकर ठण्ड से ठिठूर रही थी। गाड़ी के पास आते ही बुर्के वाली औरत ने संदीप से लिफ्ट ली। युवती ठण्ड से काँप रही थी, संदीप ने हीटर चलवाया ताकि उस औरत को आराम मिले। कुछ देर चलकर बुर्के वाली औरत ने गाड़ी को रुकवाया। ठण्ड से बेहाल होती वह गाड़ी से उतर गई। आगे चलकर बी.एस.एफ. के जवानों ने गाड़ी रुकवाई पूछा कहाँ है तुम्हारा साथी पैसेंजर। कैसा साथी?

हैरान हो गए संदीप। संदीप ने बताया वह तो एक लाचार औरत थी उसने लिफ्ट माँगी और मैंने दे दी, बी.एस.एफ. के जवान हैरानी से संदीप को देखते है और बताते है कि वह महिला एक आतंकी थी तो संदीप के पैरों तले की ज़मीन सरक जाती है। लेखिका के शब्दों में, ''अरे वो पैसेंजर साथी नही थी, रास्ते में खड़ी बेबस महिला थी। ठिठूर रही थी बारिश से बचने के लिए उसने लिफ्ट माँगी मैंने दे दी। ..... जिस महिला को आपने लिफ्ट दी, जानते है वह कौन थी? वह हरामजादी जे.के.एल.एफ. की एरिया कमाण्डर, खूंखार मिलिटेंट नताश थी।''17 कश्मीर की लड़ाई में अब लड़के लड़कियाँ बराबर की भूमिका अदा कर रहे है। संदीप का आइडेंटिकार्ड देखकर बी.एस.एफ. का जवान भी चैंक गया। खूंखार महिला आतंकवादी और सैनिक अफसर एक ही जीप में पाँच छः किलोमीटर का सफर साथ करते है अधिकारी बताते है कि भगवान् की कृपा ही समझो जो आप सही सलामत है। आपको कोई नुकसान नहीं पहुँचाया। अगर उसे पता लग जाता आप एक सैनिक है तो उसे किसी भी घटना को अंजाम देते वक्त ना लगता। ''साहब अच्दे का मुँह देखकर घर से निकले थे यदि उस शैतान की औलाद को पता चल जाता कि साथ में भारतीय फौज का मेजर बैठा है तो क्या छोड़ देती वह आपको।''18

अन्त में हम केवल इतना ही कहेंगे कि लेखिका ने चित्रित किया है कि महिला आंतकी सहजता से धोखा दे सकती है। संदीप जैसा जाँबाज सैनिक भी नही भाँप पाया कि पास बैठी औरत खूंखार आंतकी नताशा है ऐसे में महिला आतंकी युवाओं से भी ज़्यादा समाज के लिए घातक है।

000

संदर्भ- 1.कैलाश चन्द्र भाटिया, हिन्दी अंग्रेजी अभिव्यक्ति कोष, पृष्ठ सं. 265, 2.डॉ. कृष्ण कुमार अग्रवाल, आधुनिक शासन एवं राजनीति, पृष्ठ सं. 26, 3.आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मानक हिन्दी कोष, पृष्ठ सं. 494, 4.मधु कांकरिया, सूखते चिनार, पृष्ठ सं. 54, 5.मधु कांकरिया, सूखते चिनार, पृष्ठ सं. 134, 6.वही, पृष्ठ सं. 34, 7.वही, पृष्ठ सं. 34, 8.वही, पृष्ठ सं. 44, 9.वही, पृष्ठ सं. 43, 10.वही, पृष्ठ सं. 100, 11.वही, पृष्ठ सं. 116, 12.वही, पृष्ठ सं. 104, 13.वही, पृष्ठ सं. 104, 14.वही, पृष्ठ सं. 124, 15.वही, पृष्ठ सं. 124, 16.वही, पृष्ठ सं. 102, 17.वही, पृष्ठ सं. 83, 18.वही, पृष्ठ सं. 83

(शोध आलेख)

चन्द्रकान्ता के उपन्यासों में स्त्री स्वत्व के विविध रूप

शोध लेखक : षमीना. टी
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग

शोध निर्देशक : डॉ.शोभना कोक्काडन, अविनाशिलिंगम इंस्टीट्यूट फॉर होम साइन्स अँड हाइयर एडुकेशन फॉर वुमेन, कोयम्बत्तूर

षमीना.टी
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
अविनाशिलिंगम इंस्टीट्यूट फॉर होम साइन्स अँड हाइयर एडुकेशन फॉर वुमेन, कोइम्बत्तूर, तमिलनाडु
मोबाइल- 9656250594
ईमेल - Justonly4article@gmail.com

सारांश- विश्व में भारतीय संस्कृति सर्वाधिक उदार और श्रेष्ठता के रूप में विख्यात है। इस संस्कृति ने स्त्री और पुरुष की संतुलित जीवन पद्धति का रूप अपनाया था। प्राचीन काल में स्त्री और पुरुष दोनों को महत्त्वपूर्ण स्थान था। परंतु धीरे- धीरे दोनों की ओर देखने की सामाजिक दृष्टि में अंतर आ गया। वैसे स्त्री और पुरुष प्रकृति की दृष्टि से कई रूपों में भिन्नता रखते हैं। बदलता परिवेश, सामाजिक दृष्टि और स्वभाव विशेष के कारण भी स्त्री में भिन्नता दिखाई देती है। वैदिक काल से लेकर कालक्रमानुसार आज तक के स्त्री में बदलाव आए हैं, स्त्री स्वत्व में नया परिवेश एवं नज़र आया हैं।

बीज शब्द: विचारधारा, डेटिंग, लिविंग टु गेथर, अंदरद्वंद्व, स्वत्वहीन

प्रस्तावना- चन्द्रकान्ता आधुनिक हिन्दी साहित्य जगत् की विशिष्ट ख्यातिप्राप्त लेखिका के रूप विख्यात है। उन्होंने उपन्यासों के माध्यम से अपने मन की अंदरद्वंद्वों एवं समाज में घटित विभिन्न प्रकार के नकारात्मक परिस्थियों को पाठकों तक पहुँचाया। उन्होंने वही लिखा जो ख़ुद भोगा, और जो दूसरों को भोगते देखा, महसूस किया। एक दायित्वपूर्ण लेखिका की भूमिका सक्षमता से निभाने के साथ- साथ स्त्री के युगीन समस्याओं एवं स्वत्व के विविध रूपों का उलेखन भी उपन्यासों के किया हैं।

प्राचीन विचारधारा से प्रभावित स्त्री- सामाजिक विचारधारा में परिवर्तन एवं पहचान लाना स्वाभाविक है, जिससे प्राचीन और आधुनिक दोनों के बीच के प्रगति मालूम होगा। विचारों का संक्रमण हमेशा होता है परन्तु एक विशिष्ट स्थिति में युगीन विचारों और मूल्यों में अंतर आ जाता है। स्वतंत्रता काल में जिन आदर्शों, मूल्यों को अपनाया गया था वे आज पीछे पास चुके हैं। परन्तु कई ऐसे प्राचीन मूल्य है जो आज भी समाज में स्वीकार्य है, जिसके प्रभाव से आज भी वह बचपन में माता- पिता, जवानी में पति, बुढ़ापे में पुत्र की आश्रित रहती है।

'अंतिम साक्ष्य' उपन्यास की नायिका 'बीजी' पारिवारिक प्राचीन मूल्यों को महत्त्व देनेवाली घरेलू स्त्री है। वे अपने पति और बच्चों का पालन पोषण में आत्मसंतृप्त भी है, लेकिन जब बीजी ने अपने पति को 'मीना' की ओर आकर्षित होकर प्यार का राग आलापते हुए देखा तो स्तब्ध हो जाती है। एक प्राचीन विचारधारा के मध्यवर्गीय सुसंस्कृत परिवार के बीजी दोनों के अंतरंग संबंध से दुखी होते हुए भी कभी भी पति पर क्रोध एवं विद्रोह नहीं की, लेकिन मौन रहकर उनकी छोटी- मोटी ज़रूरतें पूरी करती रहती है। पति का मीना की ओर रहा खिंचाव स्वयं की हार मानकर घूट- घूट अस्तित्वहीन होकर अन्त में मर जाती है। लेकिन वे अपने पति और मीना के व्यवहार से दुखी थी।" वह उस घर- परिवार की बेटी थी, जहाँ न जाने कितनी पीढ़ियों से माँ बेटी और बेटी अपने कोखजायी को आदर्श नारियों के शील संस्कार दिमागों में ठूँस- ठूँसकर भर्ती आई है।" 1

आधुनिक विचारधारा से ओतप्रोत स्त्री- बीसवीं शति में नवजागरण काल के समाज सुधारकों ने स्त्री को विभिन्न बंधनों की साँकलों से मुक्त कर स्त्री स्वातंत्र्य का नारा लगाया। जिससे स्त्री अपने अधिकार और महत्त्व के प्रति सचेत हो गई। वह भी पुरुष के कंधे- से- कंधा मिलाकर हर क्षेत्र में कार्यरत हो गई, जिससे हीं भावना नष्ट हो गई। स्त्री को उचित सम्मान मिला " आधुनिक युग में नारी के सहयोग से विश्व की सृजनात्मक आसथामूलक पुनर्रचना करने की संभावना ने नारी को पुरुष के समकक्ष लाकर खड़ा कर दिया है।" 2

'बाकी सब खैरियत है' की स्वतंत्रतापूर्ण आधुनिक विचारधारा वाली बहू 'निम्मी' और प्राचीन मूल्यों से ओतप्रोत सास की दृष्टिकोण में टकराव होने लगता है, तो वह स्पष्टत: से जेठानी कहती है, " हम अपने सुख- सुविधा छोड़कर इनके लिए कितना कुछ तो करते थे, लेकिन माँ कभी संतुष्ट हुई ! भाभी ! ... आख़िर इन्हें भी समझना चाहिए कि सभी जीना चाहते

हैं। .... जी चुके लोगों के लिए हम अपनी उगती ज़िंदगी का गला थोड़े घोंट सकते हैं।" 3

बड़ी बहू पारुल की बक्सों- अलमारियों की चावी बिना कुछ बोले मनचाहे दिल से सास को सौंपा वैसे छोटी बहू 'निम्मी' चावी देने को विरोध करती है, और अपने ढंग के पसन्द कपड़े भी पहनती है। निम्मी पति से कहती है- "जो शख्स जमाने से ही नाराज हो, वह जमाने के साथ चलनेवाले हर व्यक्ति से नाराज होगा। और मेरे समझ में माँ की नाराजगी बिल्कुल नहीं आ सकती, इतना जान लो।" 4 वह किसी भी हाल में अपनी अस्तित्व को खोना नहीं चाहती है।

पारिवारिक स्नेह- सौहार्द स्त्री- परिवार के सदस्यों को अच्छे संस्कार एवं सभ्यता प्रदान करना बड़ों का दायित्व होता है। 'अपने- अपने कोणार्क' उपन्यास के माध्यम से एक सम्पन्न सुखी संयुक्त परिवार के सदस्यों का आपस में मेल एवं सौहार्द पर प्रकाश डाला है। 'कुनी' शिक्षित एवं कामकाजी स्त्री होने के नाते पारिवारिक स्नेह- सौहार्द व्यहवार सम्पन्न है। वह अपने संयुक्त परिवार का पालन पोषण एवं ज़रूरतों को ईमानदारी से सुव्यवस्थित रूप में निभा रही है। परिवार को खुश रखने में दादी माँ का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। कुनी के शब्दों में "दया- माया भी काम नहीं है दादी के मन में। डाँटेंगी, फटकारेगी पर भरपेट भात भी खिलाएँगी। दादी अन्नपूर्णा हैं, दादी गृहस्वामिनी हैं, बूढ़ी बाघिन भी।" 5

असफल दाम्पत्य जीवन बितानेवाले स्त्री- 'कथा सतीसर' उपन्यास के पात्र 'विमल' और 'राज्ञा' का वैवाहिक दाम्पत्य जीवन असफल है। विमल अपनी पत्नी राज्ञा को सिर्फ एक भोग्य वस्तु मात्र माना है। पत्नी की इच्छा- अनिच्छा बिना माने शारीरिक संबंध रखता है, बलात्कार करता है। विमल ने राज्ञा को सिर्फ शारीरिक सुख का चीज़ माना।

किशोरावस्था में किए प्रेम में फँसी स्त्री- चन्द्रकान्ता के उपन्यासों में विवाह की प्रासंगिकता, सफल- विफल प्रेम समबन्ध, असफल प्रेम में फँसी स्त्री की समस्याएँ, शारीरिक आकर्षण को प्रेम मानकर संबंधों को बनाये रखने में उत्पन्न समस्याएँ आदि पर विचार- विमर्श किया है।

'अंतिम साक्ष्य' उपन्यास के 'सुरेश' और 'सरोज' दोनों पड़ोसी होने के नाते एक- दूसरे को चाहते हैं। सुरेश की माँ एक सतर्क जासूस बनकर दोनों के प्रेम- संबंध को पकड़ती है। वह अपने बच्चा को सताने से पहले सरोज को दोषी ठहराती है- "ये आजकल की छोकरियाँ। वे कान पकड़कर तौबा करती, मुँह अंधेरे सरोज छत पर निकाल सुरेश के कमरे में ताक- झाँक करती है। बुड्ढा बाप बीच छत में सोया पड़ा रहता है। ठीक उसे नाक के नीचे बेटी खुले आम मुंडेर लांघ जाती है। कभी नहाकर घंटों बाहें उठाकर बाल झटका करेगी।" 6 दोनों का प्रेममय संबंध इस घटना से समाप्त हो जाता है, वैसे भी किशोरावस्था में किए गए प्रेम में स्थायित्व की संभावना कम ही होती है।

विवाहपूर्व प्रेम और यौन सम्बन्धों में फँसी स्त्री- किशोरावस्था में भावनावश किया गया प्रेम का अंत तक निर्वाह नहीं होता। किसी एक का विवाह होने पर प्रेम की वहीं समाप्ति हो जाती है। 'बाकी सब खैरियत है' की ऋता, साउथ एक्स की सीता लड़कियों के इस प्रकार के प्रदर्शन का विरोध करती है। 'अपने- अपने कोणार्क' की नायिका कुनी की यही स्थिति है। लेखिका ने अनुसार विवाह- पूर्व यौन संबंधों के परिणाम बुरे होते हैं, जो विवाहेतर पारिवारिक सम्बन्धों में तनाव का कारण बन जाता है। 'अर्थान्तर' उपन्यास की कम्मो विवाह के दिन ही अपनी पति विजय के साथ उषी का अवैध संबंध देखती है - "खेतों में, घास के गट्ठरों और धान की ढेरियों की आड़, पकी फसल की जवान गंध में घुली महीन आवाजें, मान- मनौवल और मनुहारों गूँजती हैं।" 7

यहाँ लेखिका ने वैवाहिक दाम्पत्य जीवन के त्रासदियों पर प्रकाश डाला गया है। तीसरे का आगमन अवश्य पति- पत्नी के संबंधों को तनावपूर्ण बना देता है। विवाह पूर्व प्रेम अथवा यौन संबंधों के कारण कम्मो और विजय के बीच में इसी मानसिक स्थिति पैदा हुई है। 'बाकी सब खैरियत है' उपन्यास में प्रेम की विभिन्न स्थितियों और परिणतियों पर प्रकाश डाला गया है। अनुपम और सीमा एक दूसरे से आकर्षित है, दोनों डॉकटेर्स भी हैं। लेकिन सीमा का विवाह एक सम्पन्न घर परिवार में हो जाता है। अपने दर्द को अनु अपनी भाभी से इन शब्दों में व्यक्त करता है- " जाने दो भाभी ! वह सब शायद एकतरफ ही था। सीमा तो सभी के साथ खुलकर बोलनेवाली लड़की थी। मैं ही ग़लत समझ गया। उसने शादी की बात सुनकर साफ कह दिया कि इसका फैसला उसके पिता ही करेंगे और पिताजी पिताजी गुजराती ब्राह्मण को ज़्यादा पसन्द करते थे।" 8

डेटिंग एवं लिविंग टु गेथेर स्त्री- 'अंतिम साक्ष्य' उपन्यास के मिस सिंह और बीजी के बेटे विकी दोनों का मुलाकात दिल्ली में होता है और जल्दी ही वे दोस्त बन जाते है। मिलते- मिलते दोनों एक दूसरे से आकर्षित हो जाता है, और बाद में 'डेटिंग' करने लहता हैं। विकी की बराबर उम्र की मिस सिंह बड़ी सुलझी, आदर्शवादी एवं समझदार लड़की थी। वे दोनों 'डेटिंग' करते हुए इतने निकट आ गए कि कई लोग उन्हें घूरते रहे। दोनों ने अपनी- अपनी कहानियाँ सुनायीं और साथ- साथ रहने का निश्चय किया।

'बाकी सब खैरियत है' की नायिका पारुल की बेटी 'ऋता' उसकी अन्य फ्रेंड्स की तरह 'डेटिंग' करना चाहती है। वह पारुल से यह कहकर फ्रेंड्स बनाने की अनुमति माँगने लगे - 'आय एम ए बिग गर्ल पा।'

विवाहोत्तर प्रेम में फँसी स्त्री- 'अंतिम साक्ष्य' के बीजी की पति प्रताप सिँह और मीना दोनों विवाहोत्तर अवैध शारीरिक संबंध रखते हैं। सरकारी नौकरी, ख़ुद का मकान, दो बच्चों के पिता और घरेलू पत्नी द्वारा घर- गृहस्थी के सभी सुख उपलब्ध कराने के बाद भी प्रताप सिँह के भीतर कोई कोना खाली था, जो मीना मौसी के संपर्क में आते ही फोड़े की तरह दुखने लगा।

बीजी जब बेटा विकी के साथ सूट का कपड़ा खरीदने को मीना के घर गई तो वहाँ विजय को मीना के साथ देखकर स्तब्ध

होगया, और उसने अपने आखों से साफ देखा है - "भीतर बाउजी पलंग पर लेते थी और मीना मौसी उनका माथा सहला रही थी अधलेटी मीना मौसी अपने शरीर के तमाम आवरणों से बेख़बर जाने किस भावाकाश में उड़ानें भर रही थी।" 9 यह अवैध संबंध देखकर बीजी को सिर्फ आघात ही नहीं ख़ुद स्वत्वहीन एवं आत्मसम्मानहीन महसूस होने लगा और वे हमेशा चिन्ता में लीन होगई लगा।

शिक्षा द्वारा परिवर्तित स्त्री- 'अर्थान्तर' उपन्यास की कम्मो पढ़ी- लिखी युवती है और जब उसे पति का उपेक्षा भाव मानसिक-शारीरिक तौर पर महसूस हुआ तो उसने आत्मनिर्भर होकर स्वतंत्र रूप से नौकरी करने का निर्णय ले लेती है। क्योंकि वह स्वतंत्र अस्तित्व इसलिए तलाशती है कि मात्र एक घरेलू पत्नी बनकर परिवार के सभी के आवश्यकताओं को निभानेवाली एक 'मशीन' बनना को तैयार नहीं थी। वह ख़ुद के स्वत्व को खोकर रहना नहीं चाहती, जीना चाहती। नौकरी के तलाश वह दूसरे शहर जाकर अकेली रहना को भी तैयार हो जाती है लेकिन सास- ससुर, माँ- बाबू सभी लोग इस निर्णय का विरोध करते हैं, लेकिन कम्मो निर्णय के प्रति अटल है, "कम्मो एक बार फिर ज़िद पर आ गई। पराश्रित रहकर कम्मो जीना न चाहेगी। माँ ने दलालें दी, सास जी ने लक्ष्मण रेखाओं की ओर संकेत किया। कम्मो फिर भी न झुकी।" 10 वह अध्यापिका की नौकरी कर अपने स्वत्व को बनाए रखने की कोशिश करती है।

'कथा सतीसर' उपन्यास की 'कात्यायनी' उच्च शिक्षा प्राप्त कर 'डॉक्टेर' बन जाती है और साथ ही अपनी सहेली 'तुलसी' को भी शिक्षा प्रदान कर आत्मनिर्भर बनाने का कोशिश करती है। उपन्यास में इसके अलावा लेक्चरर राज्ञा, बैंक में क्लर्क अरनी की बहू आदि आत्मनिर्भर स्त्रियाँ शामिल हैं।

'यहाँ वितस्ता बहती है' उपन्यास की 'विभा' परित्यक्ता बनने पर घर में कैद होकर बैठना न चाहती बल्कि वह आत्मनिर्भर होकर स्वतंत्र रूप से ज़िंदगी जीती है। स्त्री को पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक जैसे पारम्परिक बंधनों से मुक्ति और अस्तित्व को खोज तभी पूर्ण होती है जब वह आत्मनिर्भर बनें। आत्मनिर्भरता के आधार पर ही वह अधिकार प्राप्त कर सकती है।

स्वाभिमानी स्त्री- आधुनिक युग में परंपरा से चली आई स्त्री के सोच विचार में प्रगतिशील परिवर्तन पाया जाता है। आज स्त्री प्राचीन पतिपरायण मूल्यों का पालन कर पति के सामने सिर झुकाकर एवं मौन रहकर जीने को बिल्कुल तैयार नहीं हैं। उसे ख़ुद के स्वत्व को पहचानना है और अस्तित्व एवं अस्मिता की तलाश में जागृत होकर एक सतर्क एवं सटीक ऐसा इंसान बनना है साथ ही पुरुष के कंधों- से कन्धा मिलाकर आत्मसम्मान एवं स्वाभिमानी होकर जीना है।

'अपने- अपने कोणार्क' उपन्यास की कुनी अपने विवाह संबंधी बातचीत के समय पिता को लड़केवालों के सामने अनुनय-विनय करते देखती है तो उसके स्वाभिमान पर चोट लगती है। लड़केवालों के इस रवैये का तीखा विरोध कर कहती है, "न बोउ मैं यह शादी नहीं करूँगी।" 11 वह अपने विवाह केलिए पिताजी को लड़केवालों के सामने झुकने नहीं देख पाती है।

साहसी स्त्री- 'ऐलान गली जिंदा है' उपन्यास की अरुंधती एक साहसी स्त्री है। खिचड़ी अमावस्या की रात अँधेरे में पति की गैर- मौजूदगी में घर में चोर घुस आता है। पहले वे समझती है कि खिचड़ी की पत्तल झूठी करने के लिए यक्ष देवता पधारे होंगे लेकिन जब चोरोंवाली संदूकची खोलने की करतूत देखती है तो अरुंधती ने पति का वेश धारण कर बच्चों को रुलाकर चिल्लाती है। भागते हुए चोर की टाँग दाँतों से काटकर पड़ोसियों को पुकारती है। चोर हड़बड़ी में खिडकी को दरवाज़ा समझकर तीसरी मंज़िल से कूदता है और मर जाता है। चोरों के मन में इस घटना से डर उत्पन्न होता है "अमुक गली बड़ी मनहूस जगह है वहाँ जो भी चोर कदम रखेगा, जान से हाथ धोएगा, वहाँ अरुंधती- सी मर्दमार औरतें बस्ती हैं।" 12

विद्रोही स्त्री- 'कथा सतीसर' उपन्यास के स्त्री पात्र राज्ञा को पति सिर्फ एक भोग्य वस्तु मात्र समझकर एक हिंस्त्र पशु तुल्य शारीरिक बलात्कार करता है। असफल दाम्पत्य जीवन से त्रस्त राज्ञा मायके चली जाती है तो ससुरालवाले उसे वापस भी बुलाते हैं। एक बेटी की माँ होने पर भी वह वापस जाने को तैयार नहीं होती है वरना विद्रोही बनकर अपने निर्णय पर अटल होकर कहती है, "एक- दो बार मेरे घर लौटने के संदेश भी भेज दिए, पर मुझे लौटना नहीं था। मैं ने तलाक के कागजों पर दस्तखत कर दिए।"13

निष्कर्ष- पारिवारिक जीवन की दुर्दशा का मुख्य कारण व्यवहारिक जीवन की शिक्षा का अभाव है। चन्द्रकान्ता के उपन्यास में प्रतिबिंबित हर छोटी- बड़ी समस्या का प्रसंगानुकूल, स्वाभाविक और प्रासंगिक हैं। इनमें सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक समस्याएँ प्रमुखता से उभरी हैं। समाज के व्यापक दायरे की मुख्य समस्याओं जैसे पारिवारिक जीवन, विवाह, महिलाओं की समस्याएँ, महिलाओं का शोषण, अविवाहित महिलाओं की मानसिक परेशानी का सूक्ष्मता से चित्रण किया गया है। उन्होंने विभिन्न परिस्थितियों के आधार पर स्त्री व्यक्तित्व के विभिन्न रूपों का चित्रण किया है। महानगरीय लोगों की जीवन गतिविधियों, कुंठाओं, असंतोषों, आधुनिक स्त्री की संघर्षपूर्ण मानसिक स्थिति और जीवनशैली का सटीक चित्रण करने के साथ- साथ मध्यमवर्गीय परिवार के वैवाहिक जीवन में खोखलेपन, संघर्षों और मानसिक द्वंद्वों का सटीक चित्रण किया गया है।

000

संदर्भ-

1.अन्तिम साक्ष्य पृ: 50. 2.आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी, डॉ. जे. एम. देसाई पृ: 186. 3.बाकी सब खैरियत है, पृ: 51. 4.वही, पृ: 53. 5.अपने- अपने कोणार्क, पृ: 28. 6.अंतिम साक्ष्य, पृ: 79. 7.अर्थान्तर, पृ: 91. 8.बाकी सब खैरियत है, पृ: 75. 9.अंतिम साक्ष्य, पृ: 57. 10. वही, पृ: 151. 11. अपने- अपने कोणार्क, पृ: 51. 12. ऐलान गली जिंदा है, पृ:19. 13. कथा सतीसर, पृ: 424.

(शोध आलेख)

तीसरी ताली उपन्यास में किन्नर समाज की स्थिति

शोध लेखक : शैलेन्द्र जाटव (शोधार्थी)

शोध निर्देशक : डॉ. पुष्पलता सिंह ठाकुर, (सह-प्राध्यापक, हिन्दी) महारानी लक्ष्मीबाई कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)

शैलेन्द्र जाटव
197 ग्राम खिरखिरी, पोस्ट कराहल,
जिला श्योपुर म.प्र.(476355)
मोबाइल- 8305778949
ईमेल- shailendrasinghju@gmail.com

शोध-सार- प्रदीप सौरभ कृत 'तीसरी ताली' उपन्यास उभयलिंगी समुदाय के सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों को अभिव्यक्त करता है। ये समुदाय दुनिया के लिए असमाजिक तत्व हैं क्योंकि ये सभ्य समाज के बीच पैदा तो होते है किन्तु समाज के बीच रहते नहीं है। ये समुदाय मानव है, मानव के द्वारा ही उत्पन्न हुआ है किन्तु रूढ़िवादी सोच, परम्परागत अंधविश्वास, कुरूतियों, आदि के कारण समाज के हाशिए पर ज़िंदगी जीने को मजबूर है। सम्पूर्ण भारत में इस समुदाय की स्थिति एक जैसी ही है। समाज में इनके प्रति विभिन्न प्रकार की भ्रांतियाँ फैली हुई है। लेखक ने इनकी ज़िंदगी के भीतर झाँकने का प्रयास किया है, ये परिवार, समाज और अपनों के बीच से बहिष्कृत क्यों है? असामान्य लिंगी होना इनके लिए अभिशाप है। परिवार द्वारा इन्हें बहिष्कार कर दण्डित किया जाता है। समाज में इनको कोई आश्रय नहीं देता है। और अन्तत: ये अपने समुदाय में ही आश्रय पाकर संतुष्ट होते है। केवल विकृत लिंगी होने के कारण समाज इनसे भयभीत रहता है। इनके साथ उठना-बैठना, खान-पान को ग़लत माना जाता है। महाभारत के एक पात्र शिखंडी को भी हिजड़ा माना गया था जिसमें अपनी यौन-पिपासा को घृणा के रूप में समाज को परोसा था। समाज में न तो इनके लिए शिक्षा का कोई प्रावधान है न ही आजीविका के लिए सरकारी नौकरी में आरक्षण है। समाज की रूढ़ियों और घृणा का शिकार यह समाज आज भी उपेक्षित जीवन जी रहा है। हिंजडों की अपनी दुनिया, समाज, समुदाय है, इसमें किसी की दखलदांजी नहीं चलती यदि किसी घर में हिजड़ा बच्चा पैदा हो गया है तो वे इस बात को डाक्टर, परिवार और समाज से छिपाते हैं। वे ऐसे बच्चे को कही भी कचरे में फेंक आते हैं। किन्नर समाज कोई अनोखा समुदाय नहीं हैं यह भी हमारी तरह ही भूख, प्यास, प्रेम, भावना, जीवन-मृत्यु से संघर्ष करते प्राणी हैं। केवल शारीरिक शक्ति कमियाँ होने के कारण इनको सामाजिक बहिष्कार का शिकार होना पड़ता है जो कि काफी अमानवीय व्यवहार है। लेखिक ने किन्नर समुदाय की, राजनैतिक संघर्ष की माँगों को प्रमुखता से चित्रित किया है। किन्नर समाज के लोगों में राजनैतिक चेतना का विकास शबनम मौसी के रूप में हुआ है। लेखक ने स्पष्ट किया है कि नाचने-गाने और दूसरों की खुशियों में दुआ देने से अब उतना पैसा नहीं मिलता है हिजड़ों को, जितना की वे जिस्मफरोशी के धन्धे में से कमा लेते हैं। सस्ते दामों में हिजड़ों की सेक्स बाज़ार में काफी माँग है। लेखक ने कुछ ऐसे हिजड़ों का भी उल्लेख किया है जो अपने माता-पिता के साथ बचपन से रहते हुए बड़े हुए हैं। माता-पिता ने इन्हें सामान्य बच्चों की ही तरह पाला-पोसा था किन्तु उम्र के बदलते दौर में इनकी शारीरिक रचना इनके हिजड़े होने का भेद खोल देती है। समाज मानव का समूह है। स्त्री-पुरुष के अतिरिक्त एक और समूह होता है जिसे हम किन्नर समाज के नाम से जानते हैं। ये समाज समान्यत: सभ्य समाज से अलग-थलग रहता है। इनके रीति- रिवाज, कार्य, आदि सब कुछ भिन्न होता है। इनकी सामाजिक दशा हमारे

समाज से भिन्न है क्योंकि ये लोग अपना अलग समाज बनाते हैं और उसी में ये रहते हैं। सामाजिक दृष्टि से किन्नर समुदाय अपना अलग डेरा, मण्डली या बस्ती बसाते हैं, जिसमें एक मुखिया, नायक या गुरु होता है। ये अपने डेरे में सिर्फ किन्नरों को ही रखते हैं जो नाचने, गाने में निपूर्ण होते हैं। किन्नर समाज को हम उनके रहन-सहन, तौर-तरीके, वेषभूषा से पहचान सकते हैं। समाज में किन्नरों की कोई आधारभूत लिंगीय पहचान नहीं है। इनकी शारीरिक विशेषताओं के कारण समाज में इन्हें अलग ही स्थान प्राप्त है। समाज में ये समुदाय नाच-गाकर अपनी आजीविका चलाते हैं। हमारे समान में प्राचीन समय से ही किन्नरों की उपस्थिति का बोध होता है। किसी शुभ कार्य में अकसर किन्नरों को बुलाकर शुभाशीष प्राप्त किया जाता है ताकि बुरी बालाओं से बचा जा सके। समान्यत: हिजड़े किसी के घर जाते हैं तो वे उसकी हैसियत के अनुसार ही शगुन माँगते हैं। कभी- कभी जजमान खुशी में ज़्यादा नेग भी देते हैं और कभी कम नेग भी देते हैं। "वैसे कालोनी में जब किसी खुशी के मौके पर हिजड़े नाचने-गाने आते हैं, तो लोग उन्हें शगुन देते ही हैं। सोचते हैं कौन मुँह लगे हिजड़ों के। मुँहफट जो ठहरे। अपने पर आ जाए तो पलक झपकते किसी की भी इज्जत उतार दे। मगर गौतम साहब शगुन देने के लिए तैयार नहीं दिख रहे थे और इसलिए हिजड़ों की बार-बार दस्तक के बावजूद अंदर से कोई आहट नहीं हो रही थी। आख़िरकार हिजड़े अपनी पर उतर आए।"(1) हिजड़े समाज में अपनी खुशी के लिए नहीं बल्कि दूसरों की खुशी के लिए नाचते-गाते है। गौतम साहब की उदासीनता उन्हें उग्र होने को मजबूर कर रही थी। हिजड़े बहुत देर तक बर्दाश्त करते रहे फिर बिफरने लगे थे। हिजड़े चिल्ला-चिल्ला कर गौतम साहब को बुला रहे थे किन्तु गौतम साहब की अनसुनी उन्हें अपशब्द कहने को बार-बार उकसा रहे थे। "गौतम साहब, लल्ला हुआ है और गरमी में रजाई ओढ़कर बैठे हो! सुन्दरी ने ताली ठोककर दरवाज़ा ज़ोर से भड़भड़ाया। सुन्दरी की ताल में ताल मिलाते हुए बिंदिया बद्दुआ देते हुए कड़वाहट के साथ बोली हिजड़ों को शगुन नहीं दोगे तो लल्ला हिजड़ा निकलेगा।"(2) समाज में कोई भी व्यक्ति हिजड़ों की बददुआ लेना नहीं चाहता है "वैसे भी आनन्दी आण्टी हिजड़ावादी थीं। हिजडों की हमदर्द। हिजड़ों को लेकर उनकी एक नस दबी जो थी। वे उनके घर आते- जाते रहते थे। वे ही कॉलोनी की अच्छी-बुरी खबरें हिजड़ों तक पहुँचाती थी। हिजड़ा-मण्डलियाँ आमतौर पर अपने खबरियों को पैसे देती है। बड़ीं कालोनियों में तो वे अपने खबरियों को अपने पैसे से कमरा किराये पर लेकर देती हैं। फूल टाइमर खबरिया। सुबह से शाम तक बच्चों के जन्म से लेकर खुशी के मौकों की छानबीन में व्यस्त। लेकिन आनन्दी आण्टी के साथ ऐसा नहीं था। वे अपनी दबी नस के चलते हिजड़ों को प्यार करती थी। पैसे-वैसे वह नहीं लेती थीं।"(3) किन्नरों के समुदाय में सभ्य समाज की सभी कमजोरियाँ समाहित है। वे अपने-अपने इलाकों में अपना धन्धा पानी करते हैं किन्तु किसी इलाके के कमज़ोर हिजड़ों पर हमला कर उस इलाके पर कब्जा कर लेते है। "उनके इलाके पर भी रीना की मण्डली ने कब्जा कर लिया था। अपने गुण्डों और लठैतों के दम पर। इलाका लेते वस्त कोई मुआवजा भी रीना ने कला मौसी को नहीं दिया था। वरना, इलाके के मामले में हिजड़ों में खून-खराबा तक हो जाता है। इसी के चलते आज कला मौसी की यह हालत हो गई थी।"(4)

गौतम साहब के यहाँ भी इनको कुछ नहीं मिला। इस बात से किन्नरों का मन काफी उखड़ा हुआ था। कला मौसी ने अपने हिस्से के पैसे ओरो को दे दिये थे अन्यथा वह अपने डेरे की गुरु माता बनी होती। कला मौसी को रीना ने भी कोई मुआवजा नहीं दिया था जिसके कारण उसकी स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई थी। रेखा चितकबरी हिजड़ा समुदाय को नाच-गाने से अलग कर सेक्स की दुनिया का मजा देने में व्यस्त थी। वह आधुनिक युग की संचार व्यवस्था का लाभ उठाकर समाज में प्रतिष्ठा हासिल करना चाहती थी। वह पढ़ी-दिखी थी।

"रेखा के पूरे शरीर में सफेद दाग थे, इसलिए उसका नाम चितकबरी पड़ गया था। उसने दिल्ली यूनिवर्सिटी से बी.ए किया था और अब वह दिल्ली की मशहूर कालगर्ल सप्लायर थी।"(5) समाज में सभी का अपना अलग व्यक्तित्व होता है यही व्यक्तित्व उसे सामाजिक पहचान दिलाता है। रेखा चितकबरी हिजड़ा समुदाय में काफी प्रसिद्ध हो रही थी। उसने हिजड़ा समाज में कदम रखने से पहले अपनी बी.ए. की पढ़ाई पूरी कर ली थी। किन्तु समाज के हाथों मजबूर होकर उसे हिजडों के समाज में कदम रखना पड़ा था। उसने अपनी अलग ही सामाजिक प्रतिष्ठा बना ली थी। "रानी डिम्पल की मण्डली में शामिल होने से पहले अलीगढ़ में रहती थी.... या यूँ कहें कि रहता था। हिजड़ा बनने से पहले वह मुक्कमल मर्द था। शेरपा की तरह तब उसका नाम रानी नहीं, राजा था। उसने बचपन से कथक नृत्य सीखा था, राजू महाराज से।"(6) रानी बनने से पहले वह राजा हुआ करता था। उसे नृत्य करने का काफी शौक था। समाज में लोगों को वह लड़की बनकर अपने नृत्य से मनोरंजन भी करता था। किन्तु जब से वह हिजड़ा बना था अपने हिजड़े समुदाय के प्रति वफादार बनकर रहता था। नृत्य का उसे शौक पहले से ही था, अब वह नाचकर अपनी रोजी कमा रहा था। "वह डिम्पल को जवाब देता कि उससे पहले उसके दिमाग़ में बुरे-बुरे सवाल कौंधने लगे- 'अरे, यह तो औरत नहीं; हिजड़ा है। हिजड़े तो अच्छे-भले लोगों को पकड़कर हिजड़ा बना देते हैं।' राजा ने हिजड़ों के बारे में ऐसी कहानियाँ पहले से सुन रखी थी।"(7) समाज में हिजड़ों के प्रति यह धारणा व्याप्त है कि वे सीधे-साधे लोगों को बहला-फुसला कर हिजड़ा बना देते हैं। हिजड़ों की अपनी अलग ही सामाजिक समस्या है। वे प्रकृति के द्वारा यौनिक विकृत है और उनका मानना है कि किसी सामान्य व्यक्ति को वे हिजड़ा नहीं बना सकते है। "कुदरत से खिलवाड़ करने का किसी को हक़ नहीं है। अपने फायदे के लिए किसी को हिजड़ा बनाना पाप है। ऐसा करने पर हिजड़ें को सौ बार हिजड़ें का जन्म लेना

पड़ता है और फिर भी उसका पाप कम नहीं होता है।"(8) लेखक ने हिजड़ों की मानवीयता, मातृत्व भाव, संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। सभ्य समाज में लड़की जन्म को काफी कष्टप्रद माना गया है। बड़ी होने पर उसकी शादी-दहेज के कारण ग़रीब माँ-बाप उसके बचपन से ही परेशान रहते हैं। मंजू के साथ भी ऐसा ही हुआ। "असल में मंजू जब पैदा हुई, तो उसके ग़रीब माता-पिता ने दान-दहेज के उर से उसे थोडे से पैसों के लिए डिम्पल को बेच दिया था। डिम्पल को उस वक्त मातृत्व जागृत हो गया था। उसे बच्चे की आस थी। बच्चा वह जन नहीं सकती थी। वह कभी-कभी सोचती कि जो जन नहीं सकते वे बच्चों के ऊपर पड़ने वाले काले साये को दूर रखने का आशीर्वाद देते है। बच्ची को लेते वक्त उसका मातृत्व हिलोरे मार रहा था।"(9) जैसा कि हमारे समाज में प्रेम को पाप मानकर प्रेमी-प्रेमिका को मौत के घाट उतार देते हैं। वैसे किसी स्त्री-पुरुष को हिजड़ी और हिजड़ा जबरदस्ती बनाना हिजड़ा समुदाय के ख़िलाफ़ था। "अचानक एक आदमी ने राजा के पुरुषांग पर वार किया। कमरे में एक चीख उभरी। राजा का हाथ पकडे एक मुसटुण्डे ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया। राजा तड़प रहा था, लेकिन कुछ करने में असहाय था। कमरे में खून की गंगा-जमुना बह उठी। मुसटण्डों से अपने को छुड़ाने की राजा की हर कोशिश नाकाम हो गई। अन्ततः पीड़ा से कराहते हुए वह बेहोश हो गया।"(10) लेखक ने हिजड़ों की सामाजिक दशा को असामान्य रूप से वर्णित किया है। कि हमारे समाज में किन्नर सामान्य रूप से नहीं रह सकते हैं। उनका अपना समाज है। इसलिए किन्नर अपने समाज में हिजडे बच्चों को ले जाते हैं। क्योंकि सभ्य समाज और पारिवार हिजड़ों को स्वीकार नहीं करता है। "किन्नर एक ओर परिवार और समाज से बहिष्कार झेलता है, वहीं दूसरी ओर राज्य और राष्ट्र में उपेक्षा और अवहेलना का पात्र होता है।"(11) "गिरिया को, जिन्हें हिजड़े अपना पति मान लेते हैं। उनके लिए वे आम महिलाओं की तरह करवाचौथ से लेकर पति के लिए होने वाले हर तीज-त्यौहार मनाते हैं। आमतौर पर गिरिया ढोलक या हारमोनियम बजाने वाले होते हैं या फिर ग़रीब आदमी। समलैंगिक भी कई बार गिरिया बन जाते हैं।"(12)

आदमी को आदमी के साथ सोता देख निकिता विचलित हो गई। वह अपने नए समाज को देखकर काफी विचलित और भयभीत हो गई। इधर निकिता के लिए चुनरी रस्म की तैयारी चल रही थी क्योंकि निकिता को हिजड़े के समाज में शामिल किया जाना था। "नीलम सजधज कर गद्दी पर आसीन थी। पकवानों की खुश्बू आँगन में तैर रही थी। मुर्गावाली माँ की पूजा-अर्चना होनी थी। मुर्गावाली माँ को हिजड़े अपनी ईष्टदेवी मानते हैं। राजस्थान में उनका वास है, ऐसी उनकी मान्यता है। पूजा के बाद ज्योति को समाज में शामिल किया जाना था। चुनरी रस्म के बिना कोई भी हिजड़ा समाज का हिस्सा नहीं बन सकता। नाच-गाने का धन्धा भी वह नहीं कर सकता।"(13) चुनरी रस्म हिजड़ों की वह सामाजिक प्रक्रिया है, उत्सव या रीति-रिवाज है जिसमें नए हिजड़े को चुनरी पहनाकर हिजड़े समाज में सम्मिलित किया जाता है। यह एक प्रकार का किन्नर समाज के संस्कार को चित्रित करता है, इसके बिना कोई भी हिजड़े किसी डेरे या मण्डली में सम्मिलित नहीं हो सकते हैं। "तू हिजड़ा तो है नहीं। इसलिए मैं तुझे अपनी मण्डली में शामिल नहीं कर सकती। मण्डली के दूसरे शिष्य उखड़ जाएँगे।"(14) हिजड़ों के अपने नियम होते है जिसका वे अनुपालन करते हैं, वे किसी मर्द को जबरदस्ती हिजड़ा बनाने के पक्ष में नहीं होते है। किन्तु काम-काज की तलाश में भटकता ज्योति हिजड़ा बनने के लिए तैयार हो गया। सोनम फिर कहती है कि "मैं तुम्हें हिजड़ा नहीं बना सकती। भगवान् ने तुम्हें पूरा आदमी बनाया है। वैसे भी हम भगवान् से डरते हैं। किसी सही आदमी को हिजड़ा बनाना हमारे समाज में कुफ्र है।"(15)

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि हिजड़े हमारे समाज के अभिन्न अंग है। केवल शारीरिक विकृति के कारण इन्हें समाज के महत्त्वपूर्ण स्थानों, पदों, संस्थानों, शिक्षा से वंचित नहीं किया जा सकता है। इस वर्ग को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का कार्य अभी बाकी है जिसे शिक्षा और संवेदनशीलता के माध्यम से ही जोड़ना सम्भव है। इस दिशा में सरकार द्वारा भी कदम उठाए गए हैं परन्तु सामाजिक स्तर पर व्यावहारिक रूप से इस पहचान को सफल स्थान प्रदान करने में समय लग सकता है क्योंकि हमारे समाज का बड़ा हिस्सा पूर्वा ग्रहों से ग्रसित होने के कारण इन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखता है। वर्तमान में कई भाषाओं की विविध विधाओं में इस विषय पर लेखन का प्रयास जारी रखना आवश्यक है। जहाँ तक सम्भव हो सका है वहाँ तक साहित्यकार ने साहित्य से जुड़े सभी पहलूओं को छुआ है फिर भी कुछ ऐसे विषय है जहाँ प्राचीन लेखकों ने अपना प्रसार नहीं किया है वे ही अनछुए पहलू आज कल लेखकों की कलम का विषय बने हुए हैं। हम तन से तो 21वीं सदी में प्रवेश कर चुके हैं परन्तु मन से आज भी इसी मध्यकालीन संकीर्णता में जी रहे हैं। हमारा मन, मस्तिक दोनों इन संकीर्णताओं की बेड़ियों से जकड़े हुए हैं मगर ऐसे में उस किन्नर समाज का क्या जिसे समाज किन्नरी, हिजड़ा, खोजवा, शिखण्डी आदि नामों से सम्बोधित करता है।

000

संदर्भ- 1.प्रदीप सौरभ-तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2018 पृ.-10, 2.प्रदीप सौरभ-तीसरी ताली, पृ.-11, 3.प्रदीप सौरभ-तीसरी ताली, पृ.-13, 4.प्रदीप सौरभ-तीसरी ताली, पृ.-15, 5.प्रदीप सौरभ-तीसरी ताली, पृ.-16, 6.प्रदीप सौरभ-तीसरी ताली, पृ.-17, 7.प्रदीप सौरभ-तीसरी ताली, पृ.-25, 8.प्रदीप सौरभ-तीसरी ताली, पृ.-30, 9.प्रदीप सौरभ-तीसरी ताली, पृ.-31, 10.प्रदीप सौरभ-तीसरी ताली, पृ.-33, 11.https://www.google.com/search, 12.प्रदीप सौरभ-तीसरी ताली, पृ.-44, 13.प्रदीप सौरभ-तीसरी ताली, पृ.-45, 14.प्रदीप सौरभ-तीसरी ताली, पृ.-56, 15.प्रदीप सौरभ-तीसरी ताली, पृ.-56

(शोध आलेख)

पर्यावरण संरक्षण में पीआईएल की भूमिका का आकलन

उत्तराखंड के गैर सरकारी संगठनों एवं कार्यकत्ताओं के संदर्भ में

शोध लेखक : अभिषेक बेंजवाल, आयुषी थलवाल
शोधार्थी राजनीति विज्ञान विभाग, हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय उत्तराखंड 246174
ईमेल- benjwalabhi01gmail.com

शोध निर्देशक-प्रोफेसर हिमाँशु बौड़ाई राजनीति विज्ञान विभाग
पता-राजनीति विज्ञान विभाग
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखंड) 246174

प्रस्तावना- पर्यावरण दो शब्दों (परि+आवरण) से मिलकर बना हुआ है जिसमें परि का अर्थ है चारों और से तथा आवरण का अर्थ है घेरे हुए। पर्यावरण में वे सभी परिस्थितियाँ सम्मिलित हैं जो मनुष्य एवं जीव-जन्तुओं को चारों और से घेरे हुए हैं। पर्यावरण जैविक एवं अजैविक घटकों के संयोग से बना है। जैविक घटकों के अन्तगत मनुष्य, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे एवं अजैविक घटकों के अन्तर्गत ऊर्जा, जल, वायु, भूमि तथा आकाश शामिल हैं। पर्यावरण व्यापक अर्थ में मानव एवं जीव-जन्तुओं का प्रकृति के निहित तत्वों जल, वायु, प्रकाश, मृदा आदि के साथ घनिष्ठ संबध है। पर्यावरण से ही मानव का अस्तित्व बना हुआ है। पर्यावरण मनुष्य के दैनिक जीवन को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष तौर पर प्रभावित करता है। पर्यावरण न हो तो मानव प्रकृति में नहीं रह सकता है। पर्यावरण मानव के लिए ही नहीं बल्कि पृथ्वी के समस्त जीवधारियों के लिए भी आवश्यक है। आदिकाल में प्रकृति मनुष्य को नियंत्रित करती थी। वर्तमान समय में मनुष्य प्रकृति को नियंत्रित करने का प्रयास कर रहा है। मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ प्रकृति का मानव पर नियंत्रण कम होता गया।

शोध पद्धति- प्रस्तुत शोध पत्र के अन्तर्गत वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धतियों का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत शोध के अन्तर्गत द्वितियक स्त्रोतों में समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, शोध पत्रिकाएँ, पुस्तकों, अप्रकाशित शोधों ग्रन्थों, समाचार चैनलों की रिपोर्ट का प्रयोग किया गया है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य- 1. जनहित याचिकाओं के पर्यावरण संरक्षण में योगदान का पता लगाना। 2. उत्तराखंड में गैर सरकारी संगठनों की पर्यावरण संरक्षण में भूमिका का अध्ययन करना। 3. उत्तराखंड के पर्यावरणविदों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं की जनहित याचिका के फलस्वरूप न्यायालय द्धारा दिये गए निर्णयों की व्याख्या करना।

पर्यावरण संरक्षण से सबंधित नियमों को निर्मित करने से लेकर लागू तथा क्रियान्वित करने में न्यायपालिका की अहम भूमिका रही है। न्यायपालिका ने जनहित याचिकाओं के माध्यम से भी पर्यावरणीय नियमों, अधिनियमों के पालन को सुनिश्चित किया है। 1970 के दशक में भारतीय न्यायिक प्रक्रिया में जनहित याचिकाओं के उदय के साथ एक नए युग का प्रारम्भ हुआ। जनहित याचिकाओं की संकल्पना सार्वजनिक न्याय से प्रेरित है। जनहित याचिका का सामान्य अर्थ ऐसी याचिका से है जो सार्वजनिक हित एवं अधिकारों के प्रभावित होने पर दायर की जा सकती है।

जनहित याचिकाएँ विशेष प्रकार की याचिकाएँ हैं जो पीड़ित पक्ष द्धारा नहीं बल्कि उनके हितों के लिए किसी अन्य व्यक्ति तथा संगठनों द्धारा न्यायालय में दायर की जाती हैं। जनहित याचिका का प्रयोग मुख्यत: गरीबों, अल्पसँख्यको के अधिकारों, पिछड़े वर्ग के अधिकारों, बंधुआ मजदूरी, शोषित वर्गों के अधिकारों, बाल श्रम, महिलाओं पर अत्याचार, मानवाधिकारों के हनन, पर्यावरण प्रदूषण से सम्बधित विषयों में किया जाता है। पर्यावरणीय नीतियों एवं कानूनों के निमार्ण में जनहित याचिका का प्रमुख योगदान रहा है। जनहित याचिकाओं के माध्यम से कई पर्यावरणीय विषयों पर प्रमुखता से प्रकाश डाला गया एवं उन विषयों को जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। पर्यावरणीय कानूनों के उल्लंघन के मामले में जनहित याचिका सार्वजनिक एवं निजी दोनों संस्थाओं के विरुद्ध दायर की जा सकती है। पर्यावरण संरक्षण के अन्तगत जनहित याचिका का प्रयोग मुख्यत: प्रदूषण नियंत्रण, प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा, वन संरक्षण, वन्य जीव संरक्षण, जल संरक्षण, कचरा प्रबन्धन, जलवायु परिवर्तन, कारखानों से उत्सर्जित अपशिष्ठों, रसायनों के प्रयोगों एवं भू-जल दोहन, अवैध खनन आदि से सम्बधित

विषयों पर किया जाता है।

पर्यावरण के क्षेत्र में सर्वप्रथम जनहित याचिका का प्रयोग तत्कालीन उत्तर प्रदेश में देहरादून शहर के अन्तर्गत गैर सरकारी संगठन ग्रामीण मुकदमेबाजी और हकदारी केन्द्र ने किया था। दून घाटी एवं उसके आस-पास मसूरी क्षेत्र की पहाड़ियाँ प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से बहुत समृद्ध हैं। मसूरी क्षेत्र से कई नदियाँ और झरने निकलते हैं जो दून एवं मसूरी शहर को पारिस्थिकीय दृष्टि से समृद्ध बनाती हैं। दून घाटी क्षेत्र में चूना पत्थर की खानें बहुतायत मात्रा में उपलब्ध हैं इसलिए दून घाटी चूना पत्थर की खानों के लिए जानी जाती है। घाटी में चूने का खनन अत्यधिक मात्रा में हुआ जिससे घाटी में पानी की कमी, बाढ़, भूस्खलन, तापमान वृद्धि, फसल भूमि नष्ट हो गई थी। 1955 से 1965 के बीच चूना पत्थर खनन अपने उच्चतम स्तर तक पँहुच गया था। देहरादून शहर में स्थित गैर सरकारी संगठन ग्रामीण मुकदमेबाजी और हकदारी केन्द्र देहरादून ने दून घाटी क्षेत्र में चूना पत्थर खनन के विरोध में रिट याचिका सँख्या 8209 सुप्रीम कोर्ट में दायर की थी। जनहित याचिका के माध्यम से उच्चतम न्यायालय द्धारा सुना जाने वाला यह पहला पर्यावरणीय मामला था। इसके बाद गंगा जल प्रदूषण, दिल्ली वाहन प्रदूषण, वेल्लोर चमड़ा उद्योग आदि विषय जनहित याचिकाओं के माध्यम से गैर-सरकारी संगठनों, पर्यावरणविदों एवं सामाजिक कार्यकत्ताओं द्धारा प्रारम्भ किए गए थे।

हिमालयी राज्य उत्तराखंड पर्यावरणीय दृष्टि से धनी राज्य है। राज्य की जैव विविधता का देश में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में प्रमुख स्थान है। वन संपदा, ग्लेशियर, गंगा नदी, वन्य जीव अभयारण्य, विश्व प्रसिद्ध फूलों की घाटी राष्ट्रीय उद्यान, नन्दा देवी जैव आरक्षित क्षेत्र आदि राज्य की पर्यावरणीय महत्ता का प्रमुख केन्द्र हैं। उत्तराखंड में पर्यावरण के क्षेत्र में कार्य करने वाले प्रमुख गैर सरकारी संगठनों में नवप्रभात सामाजिक एवं पर्यावरण विकास समिति सोमेश्वर अल्मोड़ा, सेंटर फॉर हिमालयन एनवायरमेंट एंड इकनोमिक रिफार्म विकास नगर घाट चमोली, हिमालय पर्यावरण अध्ययन और संरक्षण संगठन (हेस्को) देहरादून, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, वन अनुसंधान संस्थान देहरादून, सेंट्रल हिमालयन एनवायरमेंट एसोशिएशन नैनीताल, नवधान्य, हिमालयन एनवायरमेंट ट्रस्ट, उत्तराखंड जैव विविधता बोर्ड, गा्रमीण मुकदमेबाजी और हकदारी केन्द्र (देहरादून) आदि प्रमुख हैं।

देहरादून स्थित गैर सरकारी संगठन सिटीजन्स फार ग्रीन दून ने 2018 में चार धाम परियोजना के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में जनहित याचिका(सिटीजन्स फॉर ग्रीन दून बनाम यूनियन ऑफ़ इंडिया 2018 की सिविल अपील सँख्या 10930) दायर की थी। चारधाम परियोजना को चारधाम महामार्ग विकास परियोजना कहा जाता है परियोजना की शुरुआत प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने दिसम्बर 2016 में की। परियोजना के अन्तर्गत उत्तराखंड के चारों धामों गंगोत्री, यमुनोत्री, बद्रीनाथ, केदारनाथ तक जाने वाली सड़क का चौड़ीकरण किया जाना प्रस्तावित है ताकि तीर्थ स्थलों तक यात्रा सुगम हो सके एवं पर्यटन को भी बढ़ावा मिले। याचिका के अनुसार परियोजना के प्रारम्भ होने के पश्चात् अत्यधिक मात्रा में पेड़ों का कटान हुआ है। उत्तराखंड का पहाड़ी क्षेत्र आपदा की दृष्टि से अत्यधिक संवेदनशील क्षेत्र है। सड़क चौड़ीकरण से पेड़ों और पहाड़ों का कटान होगा जिससे अत्यधिक मात्रा में भूस्खलन होगा। भूस्खलन से मलबा नदियों को अवरुद्ध करेगा। जनहित याचिका पर विचार करने के पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने 2018 में प्रसिद्ध पर्यावरणविद् रवि चोपड़ा के नेतृत्व में 25 सदस्यों वाली उच्चाधिकार प्राप्त समिति का गठन किया। समिति में देश के विभिन्न क्षेत्रों से पर्यावरण विशेषज्ञों एवं पर्यावरण के क्षेत्र में कार्य करने वाले विभिन्न संस्थानों जैसे भारतीय वन अनुसंधान संस्थान देहरादून, राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान नागपुर आदि से विशेषज्ञों को रखा गया। समिति का कार्य परियोजना से जुड़े पर्यावरणीय कारकों का आंकलन करके न्यूनतम पर्यावरणीय हानियों की सिफारिश करना है। सड़को की चैड़ाई को लेकर समिति के सदस्यों में एक राय नहीं बन पाई। समिति के एक पक्ष ने सड़को की चैड़ाई को 5.5 मीटर करने की सलाह दी वहीं दूसरे पक्ष ने सड़को की चैड़ाई को अधिकतम 12 मीटर करने की सलाह दी। 8 सितम्बर 2020 को उच्चतम न्यायालय ने समिति के अल्प सदस्यों की सिफारिश को स्वीकार करते हुए सडकों की चैड़ाई को 5.5 मीटर करने का आदेश दिया। उच्चतम न्यायालय के आदेश पर भारत सरकार एवं रक्षा मंत्रालय ने न्यायालय में अपना पक्ष रखते हुए कहा कि परियोजना के तहत बनने वाली सड़कें सामरिक दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण हैं। उत्तराखंड की सीमाएँ तीन देशों नेपाल, तिब्बत, चीन की सीमाओं को साझा करती हैं। भारत-चीन सीमा तक जाने वाली ये सड़कें सेना के आवागमन एवं सैन्य उपकरण ले जाने के लिए मददगार सिद्ध होंगी। उच्चतम न्यायालय की (डॉ. डीवाई चन्द्रचूड़, विक्रमनाथ एवं सूर्यकांत) की बेंच ने 14 दिसम्बर 2021 को अपने पिछले निर्णय में संशोधन करते हुए सड़कों की चैड़ाई को 10 मीटर करने की अनुमति दी। वर्ष 2022 में उच्चाधिकार प्राप्त समिति के अध्यक्ष रवि चोपड़ा ने समिति से इस्तीफा दे दिया।

गैर-सरकारी संगठन हेस्को (हिमालयी पर्यावरण अध्ययन और संरक्षण संगठन) पर्यावरण के क्षेत्र में विशिष्ट कार्य कर रहा है संगठन ने विगत 3 दशकों से हिमालयी राज्य उत्तराखंड में जल, जंगल, ज़मीन से जुड़े मुद्दों पर बेहतर कार्य किया है। हेस्को ने जल, जंगल, ज़मीन पर निर्भर गाँव की आर्थिकी के लिए भी कार्य किया है। संगठन ने गाँवों में रोज़गार के नए अवसर सृजित किए हैं। स्थानीय उत्पादों को बाज़ार प्रदान करने से लेकर राज्य में जल स्त्रोतों को पुर्नजीवित करने का कार्य संगठन ने बखूबी ढंग से किया है। हेस्को ने सर्वप्रथम गा्रेस एनवायरमेंटल प्रोडेक्ट (जीईपी) का विचार 2010 में तत्कालीन सरकार के समक्ष रखा था। सरकार के बदल जाने पर जीईपी की प्रक्रिया आगे नहीं बढ़ पायी। 2011 में हेस्को प्रमुख अनिल

जोशी ने नैनीताल स्थित उत्तराखंड उच्च न्यायालय में जनहित याचिका के माध्यम से जीईपी का विचार रखा लेकिन न्यायालय ने याचिका पर कोई विचार नहीं किया। 2013 की केदारनाथ आपदा के बाद सरकार ने जीईपी पर अपनी रुचि दिखाई एवं समिति का गठन किया। सरकार बदल जाने के कारण बात आगे नहीं बढ़ पाई। 2015 में पुन: हेस्को प्रमुख ने जनहित याचिका के माध्यम से जीईपी पर उत्तराखंड उच्च न्यायालय के समक्ष अपनी बात रखी। न्यायालय के आदेश पर सरकार ने जीईपी की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाया एवं भारतीय वन प्रबंधन संस्थान भोपाल को जिम्मेदारी दी कि उत्तराखंड राज्य के प्राकृतिक संसाधनों जल, जंगल, ज़मीन की गणना करे। 2018 में वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद CSIR, राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान नागपुर NIRI, भारतीय वन्य जीव संस्थान देहरादून के सहयोग से सचिव आनन्दवर्धन की अध्यक्षता में पाँच सदस्यीय समिति ने जीईपी की रूप-रेखा तैयार की। अन्त में 2021 में जीईपी लागू करने की घोषणा राज्य में की गई।

पर्यावरणविद् आकाश वशिष्ठ द्धारा उत्तराखंड के प्रसिद्ध पर्यटन स्थल मसूरी में प्रदूषित होती पर्यावरणीय दशाओं को लेकर जनहित याचिका संख्या WPIL No. 48 of 2023 (आकाश वशिष्ठ बनाम उत्तराखंड राज्य एवं अन्य) दिनांक 12/04/2023 को दायर की थी। याचिका के अनुसार पर्यटन स्थल मसूरी शहर, दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों से निकट है। इस कारण पर्यटक लॉजों एवं होटलों का निर्माण बहुत तेजी से हुआ है। शहर बड़े स्तर पर अपशिष्ट प्रबंधन, खुले सीवेज, जल संकट, हरियाली की कमी से गुज़र रहा है। जल (प्रदूषण नियंत्रण रोकथाम) अधिनियम, पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 एवं उसके तहत मसूरी में अपशिष्ट प्रबंधन, निर्माण एवं विध्वंस अपशिष्ट प्रबंधन, ई-कचरा (प्रबंधन) आदि नियमों का अनुपालन नहीं हो रहा है। उत्तराखंड उच्च न्यायालय (चीफ जस्टिस विपिन सांघी और आलोक कुमार वर्मा की खंडपीठ) ने राज्य सरकार, केन्द्रीय पर्यावरण वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और मसूरी देहरादून विकास प्राधिकरण को आदेश जारी कर याचिकाकर्ता के आरोपों से निपटने का निर्देश दिया साथ ही याचिकाकर्ता के आग्रह पर मसूरी नगरपालिका को प्रतिवादी पक्षकार के रूप में शामिल करने को कहा।

निष्कर्ष- गैर सरकारी संगठन एवं कार्यकत्ताओं का पर्यावरण संरक्षण में विशिष्ट योगदान रहा है। गैर-सरकारी संगठन एवं पर्यावरणीय कार्यकत्ताओं ने जनहित याचिका के माध्यम से विभिन्न पर्यावरणीय मुद्दों को उजागर किया है। हिमालयी राज्यों में उत्तराखंड सबसे तेजी से शहरीकरण करने वाला राज्य है। राज्य वर्तमान समय में पर्यावरण संरक्षण एवं विकास परियोजनाओं के मध्य संतुलन स्थापित करने की जटिल समस्या का सामना कर रहा है। पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में कार्य करने वाले गैर-सरकारी संगठन बढ़ते औद्योगीकरण, शहरीकरण एवं पर्यावरण के बीच संतुलन स्थापित करने का कार्य कर रहे हैं। उत्तराखंड में गैर-सरकारी संगठनों ने राज्य में बड़ी परियोजनाओं से होने वाली पर्यावरणीय हानियों से जनता एवं सरकार को अवगत करवाया है। परियोजनाओं से जहाँ एक और विकास को गति मिलती है वहीं दूसरी और परियोजना विस्तार से आस-पास के वातावरण, क्षेत्र में निवास करने वाली आबादी, वन्य जीवों एवं प्राकृतिक संसाधनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। परियोजनाओं को लागू करते समय सरकार पर्यावरणीय पहलुओं पर गंभीरता से विचार-विमर्श नहीं करती है। सरकार को विषय विशेषज्ञों, पर्यावरणविदों, सामाजिक कार्यकत्ताओं और विकास एवं पर्यावरणीय संतुलन समिति जो उस विषय पर गठित की गई हो से सलाह लेने के पश्चात् ही परियोजना लागू करनी चाहिए। समिति की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुये परियोजना को लागू करना चाहिए। राज्य के सामाजिक एवं पर्यावरण कार्यकर्त्ता नगर निकायों एवं क्षेत्र विशेष द्धारा प्रदूषण से सम्बधित नियमों, अधिनियमों का अनुपालन न होने पर जनहित याचिका के माध्यम से न्यायालय की कारवाई को सुनिश्चित करते हैं। गैर सरकारी संगठनों ने राज्य में प्रदूषण से सम्बन्धित नियमावलियाँ, वन्य जीवों की लुप्त होती प्रजातियों, जलवायु परिवर्तन, अनियंत्रित खनन, नदियों के किनारे अवैध निर्माण, नीतियों के विरुद्ध कार्य करने पर समय-समय पर जनहित याचिका का प्रयोग किया है।

संदर्भ- 1.एनवायरनमेंट कोटेशन एंड सस्टेनेबल डेवलेपमेंट लॉ टीचर, फरवरी 2018, 2. रंगाराजन महेश. भारत में पर्यावरण के मुद्दे डार्लिंग किंडले (इण्डिया) प्रा. लि. दक्षिण एशिया में पियर्सन एजुकेशन के लाइसेसी, 2015, 3.Singh, S.N., ed. 1990. Law and Social Change. New Delhi: P.G. Krishna Memorial Foundation. 4. राय, अरूणा. 2009. भारत में जनहित याचिकाएँ एवं मानव अधिकार. नई दिल्ली: राधा पब्लिकेशन। 5. लक्ष्मीकान्त, एम0. 2015. भारत की राजव्यवस्था. नई दिल्ली: मैक-ग्रो हिल एजूकेशन प्राइवेट लिमिटेड, 6.Baxi, Upendra. 1969. "Directive Principles and Sociology of Indian Law." Journal of the Indian Law Institute. Vol 11: PP245-272, 7.पिंजानी विनय कुमार, भारत का संविधान एवं पर्यावरण संरक्षण, विधि-भारती शोध पत्रिका, अंक-68, जुलाई-सितम्बर, 2011, पृ.314, 8. रिशा कुलश्रेष्ठ, ग्रामीण मुकदमेबाजी और हकदारी केंद्र और अन्य। बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य। केस सारांश, लॉ टाइम्स जर्नल ; (16 सितंबर, 2018)

http://lawtimesjournal.in/rural-litigation-and-entitlement-k -ors-v-state-of-uttar-pra-ors-case-summary/ 9- Down to Earth https://www. down to earth .org .in>ruraleconomy, 10. https:// www.ablive.com> States> up-uttarakhand, 11. Down to Earth https// www.down to earth.org in. hindistory> ngt-ask, 12. https://www.ablive.com> States>up-uk uttarakhand, 13.उपाध्याय, जय जय राम, पर्यावरण कानून, पृष्ठ 2, इलाहाबाद: केंद्रीय कानून एजेंसी, (2005)

शोध आलेख

(शोध आलेख)

सिनेमा का अर्थ स्वरूप परिभाषा एवं प्रकार

शोध लेखक : डॉ. दीप सिंह
(असिस्टेंट प्रोफेसर)

शोध सारांश - सृजन और अभिव्यक्ति के माध्यमों में सिनेमा को सही मायने में 20वीं शताब्दी का माध्यम कहा जा सकता है। आरंभ से ही विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर आधारित होने के कारण यह बड़ी तेजी से सारी दुनिया में जनसंचार और मनोरंजन का सबसे सशक्त माध्यम बन गया। सिनेमा 19वीं सदीं के अंतिम दशक में इंसान के हाथों में खिलौने के रूप में आया था। 20वीं सदीं में पदार्पण करते ही प्रदर्शनकारी कलाकारों, तमाशाकारो, समाज सुधारकों और प्रचारकों को भी यह आकर्षित करने लगा। लेकिन सिनेमा में सभी तत्वों की मौजूदगी के बावजूद पहले भी और आज भी मनोरंजन ही इसका सबसे प्रमुख उद्देश्य है। सिनेमा जो सजीव नहीं है उसमें भी सजीव होने का आभास पैदा करता है। यह हम सभी को एक ऐसी सपनों की दुनिया में लेकर जाता है जहाँ हम सब जब तक देखते रहते हैं तब तक उसका पूरा लुफ्त और आनंद उठाते रहते हैं। मनुष्य के मन के सारे भाव पर्दे पर अलग-अलग रंगों के साथ दिखाई देते हैं। जिसे देखकर वास्तविक दुनिया का यथार्थ ज्ञान और उसका दर्शन होता है।

बीज शब्द - एकत्रिकरण, प्रतिबिंब, कोरियोग्राफर, फार्मूला, सिलसिला, अमर्यादित, फोटोग्राफी, तमाशकारों, पौघोगिकी, उदारीकरण, मर्यादित।

प्रस्तावना- सिनेमा हमेशा से ही सामाजिक परिवर्तन करने में एक अग्रणी भूमिका निभाता रहा है। यह सच्चाई है कि यह अपने वास्तविक अर्थों में ना केवल किसी गतिशील खिलौने का चित्र है बल्कि वह जन शिक्षा का बड़ा ही सशक्त एवं प्रभावशाली माध्यम साबित हुआ है। प्रत्येक फिल्म के अलग -अलग पात्र एवं एक कहानी होती है। साहित्य संबंधों के आधार पर सिनेमा की कहानी की कथावस्तु साहित्य की कहानी की कथावस्तु से पूर्णत: मिलती - जुलती है। इसमें भूमिका, कथावस्तु, पात्र, चरित्र-चित्रण, देशकाल, वातावरण, संवाद अभिनय, भाषा शैली एवं उद्देश्य आदि सभी तत्वों के माध्यम से फिल्म की कहानी को नया आकर्षक एवं प्रभावी बनाया जाता है।

बीसवीं सदी की लोकप्रिय कला सिनेमा है। यह एक ऐसी कला है जिसमें बाकी सारी की सारी कलाओं को समेटा जा सकता है। बाकी सारी कलाएँ भी इसमें बिना रोक टोक जमाने के लिए तत्पर है, क्योंकि यह दर्शकों के लिए सहज उपलब्ध होने वाला साधन है। अपने आपको सबके सामने प्रस्तुत करना है तो सिनेमा एक सर्व - सम्मत साधन है। सिनेमा में प्रकाश विज्ञान, रसायन विज्ञान, विद्युत विज्ञान, कैमरा तकनीकी, फोटोग्राफी तथा दृष्टि विज्ञान के भीतर नई खोजों के चलते अद्भुत परिवर्तन हुआ है।

फिल्मों में कहानियाँ गीत और संगीत जिस रूप में समाविष्ट हुए हैं वह सिनेमा को सक्षम बना रहा है। साथ ही भविष्य में यह एक और नए रूप में आने का संकेत दे रहा है। नई तकनीकी और विज्ञान इसको और सक्षम प्रभावकारी और जीवंत बनाने में निरंतर जुटा हुआ है। जो कभी सजीव नहीं था और हो नहीं सकता उसका सजीव होने का आभास एवं निर्माण करना दर्शकों को अत्यधिक आकर्षित करता है और हमेशा आकर्षित करता रहेगा।

लीनेयर बंधु एवं दादा साहब फाल्के और अनेक फिल्म निर्माताओं ने अपनी पहली फिल्म के पहले भी फिल्में बनाने का प्रयास किया था। वे सफल भी हुए परंतु सच्चे मायने में उन्हें फिल्म कहने के लिए जो फार्म होना चाहिए था उसमें नहीं था। अत: उन्होंने भी उन्हें फिल्म मानने से इनकार किया और दर्शकों ने भी। चलते हुए चित्रों में जब पहली बार कहानी को पिरोया गया तब वह फिल्म मानी गई। इससे निर्माताओं के मन को भी थोडी तसल्ली हो गई कि अभी सच्चे मायने में हमारे मन की फिल्म पर्दे पर साकार हो चुकी है। धीरे-धीरे जैसे समय बीतता गया वैसे - वैसे सिनेमा के फार्म भी निकल आए और तकनीकीयाँ जुड़ती गई तो सिनेमा अपना आकार ग्रहण करता गया। सिनेमा की विशेषता यह है कि पुराना बना रहा और दिनों - दिन नया जुड़ता गया।

साहित्य की विधाओं की भाँति भारतीय सिनेमा को भी कई वर्गों में बाँटा जा सकता है। ब्लू फिल्में, चाइल्ड फिल्में, डॉक्यूमेंट्री फिल्में, कमर्शियल फिल्में, विज्ञापन फिल्में, वार फिल्में। किसी भी फिल्म की कहानी में साहित्य के 6 प्रमुख तत्वों के अलावा अन्य तत्व भी पाए जाते हैं।

डॉ. दीप सिंह (असिस्टेंट प्रोफेसर)
विषय (संगीत - गायन)
राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी
मोबाइल- 9026345279
ईमेल- deep3887@gmail.com

इसमें निर्माता, निर्देशक, पटकथा लेखक, अभिनय कर्मी, गीतकार, संगीतकार, कोरियोग्राफर, कमेंटेटर, स्टंटमैन आदि प्रतिभाग करते हैं। सिनेमा में भी नव रस, गुण, ध्वनि रीति आदि का समावेश होता है। लगभग प्रत्येक फिल्म में कम से कम एक प्रेम कहानी होती है।

सिनेमा भक्ति का सर्वाधिक प्रभावशाली एवं सशक्त माध्यम बनकर उभरा है। यह सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक तथा राजनीतिक सभी स्थितियों को आत्मसात करते हुए रचनात्मक माध्यम बना है। कहानी, उपन्यास, संस्मरण, नाटक, कविता, रिपोतार्ज एवं रेखा चित्र सभी को सिनेमा ने एक सशक्त अभिव्यक्ति दी है। सिनेमा सृजनात्मक और यांत्रिक प्रतिभा का सुंदर संगम स्थल बन गया है। कला विज्ञान और वाणिज्य का त्रिवेणी संगम सिनेमा माध्यम में दिखाई देता है।

सिनेमा का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए अनेक लेखकों ने, विद्वानों ने, सिनेमा के जानकारों ने सिनेमा की जो परिभाषा प्रस्तुत की है उसको हम इस प्रकार से देख सकते हैं।

आलोक पांडे के अनुसार "दरअसल सिनेमा सिर्फ अभिव्यक्ति नहीं है वह एक अन्वेंषणकारी माध्यम भी है। वह बहुत कुछ ऐसा भी कहता है और करता है जिसे शब्दों के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता।"

बसंत कुमार तिवारी के अनुसार " सिनेमा एक बड़ा धोखा है कुछ भी नहीं होकर वह चलचित्रों से दर्शको को इतना दूर कर देता है कि कुछ समय के लिए अपने अस्तित्व को पूर्णत: भूल जाता है।"

डॉ. कैलाश नाथ पांडे के अनुसार "जीवन की हर झाँकी और मंजर को रूपांतरित करने वाला सिनेमा संसार का सबसे बड़ा सुंदर उपहार है मानव के लिए।"

यह सभी परिभाषाएँ मिलकर सिनेमा के स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश नहीं छोड़ पाती हैं, लेकिन कहा जाए तो यह अवश्य है कि इससे सिनेमा के स्वरूप को समझने में थोड़ी बहुत सहायता तो अवश्य मिलती है। लेकिन सिनेमा के स्वरूप को इस तरह से पूरी तरह नहीं जाना जा सकता। यदि सिनेमा के स्वरूप को भलीभाँति समझना है तो फिल्मों के प्रकार तथा सिनेमा के तकनीकी और कला पक्ष को समझना होगा। वैसे तो फिल्मों के कई प्रकार हैं लेकिन उनमें से कुछ एक्शन फिल्म, अपराध फिल्म, रहस्य फिल्म, प्रेम फिल्म, परिवारिक फिल्म, डरावनी फिल्म, संगीत फिल्म, थ्रिलर फिल्म, साइंस फिल्म, हास्य फिल्म तथा युद्ध फिल्म आदि हैं।

अगर बात करें प्रेम प्रधान फिल्मों की तो इसमें प्रेम विषय के साथ-साथ और भी कई अंग से फिल्म को फिल्माया गया है। मुख्यरूप से कोई भी फिल्म आप देखें उसमें प्रेम कहानी आपको नज़र आएगी। हिन्दी फिल्म दुनिया में प्रेम कथाओं का कोई अंत नहीं है इस विषय पर हजारों की संख्या में फिल्में बनी हैं। आज भी यह सिलसिला जारी है। हिन्दी फिल्मों का यह सबसे सुपर हिट फार्मूला है। प्यार, इश्क .मोहब्बत एवं आशिकी के इर्द-गिर्द फिल्में चक्कर लगाती रहती हैं। कहीं प्रेम त्रिकोण तो कहीं लंबी जुदाई देखी जाती है। इस पर आधारित फिल्में जो बनी उनमें 1931 में लैला मजनू और शीरी फरहाद, 1932 में शशि पुन्नू और हीर रांझा, 1933 में सोहनी महिवाल और प्रेम का नक्शा, 1940 में प्रेमनगर और सिविल मैरिज, 1944 में पहली नज़र, 1947 में रोमियो जूलियट, 1949 में अनोखी अदा, 1950 में बावरे नैन, 1954 में आर पार, 1955 में मिस्टर एंड मिसेज, 1957 में लव मैरिज और दिल भी तेरा हम भी तेरे।

अब हास्य प्रधान फिल्मों की बात करें तो इसमें कॉमेडी फिल्में भी हिन्दी में बड़े पैमाने पर बनती है। इन फिल्मों का उद्देश्य दर्शकों का मनोरंजन करना होता है। हास्य प्रधान फिल्में बनाना आसान काम नहीं है इन फिल्मों में रोज़मर्रा की ज़िंदगी के अनुभव एवं घटनाओं का सहारा लेकर उस पर व्यंग करके हास्य पैदा किया जाता है। छोटी-छोटी घटनाओं तथा प्रसंगों के माध्यम से हास्य निर्माण होता है। फिल्म के चरित्र भी हास्य निर्माण में अपना योगदान करते हैं। हास्य फिल्में दर्शक बहुत ज़्यादा पसंद करते हैं। इन फिल्मों के द्वारा होने वाले हंसी मज़ाक से अपने जीवन की परेशानियों को थोड़ी देर के लिए ही सही लेकिन भूल ज़रूर जाते हैं। हास्य परआधारित फिल्में जो बनी इसमें 1982 अंगूर, 1983 में जाने भी दो यारो, 2004 में हलचल, 2007 में भेजा फ्राई, 2007 में धमाल, 2006 में गोलमाल, 2003 में हंगामा, 2011 में प्यार का पंचनामा, 2008 में ओय लकी, 2006 में खोसला का घोसला, 2003 में मुन्ना भाई एमबीबीएस तथा सन 2000 हेरा फेरी आदि।

हिंसा प्रधान फिल्म के अंतर्गत बॉलीवुड में आज हिंसा प्रधान फिल्मों की लगभग बाढ़ सी आ गई है। आमतौर पर इस तरह की फिल्मों में हिंसा और खून खराबा दिखाया जाता है। यह फिल्में दर्शकों को चौकाती हैं। इन फिल्मों में हिंसा के साथ - साथ सेक्स भी परोसा जाता है। हिंसा और सेक्स का अजीब मिश्रण फिल्मों में देखा जा सकता है। इनमें आने वाली फिल्में बैंडिट क्वीन-1994, गैंग्स ऑफ वासेपुर-, थप्पड़, लज्जा, अग्निसाक्षी, खून भरी माँग, दमन, मेहंदी, खतरनाक गुंडे, लड़ाईएक जंग, दौलत की लड़ाई आदि है।

आजकल वेब - सीरीज के माध्यम से भी हिंसात्मक फिल्मों को अलग-अलग भागों में करके दर्शकों के सामने अलग-अलग वेबसाइट के माध्यम से परोसा जा रहा है। जिनमें माधुरी टॉकीज, भौकाल, मिर्जापुर, आश्रम, जख्म, टाइटल रोल, काशी, अपहरण, मोह माया आदि।

एक तरफ वर्षों से सामाजिक फिल्में भी बनती आ रही हैं। इनमें समाज से जुड़े प्रश्नों को फिल्मों के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। इन सभी सामाजिक मुद्दों के अंतर्गत आर्थिक शोषण, जातिभेद, धोखेबाजी, सामाजिक प्रताड़ना, सामाजिक विद्वेष, संप्रदायिकता, नक्सलवाद एवं आतंकवाद आदि विषय में बनती है। यह समाज को आईना दिखाने का काम करती है। हिन्दी में हर साल इस विषय पर कई फिल्में बनती है। इसके अंतर्गतआने वाली फिल्मों में दामिनी-1993, पिंक-2016, हाईवे-2014, उड़ता पंजाब-2016, टॉयलेट एक प्रेम कथा-2017, पीके-2014, 3 इडियट-2009, ओ माय

गॉड-2012, खट्टा मीठा-2010, हिन्दी मीडियम-2017, माँझी-2015, मदर इंडिया-1957, जागते रहो-1956, प्यासा-1957, गाइड-1965, क्रांतिवीर-1994, स्वदेश-2004, लगान-2001, मरदानी-2019, विवाह-2006, पा-2009, चक दे इंडिया-2007, तारे ज़मीन पर-2007 तथा आई एम कलाम-2010 आदि।

राजनीति विषयों को भी लेकर फिल्मे कम नहीं बनी है। हालाँकि हमारा पूरा देश आज राजनीति से प्रेरित है और ओतप्रोत है। गली से लेकर दिल्ली तक की राजनीति में रुचि रखने वाले लोग है। हमारे जीवन पर राजनीति का बहुत ही अधिक गहरा प्रभाव पड़ा है। इससे संबंधित फिल्में बनाने के लिए फिल्म विषय से संबंधित अनुसंधान भी करना अति आवश्यक होता है। उससे संबंधित तथ्यों की जाँच पड़ताल करनी होती है। संबंधित तथ्य कहीं ऐसा तो नहीं कि ग़लत है। इसके अंतर्गत आने वाली फिल्मों में मुख्यत: आँधी -1975, किस्सा कुर्सी का-1977, युवा-2004, नायक-2001, सत्ता-2003, गुलाल-2009, पीपली लाइव-2010, राजनीति-2010, डर्टी पॉलिटिक्स-2015, सत्याग्रह-2013, सरदार-1993, इंकलाब-1984, हासिल-2003 तथा यंगिस्तान-2014 आदि।

जब भी बॉलीवुड में कोई परिवारिक फिल्म बनी तो इन फिल्मों में परिवार से संबंधित विषय होते थे। जैसे - घुटन, बिखराव, माँ-बाप की लडाई, अत्याचार, प्रेम, मिलना, बिछड़ना, तकरार, परिवारिक राजनीति, भाई भाई का झगड़ा, बाप और बेटे के बीच झगड़ा आदि विषयों पर यह फिल्में बनती हैं। इन फिल्मों के माध्यम से संस्कृति, परंपरा एवं धर्म का पालन तथा आदर्शवादी का पाठ पढ़ाया जाता है। यह देश की एकता, सामाजिक सद्भाव और धार्मिक सहिष्णुता के लिए आवश्यक है। इसके अंतर्गत आने वाली फिल्मों में इंग्लिश विंगलिश-2012, शिव शास्त्री-2023, दृश्यम-2015, तारे ज़मीन पर-2007, हिन्दी मीडियम-2017, पीकू-2015, पिंक-2016, दो बीघा ज़मीन-1953, घर हो तो ऐसा-1990, बड़े घर की बेटी-1989, बावर्ची-1972, बागवान, कभी खुशी कभी गम-2001, खानदान-1965, रक्षाबंधन-2022 आदि ऐसी हजारों फिल्में परिवारिक घटनाओं पर बनाई गई है।

आजकल हिन्दी में एनिमेशन फिल्मों ने धूम मचा रखी है। आज इस फिल्म का जबरदस्त सम्मोहन समाज पर देखा जा रहा है। इसके अतिरिक्त कुछ विज्ञापन फिल्में भी बनाई जाती है जिसका उद्देश्य व्यवसाय में लाभ हेतु किसी दुकान, व्यापारिक प्रतिष्ठान, कंपनी द्वारा अपना उत्पाद खरीदने बेचने हेतु बनाए जाने वाली फिल्में विज्ञापन फिल्में कहलाती है। ग्राहकों को अपने उत्पाद की जानकारी देने हेतु नायक - नायिका को लेकर इन फिल्मों को बनाया जाता है, ताकि ग्राहक उनको देखकर उस वस्तु के प्रति आकर्षित हो सके। विज्ञापन फिल्मों का प्रदर्शन टीवी चैनल, सिनेमाघरों में फिल्म के मध्यांतर में किया जाता है। विज्ञापन फिल्मों ने अपना एक अलग क्रेज बनाया है जिसके कारण ग्राहक तथा उत्पादक दोनों को फायदा हो रहा है।

सिनेमा वर्तमान समय की बहुत बड़ी ताकत बन चुकी है। समाज में सिनेमा का महत्त्व अत्यधिक बढ़ता जा रहा है। जो भी घटनाएँ या कहानियाँ समाज के मध्य देखी जाती हैं उन्हीं के आधार पर सिनेमा का निर्माण होता है। जब कहानियाँ समाज के ऊपर प्रदर्शित होती हैं तो सामाजिक लोगों के अंदर उसे देखने के लिए अत्यधिक कौतूहल होता है। आज सिनेमा समाज के साथ एक अभिन्न अंग के रूप में जुड़ गया है साथ ही यह परस्पर समाज और सिनेमा एक दूसरे के पूरक प्रतीत होते हैं।

निष्कर्ष- सिनेमा के प्रारंभिक दशकों में सामाजिक सरोकार पर आधारित फिल्में बनाई जाती थी लेकिन आर्थिक उदारीकरण के पश्चात सामाजिक विषय सिनेमा से गायब हो गए हैं। जिन पर पुन: फिल्म बनाने की अत्यधिक आवश्यकता महसूस हो रही है। यहाँ तक कहा जाए कि फिल्में समाज में व्याप्त बुराइयों और विसंगतियों को समाज के सामने प्रदर्शित कर इन्हें ख़त्म करने के लिए प्रेरित करती हैं। परंतु आज के दौर के सिनेमा का मुख्य विषय ही हिंसा और अश्लीलता हो गया है। ऐसे में भारतीय संस्कृति की समृद्ध परंपरा को ध्यान में रखते हुए फिल्मों का निर्माण समाज हित में हो इसका अत्यधिक ध्यान रखने की आवश्यकता है। हमारा देश हर गली कूचे स्थानीय मान्यताओं कहानी किस्सों से भरा पड़ा हैं। ऐसे में स्थानीय विषयों को फिल्मों में जगह मिलने से ना केवल फिल्मों की पटकथा मजबूत होगी बाकी फिल्म निर्माण के लिए भी नए-नए विषय मिलते रहेंगे जो समाज के लिए अत्यंत हितकारी होंगे। वर्तमान फिल्मों के अंतर्गत एक ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि इसमें अनावश्यक रूप से अमर्यादित शब्दों का इस्तेमाल न किया जाए जिससे भविष्य और युवाओं के ऊपर नकारात्मक प्रभाव ना पडे।

000

संदर्भ- हसन रियाज, सिनेमा उद्भव और विकास, खण्डेलवाल पब्लिशर्स एण्ड डिस्टीब्यूटर्स जयपुर संस्करण-2013, पे.न.-1, राणा डॉ.प्रतिभा कुमारी डॉ.ममता, साहित्य संस्कृति और सिनेमा, श्री नटराज प्रकाशन दिल्ली, सं.-2023, पेज.न-22, विमल, हिन्दी चित्रपट तथा संगीत का इतिहास, संजय प्रकाशन नई दिल्ली, सं.-2022, पेज न.-96, मिश्रा डॉ. सुजाता, हिन्दी सिनेमा की स्त्रि यात्रा, हंस प्रकाशन दिल्ली, संस्करण-2022, पेज न., 58, भारद्वाज विनोद, सिनेमा एक समझ, मध्य प्रदेश फिल्म विकास निगम, संस्करण-1993, पेज.न.- 63, प्रियदर्शन, नए दौर का नया सिनेमा, वाणी प्रकाशन दिल्ली, संस्करण-2015, पेज न.-34, राणा डॉ.प्रतिभा कुमारी डॉ.ममता, साहित्य संस्कृति और सिनेमा, श्री नटराज प्रकाशन दिल्ली, सं.-2023, पेज.न-84, पारीख जवरीमल्ल-हिन्दी सिनेमा में बदलते यथार्थ की अभिव्यक्ति, नई किताब प्रकाशन, संस्करण-2021, पेज.न.-188, भास्कर डॉ.कुमार, राष्टियता और हिन्दी सिनेमा, संजय प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण-2021, पेज न.43, विमल, हिन्दी चित्रपट तथा संगीत का इतिहास, संजय प्रकाशन नई दिल्ली, सं.-2022, पेज न.-41

(शोध आलेख)

तरुण भटनागर की कहानी 'गुलमेहंदी की झाड़ियाँ' में गुम होता बचपन

शोध लेखक : मनीषा देवी (शोधार्थी)

शोध-निर्देशक : प्रो. कृष्णा जून
हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

मनीषा देवी
मकान नं. 1327/31, कमला नगर,
रोहतक, हरियाणा 124001
मोबाइल- 9728144001
ईमेल- manirathee1992@gmail.com

मनुष्य के जीवन में तीन अवस्थाएँ बचपन, जवानी व बुढ़ापा विशिष्ट स्थान रखती हैं। जवानी व बुढ़ापा में मनुष्य प्राय: संघर्षशील रहता है, अशान्ति से हमेशा घिरा रहता है। जबकि बचपन को सुनहरा समय कहा गया है, जिसमें मनुष्य बेफ़िक्र रहता है। खेलकूद और जीवन की मूलभूत आवश्यकता को प्राप्त करना ही प्रमुख उद्देश्य रहता है। साहित्यिक दृष्टि से बचपन का आंकलन किया जाए तो यह मनुष्य के जीवन रूपी रंगमंच का ऐसा नाटकीय दृश्य है, जिसमें वह सबसे अधिक बेपरवाही में शांत, मौज-मस्ती, हँसी-खुशी और नवीन सपनों को बुनने का कार्य करता है। बचपन जन्म से लेकर किशोरावस्था से पूर्व का समय होता है। विकासात्मक विज्ञान की दृष्टि से बचपन को तीन अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम शैशवावस्था जिसमें वह चलना, बोलना व सीमित क्रियाओं को करना सीखता है। दूसरा प्रारंभिक बचपन जिसमें वह अपना अधिकतर समय खेलकूद में व्यतीत करता है। तीसरा मध्य बचपन जिसमें वह खेलकूद के साथ-साथ स्कूली शिक्षा अर्जित करता है। बचपन को अनोखा काल या मिथ्या परिपक्वता का काल भी कहा गया है। आदर्श हिन्दी शब्दकोश के अनुसार, 'बचपन (हिं.पु.) बाल्यावस्था, लड़कपन है।'1

अंग्रेजी हिन्दी शब्दकोश के अनुसार, 'बचपन बालकपन, बाल्यावस्था, शैशव अवस्था है।'2

तरुण भटनागर द्वारा लिखी कहानी 'गुलमेहंदी की झाड़ियाँ' जो सन् 2008 में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित हुई। यह कहानी गुम होते बचपन को व्यक्त करती एक संवेदनशील व मार्मिक कहानी है। जिसमें दो बच्चों के मार्मिक जीवन को व्यक्त किया गया है, जिनका बचपन शुरू होने से पहले ही ख़त्म हो गया है। गरीबी और सामाजिक परिवेश ने उन्हें कार्य करने पर बाध्य कर दिया है, जिसके कारण उनके बचपन के सपने भी अभिशाप बन गए हैं। इस कहानी में सुन्दर नामक बालक बाल श्रम का शिकार है तथा कचरा बीनने वाली लड़की के सपने कूड़े के ढेर में दफन हो चुके हैं। बचपन की मित्रता, खेलकूद, स्कूल, मानसिक विकास आदि सभी बातें इन दोनों के लिए अर्थहीन हैं। यदि वे इन्हें अर्थ देने की कोशिश भी करते हैं तो कार्य में बाधा उत्पन्न होने के कारण धन की समस्या और परिवारजनों की मार का सामना इन्हें करना पड़ता है। ऐसा भान होता है कि इस कहानी के द्वारा लेखक ने उन सभी बच्चों के बचपन की ओर संकेत किया गया है जो पारिवारिक आर्थिक तंगी के कारण कार्य करने के लिए बाध्य हैं और उनका बचपन मानो कहीं बालश्रम के तले दबकर गुम हो गया है।

कार्य करने की मजबूरी तले दबा बचपन- अधिकतर देखा जाता है कि बच्चे बचपन में पूरी तरह से आज़ाद रहते हैं, बस खेलकूद, मित्र, स्कूल, शिक्षा व उनकी स्वयं की बातों से बने हवाई किले ही उनकी दुनिया होते हैं। बच्चे पूर्णतया माता-पिता पर निर्भर रहते हैं। उनकी सारी आवश्यकताएँ माता-पिता के द्वारा ही पूर्ण कर दी जाती हैं, लेकिन कुछ बच्चों का बचपन ऐसे बच्चों से भिन्न होता है। वह कार्य करने के लिए मजबूर रहते हैं। प्रस्तुत कहानी तरुण भटनागर द्वारा लिखी गई 'गुलमेहंदी की झाड़ियाँ' में सुन्दर नामक लड़का और कचरा बीनने वाली लड़की कार्य करने के लिए मजबूर हैं। सुन्दर नामक लड़के के विषय में बताया गया है कि सुन्दर कचरा बीनने वाली लड़की से भी छोटा है, लेकिन आर्थिक मजबूरी के कारण उसे होटल में बर्तन माँजने का कार्य करना पड़ता है। कचरा बीनने वाली लड़की कचरा बीनने के समय में जब सुन्दर के विषय में सोचती है, तो वह बताती है कि 'पहले वह एक होटल में काम करता था। उसने उसे एक बार वह होटल दिखाया था। जहाँ वह रहती है, उससे थोड़ी दूर एक देसी शराब की दुकान है और उसी के पास वह होटल है। वह वहाँ बर्तन साफ करने वालों की मदद करता था। साबुन और राख से प्लेट, गिलास माँजने-धोने का काम। पहले होटल के मालिक ने उसे पानी लाने के काम में लगाया था। पर वह पानी की बाल्टी उठा नहीं पाता था, सो उसे बर्तन माँजने का काम मिल गया। उसको महीने के ढाई सौ रूपए मिलते थे।'3

लेकिन पुलिस और बालश्रम कानून के चलते उसे होटल से निकाल दिया गया। अब वह भी उस लड़की के साथ कचरा बीनने का कार्य करता है। कचरा बीनने वाली लड़की भी यह कार्य अपनी खुशी से नहीं करती। उसका मन सुन्दर से बातें करने, खेलने-कूदने, स्कूल जाने, अच्छी-अच्छी बातें सोचने का करता है लेकिन इन सब के विषय में सोचते-सोचते जब वह कचरा नहीं बीन पाती तो उसे अपनी ही माँ की गालियाँ सुनने को मिलती है, कई बार तो मार झेलनी व भूखा सोना भी पड़ता है। 'कभी-कभी कम कचरा बटोरने का उसे दंड भी मिलता है।'

बोरा कम भरा देखकर माँ बहुत ज़्यादा नाराज हो जाती है। वो उसे मारती-पीटती है। वह चिल्लाती है पर माँ उसकी नहीं सुनती। वह उसे गंदी और भद्दी गालियाँ देते हुए पीटती है। फिर उसे खाना भी नहीं देती।'4 इस प्रकार यह दोनों ही बच्चे कार्य करने के लिए मजबूर हैं। समाज ने, परिवार ने इन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य किया हुआ है। इनके पास बचपन की अटखेलियाँ खेलने के लिए समय नहीं है।

शिक्षा से वंचित- बचपन में शिक्षा का अहम् स्थान होता है। शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति में बुद्धि का विकास हो पाता है। यह हमारी चेतना और संवेदना को विकसित कर अच्छा सामाजिक नागरिक बनने में मददगार होती है। यह हमारी समझ को विकसित करती हैं और समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाता है। शिक्षा पाना हर बच्चे का कानूनी अधिकार है। तरुण भटनागर जी की कहानी 'गुलमेहंदी की झाड़ियाँ' में दोनों ही बच्चों से उनके बचपन का अहम् एवं महत्त्वपूर्ण हिस्सा जिसे स्कूली शिक्षा कहा जाता है समाज ने उनकी गरीबी, तंगहाली और पारिवारिक परिवेश कारण उनसे छीन लिया है। कहानी में कचरा बीनने वाली लड़की और सुन्दर नामक लड़का दोनों ही स्कूल की बातें करते रहते हैं। उनको बारिश के मौसम में स्कूली बच्चों द्वारा टपटपाती बूँदों को अपने हाथों पर महसूस करना, उन बच्चों को हँसते-मुस्कुराते, किलकारी मारते देखकर अच्छा लगता है। स्कूली बच्चों का एक साथ लय में गाना उन्हें अच्छा लगता है उन्हें नहीं पता कि उसे कविता कहा जाता है लेकिन उन्हें अच्छा लगता है। वह सोचती है कि यदि वह स्कूल जाती तो वही सबसे अधिक समझदार होती क्योंकि सारे बच्चे उसी की बात मानते हैं जैसे सुन्दर मानता है। उसी का स्कूल में रुतबा होता क्योंकि वही सबसे समझदार बनती। 'एक बार वह और सुन्दर स्कूल के अंदर तक चले गए थे। उस दिन स्कूल का मेनगेट खुला था। स्कूल का चौकीदार भी नहीं दिख रहा था। वे दोनों थोड़ी देर बाहर खड़े रहे। फिर सुन्दर ने भीतर चलने को कहा। पहले तो उसने सुन्दर को मना कर दिया। उसे यूँ खड़ा रहना अच्छा लग रहा था। उसकी भी इच्छा हो रही थी कि वह एक बार भीतर तक देखकर आए। स्कूल के कमरे, खेलने वाला मैदान, स्कूल के टीचर पता नहीं क्या-क्या होता है ? लेकिन चौकीदार के भय के कारण उसने सुन्दर को मना कर दिया।'5

उसे चौकीदार का भय अवश्य ही था, लेकिन बचपन की उस जिज्ञासु प्रवृत्ति को शांत करने के लिए वह भीतर जाने के लिए तैयार हो गई। उसने सोचा यदि चौकीदार देख भी लेगा तो क्या कर लेगा। धक्का देकर बाहर ही तो निकालेगा। ऐसा सोचकर वह और सुन्दर अंदर तक स्कूल देखने के लिए चले

गए। उसके बाद चौकीदार ने उन्हें भगा दिया। लेकिन उनका बार-बार स्कूल जाने का मन होता। शिक्षा का अधिकार भले ही आज बच्चों को मिला हुआ है। लेकिन कुछ बच्चे आज भी केवल स्कूल की घंटियाँ और बच्चों की चहकने की आवाजें सुनकर ही अपना मन मार कर रह जाते हैं यह उनके बचपन की हत्या है।

माता-पिता व समाज का दबाव- बचपन में माता-पिता व रिश्तेदार बच्चों के विकास में आधारशिला की तरह कार्य करते हैं। वह बच्चों के स्वस्थ बचपन जीने में सहयोगी होते हैं। बच्चों के बौद्धिक व शारीरिक विकास को बेहतरीन बनाने के लिए माता-पिता क्या कुछ नहीं करते। ऐसा कहा जाता है कि माता-पिता तो अपने बच्चों को अपने मुख का प्रथम और अंतिम निवाला भी दे देते हैं। ऐसे में बच्चों के बचपन में माता-पिता सहयोगी व संरक्षक की भूमिका अदा करते हैं। लेकिन अभावग्रस्ता में जन्में बच्चों के ऊपर माता-पिता का कार्य करने के लिए हमेशा दबाव बना रहता है। जिसके चलते वह कहीं कचना बीनने, भीख माँगने या फिर छोटी-मोटी नौकरी करने के लिए मजबूर होते हैं। ऐसे बच्चे बचपन में ही किसी न किसी कार्य पर लगा दिए जाते हैं। यहीं से उनका बचपन मर जाता है। तरुण भटनागर की कहानी 'गुलमेहंदी की झाड़ियाँ' बताती है कि कार्य करना इन बच्चों का शौक नहीं, दबाव है, मजबूरी है। इसमें सुन्दर नामक लड़का जो पहले होटल में कार्य करता था। बालश्रम के कानून के कारण उसे वहाँ से निकाल दिया जाता है। फिर वह कचरा बीनने का कार्य करने लगता है। कचरा बीनने वाली लड़की एक दिन उसका इंतज़ार करती रहती है। लेकिन वह वहाँ नहीं आता। जब वह घर लौट रही होती है, तो रास्ते में उसे सुन्दर मिल जाता है वह उसे न आने का कारण पूछती है। 'तू आज काहे नहीं आया ? मेरे को बापू एक होटल ले गया था। मेरे को फिर से होटल का काम मिल गया है। सुन्दर ने चहकते हुए कहा। उसे सुन्दर की बात अच्छी नहीं लगी। उसे लगा काश उसे भी ऐसा कोई काम मिल जाता। कचरा बीनने से अच्छा काम। उसे सुन्दर से चिढ़-सी हुई। चाइल्ड लेबर उसने सुन्दर को जीभ दिखाते हुए कहा'6 जब गर्मी और बालमन के उभरते सपनों के कारण कचरा बीनने वाली लड़की का बोरा कचरे से पूरी तरह नहीं भर पाता तो वह डर जाती है कि माँ घर जाते ही उसे मारेगी, गालियाँ देगी। जब वह घर पहुँच जाती है तो ऐसा ही होता है। उसकी माँ उसे गालियाँ देने लगती है। वह थोड़ा विद्रोह करती है कि आज से मैं कचरा बीनने का कार्य नहीं करूँगी। लेकिन उसकी माँ को ग़ुस्सा आ जाता है और उसे वह बुरी तरह मारने लगती है 'माँ उसे बुरी तरह पीटने लगी। एक लकड़ी जाने कहाँ से माँ के हाथ पड़ गई। वह उस पर टूट पड़ी ... लोग जानवरों को भी इस तरह नहीं मारते। आसपास की झुग्गी वाले इक्ट्ठा हो गए। वह चीखकर रोने लगी।'7

ऐसे बुरी तरह मारने पर भी उसका मन शांत नहीं हुआ और उसने अपनी बच्ची को खाना भी नहीं दिया। काम करना ऐसे बच्चों की मजबूरी है, दबाव है नहीं तो कोई भी बच्चा अपने बचपन को यूँ बर्बाद नहीं करना चाहता। यह दबाव पारिवारिक होने के साथ-साथ सामाजिक भी है क्योंकि समाज के व्यक्ति भी ग़रीब बच्चों को स्कूल जाने पर या कहीं और अच्छी जगह जाने पर फटकारते हैं, भगाते हैं, मारते हैं, गालियाँ देते हैं।

अत्याचारों तले बचपन- ऐसे बहुत से बच्चे होते हैं जो बचपन में ही किसी अप्रिय घटना के शिकार हो जाते हैं या कुपोषण से ग्रसित हो जाते हैं या फिर उनका यौवन शोषण होता है या अपंगता आ जाती है। ऐसे बच्चों का बचपन पारिवारिक, सामाजिक या प्राकृतिक मार के कारण समाप्त हो जाता है। लेकिन जब और भी भयावह स्थिति आती है तब बच्चों पर किया जाने वाला अत्याचार चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक परिवारजनों के माध्यम से होता है तो बचपन बुरी तरह टूटता है। तरुण भटनागर जी की कहानी 'गुलमेहंदी की झाड़ियाँ; में कचरा बीनने वाली लड़की पारिवारिक प्रताड़ना की शिकार होती है। उसकी माँ उसे डंडे से मारती है। 'उसके पैर और पीठ पर डंडे के निशान उभर आए थे। पूरा शरीर दर्द से कराह रहा था। पीठ की खाल बुरी तरह जल रही थी। '8 इसी तरह जब होटल से सुन्दर को बालश्रमिक होने के कारण निकाल दिया जाता है और पुलिस वाला उसे चाइल्ड लेबर कहता है, तो सुन्दर को उस शब्द का मीनिंग नहीं पता लेकिन वह मानसिक रूप से प्रताड़ित होता है। उसे स्वयं के लिए प्रयोग किया जाने वाला यह शब्द चाइल्ड लेबर अच्छा नहीं लगता। इसके विरोध में वह अक्सर पुलिस वाले को गालियाँ भी देता है। इन दोनों बच्चों पर अत्याचार सामाजिक रूप से ही होता है। जब दोनों बच्चे कचरा बीनने का कार्य कर रहे होते हैं तब वहाँ पर खड़ी कोयले की खाली मालगाड़ी से वे एक दिन थोड़ा-सा कोयला लेते हैं। उनके माता-पिता उनको ऐसा बार-बार करने के लिए कहते हैं। लेकिन कुछ बड़े लड़कों को उनकी इस घटना का पता चल जाता है और वह उन्हें खूब मारते-पीटते हैं। इन लड़कों की दहशत इन बच्चों के मन में बैठ जाती है और उसके बाद वह कभी भी रेलगाड़ी से कोयला नहीं लेते।

अत: हम कह सकते हैं कि तरुण भटनागर की कहानी 'गुलमेहंदी की झाड़ियाँ' गरीबी में जीवन जीने वाले बच्चों के बचपन के ख़त्म होने की एक मार्मिक कथा है। यह कहानी केवल सुन्दर और कचरा बीनने वाली लड़की की ही नहीं बल्कि उन समस्त बच्चों की है जिनका बचपन तंगहाली में कहीं खो गया है। इन बच्चों का बचपन, बचपन में प्राप्त अधिकार, सुविधाओं से वंचित हैं। ऐसे बच्चे बचपन में ही बड़े हो जाते हैं, कत्र्तव्य पालन और कार्य करने को विवश हो जाते हैं। ऐसे बच्चों के बचपन को संवारने की जिम्मेदारी सरकार व समाज के कंधों पर है जब समाज अपनी जिम्मेदारी निभाएँगे तो ऐसे बच्चों का जीवन भी सुखद और खुशहाल बन पाएगा।

000

संदर्भ- 1.डा. नरेश मिश्र, अंग्रेज़ी हिन्दी कोश, पृ. 104, 2.प्रो. रामचंद्र पाठक, आदर्श हिन्दी शब्दकोश, पृ. 470, 3.तरुण भटनागर, गुलमेहंदी की झाड़ियाँ, पृ. 42, 4.वही, पृ. 51, 5.वही, पृ. 49, 6.वही, पृ. 51-52, 7.वही, पृ. 52, 8.वही, पृ. 53

(शोध आलेख)

हिंसा तथा तनाव के बीच रेहड़ी वालों की व्यथा का मनोवैज्ञानिक अवलोकन

संदर्भ इमा बाज़ार इम्फाल

शोध लेखक : जितेन्द्र कुमार कुशवाहा व आशा शौग्राक्पम

Dr. Jitendra Kumar Kushwaha
Assistant Professor
Department of Psychology
Manipur University,
Canchipur, Imphal-795003
Mob- 8059599464

सारांश- मुख्य रूप से यह शोध पत्र इम्फाल मणिपुर, के 'इमा बाज़ार' में रेहड़ी लगाने वाली महिलाओं के कार्यशैली, कार्यक्षमता, कार्य-समस्यायों तथा कार्य-असुराक्षाओं से उत्पन्न मनोवैज्ञानिक व्यथाओं का एक विश्लेषण है। इस शोध पत्र के वतुनिष्ठ की आधार- सामग्री दस दिवसीय सघन कार्य-क्षेत्र अवलोकन के साथ-साथ बीस विधिवत केस अध्ययन पर आधारित है। इमा बाज़ार इम्फाल अपने आप में अद्वितीय है क्योकि इस बाज़ार का संचालन महिलायों द्वारा किया जाता है और यह एकमात्र एशिया का बाज़ार है जो की पूर्णत: महिलायों द्वारा संचालित है। यह इस कार्य-क्षेत्र की अद्वितीय विशेषता है। इस बाज़ार में रेहड़ी लगाने वाली भी महिलाए है जो की आस पास के ग्रामीण क्षेत्रों से आकर जीवकोपार्जन का उद्यम करती है। इम्फाल, मणिपुर के इस बाज़ार का अध्ययन और तर्कसंगत सिद्ध हो जाता है क्योंकि मई 2023 में जातीय हिंसा के बाद, यहाँ हिंसा और तनाव की घटनाएँ अक्सर होती रहती हैं। ऐसी स्थिति में, रेहड़ी लगाने वाली महिलाओं की समस्याओं, दैनिक चुनौतियाँ, व्याप्त असुरक्षा एवं दैनिक मानसिक तथा आर्थिक उत्पीड़न का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इस शोध पत्र की मुख्य विशेषता बन जाती है जो की अन्य शोध पत्रों में या तो न के बराबर है या फिर लगभग नगण्य है। निष्कर्ष के रूप में यह निकलता है कि सामाजिक, आर्थिक और भावनात्मक रूप से रेहड़ी लगाने वाले बहुत ही असुरक्षित हैं और यह असुरक्षा तब ज़्यादा बढ़ जाती है जब रेहड़ी लगाने वाली एक महिला हो। इस शोध के विश्लेष से यह भी निकला है की जीवन जीने की आशाएँ तथा अपने बच्चों को एक गरिमामयी जीवन प्रदान करने की लगन उनके अन्दर अमिट जीवटता की शक्ति का संचार करती है।

1.प्रस्तावना- भारतीय बाज़ार का अभिन्न अंग है रेहड़ी पटरी वालों की बाज़ार में उपस्थिति। यह बाज़ार की ऐसी व्यवस्था है जिससे रोज़गार के साधन के साथ-साथ सस्ती दरों में चीजों की उपलब्धता उपभोक्तायों तक मुहैया होती है। भारतीय बाज़ार में यह व्यवस्था अविस्मरणीय काल से ही स्वरोज़गार का एक साधन रही है और बाज़ार का एक अटूट हिस्सा भी। रेहड़ी लगाने वाले मूलत: सभी या तो प्रवासी या फिर शहरी इलाके के मध्यम वर्गीय परिवार से सम्बंधित होते हैं जिनके पास जीविका का कोई अन्य साधन नहीं होता है, या यूँ कहें की शहर के मध्यम-वर्गीय लोग जो कि बेरोज़गार है, उनकी जीविका का साधन है, रेहड़ी लगाना। रेहड़ी वालों की सुविधा शहर के जीवनशैली का सेवा प्रदायनी स्रोत बन जाती है जो की सभी के लिए सुविधाजनक है। जहाँ एक ओर रेहड़ी वालें सस्ती दरों में चीज़े उपलब्ध करने में कारगर साबित हुए हैं वहीं वे शहरों में अनावश्यक भीड़ का कारण भी बने हैं। इसके बावजूद भी इनकी महत्ता बाज़ार में लगातार बनी हुई है।

रेहड़ी लगाने वाले अपने व्यवसाय का संचालन बाज़ार की सड़क पर करते हैं जहाँ पर उनके पास या तो अस्थायी रूप से अर्धनिर्मित दुकान होती है, या खड़े होने का स्थान होता है, या फिर घूम फिर करके बाज़ार में अपनी सेवा प्रदान करते है। इनका बाज़ार में होना कई बार शहरी व्यवस्था में अवरोध तथा परिवहन संचलन के विरुद्ध माना जाता है। रेहड़ी लगाने वाले, अधिकतर गाँवों से पलायन करके शहरों में रोज़गार की आकांक्षाओं वाले लोगों का समूह है जो कि परिवार के भरण-पोषण हेतु शहरों में बदतर स्थिति में जीविकोपार्जन के लिए विवश है। अत: रेहड़ी वाले स्वरोज़गार के माध्यम से न केवल अपनी रोजी-रोटी कमा रहे हैं बल्कि उपभोक्ताओं को सस्ते दर पर उनकी सहूलियत वाली जगह पर सामान उपलब्ध कराकर देश की अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका भी निभाते हैं।

2.इमा बाज़ार इम्फाल: एक परिचय- इमा बाज़ार इम्फाल शहर के एकदम बीचोबीच स्थित है। इस बाज़ार को कई नाम से जाना जाता है जैसे कि "इमा कैथल" "इमा मार्किट" "नुपी कैथल" तथा इमा बाज़ार एवं "खोइरम्बन्द बाज़ार"। मणिपुरी में इमा शब्द का मतलब "माँ" या "माता" होता है और 'कैथल' शब्द का मतलब 'बाज़ार'। इसलिए इमा कैथल का मतलब वह बाज़ार जो कि माताओं द्वारा संचालित है। नुपी शब्द का मतलब भी 'बहन' होता है अत: नुपी कैथल का मतलब बहनों द्वारा संचालित बाज़ार। फिलहाल यह एशिया का सबसे बड़ा बाज़ार है जो कि महिलाओं (इमा) द्वारा संचालित किया जाता है। इम्फाल का मुख्य बाज़ार होने के नाते यहाँ पर हर प्रकार का सामान मिलता है और यह व्यस्त बाज़ार है। यहाँ पर पुरुष दुकानदार नहीं पाए जाते, इसीलिए पर्यटन के आकर्षण का एक केंद्र बिंदु भी है। यह बाज़ार 16वी में स्थापित किया गया था जिसमे पाँच से छह हजार महिलाए भिन्न भिन्न सामानों का विपणन करती थी। यह बाज़ार ही हमारे शोध का मुख्य स्थान है, जहाँ पर रेहड़ी लगाने वाली महिलाओं का अध्ययन किया गया है।

3.मणिपुर हिंसा 2023- मणिपुर राज्य अन्तराष्ट्रीय सीमावर्ती राज्य होने के कारण समय समय पर राजनैतिक तथा अन्तराष्ट्रीय हलचलों की वजह से संवेदनशील बना रहता है। हाल ही में हुए मई 2023 के हिंसक दंगों ने राज्य को देश विदेश की सुर्ख़ियों में चर्चित कर दिया। यह हिंसा मणिपुर इतिहास की सबसे घातक तथा अतिसंवेदनशील घटना रही। इस हिंसा का मूल दो समुदायों के बीच हिंसक मार-काट की वारदात रही जिससे की जन-जीवन पूरी तरह अस्त-व्यस्त हो गया। पुरे राज्य में कर्फ्यू लग गया जो कि महीनों तक चलता रहा। इस घटना का बुरा असर बाज़ार पर भी पड़ा। सारे बाज़ार अनिश्चित काल के लिए बंद हो गए और कभी खुले भी तो अकस्मात् बंद होने की आशंका रही। ऐसी परिस्थिती में रेहड़ी लगाने वाली महिलाओं की रोजी-रोटी पर बुरा असर पड़ा। यह हिंसा इतनी भयावह थी कि शुरूआती दो तीन महीनों तक अनिश्चितताओं का दौर रहा जिसमे कि बाज़ार के खुलने तथा लगने का कोई अता-पता नहीं रहा। इस हिंसा के तुरंत बाद विभिन्न प्रकार के सामाजिक विरोध प्रदर्शनों की वजह से भी बाज़ार का संचलन प्रभावित रहा। अभी तक भी हिंसा का कोई समाधान नहीं हो पाया है और एक अप्रत्याशित डर हमेशा बाज़ार में छाया रहता है जो कि रेहड़ी लगाने वाली महिलाओं के लिए उत्तम नहीं है। ऐसी परिस्थिति में यह महिलाएँ उतरोत्तर आर्थिक तथा मानसिक दबाव महसूस कर रही हैं और कमज़ोर होती जा रहीं हैं। हमारी शोध की प्रतिभागी, जो कि सब्जी बेचने का कार्य करती है उन्होंने बताया कि उनकी आय बहुत बुरी तरह प्रभावित हो गई है और वह अपने परिवार का भरण-पोषण उधार माँगकर कर रही है। इस प्रकार का उधार भविष्य में वित्तीय बोझ बन जाएगा। फलत: हिंसा का प्रभाव न सिर्फ सुरक्षा विषयों तक व्याप्त है बल्कि इसकी वजह से रेहड़ी लगाने वालों की आर्थिक असुरक्षा तथा मानसिक तनाव भी उत्पन्न हुआ है।

4.कार्यस्थान तथा परिवेश- कार्य में संलग्न होना मनुष्य को सुख की अनुभूति प्रदान करता है। कार्य मंर संलग्नता हमारे चित्त को एकाग्र करती है और हमारी सृजनात्मकता को उतकृष्ट करती है। कार्य करने का आनंद तब और बढ़ जाता है जब कार्य करने का स्थान शांत, स्वच्छ तथा अनुकूल हो। एक सौहार्द परिपूर्ण परिवेश हमारी उत्पादन क्षमता, कार्य कुशलता तथा कार्य निपुणता के संवर्धन में सहयोग करता है। कार्य पूर्णता हमको संतुष्टि प्रदान करती है जिससे हमारा चित्त आनंदित हो जाता है। परन्तु कल्पना करिए जहाँ रेहड़ी वाले कार्य करतें हैं वह परिवेश कैसा है ? यह कार्य स्थान बाज़ार होने के नाते शोर-शराबे से भरा रहता है और ध्वनि, धूल तथा धुएँ से परिपूर्ण रहता है। चूँकि व्यवसाय सड़क पर किया जाता है और सड़क पर स्थान की कमी रहती है अत: सारा सामान सुबह बाज़ार में लाया जाता है और अंत में जो नहीं बिका उसको पुन: वापस ले जाया जाता है। सड़क पूरी तरह से यातायात साधनों से भरी रहती है जिससे लगातार उच्च तीव्रता की ध्वनि होती रहती है। वाहनों से उत्सर्जित धुँआ बहुतायत मात्रा में मौजूद रहता है। इतना ही नहीं, जगह-जगह पर कूड़ा करकट का ढेर लगा रहता है। स्वच्छता की अत्यंत कमी है। इसी दूषित वातावरण में वे सब आठ से दस घंटे कड़ी मेहनत करने के लिए बाध्य है। लगातार ऐसे वातावरण में काम करने से उनके शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक स्वास्थ्य पर असर पड़ता है। इस बाज़ार में एक भी साफ़-स्वच्छ शौंचालय उपलब्ध नहीं है और महिलाएँ गन्दगी भरे जगह में नित्य कर्मों के लिए मजबूर हैं ((गौतम, ए. व बाघमारे एस के 2021))। सुबह तथा दोपहर का भोजन अनिश्चित है या फिर बाज़ार की दुकानों पर निर्भर करता है। इस तरह से उनका खान-पान भी प्रभावित रहता है। अंतत: यह निष्कर्ष निकलता है कि दूषित वातावरण, प्रदूषित वायु, तथा व्यस्त दिनचर्या, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए अनुकूल नहीं है। इसके चलते इनमें तनाव, सिरदर्द, एवं उच्च-रक्तचाप के संभानाएँ ज़्यादा बढ़ जाती हैं (साहा, डी . 2011)।

5.सुरक्षा तथा सुरक्षा बलों से समस्या- मनोविज्ञान में भी माना गया है कि इन्सान को सुचारू रूप से कार्य करने के लिए सुरक्षा की भावना की अतिआवश्यकता है और यह सुरक्षा कई स्तरों पर हो सकती है जैसे की आर्थिक सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा, भावनात्मक सुरक्षा जीवन तथा जान माल की सुरक्षा। यहाँ तक की मनोवैज्ञानिक अब्राहम मासलो (1943) का मानना है कि इन्सान में एक सतत उतरोत्तर प्रगति की प्रवृति होती है जिसका संवर्धन तभी संभव है जबकि निचले स्तर की आवश्यकताओं की पुर्ति एक स्तर तक हो। उन्होंने पाँच स्तर की ज़रूरतों पर ज़ोर दिया है जिसमे सबसे निचले स्तर पर है जैविक क्रियाएँ जैसे की भूख-प्यास की ज़रूरतें, दुसरे स्तर पर हैं सुरक्षा ज़रूरते, तीसरे स्तर पर है संबंध तथा सामाजिक ज़रूरतें, चौथे स्तर पर हैं सौंदर्य-बोध बिषयक ज़रूरतें तथा पाँचवे स्तर पर हैं परलौकिक

श्रेष्ठता स्वादन ज़रूरतें। चित्त का संवर्धन तभी संभव है जब निचले स्तर की ज़रूरतें एक हद तक पूरी हों अन्यथा चित्त इन्हीं ज़रूरतों में लगा रहता। यदि इस दृष्टि से हम रेहड़ी वालों की दशा पर प्रकाश डालें तो पता चलता है कि वे निचले स्तर की ज़रूरतों में ही जीवन भर संघर्ष करते रहते हैं। उनका चित्त उच्च स्तर ज़रूरतों की ओर उन्मुख हो पाने के लिए स्वतंत्र नहीं हो पाता। रोटी-कपडा तथा रोज़मर्रा की ज़रूरतों में ही जीवन व्यतीत हो जाता है

हिंसा के बाद सुरक्षा के इंतज़ाम और ही बढ़ गए हैं। ऐसे अत्यंत तनाव पूर्ण माहौल में रेहड़ी लगाना चुनौतीपूर्ण है। सड़क पर व्यवसाय करने के लिए कुछ तय धनराशि इन सुरक्षा बलों को भी देनी पड़ती है जो की पूर्णत: गैर कानूनी है।। सुरक्षा व्यवस्था की अपनी अलग मजबूरी है की उनको रेहड़ी वालों को व्यवस्थित रखकर शहर के परिवहन को सुचारू रूप से चलाना भी है। इसी जद्दोजहद में टकराव तथा तनाव का डर हमेशा बना रहता है। कई बार ऐसी स्थिति पैदा होती है की रेहड़ी वालों का सामान सुरक्षा कारणों के चलते फ़ेंक दिया जाता है या तो फिर पूरी तरह से नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जाता है। जिसका असर रेहड़ी वालों की दैनिक आय से लेकर मानसिक स्वास्थ्य तक पड़ता है (प्रसाद आर वि व शुभाशिनी डी, 2019)। अत: हर दिन का डर, सामान बेचने की जद्दोजहद, सुरक्षा बलों का उत्पीडन, के बीच कमाई करना तथा परिवार का पालन-पोषण का एक सतत मनोवैज्ञानिक तनाव है।

6.भ्रष्टाचार तथा औपचारिक समस्याएँ- समान अवसर के अधिकार, गरिमामय जीवन यापन या फिर सामाजिक न्याय की परिकल्पना अधूरी साबित होती है जब रेहड़ी लगाने वालों के संघर्षों का अवलोकन होता है। केंद्र सरकार ने रेहड़ी वालों की दशा सुधारने के लिए वर्ष 2014 में पथ विक्रेता (जीविका संरक्षण और पथ विक्रय विनियम) अधिनियम पारित किया तथा उनके अधिकारों को सुरक्षित करने का प्रावधान बनाया। परन्तु इसके बावजूद भी रेहड़ी लगाने वालें विभिन्न प्रकार के उत्पीडन तथा भ्रष्टाचार के शिकार हो जातें हैं। इस शोधकार्य से यह पता चला है कि कुछ धनराशि हर दिन सुरक्षा कर्मियों को देना पड़ता है ताकि वह अपना व्यवसाय सड़क पर कर सकें। उनकी आय का लगभग 10 से 20 प्रतिशत इसी प्रकार के भ्रष्टाचारों में चला जाता है (गौतम, ए. व बाघमारे एस के 2021)। महिलाओं ने बताया कि कुछ धनराशि उस दुकानदार को भी देना जिसके सामने सड़क पर अपनी रेहड़ी लगाती हैं। एक निश्चित धनराशि मार्किट कमेटी को भी देना पड़ता है। इसके अलावा भी कई अन्य अपरोक्ष घटकों तथा समूहों को पैसा देना पड़ता है जो की मजबूरी है अन्यथा बाज़ार में रह पाना दूभर हो जाएगा। ऐसे वातावरण में व्यवसाय करना और गरिमामयी कमाई करना अपने आप में एक संघर्ष है और यह संघर्ष रोज़ का है।

7.जीवन की आशाएँ एवं अकंट जीवन की अभिलाषाएँ- रेहड़ी लगाने वालीं महिलाओं का जीवन संघर्षों से आच्छादित है, जीवन चुनौतियों का अम्बार है जहाँ पर मानसिक संतुष्टि की लेशमात्र जगह है। इसके पश्चात भी उनका जीवन चलायमान है और अंततोगत्वा जीवन को आगे बढाने की अभिलाषा है। इन सब चुनौतिओं, तनावों तथा संघर्षों के बीच ऐसी क्या संबल-शक्ति है जो कि रेहड़ी लगाने वालों के जीवन में अभिप्रेरणा का संचार करती है ? वह कौन सा बल है जो उनके जीवन को आगे आशाओं के साथ खींचता चला जाता है ? क्या कुछ जीवन में रस है या नहीं ? इन सबका सबसे सरल एवं सटीक उत्तर है पारिवारिक जिम्मेदारी और परिवार के बेहतरी के लिए उत्साह। लगभग सभी महिलाओं के वृतांत से उजागर हुआ कि पारिवारिक जिम्मेदारियाँ, अपने बच्चों का उज्वल भविष्य संवारना, जीवन को बेहतर बनाने की आशा, आर्थिक स्वनिर्भरता की आकांक्षा ही वह प्रेरक है जो कि उनके जीवन को चलायमान और अकंट बनाए रखने में सार्थक है। सहयोगियों द्वारा किया गया सहयोग, आपसी समुदाय व समरसता की भावना ही बाज़ार में काम करने के लिए अभिप्रेरणा देती है।

8.उपसंहार- रेहड़ी लगाना असुरक्षा और अनिश्चितता के बीच व्यवसाय करना और जीविका उपार्जन का साधन है परन्तु यही चुनौती ही जीवन को जीवन बनाने में कारक सिद्ध होती है। प्रमुखत: इनकी जिजीविषा अद्भुत है जो की उनको शारीरिक तथा मानसिक संबल प्रदान कर जीवन को महत्त्वपूर्ण व गरिमामयी करती है।

संदर्भ- Gautam, A. & Waghmare, B.S. (2021): The Plight of Street Vendors in India: Failure of Urban Governance and Development. Economic & Political Weekly, Vol. LVI, No. 45 & 46, PP 60-67. Maslow, A. H. (1943): A Theory of Human Motivation. Psychological Review, 50, PP 370-396. Panwar, M. & Garg V. (2015): Issues and Challenges faced by Vendors on Urban Streets: a case of sonipat city, india. International Journal of Engineering Technology, Management and Applied Sciences, Vol. 3, Issue 2, PP. 71-84. Prasad, R.V. & D. Subhashini (2019): Women street vendors, Challenges and Opportunities : A Superlative analysis with special reference to Chittor District of Andhra Pradesh, India. International Journal of Innovative Technology and Exploring Engineering, Vol. 8, Issue 9S3 PP. 409-418, Saha, D. (2011): Working life of Street Vendors in Mumbai. Indian Journal of Labour Economics, Vol. 54, No. 2, PP 301-325., Street vendors feel vulnerable after COVID, despite govt. loans (2024): https://www.thehindu.com/news/national/street-vendors-still-feel-vulnerable-after-covid-despite-government-loans/article67421002.ece, Accessed on 25th January 2024 at 12.00 hrs. Street vendors, a neglect a lot (2024): https://www.thestatesman.com/supplements/nbextra/street-vendors-neglected-lot-1502770795.html Accessed on 25th January 2024 at 12.00 hrs., रेहड़ी फेरीवाले: असुविधा और अभावों के बीच असुरक्षित भविष्य की दुनिया (2024): https://www.amarujala.com/columns/blog/street-vendors-in-india-problem-causes-and-effects-a-study-on-problems-faced-by-the-street-vendors Accessed on 24th January 2024 at 11.00 hrs.

(शोध आलेख)

राख भउर आग के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक विसंगतियों के विरुद्ध नारी का सामाजिक संघर्ष

शोध लेखक : राजेश कुमार

शोध निर्देशक : डॉ. उषा रानी
स्नातकोत्तर भोजपुरी विभाग
असिस्टेंट प्रोफेसर, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा हिन्दी विभाग

राजेश कुमार
ग्राम- बनजरिया, पोस्ट- मुरार डी. के. कॉलेज, डुमराँव, जिला- बक्सर (बिहार) 802127
मोबाइल-9798053312,8789230750
ईमेल- adityay330@gmail.com

सारांश- 'राख भउर आग' एक जनवादी उपन्यास है जिसे भोजपुरी के बहुचर्चित उपन्यासकार डॉ. अरुण मोहन 'भारवि' द्वारा लिखी गई है। इस उपन्यास में लेखक ने जनता की समस्या को कथात्मक सूत्र में पिरोकर जनता के सामने रखा है। सामन्ती जमींदारों के अत्याचार किसान ग़रीब मजदूरों पर होता रहा है, किन्तु इस खूनी अत्याचार को लेखक ने यथार्थ ढंग से उठाने का प्रयास किया है। शेरपुर की घटना इसी प्रकार की घटना है जहाँ सामन्ती, दबंग, बाहुबल, भूमिसेना द्वारा सामुहिक खूनी खेल, स्त्रियों पर अत्याचार कर पूरे गाँव में आग लगाकर सम्पूर्ण ग्राम को आग के हवाले कर बच्चे-बूढ़े सहित 12 दलित हरिजनों को जिन्दा आग में झोंक दिया जाता है। इसमें उपन्यास की नायिका 'परबतिया' का सुहाग उजड़ जाता है और उसके दूध मुँहे बच्चे को भी धधकती आग में झोंक दिया जाता है। यह देश की पहली जातीय हिंसा, वर्ग-संघर्ष है। भूमिसेना के इस खेल को लेखक ने स्पष्ट रूप में प्रकट किया है। यह कथा यथार्थ पर आधारित है। मरने वाले मर गए, तमाशा होता है। मजदूर एकता का केवल नारा लगता रहा, पुलिस जुल्म होता रहा, सामन्ती अत्याचार चलता रहा। न्याय के लिए न्यायालयों में लोग घूमते रहे, थकते रहे, मरते रहे, नेता अपनी रोटी सेंकते रहे, धनहीनों को मिला क्या? इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने शेरपुर गाँव की सच्ची घटना को प्रकट करने में भरपूर सफलता पाई है। कैसे एक नारी (परबतिया) अपने ऊपर हुए जुल्म से उठकर पूरे समाज की आवाज़ बनती है और उस समाज का नेतृत्व भी करती है। कैसे एक नारी सामाजिक बदलाव के लिए संघर्ष करती है बखूबी डॉ. भारवि ने एक-एक कर उजागर किया है। घटना और घटना के बाद की घटना सिनेमा के रील की तरह आगे बढ़कर घटना के सभी रूप को उद्घाटित करती है।

की वर्ड- जनवादी, वर्ग संघर्ष, नारी संघर्ष, जमींदार, ग़रीब, धन, दौलत, अत्याचार, मजबूर, राजनीति, आंदोलन, समाज, हिंसा

आलेख- 'राख भउर आग' भोजपुरी के चर्चित उपन्यासकार डॉ. अरुण मोहन 'भारवि' द्वारा लिखित भोजपुरी का प्रगतिशील चेतना से लैस जनवादी उपन्यास है। यह उपन्यास 'अरुणोदय प्रकाशन' बक्सर से 1985 ई. में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास जातीय हिंसा, वर्ग-संघर्ष पर आधारित है, जिसे उपन्यासकार भारवि ने अपनी लेखनी के माध्यम से इस 'वर्ग संघर्ष' को पाठकों के सामने उपन्यास के माध्यम से पहुँचाने का काम किया है, जिससे लोग आज भी यह जान सके की अपने देश के अंदर ऐसा भी होता रहा है। डॉ. भारवि इस घटना से काफी मर्माहत होकर अपनी साहित्यिक साधना से 'राख भउर आग' नाम देकर एक पुस्तकाकार उपन्यास के रूप देने का काम किए हैं। डॉ. अरुण मोहन 'भारवि' भोजपुरी के नामचीन उपन्यासकार बहुआयामी व्यक्तित्व सम्पन्न रचनाकर हैं। भोजपुरी साहित्य के क्षेत्र में भारवि का अहम योगदान है। भोजपुरी उपन्यासों में डँहकत पुरवइया, परशुराम, करेजा के काँट, राख भउर आग जैसे सामाजिक, पौराणिक, जनवादी, यथार्थवादी उपन्यासों की रचना की है। इनकी भोजपुरी उपन्यासों को यदि देखा जाए तो समाज के अंदर घटित घटनों पर ही आधारित है, उन्हीं में से एक प्रमुख जनवादी उपन्यास है 'राख भउर आग' जो शेरपुर में घटित वर्ग संघर्ष पर आधारित है।

उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिला में एक बड़ा गाँव 'शेरपुर' जहाँ हिंदुस्तान में शायद पहला जातीय हिंसा हुआ था, जिसमें हरिजन टोला में सामन्ती जमींदार (जाति, बाहुबल और धनबल में) लोगों द्वारा गाँव में आग लगाकर 12 हरिजनों को जिन्दा आग में जला दिया जाता है। क्या बच्चे, क्या बूढ़े, क्या औरत क्या जवान किसी के ऊपर दया तक नहीं आता। जब ऐसी घटना घटती है तब पुलिस का वास्तविक रूप प्रकट होता है, नेताओं की वास्तविकता सामने आती है, पत्रकारों की नाटकीयता दृष्टिगत होती है और ग़रीब अन्ततः न्याय माँगते-माँगते ग़रीब ही रह जाता है और मर जाता है। सरकारी आश्वासनो के अतिरिक्त उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता। यह क्रूर हत्याकांड 1971 में हुआ था। ऐसा लगता है की इस घटना ने डॉ. अरुण मोहन 'भारवि' को अंदर तक हिला कर रख दिया था जिसके बदौलत 'राख भउर आग' लोगों के सामने है। आजादी की लड़ाई में अंग्रेजों की गोली से मरने वालों में शेरपुर के शहीदों का भी नाम सुनहरे अक्षरों में लिखा गया है। यह इतिहास के पन्नों में दर्ज है की आजादी की लड़ाई में जाति, वर्ग और वर्ण नहीं रह गया था। सब लोग एक होकर लड़ते रहे तभी जाकर देश अंग्रेजों की गुलामी से आज़ाद हुआ। शेरपुर आजादी के लड़ाई में गाजीपुर का सबसे मशहूर गाँव रहा है। चौबीस वर्ष आजादी मिलने के बाद 1971 में घिनौना दाग शेरपुर गाँव के माथे पर लग गया।

महेंदर सिंह, जोगिंदर सिंह, रविंदर सिंह वगैरह गाँव के मनबढ़ू, बाहुबल, सामन्ती जमींदार अपने आप को बड़े जाती मानने वाले निम्न सोंच के लोग हैं। गाँव के ग़रीब, अनपढ़, लाचार, लतमरुआ हरिजनों के ऊपर इन लोगों का अपनी जमींदारी का रौब है। क्योंकि ये अपने को बड़े जाति के लोग मानते हैं ये अधिकार इन लोगों को अपने पूर्वजों से मिला है। दलित पीड़ित मजदूरों से दिन भर काम कराना और शाम को पैसे के बदले गाली-गलौज सुना कर विदाई करना अपना सेखी समझते है। ऐसा लगता है की ये लोग भगवान् के दरबार से ही बड़े और ग़रीब लोग असहाय, दूसरे की दया से जिनेवाले बन कर आए हैं। इन लोगों के पास धन-दौलत और चमचों की कमी नहीं है और कोई दो जून चूल्हा फूँकने में ही अलचार, परेशान है। कमाएगा तो खाएगा नहीं तो खाली पेट सो जाएगा। इन लोगों के मुँह से कभी मीठी बोली नहीं निकलती जब निकलती है तो मिर्ची की तरह तीखा ही, सुन कर अंदर से मन छनछना जाता है, झनझना जाता है। अगर कोई दिनभर काम करे और रात में भूखे सोए तो उसके दिल पर क्या बीतती है यह तो वही जानेगा जिसके ऊपर बीतती है। एक कहावत है- "ऊ का जानल पीर पराई, जेकरा पाँव न फटी बेवाई।"

ऐसा ही एक दिन की घटना है 'झमना' जो मजदूरी करता है, महेंदर सिंह के खेत में दिनभर काम करता है और शाम को जब अपनी मजदूरी माँगने आता है तो महेंदर सिंह उससे इधर-उधर की बात कर गाली-गलौज देने लगता है विरोध करने पर दो-चार झापड़ भी खींच देता है, मनबढ़ू जो है। चींटी पर जब दबाव पड़ता है तो वह भी काटने की कोशिश करती है, जब की आदमी तो आदमी है। मरने वाला कुछ भी कर सकता है। गुस्से में आकर झमना ने आव देखा ताव देखा एक बाल्टी उठा कर महेंदर सिंह को मार देता है। अब क्या पूरा राजपूत समाज में तहलका मच गया। बैठकें होने लगी, थाना-पुलिस को मिला कर बदला लेने का प्लान बनाने लगे।

'राख भउर आग' भारतीय ग्रामीणों में पनप रहे वर्ग संघर्ष की कठोर और विद्रूप सच्चाई को उजागर करता है। तब केवल शेरपुर ऐसा एक हीं गाँव था जहाँ जाती संघर्ष को वर्ग संघर्ष में तब्दील कर दिया गया था। स्वर्ण समर्थ और तथा कथित बाहुबलियों द्वारा दलितों के अत्याचार की ख़ौफ़नाक तस्वीर शेरपुर घटना से उजागर होती है जो प्रदेश ही नहीं पूरे देश को अंदर से हिला कर रख देती है। इस घटना में दबंगों द्वरा दलितों के पूरी बस्ती को घेर कर बड़े ही वीभत्स एवं निरशंस ढंग से आग के हवाले किया गया था। दलितों के घरों की कुंडी बाहर से बंद कर घरों में आग लगा दी गई थी और लोग जिन्दा जलने पर मजबूर थे। जो बचकर भागने की कोशिश करते थे उनपर लाठियों, भालों और बंदूकों से कातिलाना हमला किया जाता था। देखते ही देखते पूरी बस्ती का लंका दहन हो गया था। स्त्री, पुरुष, बच्चे और जवान बारह लोगों की लाशें घटना के बाद घटना की दर्दनाक, भयावह मंजर की चीख-चीख कर गवाही दे रही थी। गाँव के मजदूर 'मंगरा' और उसके 'नवजात शिशु' की हत्या से उसकी पत्नी 'परबतिया' का न केवल सुहाग उजड़ गया वरन उसकी गोद भी सुनी हो गई। दलितों को लगा उनका जन नाली में कीड़ों की तरह पैदा हुआ है और उसी में जीना मरना उनकी त्रासदी भी है और नियति भी। घटना बड़ी थी, बहुत बड़ी थी तो स्वाभाविक है की उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही बड़ी होगी। घटना के बाद राजनीति का बाज़ार, भाषण का व्यापार और दलितों के रहनुमा बनने की होड़ शुरू होती है। लोगों मे वैचारिक जागरण की सुगबुगाहट तेज़ होती है। 'परबतिया' जिसकी इस हत्या कांड में सुहाग उजड़ गया था, माँग का सिंदूर धूल गया था, वह दुख और वेदना से जड़मति और जड़त्व हो गई थी। 'परबतिया' दलितों को जगाने, इस अत्याचार के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने के लिए आगे बढ़ती है और यहीं से प्रारंभ होता है 'राख भउर आग' में नारी संघर्ष की दास्तान की स्वर्णिम गाथा।

लेकिन इस स्वर्णिम गाथा के अंत भी 'परबतिया' की हत्या से होती है और एक बार फिर दलित समाज सामन्ती बाहुबलियों के शोषण और अत्याचार से पराजित दिखाई देता है। 'परबतिया' वर्ग संघर्ष की नई गाथा लिखती है, नई कहानी गढ़ती है। अपने त्याग, परिश्रम और अपने अनवरत संघर्ष के बलबूते पर वह सामन्ती दबंग समाज के प्रतिनिधियों महेंद्र सिंह, योगेंदर सिंह, रविंदर सिंह के विरुद्ध जेहाद छेड़ देती है। 'परबतिया' के भाषण को सुनने लिए गाँव-जवार से लोग जुटने लगते हैं और धीरे-धीरे 'परबतिया' पर नेतृत्व क्षमता की परवान चढ़ने लगती है। वह मनबढ़ू और सामन्ती प्रवृति के लोगों के ख़िलाफ़ अनावरत शंखनाद करने लगती है, तब तक करती है, जब तक उसके शरीर में खून की एक बूँद भी शेष रहती है।

परबतिया नारी संघर्ष के तेज़ और बगावत के पर्याय बनकर समाज के सामने आती है। वह नारी संघर्ष और नारी जागरण के साथ ही नई रौशनी की झलक से दलितों के मन मस्तिष्क को झकझोरने में कामयाब होती है। 'परबतिया' दलितों के आंदोलन का नेतृत्व बखूबी निभाती है, 'परबतिया' के संघर्ष ने उसमें नया तेज़ और नई आग प्रज्वलित करती है। वह नारी कम और आग का गोला ज़्यादा दिखाई देती है। वह जगह-जगह घूम-घूम कर लोगों के बीच न केवल दलित जागरण का शंखनाद करती है। उसके भाषण का एक अंश उसके मन मस्तिष्क में कौंध रहे अत्याचार की बानगी प्रस्तुत करता है-

"अब हमें जागना होगा और कमर कसना होगा क्योंकि अपना हाथ जगरनाथ है। हम तैयार हैं अब मैं चैन से नहीं बैठूंगी। आख़िर कैसे चैन से बैठूं? मेरा माँग उजड़ गया, दुधमुहें बच्चे को आग में झोंक दिया गया। आख़िर मेरे साथ कौन सा कुकर्म नहीं किया गया? मैं गाँव-गाँव, गली-गली जाकर अलख जगाऊँगी और आप सभी से भी फरियाद कर रही हूँ। एक माँ अपने बेटे से दूध का, बहन अपने भाई से राखी का लाज रखने के लिए विनती करती है। चीर लुटा रहा है, बहन भगवान् कृष्ण से गुहार लगा रही है। द्रौपदी पांडवों को लरकार रही है। जो मर्द है वह सामने आए जो वीर है वह बढ़ कर लाज बचाए। आओ साथ चले और सड़े-गले व्यवस्था को तहस-नहस कर एक नया समाज बनाया जाए जहाँ महिला की इज्जत न लुटाए। कमज़ोर को मजबूत न सताए, शोषक और शोषण दो वर्ग ना हो, सब मेहनत करे और भर पेट खाए। कोई भूखा पेट ना सोए और ना कोई खाते-खाते मरे। हो सकता है की ऐसा समाज हम लोग अपने ज़िंदगी में ना देख पाएँ लेकिन आने वाली पीढ़ी तो ज़रूर देखेगी।"

इतिहास गवाह है, की सर्वहारा का बलिदान व्यर्थ नहीं जाता। 'परबतिया' के पति को मार दिया जाता है और दुधमुहें बच्चे को आग में झोंक दिया जाता है, सभी टुकुर-टुकुर देखते रह जाते हैं, उसकी इज्जत लुट गई, तब जाकर दलितों की आँख खुलती है और लगता है की अन्धे बन कर रहने से अब काम नहीं चलने वाला, अब तो आँख खोलना हीं पड़ेगा। अब जीना है तो पैरों तले दब कर नहीं, अपनी बेटी बहनों की इज्जत बेचकर नहीं। आख़िर हम भी तो भारत के नागरिक हैं, जिसे संविधान के अनुसार जीने, कमाने, खाने और रहने का बराबर का अधिकार है। इस अधिकार को अब लेना ही पड़ेगा। सामन्ती सोंच और प्रतिक्रियावादी लोग इसे देना तो नहीं चाहेंगे, लेकिन अब हमे इसे लेना ही होगा ये हमारा अधिकार है। सीधी उँगली से घी नहीं निकलता उसे भी टेढ़ा करना होता है, इसके लिए एकता और जनशक्ति की ज़रूरत है। ख़ुद आगे बढ़कर अपना हक लेना होगा। अगर माँगने से नहीं मिलेगा तो छीनने की ताकत रखनी होगी। यह तय हुआ उस समाज में जो आज तक अपना सब कुछ जला कर ठंढा पड़ गए थे और इसकी अगुवानी किया 'परबतिया' जिसका इस दुनिया में आगे-पीछे अपना कहलाने वाला कोई नहीं रह गया था। जगह-जगह सभा होने लगी। सामन्तों के ज़ोर-जुल्म और पुलिस की मिली-भगत का अब पर्दाफाश होने लगा तब जाकर पता चलता है की दुनिया क्या है। अनाचार और अत्याचार के ख़िलाफ़ अब लड़ जाते हैं, धीरे-धीरे इनकी संख्या बढ़ने लगती है और देखते-देखते सावन की घटा की तरह आस-पास में छाकर गरजने लगता है।

अबतक इस दल में सिपाही महतो, झमन, चिखुरी, शनीचरी और परबतिया जैसे अनपढ़, सीधा-साधा लोग थे, लेकिन जब हवा चली और समय का तकाजा हुआ तो विधाधर चौधरी और आदित्य जैसे बुद्धिजीवी शिक्षक, पत्रकार लोग भी साथ आने लगे। जिस 'परबतिया' का अपना कोई कहलाने वाला नहीं था, वही 'परबतिया' सभी की अपनी हो गई।

और अंत में हम देखते हैं की परबतिया दलितों का नेतृत्व करते हुए भले हीं शहीद हो जाती है लेकिन उसका बलिदान निरर्थक नहीं जाता और उसके बलिदान की प्रतिक्रिया स्वरूप दबंगों और बाहुबलियों के लंका दहन की शुरुवात हो जाती है।

निष्कर्ष- डॉ अरुण मोहन भारवि के चर्चित उपन्यास 'राख भउर आग' के पूर्व भोजपुरी में जो उपन्यास प्रकाशित हुए थे उनमें से प्राय: सभी के सभी आदर्शवादी पृष्टभूमि की धरातल पर खड़े थे। पहली बार उपन्यासकार भारवि ने 'राख भउर आग' के माध्यम से भोजपुरी उपन्यास को नई धरातल उपलब्ध कराने का काम किया है। यहीं से भोजपुरी उपन्यास का चेहरा बदलता है, चाल बदलता है और चरित्र भी बदलता है। 'राख भउर आग' से भोजपुरी में पहली बार गावों में जो प्रेम, सौहार्द, भाईचारे कलपित कहानियाँ सुनाई जाती थी उसके बदले गाँव की रुखर धरती पर कटीले पगडंडियों पर गाँव वैमानिस्य जातीय संघर्ष, वर्ग संघर्ष, शोषण, अत्याचार के सणांद की बदबूदार कहानी भोजपुरी पाठकों के सामने परोसी गई है। जिसमें स्वर्ण दबंगों, बाहुबलियों द्वारा दलितों पर, उनकी स्त्रियों पर, उनके बच्चों पर और बुजुर्गों पर भी अथक अनकहि दास्तान को प्रथम बार रेखांकित और उजागर किया गया है। सम्पूर्ण उपन्यास नारी प्रधान है और इसकी नारी 'परबतिया' एक जुझारू, संघर्षशील, तेजस्विनी नारी के रूप में भोजपुरी पाठकों के सामने अपना परचम लहराते हुए दूसरी झाँसी की रानी बनती हुई दिखाई देती है।

000

संदर्भ- 1.राख भउर आग- डॉ अरुण मोहन 'भारवि'- अरुणोदय प्रकाशन- 12, 2.राख भउर आग- वही- वही 52, 3.मुट्ठी भर भोर- वही- वही 09, 4.कहानी कमाल के- वही- वही 06, 5.त्रिवेनी- डॉ. त्रिलोकीनाथ पाण्डेय- वही 15, 6.त्रिवेनी- वीरेंद्र पाण्डेय- वही 210, 7.त्रिवेनी- कृपाशंकर प्रसाद- वही 218, 8.गधपूरना, पत्रिका नवंबर-2019- डॉ. नीरज सिंह वही 27, 9.गधपूरना, पत्रिका मार्च-2021- डॉ. अर्जुन तिवारी वही 09, 10.जब तोप मोकाबिल हो- महेश्वराचार्य वही 08, 11.स्मारिका, प्रणव चटर्जी महाविद्यालय, बक्सर- वही वही 12, 12.शोध-निबन्ध- तारकेश्वर मिश्र- वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा 25

(शोध आलेख)

विधवा जीवन की करुण गाथा- मोक्षवन

शोध लेखक : डॉ. मेरली. के.पुन्नुस,
सहायक आचार्य और शोध मार्गदर्शक, सेंट स्टीफेंस कॉलेज, उषवूर -केरल
मोबाइल- 9447589516

पूरे कायनात में लिंग के आधार पर स्त्री और पुरुष की पहचान के अलावा किसी दूसरे की पहचान को समाज नकारता आया है। पुरुष की श्रेष्ठता का बखान करनेवाला पितृसत्तात्मक समाज स्त्री की मानवीय पहचान पर प्रहार करता रहा है। फलस्वरूप स्त्री सबसे निचले पायदान पर खड़ी अपने अधिकारों के लिए गुहार लगा रही है। लिंग के आधार पर समाज में कायम जेंडर बायस ही स्त्री की बद से बदतर हालत के लिए जिम्मेदार है। फ्रेंच लेखिका 'सिमोन द बुआर' ने अपनी पुस्तक 'द सेकेंड सेक्स' में लिखा है कि - 'स्त्री पैदा नहीं होती बनाई जाती है'। पितृसत्तात्मक समाज की दोगली मानसिकता, स्त्री के दोयम दर्जे की स्थिति को केन्द्र में रख रचनाएँ की जा रही हैं। लिंगाधारित भेद - भाव को उघाड़ने के साथ साथ इस सच्चाई की ओर इशारा किया जा रहा है कि परंपरा, रीति-रिवाज़, पर्व-त्योहार, धार्मिक ग्रन्थों द्वारा तमाम पाबंदियाँ स्त्रियों पर ही थोपे गए ताकि स्त्री इसे ही अपनी नियति मान उसके हाथों की कठपुतली बनी रहे। वैधव्य को ढोती स्त्रियों के जर्जर जीवन का चित्रण भगवानदास मोरवाल ने अपने उपन्यास 'मोक्षवन' में किया है।

उपन्यास के केन्द्र में विधवा बिजली घोष उर्फ हरिदासी है। परिवार और समाज से बेदखल की गई बिजली घोष नबद्वीप से शान्तिनिकेतन, शान्तिनिकेतन से वृन्दावन के इमलीतला घाट या गौरंग घाट पहुँच जाती है। मात्र विधवा होने के कारण बाउल गायन की उभरती लोक कलाकार बिजली घोष का भविष्य अन्धकारमय बन जाता है। उसके माता-पिता समाज के डर से मजबूर होकर अपनी एकमात्र बेटी को वृन्दावन छोड़ना पड़ता है। सामाजिक मानसिकता के अनुसार विधवा के जीवन का एकमात्र ध्येय मोक्ष हासिल करना है, अन्य सारी बातें उसके लिए गौण हो जाती है। आगे का जीवन आँसू के घूंट पीकर बसर करना है। वृन्दावन पहुँचते ही उसका नाम उससे छीन लिया जाता है। वह बिजली घोष से हरिदासी बन जाती है। यह नाम उसे ब्रह्मचारी मन्दिर अर्थात राधा गोपाल मंदिर के सेवायत जमुनादास ने उसे दिया था। इस सिलसिले में वह सोचती है- "इसकी पहचान दशकों पहले उसी दिन ख़त्म हो गई थी। वह अतीत को याद करना नहीं चाहती जब याद करती है तब भीतर तक सिहरती चली जाती है। यहाँ किसी को किसी के बारे में नहीं पता है।"1 उसका विगत अगर कोई जानता है तो सेवायत जमुनादास ही। अपने अतीत से कोई वास्ता न रख वह अपना जीवन गुज़ार रही है। उसकी तरह पूर्णत: अपने परिवार से बेदखल अनेक विधवा दुखियारियाँ जो कि देश के विभिन्न हिस्सों से मोक्ष की कामना में वृन्दावन पहुँची हैं एक दूसरे के लिए सहारा बनती हैं।

बिजली घोष रानी राशमोनी की वंशज है जो विधवा होने पर भी सामाजिक सीमाओं का अतिक्रमण कर समाज की भलाई के लिए अपना जीवन समर्पित करती है। वह वैधव्य के अभिशाप को ढोने के लिए तैयार नहीं होती। कलकत्ता के हलिसहर में पैदा हुई राशमौनी के विरोध का सामना ईस्ट इंडिया कंपनी को करना पड़ता है। उसका विवाह पन्द्रह साल की आयु में एक अमीर खानदान में राजदास से की जाती है। पति ने उसे अपने कारोबार में शामिल किया और उसका हौसला अफसाई की। पति की मृत्यु के बाद भी वह टूटकर बिखरने के बजाय अपनी चार बेटियों की परवरिश करते हुए पति के कारोबार को आगे बढाती है। निडर होकर अपने हालात का सामना करती है, जबकि बंगाल में एक विधवा का जीवन बहुत ही दुश्वार था। उसे दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं। विधवा होते ही उसके दामन से खुशियाँ छिन जाती हैं, सर के बाल काटने पड़ते हैं और उसके द्वारा साज -शृंगार करने, मांस खाने पर पाबंदियाँ लगा दी जाती हैं। समाज में धार्मिक ग्रंथों का हवाला देकर ऐसी मानसिकता को पुख्ता किया जाता है। मनुस्मृति में लिखा है- "यानी पति की मौत के बाद स्त्री केवल फल-फूल और कन्दमूल खाकर अपना शरीर दुर्बल करे। पराए मर्द को कभी नाम न ले। इतना ही नहीं, वह उम्रभर संयम में रहना चाहिए। इतना ही नहीं हमारे धर्माधिकारियों ने इतनी बिचारी बना दी है कि सारे अमंगलों में सबसे अमंगल बना दी है। मदन परिजात में तो कहा गया है कि विधवा के दर्शन से कोई कार्यसिद्धि नहीं होती है। केवल अपनी माता को छोड़के समझदार आदमी काई विधवा से आशीर्वाद प्राप्त ना करे। विधवा को सिर मुंडाके रखना चाहिए, क्योंकि केश बाँधने से पति बन्धन में पड़ता है। इतना ही नहीं विधवा के पलंग पे सोने से मृत पति को नरक मिलता है।"2 बंगाल के कुलीन ब्राह्मणों में यह मान्यता थी कि विधवा को जीने का कोई हक ही नहीं है इसलिए सती द्वारा फालतू विधवाओं का निपटारा किया जाता है। इस नृशंस हत्या को देखकर राजाराम मोहनराय ने सती का विरोध किया था। राशमोनी, ईश्वरचंद्र विद्यासागर के साथ मिलकर सामाजिक बुराइयों के खात्मे के लिए अपना जीवन समर्पित करती है। वह वैधव्य के अभिशाप भरी नियति को नहीं स्वीकारती। लेकिन उसके वंश में जन्मी बिजली घोष ऐसा हिम्मत नहीं जुटा पाती। बंगाली विधवाओं की तरह मोक्ष की कामना में नबद्वीप से वृन्दावन पहुँचती है।

विधवा होते ही उसका भविष्य मिट्टी में मिल जाता है। वह हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायन और ध्रुपद गायन में प्रशिक्षण लेने के उद्देश्य से शान्तिनिकेतन के संगीत भवन में पहुँचती है। वहाँ उसकी मुलाकात कला भवन में बी. ए फाइन आर्ट्स के ड्राइंग - पेंटिंग कोर्स कर रहे अरुणाभ से होती है। उनकी दोस्ती पति-पत्नी के रिश्ते में बदल जाती है। बिजली घोष हिन्दुस्तानी संगीत के साथ- साथ बाउल का भी अभ्यास करती है। ध्रुपद में भी वह पारंगत हो जाती है। फूलमाला, सनातन दास और गुरु शशांको गोसाई से दीक्षा लेती है। गुरु शाशांको गोसाई से दीक्षा लेते समय वह कई यात्राएँ करती हैं और देशी-विदेशी दर्शकों के सामने बाउल गायन का प्रदर्शन करती है। उसका प्रदर्शन देख बाउल गायन के साम्राट पूर्णचन्द्र से उनका एकतारा भेंट में मिलता है। अवसर का सदुपयोग कर वे दोनों (अरुणाभ और बिजली घोष) अपने कैरियर में आगे बढ़ते हैं। नवंबर में अरुणाभ को ललित कला अकादमी द्वारा दिल्ली में लगनेवाली प्रदर्शनी में हिस्सा लेने का निमंत्रण मिलता है तो बिजली घोष को भी दिल्ली में भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय द्वारा आयोजित भारत महोत्सव में बाउल गायन के लिए निमंत्रण मिलता है। विज्ञान भवन दर्शकों की भीड़ से खचाखच भर जाती है। इस महोत्सव में विभिन्न मंत्रालयों और अनेक देशों के दूतावासों से अतिथियों को आमंत्रित किया जाता है। आगे इंडियन कांउसिल और कल्चरल रिलेशंस (आईसीसीआर) द्वारा रूस में एक यूथ फेस्टिवल का आयोजन किया जाता है तब भी दोनों को प्रदर्शन के लिए आमंत्रित किया जाता है। अचानक सर्पदंश द्वारा अरुणाभ की मृत्यु होने पर बिजली घोष तमाम अवसरों से वंचित रह जाती है। अकेलेपन की काल कोठरी में कैद होकर उसका जीवन वैधव्य के अभिशाप को ढोने के लिए विवश है। अवसर पाते ही वह अपनी क्षमता का प्रदर्शन कर दर्शकों की वाहवाही लूट लेती है। बरसों बाद जब वृन्दावन में बसंत पंचमी पर शाहजी मंदिर के रासमंच पर जब नाटक खेला जाता है तब वह अंग्रेज़ मजिस्ट्रेट की भूमिका अदा करती है। शाहजी मंदिर के

मैनेजर भारत भूषण द्वारा कलाकारों का परिचय दिए जाने पर हरिदासी के बारे में सुनकर कोई विश्वास नहीं करता। कई दिनों

तक वृन्दावन की कुंज गलियों में हरिदासी के अभिनय की चर्चा होती रही। इसप्रकार जीवन के वे सुनहरे पल गुज़र जाते हैं।

विधवा होते ही सफेद वस्त्र पहने, कसैला भोजन खाने, हर पल भजनाश्रम में बिताना ही उसकी नियति बन जाती है। वृन्दावन में हर कहीं सफ़ेद पुतले ही नज़र आते हैं। हाडाबाड़ी की विधवाएँ उसके लिए सहारा बनती है। सब मिलकर आपस में एक दूसरे का सुख - दु:ख बाँटते हैं। भजनाश्रम से भर्ती टोकन के बदले मिलने वाले दाल-चावल के सहारे उनका जीवन बीतता है, बेबस-लाचार इन सफ़ेद पुतलों की सुरक्षा को मद्देनज़र रखते हुए ही 16 वीं सदी के आरम्भ में राजस्थान के शहर नवलगढ़ के सेठ ने तीन लाख रुपयों से इसका निर्माण शुरु किया।

राजस्थान के दूसरे सेठों ने भी भजनाश्रम को डान देना प्रारंभ किया तभी से ये सब यहाँ कीर्तन कर रही हैं। सब साधन - संपन्न परिवार से हैं, लेकिन हालात के मारे हैं। ऐसे लाचार बेबस स्त्रियों को दबोचने के लिए सभ्य समाज जाल बिछाये बैठा है। गौरी दासी एक बाबा के जाल में फँस गई थी और मलिना दासी एक पंडे के चक्कर में। कई दिनों तक बुरा व्यवहार इनके साथ किया गया। दोनों कई दिनों बाद भाग आई। मेघुदासी एक सेठ के भरोसे उसके घर काम करने गई।

एक दिन उसे अकेला पाकर ठाकुर ने धर दबोचा। वहाँ से मेघुदासी भाग आई और तब से हाडाबाड़ी में रहती है। रूपा सेवादासी पुजारी, मन्दिरों-मठ आश्रमों में दान देनेवाले सेठों की सेवा करती थी। यह वही सेवा है जो एक स्त्री को रात में एक मर्द की करनी पड़ती है। एक पुजारी ने वासुदेव दासी को इसी काम के लिए रूपा द्वारा बुलवाया था। लेकिन वासुदेव दासी साफ इनकार कर देती है। अमीर पिता की बेटी होने पर भी विधवा होते ही श्यामा के माता-पिता ने उसे ठुकरा दिया। सीमा चायवाली भी विधवा होते ही दस- बारह लोगों के साथ बिहार से यहाँ चली आई। दर-दर की ठोकरें खाकर भी इन्होने अपनी आबरू बचाये रखा। हर कहीं पुरुष की गिद्ध आँखें उन्हें दबोचने की ताक में रहते हैं। मर्द जंगली जानवरों से भी अधिक खूँखार होता है। हरिदासी के मददगार जमुनादासी को मलिनादासी हमेशा शक की निगाहों से देखती है। सबकी असलियत जानने पर उसे सभ्य समाज से घृणा उत्पन्न होती है जो इन विधवाओं के जर्जर जीवन के लिए जिम्मेदार है- "जैसे- जैसे बिजली घोष को वृन्दावन की दासियों के कुलों के बारे में पता चलता गया उसे जान अपने भद्र समाज से एकाएक घृणा सी होने लगी कि किस तरह भद्र कहे जानेवाला समुदाय अपनी ही स्त्रियों के लिए सबसे बड़ा नरक है, भला कैसे सभ्य समाज अपनी जननियों को इन भर भराकर गिरनेवाली सीलन भरी बदबूदार पितृसत्ता की बनाई काल कोठरियों में धकेलने के लिए तैयार हो जाते हैं ? लेकिन अगले ही क्षण वह अपने आपसे जैसे सवाल करती है कि जिस तरह वह अपनी मर्जी से पितृसत्ता के बनाम इस दुर्ग में कैद होने केलिए आई है, हो सकता है अन्य दासियाँ भी इसी तरह आई हों ? बिजली घोष अपने ही अंतर्द्वंद और प्रश्नों से जूझने लगी।"3 समाज को लेकर उसका मन गुस्से से भर उठता है।

उपन्यास में यह भी देखा जा सकता है कि बंगालिन विधवाओं की स्थिति ही इस तरह बद से बदतर होती है। दिल्ली की विधवाओं की स्थिति इससे भिन्न हैं। रेतिया बाज़ार के ब्रजवासी लस्सी के दूकान के मालिक चौरासिया से हरिदासी को पता चलता है कि चड्ढा जैसे धनी लोग यहाँ फ्लेट खरीदकर अपनी विधवा माँ को अकेले छोड़ देते हैं। ऐसा करने पर उनकी पिकनिक भी हो जाती है और माँ से मिलना भी। अन्तर केवल इतना ही है कि चड्ढा जैसों की माँ भौतिक सुविधाओं के सहारे अपने वैधव्य और अकेलेपन को काट रही हैं, जबकि उसकी जैसी अनगिनत बंगालिन विधवाएँ आग बरसाते जर्जर मन्दिरों और लावारिस खंडहरों के बीच उदास पेड़ों की जड़ों में निवास करते हैं। आगे चलकर जमुनादास उसके रहने का बन्दोबस्त करता है। हरिदासी, वासुदेव दासी के साथ मिलकर वह मंदिरों की सीढ़ियों में बैठकर भीख माँगती है। ऐसे मिले रुपयों से एक लाख रुपये गोदा विहार मंदिर के महंत को देती है। कुछ रुपये अपने खर्च के लिए रखती है। जो विधवा अपने अंतिम संस्कार के लिए पैसे बचाकर नही रख पाती उसकी लाश लावारिस की तरह पड़ी रहती है। हरिदासी ने सुना था कि किसी विधवा की लाश को बोरे में भरकर जमुना में बहा दिया। मलिना दासी की लाश को कुत्ते रंगजी मंदिर की सीढ़ियों पर नोच - नोचकर खा रहे थे, इस प्रकार उपन्यासकार ने समाज में विधवाओं की जर्जरित स्थिति को दर्शाया है।

कोरोना के समय हज़ार रुपये देकर वह अपनी साथिन वासुदेव दासी की मदद करती है जिसकी बाद में कोरोना से मौत हो जाती है। भीख हरिदासी ने अपने बुरे समय के लिए माँगे थे। लेकिन उसके अंतिम संस्कार के लिए इन पैसों की ज़रूरत नहीं पडती। हरिदासी की मृत्यु होने पर मुक्तिवाहिनी एन जी ओ द्वारा मुफ्त में उसका अंतिम संस्कार किया जाता है। जमुनादास मुखाग्नि देता है Iबचे पंद्रह हज़ार रुपये जमुनादास इमलीतला मंदिर को दान कर देता है। दर-दर की ठोकरें खाते हुए हरिदासी की जीवन नैया पार हो जाती है। समाज द्वारा उपेक्षित इन विधवाओं की इस नियति को चित्रित कर उनकी पीड़ा, कसैले यथार्थ को उघाड़ने का कार्य उपन्यासकार ने किया है।

गोया कि संवैधानिक तौर पर लिंग के आधार पर समानता लागू है लेकिन समाज में भेद -भाव ज़ारी है। इसी भेद - भाव का शिकार बिजली घोष जैसी विधवाओं को होना पड़ता हैं जिसकी वजह से उसका जीवन नाश के कगार तक पहुँच जाता है। बुलंदियों को छूने के बजाय पंगु बनकर दर - दर की ठोकरें खाने को उसका जीवन अभिशप्त है। इस अभिशाप से मुक्ति के लिए विधवा राशमोनी जैसा हिम्मत उन्हें बटोरना ही होगा। अपने हौसले बुलंद कर आगे बढने पर ही स्त्री अपनी मानवीय पहचान हासिल कर पाएगी।

000

संदर्भ-

1.भगवानदास मोरवाल - मोक्षवन - पृ:10, 2. वही - वही -पृ :12, 3. वही -वही - पृ :80,

(शोध आलेख)

हिन्दी में चित्रित गांधीवाद का व्यावहारिक स्वरूप

शोध लेखक : डॉ. राजेश कुमार
सहायक प्रोफ़ेसर हिन्दी विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, रोहतक

शोध-सार :- हिन्दी सिनेमा के एक सौ दस वर्ष के इतिहास में सैकड़ों ऐसी फ़िल्में बनी हैं, जिनमें गांधी अथवा उनकी विचारधारा किसी न किसी रूप में उपस्थित है, चाहे वह सत्य, अहिंसा व त्याग हो, हृदय-परिवर्तन हो, सत्याग्रह हो, ईमानदारी हो, स्वावलंबन हो या अछूतोद्धार की परिकल्पना हो। गांधी से संबंधित हिन्दी फ़िल्मों को हम मुख्यत: तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं- पहले वर्ग में वे फ़िल्में आती हैं जो गांधी जी की जीवनी पर आधारित हैं, जैसे- 'गांधी' (1982), 'मेकिंग ऑफ महात्मा', 'गांधी से महात्मा तक' (1996), 'हे राम' (2000), 'गांधी-माई फादर' (2007) आदि। इन फ़िल्मों में कहीं-कहीं गांधी को नकारात्मक ढंग से भी प्रस्तुत किया गया है। दूसरे वर्ग में हम उन फ़िल्मों को रख सकते हैं जो गांधी जी के समकालीन किसी नेता की जीवनी पर बनाई गई है तथा उनमें प्रसंगानुसार गांधी जी का चित्रण हुआ है। इनमें 'जिन्ना'(1998), 'डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर' (2000) तथा शहीद भगत सिंह के जीवन पर आधारित अनेक फ़िल्में सम्मिलित हैं। तीसरे वर्ग में वे फ़िल्में आती हैं जिनकी कथा-पटकथा में गांधी के विचारों एवं सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप से घटित होते दिखाया गया है। अछूत कन्या' (1936), 'अछूत' (1940), 'सुजाता'(1959); 'जोगन' (1950), 'आँधियाँ'(1952), 'मदर इंडिया', 'नया दौर' व 'दो आँखें बारह हाथ' (1957), 'जिस देश में गंगा बहती है'(1960), 'सत्यकाम'(1969), 'गांधीगिरी' (2016), 'हे राम, हमने गांधी को मार दिया' (2018), 'रोड टू संगम'(2009), और 'लगे रहो मुन्ना भाई' (2006) इस श्रेणी की प्रमुख फ़िल्में हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र इन्हीं फ़िल्मों में चित्रित गांधीवाद पर केंद्रित है।

बीज-शब्द- सिनेमा, व्यावहारिक गांधीवाद, अस्पृश्यता, सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, हृदय परिवर्तन।

मूल आलेख- अपने आरंभिक काल से ही हिन्दी सिनेमा गांधी और गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित रहा है। वस्तुत: "हिन्दी फ़िल्मों को दो थीम्ज ने बहुत गहरे तक प्रभावित किया है_ पहली है राम कथा और दूसरी है गांधीजी का व्यक्तित्व और उनके सिद्धांत।"(1) गांधीवाद के सिद्धांतों को चरितार्थ करनेवाली 'अछूत कन्या', 'अछूत' एवं 'सुजाता' अस्पृश्यता एवं छुआछूत की भावना का प्रबल प्रतिरोध रचने वाली फ़िल्में हैं। बिमल राय की 'सुजाता' में तो गाँधी जी की मूर्ति और उनकी सूक्तियों का प्रेरणादायक प्रयोग हुआ है। "नदी के घाट पर बनी उनकी मूर्ति और वहाँ लिखा सूक्त कहानी को न केवल आगे बढ़ाता है वरन् उसे अर्थवत्ता भी प्रदान करता है।"(2) नायक का नायिका के प्रति कथन 'आत्मनिन्दा आत्महत्या से भी बड़ा पाप है।' प्रत्यक्ष रूप से गांधी जी का कथन है। फ़िल्म में नायिका बार-बार गांधी की शरण में जाती है। फ़िल्म 'जोगन' की नायिका अपनी इच्छा के विरुद्ध होनेवाली शादी का विरोध करने के लिए ब्रह्मचर्य की राह अपनाती है तो फ़िल्म 'आँधियाँ' में सूदखोर महाजन के विरुद्ध पूरा गांव सत्याग्रह पर उतर आता है।

वी. शांताराम की फ़िल्म 'दो आँखें बारह हाथ' प्रेम एवं सहानुभूति द्वारा हृदय-परिवर्तन के गांधीवादी विचार पर आधारित है। फ़िल्म में एक आदर्शवादी जेलर मुक्त कारागार के रूप में एक ऐसा अभिनव प्रयास करता है जिसमें अपराधी को दंडित न करके स्वयं सुधरने का अवसर प्रदान किया जाए। विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार, "इस सामाजिक उद्देश्य का मेल गांधीवादी संगति में है।"(3) जेलर के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से अंतत: ये अपराधी न केवल अपने बुरे कर्मों पर शर्मिंदा होते हैं वरन् इतने बदल जाते हैं कि अपने ऊपर बरसती लाठियों का प्रतिरोध तक नहीं करते, क्योंकि वे हिंसा न करने के लिए अपने 'बाबूजी' (जेलर) से वचनबद्ध हैं। अपनी

डॉ. राजेश कुमार सुपुत्र श्री जय नारायण
गांव व डाकघर - डीघल, पान्ना - कौशिक नगर जिला झज्जर (हरियाणा)
पिन - 124107
मोबाइल- 9896321474
ईमेल- drrajeshgautam2020@gmail.com

प्रतिज्ञा पर अहिंसक ढंग से अडिग रहकर जुल्म सहते जाना गांधीवाद का अभिन्न अंग है। फ़िल्म का प्रार्थना गीत 'ऐ मालिक तेरे बंदे हम' गांधीवादी आदर्शों की ही प्रतिकृति है।

औद्योगिक क्रांति के दुष्परिणामों को देखते हुए गांधीजी ने लघु उद्योगों को प्रोत्साहित किया एवं परंपरागत यंत्र के प्रतीक रूप में चरखा को जन-जन तक पहुँचाया। वे नहीं चाहते थे कि मशीनें मानव श्रम की उपेक्षा कर शक्ति को कुछ हाथों में केंद्रित कर दें। फ़िल्म 'नया दौर' (1957) सामूहिक श्रम एवं स्वावलंबन की महत्ता को दर्शाती है। "लेखक तथा निर्देशक ने आदर्शवादी दृष्टिकोण से काम लिया है ग्रामीण अपनी मेहनत के बल पर सड़क तथा पुल का निर्माण करते हैं, यह हमारे लिए प्रेरणादायक है।"(4) इसी वर्ष की फ़िल्म 'मदर इंडिया' में राधा और उसका बड़ा बेटा रामू लाला सुखीराम द्वारा किए जाने वाले शोषण का विरोध जिस अहिंसक ढंग से करते हैं वह गांधी जी की याद दिला देता है।

फ़िल्म 'जिस देश में गंगा बहती है' (1960) में आद्यांत प्रेम एवं मानवीयता की सतत् धारा प्रवाहित रहती है। नायक 'राजू' अपने प्रेम, दया, त्याग और मानवीयता से खूंखार डाकुओं को आत्मसमर्पण के लिए विवश कर देता है। डाकुओं का सरदार उससे कहता है, "तू पुलिस का आदमी भी है और पापियों को मुक्ति का रास्ता भी दिखाता है ? कौन है रे तू, कहाँ का रहनेवाला है ?" इस पर राजू कहता है, "ताऊ जी, एक देश है दुनिया में जहाँ दाता भिखारी को भिक्षा नहीं दे पाता तो हाथ जोड़कर कहता है, मेरे को माफी दे दे भाई! जहाँ खिलानेवाला खानेवाले को बोलता है कि आपने बड़ी दया की जो मेरा चौका पवित्र किया। जहाँ पापी और हत्यारा अपने पाप से पलटता है तो रामायण जैसा ग्रंथ लिखता है और ऋषि वाल्मीकि कहलाता है। ताऊ जी ! हम उस देश के वासी हैं जिस देश में गंगा बहती है।"(5) यह विशुद्ध गांधीवादी विचारधारा है। फ़िल्म में दर्शाया गया डाकुओं के आत्म-समर्पण का दृश्य सन् 1961 में साक्षात् दिखाई देता है जब चंबल के डाकू आत्म-समर्पण करते हैं। यह आत्म-समर्पण गांधीवादी विचारक विनोबा भावे और जयप्रकाश नारायण के प्रभाव से हुआ था।

नारायण सान्याल के उपन्यास पर आधारित फ़िल्म 'सत्यकाम' (1969) एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो अपनी चौदह पीढ़ियों से चली आ रही ईमानदारी व सच्चाई की परंपरा को अत्यंत दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ाता है। वह अपनी सत्यनिष्ठा, ईमानदारी एवं लगन से लोगों की सेवा करना चाहता है परंतु अपने आदर्शों के कारण समकालीन भ्रष्ट व्यवस्था में अनफिट है। ऐसे व्यक्ति का बेबसी और पराजय का भीषण बोध लिए मृत्यु के आगोश में समा जाना गांधीवादी आदर्शों पर एक बड़ा प्रश्न-चिन्ह लगा देता है। "सत्यकाम आज़ाद भारत में सत्य से विचलन की महागाथा है। यह फ़िल्म हमें बेईमानी के आईने में अपना चेहरा पहचानने के लिए विवश करती है। जहाँ सत्य एक बेकार की चीज़ बन चुका है।"(6) अनुराग कश्यप की 'ब्लैक फ्रायडे' (2004) में गांधी की उक्ति "आँख के बदले आँख लेने की नीति पर चलें तो पूरी दुनिया अंधी हो जाएगी" कथा की पृष्ठभूमि में रहती है।

फ़िल्म 'गांधीगिरी' के नायक एन.आर.आई., रायबहादुर सिंह गांधी जी के सिद्धांतों में दृढ़ विश्वास रखते हैं। वे गांधीवादी सिद्धांतों के ह्रास से दुखी हैं तथा भारत में आकर गांधी जी के सिद्धांतों की पुनर्स्थापना करना चाहते हैं। भारत में वे चार अपराधियों को गांधीवादी तरीकों से सुधारने में सफल होते हैं जिससे गांधीवादी मूल्यों की सार्थकता बनी रहती है। परंतु फ़िल्म एक डॉक्यूमेंट्री की भाँति नीरस एवं उबाऊ है। एक समीक्षक के अनुसार, "मैं आपको सुझाव देता हूँ कि आप यह फ़िल्म न देखें तथा अपना सप्ताहांत सोकर बिता लें।"(7) 2018 में नईम ए. सिद्दिकी ने फिल्म 'हे राम, हमने गांधी को मार दिया' बनाई। "गांधीवादी होने का दावा करने वाले सिद्दीकी, फ़िल्म के रूप में एक लंबा उपदेश देते हैं जो गांधी-दर्शन की 'हत्या' की पड़ताल करता है।"(8) फ़िल्म देश-विभाजन के परिप्रेक्ष्य में गांधीवादी मूल्यों की सार्थकता पर विचार करती है। फ़िल्म में चित्रित घटनाएँ दो अलग-अलग विचारधाराओं को दर्शाती हैं।

फ़िल्म 'रोड टू संगम' (2010) में 'हसमदुल्लाह' के माध्यम से गांधी जी के सत्याग्रह एवं प्रेम के सिद्धांतों को अत्यंत सशक्त एवं प्रभावी ढंग से स्थापित किया गया है। हसमदुल्लाह एक मोटर वर्कशॉप के मालिक हैं। उन्हें एक बहुत पुरानी फोर्ड गाड़ी के इंजन की मरम्मत का काम मिलता है। इसी गाड़ी में रखकर गांधीजी की अस्थियों का विसर्जन संगम में किया जाना है। हसमदुल्लाह को इस गाड़ी के जंग खाये इंजन को ठीक करना है। इससे पहले कि वे यह कर पाते, मुस्लिम कमेटी ने शहर बंद का फ़रमान जारी कर दिया। वे कमेटी के पदाधिकारियों से दुकान खोलने की अनुमति माँगते हैं ताकि गाड़ी ठीक कर सकें, परंतु उन्हें अनुमति नहीं मिलती। फिर भी वे दुकान खोलना चाहते हैं तो बाज़ार के सदर इनायत भाई उनसे चाबी छीन लेते हैं। गांधी के सिद्धांतों की व्यावहारिकता यहीं घटित होती है। बार-बार माँगने पर भी जब इनायत चाबी नहीं देते तब हसमदुल्ला कहते हैं, "इनायत भाई ! याद रखिएगा, यह ताला टूटेगा नहीं और ना ही दूसरी चाबी बनेगी। हम यहीं बैठे हैं, चौखट पर और यहाँ से हिलेंगे नहीं। जब तक आप ख़ुद यह चाबी हमें नहीं देंगे, तब तक यह दुकान हम नहीं खोलेंगे; फिर चाहे आप वह आज दें, कल दें, या एक साल बाद, देंगे आप ही।"(9) और अंततः इनायत को चाबी देनी पड़ती है। हसमदुल्ला गांधीजी के प्रेम-सिद्धांत में विश्वास रखनेवाले एक सच्चे भारतीय मुसलमान हैं और यही प्रेम इलाहाबाद के प्रत्येक नागरिक को गांधी जी के अस्थि-कलश की गाड़ी के साथ संगम तक ले जाता है।

गांधी की विचारधारा का सर्वाधिक सशक्त एवं व्यावहारिक प्रकटीकरण जिस फ़िल्म में हुआ है वह है राजकुमार हिरानी की 'लगे रहो मुन्ना भाई' (2006)। इस फ़िल्म ने एक नई संकल्पना दी- गांधीगिरी। 'मुन्ना भाई एमबीबीएस' में जो गांधीगिरी 'एक प्यार की झप्पी' तक सीमित थी, वह यहाँ एक अत्यंत

व्यापक आधार ग्रहण कर लेती है। यह सुखद आश्चर्य ही है कि लोगों ने इस फ़िल्म की तर्ज़ पर गांधीगिरी के प्रयोग कर डाले। आम आदमी से लेकर सांसदों तक ने गांधीगिरी को एक अस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया। मुन्ना भाई की गांधीगिरी ने इतिहास बन चुके गांधी को पुनर्जीवित कर दिया। "वह गांधीगिरी जो गंभीर दार्शनिक बातें नहीं करती, सीधे-सादे रास्ते तैयार करती है जिन पर चाहे तो कोई भी चल सकता है, सिर्फ अपने अहंकार से मुक्ति पानी होगी। फ़िल्म का नायक मुन्ना भाई गांधी के बारे में चार अक्षर पढ़कर विद्वान नहीं बन गया। बस उसने गहरी मोहब्बत में डूब कर गांधी के आदर्शों की मूल बातें समझ ली हैं।"(10) स्पष्ट है कि 'कहना गांधीवाद है करना गांधीगिरी'।

मुन्ना भाई दादागिरी, गुंडागिरी, भाईगिरी सब कुछ करता है। वह रेडियो जॉकी जाह्नवी से प्यार करता है तथा गांधी जी पर किए जाने वाले क्विज़ को जीतकर उससे मिलना चाहता है। वह प्रोफेसर मुरली प्रसाद शर्मा बनकर अनुचित ढंग से क्विज़ जीत लेता है। जाह्नवी कुछ वृद्ध व्यक्तियों के साथ 'सेकंड इनिंग्स हाउस' नामक बंगले में रहती है। मुन्ना को इन व्यक्तियों के आगे गांधी जी पर प्रवचन देना है। गांधी के बारे में जानने के लिए मुन्ना को लाइब्रेरी जाता है। वहाँ उसके साथ गांधीजी की चेतना का एकाकार होता है। गांधी उसे प्रकट दिखाई देते हैं और कहते हैं कि जब भी उसे उनकी ज़रूरत हो, उन्हें याद कर ले, वे आ जाएँगे। बस फिर तो मुन्ना हर काम गांधीजी की सलाह पर करता है और बाकायदा गांधीवाद का विशेषज्ञ - 'प्रोफ़ेसर मुरली प्रसाद शर्मा' बन जाता है।

बिल्डर लक्की सिंह को सैकंड इनिंग्स हाउस की ज़रूरत है। वह मुन्ना भाई को झाँसा देकर मुन्ना के दाएँ हाथ सर्किट के जरिए उसे खाली करा लेता है। इस पर मुन्ना सर्किट पर हाथ उठा देता है। गांधी मुन्ना को सर्किट से माफी माँगने के लिए कहते हैं। मुन्ना जैसे 'भाई' के लिए ग़लती का एहसास करके किसी से माफी माँगना बहुत ही कठिन काम है। यही गांधीगिरी की पहली मंज़िल है जिसे वह पा जाता है। सर्किट को सॉरी बोल कर मुन्ना बहुत हल्का हो जाता है।

मुन्ना भाई गांधी जी के कहने पर जाह्नवी और वृद्ध व्यक्तियों के साथ लक्की सिंह के बंगले के सामने सत्याग्रह कर देता है। वह लक्की सिंह को 'गेट वेल सून' के संदेश के साथ फूल भिजवाता है। लक्की सिंह का गार्ड मुन्ना के गाल पर एक धमाकेदार थप्पड़ मार देता है। इस पर सर्किट आवेश में आता है, परंतु मुन्ना कहता है, "नहीं, बापू बोला अगर दुश्मन बाएँ गाल पर मारेगा ना तो दायाँ गाल आगे करने का।"(11) पर बापू ने यह तो नहीं बोला कि जब दाएँ गाल पर भी थप्पड़ पड़ जाए तो क्या करने का। सो दूसरे गाल पर थप्पड़ पड़ते ही मुन्नाभाई अपने एक ही पंच से गार्ड को चित्त कर देता है। उसी समय गांधी प्रकट होते हैं और कहते हैं, "मुन्ना, उन्हें वार करने दो, लेकिन तुम हाथ मत उठाना। ऐसा करने से दुश्मन के स्वभाव में परिवर्तन आता है। उसकी नफ़रत घटती है और हमारे लिए इज़्ज़त बढ़ती है। लक्की को दिखा दो हम पलटकर नहीं मारेंगे, ना ही अपनी राह छोड़ेंगे। चलो मुन्ना, माफी माँगो।"(12) और मुन्ना गार्ड से माफी माँगता है। अब मुन्ना भाई रेडियो जॉकी बनकर लोगों को गांधीगिरी सिखाता है और उनकी समस्याओं के समाधान बताता है। गांधीगिरी के व्यवहार से एक नवयुवक आत्महत्या से बच जाता है, एक लड़की अपने वर के व्यक्तित्व की सही पहचान कर लेती है और एक रिटायर्ड स्कूल मास्टर की रुकी हुई पेंशन झट से मंजूर हो जाती है। यही गांधीगिरी उस बदतमीज व्यक्ति को शर्मिंदा होने पर मजबूर कर देती है, जो रोज़ पान की पीक अपने पड़ोसी के दरवाजे पर थूकता था। ये सब घटनाएँ गांधीगिरी की अचूक सफलता का प्रमाण हैं। अंत में मुन्ना भाई की गांधीगिरी लक्की सिंह के मामले में भी सफल होती है और लक्की सिंह स्वयं उसे सेकंड इनिंग्स हाउस की चाबी सौंप देता है। इस प्रकार यह फ़िल्म गांधी के मूल्यों की व्यावहारिक प्रतिष्ठा करती है। फ़िल्म गांधी के सिद्धांतों को ऊपर से नहीं लादती वरन् उन्हें मुन्नाभाई जैसे चरित्र के साथ एकाकार करके वास्तविकता के धरातल पर उतार देती है। यह एकमात्र ऐसी फ़िल्म है जिसमें गांधीजी स्वयं उपस्थित होकर अपने विचारों एवं सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप देने की युक्ति बताते हैं।

निष्कर्ष- निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि गांधीवाद का प्रभाव न केवल भारतीय समाज, साहित्य एवं राजनीति पर पड़ा वरन् हिन्दी सिनेमा भी इससे बहुत अधिक प्रभावित हुआ है। हिन्दी सिनेमा ने गांधीवाद के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों पक्षों का चित्रण अपने कथानक ने किया है। गांधी जी के सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप में दर्शाने वाली फिल्में अत्यंत सफल रही हैं। यह गांधीवाद में लोगों की आस्था का द्योतक है।

000

संदर्भ-

1.'सिनेमा के मूल में हैं गांधी के आदर्श', लेखक-अनंत विजय, दैनिक जागरण-सप्तरंग, हिसार संस्करण, 2 अक्टूबर 2020, 2.सिनेमा में गांधी www.amarujala.com, 3.'दो आँखें बारह हाथ : बाज़ारवाद का कलात्मक प्रतिरोध' संक. हिन्दी सिनेमा-बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक, संपा. प्रह्लाद अग्रवाल, प्र. साहित्य भंडार, इलाहाबाद, सं. 2013, पृ.सं.152., 4.उपर्युक्त, पृ.सं.178, 5.फ़िल्म - 'जिस देश में गंगा बहती है'(1960), निर्देशक-राधू करमाकर, संवाद लेखक-अर्जुन देव रश्क।, 6.हिन्दी सिनेमा-बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक, पृ.स. 307, 7.Movie reviews of Gandhigiri, bollypedia.in, translated by me., 8.'Hamne Gandhi Ko Maar Diya': An ode to Mahatma Gandhi, businessstandard.com, 1st March, 2018, translated by me., 9.फ़िल्म - 'रोड टू संगम'(2009), निदेशक एवं लेखक - अमित राय।, 10. 'जुग जुग जिए मुन्नाभाई - छवियों का मायाजाल', ले. प्रहलाद अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र. सं. 2011, पृष्ठ संख्या 173, 11. फ़िल्म - 'लगे रहो मुन्नाभाई' (2006), निर्देशक-राजकुमार हिरानी, संवाद लेखक-राजकुमार हिरानी, अभिजीत जोशी।, 12. उपर्युक्त।

(शोध आलेख)

कुरुक्षेत्र में युद्ध विषयक अवधारणा

शोध लेखक : अमन वर्मा (दीप अमन), शोधार्थी, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

अमन वर्मा (दीप अमन)
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
मोबाइल-9369422456
ईमेल-kaviamandeep@gmail.com

दिनकर ने युद्ध की अवधारणाओं पर कुरुक्षेत्र में पर्याप्त संवाद किया है। कुरुक्षेत्र दिनकर का ऐसा काव्य है जो संवादात्मक शैली में लिखा गया है। इसके पात्र भले ही भीष्म और युधिष्ठिर हों, किंतु यह दिनकर का अंतर्द्वंद है। वे इस रचना के माध्यम से समाज को युद्ध और शांति के विषय में बताना चाहते हैं और अपने अंतर्द्वंद को स्वर देना चाहते हैं। यह रचना द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत लिखी गई, ऐसा सर्वविदित है; किंतु रचना का कथ्य महाभारत से लिया गया है। महाभारत एक ऐसा युद्ध, जिसमें लाखों लोगों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। यही स्थिति द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भी बन पड़ी जिसमें लाखों-करोड़ों लोग मृत्यु के घाट उतर गए। इसमें किसी की प्रभुत्व जमाने की इच्छा शामिल थी तो किसी का आत्माभिमान आड़े आ रहा था। परंतु इसमें नुकसान मानवता का हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद युद्ध पर बात करना और भी स्वाभाविक हो जाए हो जाता है दिनकर के कुरुक्षेत्र में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की उप जी हुई पीड़ा का स्वर है उन्होंने स्पष्ट रूप से इस काव्य के माध्यम से युद्ध की विसंगतियों को जहाँ एक तरफ स्वर दिया है तो दूसरी तरफ युद्ध की अनिवार्यता पर भी बातचीत की है।

कुरुक्षेत्र की भूमिका में वह लिखते हैं "मैंने युधिष्ठिर को देखा, जो 'विजय' छोटे से शब्द को कुरुक्षेत्र में बिकी हुई लाशों से तौल रहे थे। किंतु यहाँ भीष्म के धर्म - कथन में प्रश्न का दूसरा पक्ष भी विद्यमान था। आत्मा का संग्राम आत्मा से और देह का संग्राम देह से जीता जाता है। यह कथा युद्धान्त की है। युद्ध के आरंभ में स्वयं भगवान् ने अर्जुन से जो कुछ कहा था, उसका सारांश भी अन्याय के विरोध में तपस्या के प्रदर्शन का निवारण ही था।"1 दिनकर का यह कथन उनके अंतर्मन की ही पीड़ा थी। वह महाभारत के युद्ध की विभीषिका को समझ रहे थे। ऐसी विकट परिस्थितियों में जब उन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध देखा तो वह उनके लिए असह्य हो गया। उनकी चेतना युद्ध और शान्ति पर परस्पर झगड़ा करने लगी। कभी वह युद्ध के कारणों पर जाते और युद्ध को अनिवार्य मानते तो कभी युद्ध न करने की बात करते। उन्होंने वस्तुत: युद्ध न करने का ही समर्थन किया है। किन्तु परिस्थिति जन्य युद्ध को भी शान्ति स्थापना का एक हिस्सा माना। कुरुक्षेत्र की भूमिका में ही वह आगे लिखते हैं-"युद्ध निंदित और क्रूर कर्म है; किंतु उसका दायित्व किस पर होना चाहिए? उस पर जो अनित्य का जाल बिछाकर प्रतिकार को आमंत्रण आमंत्रण देता है? या उस पर जो जाल को छिन्न-भिन्न कर देने के लिए आतुर है? पांडवों को निर्वासित करके एक प्रकार की शांति की रचना तो दुर्योधन ने भी की थी तो क्या युधिष्ठिर महाराज को इस शांति का भंग नहीं करना चाहिए था?"2

कुरुक्षेत्र वस्तुत: दिनकर के अंतर्मन का द्वंद्व है। उनके काव्य में विचारों की प्रधानता है। दिनकर साहित्य के अध्येता यतींद्र तिवारी जी ने भी निवेदन के बहाने से दिनकर के मन को पढ़ने का प्रयास किया है। अपने ग्रंथ राष्ट्रकवि दिनकर में वह लिखते हैं-" दिनकर जी के इस निवेदन से कुरुक्षेत्र की रचना के प्रेरणा स्रोत पर प्रकाश पड़ता है, जिसमें उस समय की समस्त सामयिक परिस्थितियाँ भी प्रभावी हैं जिनके बीच से होकर दिनकर जी गुज़र रहे थे। उनके सामने महात्मा गांधी द्वारा संचालित सत्य और अहिंसा पर आधारित स्वाधीनता आंदोलन था जिस से प्रभावित होकर उनमें एक वैचारिक द्वंद्व खड़ा हुआ कि अत्याचार और अन्याय का विरोध अहिंसा द्वारा करना ठीक है अथवा उसके लिए श्री कृष्ण द्वारा प्रतिपादित हिंसा मूलक युद्ध की नीति उचित है।"3

दिनकर वास्तव में युद्ध का समर्थन तो नहीं करते, लेकिन अपनी रक्षा के लिए किए गए युद्ध को वह समर्थन देते हैं। वह कुल मिलाकर एक समाधान चाहते हैं। ऐसा समाधान जो स्थायी हो। यदि हम एक ही समस्या के समाधान के लिए बार-बार परेशान हो दौड़ भाग करें तो यह भी ठीक नहीं है। वस्तुत: यदि समस्या का स्थायी हल मिल जाए तो इससे बेहतर क्या हो सकता है। उस समस्या के बरख्श देखने पर दिनकर कई स्थानों पर गांधी के विचारों से सहमत दिखाई देते हैं किंतु कई स्थानों पर वह इसके ठीक विपरीत विचार करते हैं। वे यह मानते हैं कि मात्र अहिंसा से देश को स्वतंत्रता नहीं मिलने वाली या वैश्विक परिदृश्य में कहें तो मात्र अहिंसा से विश्व को

शांति मिलने वाली नहीं है। डॉ नगेंद्र कुरुक्षेत्र के विषय में लिखते हैं- "इस काव्य में 'कुरुक्षेत्र' युद्ध का प्रतीक है। युधिष्ठिर और भीष्म कवि के तर्क और वितर्क अर्थात विचार के दोनों पक्षों के प्रतीक हैं, जिन पर आरूढ़ होकर उनके मन की दुविधा समाधान की ओर दौड़ती है। युधिष्ठिर अहिंसा के प्रतीक हैं जो युद्ध को किसी परिस्थिति में भी उचित नहीं मानते हैं और भीष्म न्याय- भावना के प्रतीक है जो अन्याय के दमन के लिए युद्ध को उचित ही नहीं आवश्यक भी मानते हैं इन तीनों प्रतीकों को लेकर दिनकर ने युद्ध से विक्षुब्ध अपने हृदय और मस्तिष्क की संकुलता से मुक्ति पाने का प्रयत्न किया है।"4 दिनकर के द्वारा दी गई स्थापनाएँ और मान्यताएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी इस ग्रंथ के लेखन के समय में थी। युद्ध सार्वभौमिक समस्या है। प्राचीन काल से लेकर आज तक विश्व का प्रत्येक देश या यूँ कहें कि प्रत्येक मनुष्य जो समाज अथवा परिवार में अपना वर्चस्व चाहता है, वह साम- दाम- दंड- भेद के तरीके को अपनाकर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है। इस प्रभुत्व की स्थापना में युद्ध एक अनिवार्य तत्व के रूप में सामने आता है। कुरुक्षेत्र, दिनकर के उसी चर्चा अथवा द्वंद्व की परिणति है। यदि हम देखें तो केवल दिनकर ही नहीं अपितु प्रत्येक मनुष्य के अंतर्मन में यह सवाल गूँजते रहते हैं। जब भी कभी युद्ध की परिस्थिति आती है तब प्रत्येक मनुष्य इन विषयों को लेकर विचार करता है और उसका स्थायी हल खोजने की कोशिश करता है। इस काव्य में दिनकर स्वयं लिखते हैं- "हर युद्ध से पहले द्विधा लड़ती उबलते क्रोध से / हर युद्ध से पहले मनुज है सोचता, क्या शास्त्र ही- / उपचार एक अमोघ है अन्याय का, अपकर्ष का, विष का गरलमय द्रोह का"5

दिनकर के काव्य की प्रासंगिकता को खगेन्द्र ठाकुर ने भी पहचाना है। वह अपने ग्रंथ 'रामधारी सिंह दिनकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व' में लिखते हैं-" कुरुक्षेत्र के वैचारिक द्वंद्व और मनुष्यता के पक्ष में की गई स्थापनाओं का महत्त्व आज भी है, क्योंकि न्याय, धर्म, सत्य और शांति पाने के लिए मनुष्य समाज आज भी परेशान है। आज उसकी परेशानी का कारण विश्व पूँजीवाद है, साम्राज्यवाद है, उसकी बर्बर सत्ता है। 6 दिनकर युद्ध की अनिवार्यता को न्याय से जोड़कर देखते हैं। उनका मानना है कि जो न्याय के विरोध में खड़ा होता है, वही युद्ध को आमंत्रण देने का कार्य करता है। अक्सर देखने में आता है कि जिसे जिस चीज़ का अधिकार प्राप्त हो, उसे वह वस्तु अथवा अधिकार ना मिले तब वह युद्ध के लिए सोचने को मजबूर हो जाता है। वस्तुत: कोई भी मनुष्य युद्ध नहीं चाहता क्योंकि युद्ध कभी सुखद संदेश लेकर नहीं आता ऐसी परिस्थितियों में जब किसी का स्वत्व छिन रहा हो या अधिकार का हरण हो रहा हो तब युद्ध अनिवार्य हो जाता है। दिनकर मानते हैं कि युद्ध वही लोग आमंत्रित करते हैं जो किसी के अधिकार या न्याय का हरण कर रहे हो और अपने न्याय की रक्षा के लिए युद्ध करना पाप नहीं है- "चुराता न्याय जो रण को बुलाता भी वही है / युधिष्ठिर स्वत्व की अनवेषा पातक नहीं है / नर्क उनके लिए जो पाप को स्वीकारते हैं, / ना उनके हेतु, जो रण में उसे ललकारते हैं।"7

दिनकर युद्ध के विषय में बताते हुए लिखते हैं कि युद्ध कई अवस्थाओं में अनिवार्य हो जाता है अथवा यूँ कहें कि अनिवार्य करना पड़ता है। हम कितना भी युद्ध से बचने की आकांक्षा रखते हो किंतु हमारा प्रतिद्वंदी जब युद्ध की इच्छा रखता हो तब वह अनिवार्य हो जाता है। इसका उदाहरण देते हुए दिनकर बताते हैं कि वास्तव में युद्ध तो कोई नहीं चाहता। ठीक वैसे ही जैसे कि कोई व्यक्ति रोगी नहीं होना चाहता, किंतु जब कोई व्यक्ति रोगी हो जाता है तो उसके लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि उसे औषधि के रूप में कड़वी दवाएँ भी खानी पड़े। कड़वी दवाओं के अभाव में वह ठीक नहीं हो पाता। मिष्ठान खाकर किसी रोग का नाश नहीं किया जा सकता है इसलिए युद्ध को शांत करने के लिए भी कई बार युद्ध की आवश्यकता होती है- "रुग्ण होना चाहता कोई नहीं / रोग लेकिन आ गया जब पास हो / तिक्त औषधि के सिवा उपचार क्या? / शमित होगा वह नहीं मिष्ठान से।"8

दिनकर युद्ध को अनिवार्य मानते हैं। हालाँकि इसमें उनकी शर्त भी है, शर्त यह है कि जब विश्व में अशांति का माहौल हो, हर जगह धुआँ और आग ही उठ रही हो, स्वार्थ सर्वत्र व्याप्त हो, कहीं भी सुख का नामोनिशान ना हो ऐसी स्थिति में युद्ध निंदनीय नहीं अपितु स्वागत योग्य है। ऐसे युद्ध विनाश के लिए नहीं अपितु पृथ्वी की रक्षा के लिए अनिवार्य होते हैं और उससे सर्जनात्मक कार्यों को गति मिल जाती है- "युद्ध को तुम निंद्य कहते हो, मगर / जब तलक हैं उठ रही चिंगारियाँ / भिन्न स्वार्थों के कुलिश संघर्ष की / युद्ध तब तक विश्व में अनिवार्य है।"9

किसी भी व्यक्ति की पहचान उसके स्वत्व से होती है। व्यक्ति का स्वत्व ही उसे वह मनुष्य बनाता है, जिससे उसकी पहचान की जा सके। पुरुष का स्वत्व अलग होता है और स्त्री का स्वत्व अलग। यही नहीं, हर वर्ग और हर मनुष्य का अपना-अपना स्वत्व है, जो उसकी पहचान है। कोई भी व्यक्ति यदि अपने स्वत्व से ही हाथ धो बैठे तो उसकी पहचान के साथ भी संकट खड़ा हो जाता है, क्योंकि किसी व्यक्ति की पहचान ही उस व्यक्ति को व्यक्ति बनाती है। पहचान के अभाव में व्यक्ति मुर्दा के समान होता है और उसका सामाजिक दायरा मात्र अपने तक सीमित रह जाता है। इस दृष्टिकोण से अरस्तु का कथन कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है साकार नहीं किया जा सकता। यदि मनुष्य को समाज में रहना है तो उसे अपने स्वत्व की रक्षा करनी होगी, और स्वत्व की रक्षा के लिए भी यदि उसे युद्ध का सहारा लेने लेना पड़े तो वह पुण्य है- "छीनता हो स्वत्व कोई और तू / त्याग तप से काम ले यह पाप है। / पुण्य है विछिन्न कर देना उसे, / बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो"10

दिनकर मानते हैं की युद्ध की समस्या यदि छोटी रूप में हो, तभी उसका समन हो जाए तो बेहतर है। समस्या के स्वरूप के बड़े हो जाने पर वह नियंत्रित नहीं हो पाती। उसे नियंत्रित करने के लिए बहुत समय और शक्ति की

आवश्यकता होती है। युद्ध प्रारम्भिक रूप में होने पर वह इतनी तेजी से फैलता है जैसे कि उनचासों पवन एक साथ चल रहे हों। तब मनुष्य को बड़े विवेक के साथ काम लेने की आवश्यकता होती है। युद्ध की वजह से विवेकहीन प्राणी पृथ्वी के लिए काल का कारण भी बन सकता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य को चाहिए कि वह न केवल विवेक से काम ले, बल्कि धैर्य के साथ अपनी गतिविधियों का संचालन करें- "युद्ध का उन्माद संक्रम शील है, / एक चिंगारी कहीं जागी अगर, / तुरंत बह उठते पवन उनचास हैं / दौड़ती हँसती, उबलती आग चारों ओर से"11

दिनकर युद्ध के होने और ना होने का सबसे बड़ा कारण शक्ति को मानते हैं। उनका मानना है कि यदि किसी के पास शक्ति हो तो प्रतिद्वंदी उससे युद्ध करने की चाह रखेगा ही नहीं। क्योंकि जो जानता है कि उसका प्रतिद्वंदी शक्ति में उससे अधिक है, वह यह भी जानता है कि उस से युद्ध करने में उसकी हार निश्चित होगी। कोई व्यक्ति अपनी हार कभी नहीं चाहेगा। इसलिए वह यह भी नहीं चाहेगा कि किसी बलशाली व्यक्ति से युद्ध करके पराजित हो। दिनकर सभी व्यक्तियों को बलशाली होने की बात कहते हैं। दिनकर मानते हैं कि यदि कोई व्यक्ति जो कि बलशाली है वह किसी को क्षमा करता है तो उस क्षमा का मूल्य है किंतु कोई शक्तिहीन किसी बलशाली से कहे कि उसने उसे क्षमा कर दिया, तब यह उचित नहीं जान पड़ता। इसके लिए वह उदाहरण भी देते हैं कि यदि कोई सर्प जोकि विषैला हो, वह यदि किसी को नहीं काटता है तो यह उस सर्प की उदारता है। किंतु जिसका विषदंत टूटा हुआ हो, वह किसी को क्षमा करने की बात कहे तो यह बात हजम नहीं होती वह मात्र फुँफकार कर ही रह सकता है- "क्षमा शोभती उस भुजंग को, / जिसके पास गरल हो। / उसको क्या, जो दंतहीन / विषरहित, विनीत सरल हो।"12

दिनकर पूरी तरह से शक्ति के प्राप्त करने के पक्ष में हैं। वह मानते हैं कि युद्ध में भले ही आपको अपनी शक्ति प्रदर्शन का अवसर मिले या ना मिले किंतु आपको शक्ति प्राप्त करना आवश्यक है कई बार आप जब विनम्र भाव से किसी से प्रार्थना करते हैं अथवा याचना करते हैं तब वह आपके सामर्थ्य का उपहास करता है किंतु उसी पुरुष से जब हम अपने सामर्थ्य के साथ, अपनी शक्ति प्रदर्शित करते हुए किसी चीज़ के लिए कहते हैं तो उसे वह वस्तु प्रदान करनी ही पड़ती है। आज के समय के संदर्भ में ही देखें तो हड़ताल और धरने के माध्यम से संगठन अथवा इकाइयाँ अपना सामर्थ्य प्रदर्शन करती हैं। तब चाहे फैक्ट्री के मालिक हो अथवा सरकारें, सबको उनकी बात मानने को मजबूर होना पड़ता है। यह अक्सर देखने में आता है कि जब कर्मचारियों के द्वारा हड़ताल वगैरह की जाती है तो उनकी बातों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। एकल रूप से प्रदर्शन करने पर हमारी बात का प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि वहाँ हमारी शक्ति नहीं दिखाई देती- "सच पूछो, तो शर में ही / बसती है दीप्ति विनय की, / सन्धि-वचन संपूज्य उसी का / जिसमें शक्ति विजय की"13

दिनकर मानते हैं कि यदि कोई शत्रु ललकार रहा हो उस स्थिति में कोई शान्त ही रह जाता है तब वह कायर है। युद्ध का जवाब युद्ध से ही देना चाहिए। शत्रु जब ललकार रहा हो तब व्यक्ति का अभिमान उसे रोक नहीं पाता और नसों में रक्त का प्रवाह तेज़ हो जाता है और यूँ लगता है कि अब तलवार उठा ही ली जाए- "युद्ध की ललकार सुन प्रतिशोध से / दीप्त हो अभिमान उठता बोल है / चाहता नस तोड़कर बहना लहू, / आ स्वयं तलवार जाती हाथ में।"14

वास्तव में दिनकर ने कभी युद्ध का समर्थन नहीं किया किंतु उनके अंतर्द्वंद्व में युद्ध ज़रूर एक हिस्सा रहा है। दिनकर ने ऐसे युद्ध का समर्थन किया जब वह अनिवार्य हो गया हो जिसे आप धर्म कहते हैं। युद्ध जब हो रहा हो और कोई प्रतिद्वंदी ललकारता हो, ऐसी स्थिति में व्यक्ति का युद्ध करना अथवा यह कहें कि युद्ध के मैदान में जाना अनिवार्य है। इतिहास में ऐसे तमाम उदाहरण है जिनमें एक पात्र कभी अपनी तरफ से युद्ध के लिए न्योता नहीं भेजता किंतु जब दूसरी तरफ से युद्ध का आमंत्रण आता है तो वह युद्ध के लिए जाता है। ऐसी स्थिति में नाश ज़रूर दोनों पक्षों का होता है क्योंकि युद्ध कभी सुखद संदेश देकर नहीं आते। युद्ध ने हमेशा मानवता का, सर्जना का, प्रकृति का नुकसान ही किया है। इस दृष्टिकोण से हम कह सकते हैं कि युद्ध का अर्थ विनाश है। युद्ध न चाहने का मतलब कायरता नहीं होता। व्यक्ति चाहे तो शान्ति के साथ उसका निदान कर सकता है। जिस प्रकार शांति के लिए शांति आवश्यक है वैसे ही शांति की रक्षा के लिए भी कई बार युद्ध जरूरी हो जाता है। गीता के उपदेश में एक श्लोक में ऐसी बात कही भी गई है कि जब आततायियों और पापियों की धरती पर संख्या अधिक हो जाती है तब उनके विनाश और उनके संहार के लिए मैं धरती पर अवतार लेता हूँ। वास्तव में जब अन्याय बढ़ जाता है तब अन्याय के दमन के लिए भी युद्ध अनिवार्य हो जाता है। अन्याय की अधिकता में सामान्य जन सुखी नहीं रह पाते और न्याय की स्थापनार्थ और न्याय के रक्षणार्थ युद्ध जरूरी होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि युद्ध जितना अनावश्यक है उतना ही आवश्यक भी।

000

संदर्भ- 1- रामधारी सिंह दिनकर-कुरुक्षेत्र- निवेदन-राजपाल एंड संस दिल्ली-संस्करण 2017- पृष्ठ 3, 2-वही पृष्ठ 3, 3-यतीन्द्र तिवारी-राष्ट्रकवि दिनकर-उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ-संस्करण 2016-पृष्ठ 47-48, 4-डॉ नगेन्द्र (लेख)- पुस्तक 'कुरुक्षेत्र विमर्श'-संपादक नंदकिशोर नवल-अनुपम प्रकाशन पटना-संस्करण 2005-पृष्ठ 31-32, 5-रामधारी सिंह दिनकर-कुरुक्षेत्र-राजपाल एंड संस दिल्ली-संस्करण 2017-पृष्ठ 6, 6-खगेन्द्र ठाकुर-रामधारी सिंह दिनकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व-प्रकाशन विभाग भारत सरकार दिल्ली-संस्करण 2014-पृष्ठ 87, 7-रामधारी सिंह दिनकर-कुरुक्षेत्र-राजपाल एंड संस दिल्ली-संस्करण 2017-पृष्ठ 32, 8- वही-पृष्ठ 16, 9-वही-पृष्ठ 17, 10-वही-पृष्ठ 16, 11-वही- पृष्ठ 15, 12- वही- पृष्ठ 25, 13-वही-पृष्ठ 25, 14-वही-पृष्ठ 15

(शोध आलेख)

आत्मकथा लेखन तथा जीवनी लेखन

शोध लेखक : प्रो. राखी उपाध्याय
विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
डी.ए.वी.(पी.जी.) कॉलेज, देहरादून

किसी विशिष्ट व्यक्ति के जीवन की यथार्थ घटनाओं पर आधारित अनुभव-कथा का क्रमिक वर्णन एक ऐसा आधार है, जो जीवनी और आत्मकथा को आमने-सामने लाकर खड़ा कर देता है। यही कारण है कि सामान्य दृष्टि से देखने पर अनेक समीक्षक आत्मकथा को जीवनी का अन्य प्रकार ही मान लेते हैं। आत्मकथा को जीवनी की एक विशिष्ट शैली मानने तथा जीवनी, आत्मकथा और संस्मरण की तुलना करते हु, डॉ.शान्ति खन्ना ने लिखा है- "जीवनी, संस्मरण एवम आत्मकथा तीनों ही आत्म अभिव्यक्ति से सम्बन्धित हैं। कोई भी जीवनी ऐसी नहीं होती जिसमें लेखक व्यक्तिगत संस्मरणों का प्रयोग न करता हो।"1

यहाँ यह कहना होगा कि लेखिका ने किसी भ्रान्त धारणा के आधार पर ही जीवनी और आत्मकथा दोनों को आत्म-अभिव्यक्ति से सम्बन्धित मान लिया है। जबकि जीवनी में तो आत्म-अभिव्यक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। जीवनी के नायक के साथ लेखक के आत्म-सम्बन्धों की अभिव्यक्ति भी अनिवार्य नहीं होती, क्योंकि लेखक द्वारा जीवनी में निजी व्यक्तिगत संस्मरणों का उपयोग यदि हो भी;तो अपवाद रूप में होता है, न कि निश्चित अनिवार्यता के रूप में। बीसियों, ऐसी श्रेष्ठ जीवनियाँ भी मिल सकती हैं, जो कि उन लेखकों द्वारा लिखी गई हों, जिसका जन्म ही उनके कथानायक की मृत्यु के पश्चात् हुआ हो। जिनका अपने कथानायकों से संबंध, केवल देखी-सुनी घटनाओं अथवा उनके प्रख्यात कृत्यों व उनकी रचनाओं आदि के द्वारा हो। ऐसे कुछ उदाहरण स्वयं डॉ.शान्ति खन्ना की पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य' में पृ- 296 में 300 तक दी गई पुस्तकसूची में मिलते हैं जैसे- "6 अकबर- रांगेय राघव। 28, गोस्वामी तुलसीदास- शिव नन्दन सहाय। 33 चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य- गंगा प्रसाद

प्रो. राखी उपाध्याय
विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
डी.ए.वी.(पी.जी.) कॉलेज, देहरादून
मोबाइल- 9411190099
ईमेल- drrakhi.418@gmail.com

मेहता। 46, नेपोलियन बोनापार्ट का जीवन चरित्र रमाशंकर व्यास। 81, मीरा बाई- कार्तिक प्रसाद खत्री। 110, सूरदास- राजा राधिकारमण सिंह इत्यादि।"2

अत: यह कहा जा सकता है कि 'कोई भी जीवनी, लेखक के व्यक्तिगत संस्मरणों से रहित नहीं होती।'

आत्मकथा और जीवनी की समानता की भ्रान्ति का मुख्य आधार यह है कि दोनों में ही किसी विशिष्ट व्यक्तित्व की जीवन-झाँकी के दर्शन होते हैं, अतएव डॉ. सोमनाथ गुप्त ने भी आत्मकथा को 'एक विशिष्ट शैली की जीवनी' के रूप में प्रतिपादित किया है।

"इस शैली की जीवनियों का लेखक स्वयं चरित-नायक होता है। लेखक के लिए अपने चरित्र का विश्लेषण सुगम काम नहीं है, सब ओर से साहस बटोर कर लेखक आत्म-विश्लेषण करने बैठता है।"3

सूक्ष्म विवेचन से ज्ञात होता है कि जीवनी और आत्मकथा में केवल शैलीभेद या लेखक भेद ही नहीं है, अनेक अन्य स्पष्ट अंतर भी हैं, जैसे कि आत्मकथा तो एक व्यक्ति की एक ही होती है, जबकि जीवनियाँ अनेक। जीवनी के क्षेत्र में यह भी अलग संभावना है कि किसी एक ही प्रसंग के उल्लेख में विविध लेखकों की प्रतिपादन-शैली आदि के भेद के कारण या उनके द्वारा प्राप्त किये प्रमाणों के कारण गहरा मतभेद हो जाए। क्या आत्मकथा के क्षेत्र में ऐसा एक विवादग्रस्त प्रसंग उठाया जा सकता है? बल्कि जीवनी और आत्मकथा के तथ्यों में विरोध होने पर आत्मकथा में वर्णित तथ्यों को ही पप्रमाणिक मानना होगा।

"डॉ. राय पास्कल ने आत्मकथा और जीवनी के पृथक् लक्ष्य की ओर संकेत करके दोनों की, अन्तर्प्रयाण और बहिर्प्रयाण की सर्वथा भिन्न दिशाओं का उल्लेख किया है जिनके कारण दोनों विधाएँ क्रमश:एक दूसरे से दूर होती चली जाती हैं। साथ ही इस स्वार्थानुमान के कारण आत्मकथा का लेखक भोक्ता है, तो जीवनी का लेखक द्रष्टामात्र।"4

आत्मकथा का जीवनी व साहित्य की अन्य विधाओं के साथ प्रमुख अन्तर यह भी है कि उपन्यास, कहानी आदि के समान अत्यंत निम्न- स्तरीय अथवा निकृष्ट-स्तरीय आत्मकथाएँ प्राप्त नहीं हो सकतीं। जीवनियाँ भी उत्कृष्ट, अपकृष्ट तथा निकृष्ट कोटि की हो सकती हैं, क्योंकि कोई भी लेखक भले वह कितने ही निम्न स्तर का लेखन क्यों न करता हो, वह नाटक, उपन्यास, कहानी या जीवनी लिखने में भी यही रहा है।

आत्मकथा के क्षेत्र में इस अव्यवस्था को सहन न करने हेतु निषेध लागू करने की आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि सर्व-सामान्य व्यक्ति तो अपनी आत्मकथा लिखता नहीं। देखा-देखी कोई लिख भी ले, उसके प्रकाश में आने की सम्भावना नगण्य है। प्राय: जब तक किसी लेखक, क्रान्तिकारी, समाज सेवक, राजनयज्ञ या धार्मिक महापुरुष को यह पूर्ण निश्चय न हो जाए कि उसका जीवन, एक ऐसे स्थिर मानबिन्दु पर पहुँच चुका है, जहाँ उसके अपने अनुभव और भाव दूसरों के लिये आकर्षक, अनुप्रेरक और प्रभावात्मक सिद्ध होंगे, तब तक वह आत्मकथा लिखने की भोर प्रवृत्त ही नहीं होता। ऐसी स्थिति आ जाने पर भी सभी महानुभाव आत्मकथा की ओर प्रवृत्त ही हो सकें, ऐसी सम्भावना भी नहीं है।

जीवनी और आत्मकथा में विभेदक लक्षण यह है कि जीवनी पूर्ण कथा होती है, आत्मकथा अपूर्ण। भले ही आत्मकथा-लेखक प्राय: जीवन की संध्या में आत्मकथा लिखना प्रारम्भ करते हैं, किन्तु फिर भी शेष जीवन की कथा अधूरी तो रह ही जाती है। स्वामी श्रद्धानंद ने तो संकेत भी किया है- "मेरे जीवन के शेष अनुभव भी किसी न किसी रूप में जनता के सामने आते ही रहेगें।"5

बनारसीदास चतुर्वेदी ने क्रोपाटकिन की आत्मकथा की भूमिका में लिखा है- "क्रोपाटकिन का यह आत्मचरित सन् 1899 तक का ही चित्रण करता है। उसके बाईस वर्ष बाद तक वे और भी जीवित रहे। उन बाईस वर्षों में उन्होंने जो महान् कार्य किया, उस पर तो एक अलग ग्रंथ ही लिखा जा सकता है।"6

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि 'आत्मकथा कथानायक' के चरित्र के प्रति जिज्ञासा की पिपासा को भड़काती है, शांत नहीं कर सकती। यदि हम ऐसी आत्मकथाओं के उदाहरण खोजें, जिनके लिखने के बाद शेष जीवन अत्यल्प बचा हो, तो भी जीवनी से विषमता तो रहेगी ही। साहित्य-संसार में ऐसे भी दो उदाहरण हैं, जब लेखकों ने अपनी मृत्यु के साक्षात् दर्शन करते हुए जीवन के चरम क्षणों में आत्मकथा लिखने का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया। प्रथम उदाहरण बिस्मिल (सन् 1927 ई0) का है, द्वितीय चैकोस्लोवाकिया के प्रसिद्ध) क्रान्तिकारी फ्यूचिक जूलियस (सन् 1943 ई0) का। दोनों ने फाँसी की कोठरी में बैठकर आत्मकथाओं का प्रणयन किया था। यद्यपि इन कृतियों में उनके जीवन के पूरे दृश्य अंकित हैं, किन्तु जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण दृश्य, जिसे पटाक्षेप कहा जा सकता है, इनमें भी कैसे आ सकता था? किसी भी जीवनी का सर्वाधिक मर्मस्पर्शी अध्याय कथानायक की अंतिम यात्रा और उसकी प्रतिक्रिया का होता है, वही आत्मकथा में समाविष्ट नहीं हो सकता। अत: अर्धकथा तो यह रहेगी ही। क्या यह आश्चर्य-वृत्त नहीं है कि तीन शताब्दी पूर्व हिन्दी के प्रथम आत्मकथा लेखक ने अपनी कृति को इसी संज्ञा से विभूषित करने का सफल प्रयास किया था।7 "इस अध्ययनक्रम की अंतिम मौलिक कृति के अभिधान में भी इसी विशेषता की गन्ध सम्प्राप्य है।"8

जीवनी से आत्मकथा की एक और विशेषता है कि आत्मकथाकार जब साहस बटोरकर आत्मकथा लिखने में प्रवृत्त होता है, तो वह अपने आपको अपने पाठकों की दृष्टि के सामने से छिपाकर रखने का प्रयास नहीं करता। यहाँ तक कि कभी-कभी तो वह अपने अवचेतन की गहन गंभीर गुफाओं में छिपी आकांक्षाओं तक का चित्रण नि:संकोच भाव से कर जाता है। बिना यह सोचे कि उसकी स्थिति इस प्रकाशन के बाद हेय भी हो सकती है। अंग्रेजी कवियत्री कमलादास 'मेरी कहानी' में लिखती हैं- "यह पहला अवसर था, जब मैंने किसी बदनाम आदमी को देखा था। मैं चाह उठी थी कि बड़ी होकर उससे ज़रूर मिलूँगी, और उसकी रखैल बन जाऊँगी। उन दिनों मैं अपनी उमर की वय-सन्धि काल में आई ही आई थी। उस उमर की सारी

समझदारी ने मेरे कानों में फुस-फुसाकर कह दिया था कि दुष्ट आदमी से शादी करके तो चलेगा नहीं, पर हाँ, उसकी रखैल बनकर उसकी दुष्टता का दर्द अलबत्ता सहने योग्य बन जाएगा, क्योंकि उस सुख में ऐसे 'प्यारे पापी' को क्षमा कर विदा हो लेने की सम्भावनाएँ बनी रहेंगी।"9

क्या किसी भी जीवनी में इस प्रकार के विश्लेषण की गंध तक भी सम्भाव्य हैं? प्रत्युत जीवनीकार तो अपने कथानायक के स्खलनों, दुराचरणों, दोषों और अपराधों का यथासम्भव मार्जन, संशोधन या समर्थन करने का प्रयास करता है। फिर कबीर के कथन 'बुरा जो देखन में चला, मुझसे बुरा न कोय' के अनुसार अपने दोषों के दर्शन का ती प्रत्येक को अधिकार है। पर-दोष-वर्णन करके पर-निन्दा का अपराधी कौन बने? गांधी, नेहरू, टालस्टाय, स्वामी दयानन्द, कविवर बनारसीदास जैन, विनोदशंकर व्यास, के म मुन्शी, फ्रैंकलिन, अमृता, बच्चन, उग्र, अनीता, स्वामी श्रद्धानंद, स्वामी वेदानन्द आदि लेखकों ने अपने जीवन की विकृतियाँ स्पष्ट दर्शायी हैं, इससे उनको मानहानि के स्थान पर सत्य वक्ता का सम्मान ही मिला है। स्वामी श्रद्धानंद जी ने तो इस आत्म-दोष-दर्शन के लाभों का भी उल्लेख किया है- "इसमें सन्देह नहीं कि मेरी गिरावट की कहानियाँ बहुत से श्रद्धालु हृदयों को ठेस लगाएँगी, परन्तु मुझे यह विश्वास है कि इस आत्मकथा के पाठ से बहुत से युवकों को संसार-यात्रा में ठोकरों से बचने की शक्ति भी मिलेगी।"10

इस प्रकार यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि आत्मकथा और जीवनी लक्ष्य-भेद, यात्रा-भेद, शैली-भेद और लेखक-भेद आदि अनेक कारणो से, क दूसरे से इतनी अलग विधाएँ हैं, कि इनके स्वरूप को किसी प्रकार से भी घुला-मिलाकर देखना प्रज्ञान या भ्रान्ति को आमंत्रित करने के सिवा और कुछ नहीं है। आत्मकथा और जीवनी लेखन में मुख्य अन्तर इस प्रकार है-

1-आत्मकथाकार का मुख्य प्रयाण अन्तर्जगत् में होता है, और जीवनी-कार का विचरण केवल बाह्य जगत् में संभव है।

2-आत्मकथाकार अपनी विश्वसनीय स्मृतियों के सहारे अनुभवों-खंडों का चयन करके स्वयं उनका क्रम-सन्धान करता हुआ आत्म-विवेचन और आत्म-परीक्षण करता है। जीवनीकार वैज्ञानिक आधार पर ठोस प्रमाण जुटाकर घटनाओं के विवरण मात्र प्रस्तुत करता है।

3-जीवनीकार को आत्मकथाकार के समान कथानायक के अन्तश्चेतन में प्रवेश का सहज अधिकार नहीं, न ही वह घटित घटनाओं के मनोवैज्ञानिक कारणों का सहज विश्लेषण कर सकता है।

4-अन्य सभी विधाओं की तुलना में आत्मकथा विधा में स्तरहीनता की सम्भावना नगण्य है, क्योंकि आत्मकथा-लेखन का साहस तो गिनी चुनी विशिष्ट प्रतिभाएँ ही जुटा पाती हैं। जीवनी-लेखक कोई भी हो सकता है, बहुधा अनेक स्तरहीन लेखक कथानायक से संबंध जोड़ने मात्र के लिये ऐसा करते हैं।

5-जीवनी में कथानायक की पूर्ण, अर्थात् जन्म से मृत्यु तक की कथा समाविष्ट होती है। आत्मकथा इस दृष्टि से सदैव अर्धकथा रहती हैं, क्योंकि मृत्यु जैसी जीवन की मुख्य घटना का उल्लेख उसमें असम्भव है, लेखन काल तक का वर्णन ही संपूर्ण कहलाता है।

6-आत्मकथा किसी एक व्यक्ति के जीवन की एक ही कृति होती है, इसीलिये सन्देहातीत और प्रमाणिक भी, जबकि एक ही व्यक्ति के संबंध में अनेक जीवनियाँ लिखी जाती हैं, और उनमें अनेक स्थलों पर विरोध और विवाद भी खड़े हो जाते हैं।

7-ईमानदार कथाकार साहसपूर्वक संकोच रहित होकर अपने जीवन की अच्छी बुरी सभी प्रकार की घटनाओं का चित्रण करता है। अनेक लेखकों ने तो अपने जीवन के इतने अधिक रहस्यमय और प्रच्छन्न अनुभव अपनी आत्मकथा में लिखकर पाठकों के सम्मुख विश्लेषण प्रस्तुत कर दिये हैं, जो जीवनी-लेखक के लिये अनुमेय तक नहीं हो सकते। जीवनी लेखक हेतु ऐसा साहस अनुमोदनीय भी नहीं है।

8-जीवनी-लेखक अपने चरितनायक के प्रति श्रद्धावश उसके अनेक दोषों, कमियों और स्खलनों से या तो दृष्टि फेर लेता है, या उनके लिये कोई समाधान खोजकर अपने नायक के उदात्त चरित्र की रक्षा का उपाय करता है। जबकि स्तरीय आत्मकथा- लेखक को इस प्रकार की कोई चिन्ता नहीं होती।

अत: जीवनी और आत्मकथा में भेद सर्वथा उचित है। इस स्पष्ट भेदप्रतीति की अनिवार्य आवश्यकता इसलिए भी है, क्योंकि "जीवनी" से समाकार होने की भ्रान्ति के कारण ही "आत्मकथा" के स्वतंत्र व्यक्तित्व के खो जाने या "जीवनी" में अन्तर्लीन हो पाने की अनन्त सम्भावनाएँ विद्यमान हैं।

000

संदर्भ-

1. खन्ना डॉ.शांति आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य पृष्ठ संख्या- 82-83, 2.खन्ना डॉ. शांति और हिन्दी साहित्य का जीवनीपरक साहित्य पृष्ठ संख्या- 296-97, 3. गुप्त डॉ.सोमनाथ आलोचना के सिद्धांत पृष्ठ संख्या- 226, 4. this is a problem for the biographeras much as for the autobiographer, but the two forms are distinct in purpose as well as in form obviously, the autobiographer give us the 'inside view' what Rovsseary calls the 'chain of feeling' for which the autobiographer on the other hand work back, inwards from the defined personality.The protrait as it were realised behaviour is for him descisive, not the consciousness of potentially. The personality that strikes the world as much defined much in self be conscious of multiple uncertainties and unrealised possibilities-design the truth in autobiography- Roy Pascal pageno.-18 5. स्वामी श्रद्धानंद कल्याण मार्ग का पथिक भूमिका पृष्ठ संख्या- 4, 6. क्रोपाटकिन, एक क्रांतिकारी की आत्मकथा अनुवाद बनारसीदास चतुर्वेदी पृष्ठ संख्या-6, 7. जैन, बनारसी दास, अर्द्धकथा रचना वर्ष - 1641 ई., 8. चंदन, कृशन, अधूरे सफर की पूरी कहानी, रचना वर्ष- 1979 ई., 9. कमलदास, मेरी कहानी, पृष्ठ संख्या- 53, 10. श्रद्धानंद, कल्याणमार्ग पथिक, भूमिका

(शोध आलेख)

सुशीला टाकभौरे की कहानियों में अभिव्यक्ति दलित स्त्री एक मूल्यांकन

शोध लेखक : अरुणिमा ए.एम

शोध निर्देशक : डॉ. शोभना कोक्काडन

अरुणिमा ए.एम
हिन्दी विभाग, अविनाषिलिंगम इन्स्टिट्यूट फोर होम सयन्स एन्ड हयर एजुकेशन फोर वुमेन कोयम्बत्तूर-641043
मोबाइल- 9443470743
ईमेल- ponnuarunima7@gmail.com

हिन्दी साहित्य की सशक्त विधा कहानी अब विकास के पथ पर उत्तरोत्तर आगे बढ़ रही है। तत्कालीन साहित्य में दलित साहित्य का उन्नमन के लिए वाद-विवाद एवं शोधकार्य हो रहे है। दलित साहित्यकारों ने आलोचना, उपन्यास, नाटक, कविता, कहानी आदि विधाओं के माध्यम से दलित साहित्य में अपना योगदान दिया है। बीसवीं सदी के प्रारंभ इसकी विकास यात्रा विविध आन्दोलनों तथा विमर्शों से प्रभावित होकर निर्बाध गति से प्रगति के पथ पर अग्रसर होकर होती जा रही है। आदिवासी आन्दोलन, दलित आन्दोलन, बाल विमर्श, स्त्री विमर्श, किन्नर विमर्श, वृद्ध विमर्श आदी उसमें से उभरता हुआ आन्दोलन है। दलित समाज का एक पिछड़ा वर्ग है। दलित महिलाओं की हालत तो और भी ख़राब है। प्रस्तुत लेखन में दलित कहानियों में अभिव्यक्त महिलाओं का अध्ययन किया है।

महिला लेखन एक ऐसे समाज की ज़रूरत है जो महिला लेखिकाओं को ध्यान में रखकर समाज में उनके लिए परिभाषित मूल्यों और मानदंडों को परखता है और ग़लत मानदंडों को अस्वीकार कर मूल्यों के निर्माण की ओर उन्मुख होता है। कभी-कभी लेखिकाओं को सामाजिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, कभी-कभी वे व्यंग्य का निशाना बनते हैं, और कभी-कभी उनके साहित्य का सही अर्थों में मूल्यांकन नहीं किया जाता है। फिर भी महिला चेतना से अभिभूत महिला लेखिकाएँ उनके अनुभवों और भावनाओं को चित्रित करना अपना कर्त्तव्य समझती हैं और आगे कदम बढ़ाती हैं। प्राचीन काल से लोग जिस विकृत सोच को अपनाते आ रहे हैं, उसमें युवा पीढ़ी बदलाव लाने का प्रयास कर रही है। ऐसी कई समस्याएँ आज महिलाओं की समस्याओं के समान हैं। महिलाएँ न केवल अपने लिए बल्कि समाज के अन्य पिछड़े लोगों के लिए भी लड़ रही हैं।

आधुनिक महिला कहानीकारों में प्रगतिशील एवं सशक्त लेखिका सुशीला टाकभौरे जी का

स्थान सर्वश्रेष्ठ एवं उल्लेखनीय है। हिन्दी दलित कथा साहित्य में सुशीला टाकभौरे जी की अपना अलग अस्तित्व एवं पहचान है। सुशीला टाकभौरे जी हिन्दी दलित साहित्य की अग्रणी महिला साहित्यकारों में गिना जा सकता है। निजी जीवन में सुशीला जी वाल्मीकि जाति की है। जातिवादी, वर्णवादी, विषमतावादी समाज रचना के अनुसार उन्हें अछूत माना जाता था। दलित जातियों के लोग सवर्ण समाज की बस्तियों से दूर, गाँव के बाहर रहते थे। सुशीला जी का घर भी गाँव से अलग दूर था। उन्होंने अनेक चुनौतियों के बावजूद दलित साहित्य पर अपना लेखन जारी रखा। सुशीला टाकभौरे जी साहित्य की विविध विधाओं जैसी कहानी, कविता, नाटक, उपन्यास, निबंध, आत्मकथा, वैचारिक लेखों के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्ति किया है।

'सिलिया' एक दलित कन्या की कहानी है। सुशीला टाकभौरे जी ने इसमें समाज में व्याप्त जातिभेद, असमानता की भावना आदि समस्याओं को उठाया है। कहानी के केंन्द्र पात्र सिलिया पढ़ाई करके आत्मविश्वास के साथ अपने समाज को सुधारना चाहती है। सिलिया पढाई बहुत अच्छे से करती थी। सभी गुरुजनों से उसे मान-सम्मान मिलता है। बचपन से ही सिलिया की सबसे बड़ी ताकत उनकी माँ रही हैं। नई दुनिया अख़बार में 'शूद्र वर्ण की वधू चाहिए' विज्ञापन छपा है. उस विज्ञापन में बताया गया है कि एक जाने-माने युवा नेता सेठी जी एक अछूत कन्या से विवाह कर आदर्श स्थापित करना चाहते हैं। यह सुनकर गाँव के पढ़े-लिखे लोगों ने सिलिया की माँ को यह सलाह दी कि "तुम्हारी बेटी तो मैट्रिक पढ़ रही है, बहुत होशियार और समझदार भी है- तुम उसका फ़ोटो, नाम, पता और परिचय लिखकर भेज दो। तुम्हारी बेटी के तो भाग्य खूल जाएँगे, राज करेगी। सेठी जी बहुत बडे आदमी है, तुम्हारी बेटी की क़िस्मत अच्छी है..."।1 जवाब में उसकी माँ कहती है "नहीं भैया, यह सब बड़े लोगों के चोंचले हैं। आज सबको दिखाने के लिए हमारी बेटी के साथ शादी कर लेंगे और कल छोड़ दिया तो हम ग़रीब लोग उनका क्या कर लेंगे? अपनी इज़्ज़त अपने समाज में रहकर ही हो सकती है। उनकी दिखावे के चार दिन की इज़्ज़त हमें नहीं चाहिए। हमारी बेटी उनके परिवार और समाज में वैसा मान-सम्मान नहीं पा सकेगी, न ही फिर हमारी घर की ही रह जाएगी-न इधर की न उधर की- हमसे भी दूर कर दी जाएगी। हम तो नहीं देवें अपनी बेटी को। हमीं उसको ख़ूब पढ़ाएँगे-लिखाएँगे। उसकी क़िस्मत में होगो तो इससे ज़्यादा मान-सम्मान वह ख़ुद पा लेगी"।2 इसके अलावा सिलिया के अपने निजी जीवन की दो घटनाओं ने उसके मन में हलचल जगा दी। सिलिया की मामी की बेटी मालती ने गाडरी मोहल्ले के कुएँ से पानी पीया तो उसकी मामी ने बाल पकड़कर उसकी पिटाई कर दी। क्योंकि मालती ने कुएँ की रस्सी और बाल्टी को छूकर अपवित्र किया है। उस कुएँ से नीच जाति के लोग पानी नहीं पी सकते थे। और दूसरी बात यह कि जब वह पाँचवीं कक्षा में थीं तो उन्होंने एक टूर्नामेंट में हिस्सा लिया था। टूर्नामेंट जल्दी ख़त्म होने के कारण वह अपनी सहेली के घर जाती है। सिलिया की जाति का नाम सुनकर उसकी मौसी उसे पानी तक नहीं देती। इन सब घटनाओं के बाद सिलिया का स्वभाव चिंतनशील हो गया था। उसे छुआछूत, जातिभेद, जैसे दलितों के साथ होनेवाले अन्याय अच्छा नहीं लगता है। सिलिया पढ़ लिखकर स्वयं को ऊँचा साबित करती है, और वह अपने समाज को उन्नति की ओर ले जाने के लिए कोशिश करती है। सिलिया ने समाज से जातिवाद को ख़त्म करने का प्रयत्न की। इस कहानी में जातिवाद, छुआछूत और असमानता की भावनाओं को दर्शाते हुए शिक्षा के महत्त्व को भी दर्शाया गया है।

'टूटता वहम' कहानी में शिक्षित उच्च जाति और दलित जाति के बीच की मानसिक दूरी को प्रस्तुत किया गया है। आज देश इतना प्रगतिशील हो गया है, फिर भी जातिवाद और छुआछूत की भावना व्याप्त है। यह कहानी सामाजिक परिवर्तन के भ्रम को तोड़ने का वर्णन करती है। आज कहा जाता है कि छुआछूत नहीं रही, सभी लोग समान हैं और जातिगत भेदभाव में विश्वास नहीं रखते। लेकिन वास्तविक स्थिति यह है कि आज भी समाज में स्थिति जस की तस बनी हुई है। यही मानसिकता उच्च जाति समाज की है और दलित समाज त्रस्त है। इसमें दलितों की आवास संबंधी समस्याएँ, भेदभाव की समस्या, भोजन की कमी आदि का चित्रण किया गया है। यहाँ समानता के नाम पर झूठा भ्रम दर्शाया गया है। यहाँ लेखिका ने अपने साथ हुए भेदभाव को बताया है। इस कहानी में लेखिका को नागपुर में शिक्षक के पद पर नियुक्ति होती है। जब भी स्कूल में कोई कार्यक्रम होता है तो बड़े-बड़े मेहमान और वक्ता आते रहते हैं। प्रशासक लेखिका को बाहर से आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से परिचय कराते हुए उनकी जाति के बारे में बताते हैं। लेखिका बार-बार जाति का उल्लेख करने के पीछे के उद्देश्य को पहचानता है। जबकि पढ़े-लिखे लोग सामने तो दिखाते हैं कि वे भेदभाव नहीं करते, लेकिन पीठ-पीछे भेदभाव दिखाते हैं। एक बार लेखिका ने सभी एसोसिएट प्रोफेसरों को अपने घर पर खाना खाने के लिए आमंत्रित किया। इसलिए केवल चार प्रोफेसर ही आते हैं। उनमें से दो लोग खाना खाने बैठे। ये दोनों भी अनुसूचित जाति से हैं। यहाँ भी ऊँची जाति के लोगों ने भेदभाव दिखाया। इसी तरह उन्होंने एक और घटना बताई है कि वह जिस कॉलोनी में रहती हैं, वहाँ उन्हें एक प्लॉट खरीदना था। लेकिन उसके पास इतने पैसे नहीं हैं तो वह अपने पति के सहकर्मी शिक्षक शर्मा जी से प्लॉट का आधा हिस्सा खरीदने की सोचती है। लेकिन शर्मा जी इस बात को टाल देते हैं। इसलिए उस प्लॉट को कोई और खरीद लेता है। लेखिका कहती है - "जब भी हम उस प्लॉट के पास से गुज़रते है, उस पर बने मकान को देखकर लगता है, हम भी ऐसा ही मकान बना लेते, यदि हमें धोखे में ना रखा गया होता"। 3 इस प्रकार लेखिका ने अपने अनुभव बताने का प्रयास किया है। दलित समाज सवर्ण समाज की व्यवहार कुशलता की परीक्षा ले रहा है। दलित समाज सोच रहा है कि हम चाहे कुछ भी बन जाएँ, कुछ भी हासिल कर लें, जातिगत

भेदभाव हमेशा बना रहेगा। हमारे साथ अन्याय होता रहेगा। हम पीड़ा, कष्ट और अपमान की चक्की में पिसते रहेंगे। जब तक हमारा वहम नहीं टूटेगा हम इस अन्याय को सहते रहेंगे।

'कड़वा सच' कहानी के माध्यम से सुशीला जी ने एक कमज़ोर दलित महिला को आधुनिक सशक्त दलित महिला के रूप में दर्शाया है। कहानी के केंद्रीय पात्र हैं सुधीर जी और शशि वाल्मिकी। सुधीर जी अम्बेडकरवादी आंदोलन के कार्यकर्ता और दलित साहित्य और स्त्रीवादी साहित्य के प्रवर्तक हैं। शशि कविताएँ और कहानियाँ लिखा करती थीं, इसीलिए शशि की दोस्त निशा ने उन्हें सुधीर जी से मिलवाया। उनकी कहानियाँ पढ़कर सुधीर जी बहुत क्रोधित हुए। शशि की सारी कहानियाँ एक जैसी लगीं। सभी कहानियों में एक जैसी समस्याएँ और परेशानियाँ नज़र आईं। सुधीर जी ने उन्हें समझाया कि एक कहानी दूसरी से अलग होनी चाहिए, आपकी कहानी में एक बात बार-बार दोहराई जा रही है। आप एक अच्छी लेखिका हैं। लिखने के तरीके में बदलाव लाकर लेखन में आधुनिकीकरण लाने की कोशिश करों। सुधीर जी के जाने के बाद वह अपने अंतर्मन से सवाल करती रही कि मैं अपनी कहानियाँ ख़ुद लिखती हूँ, इसमें कैसे बदलाव लाऊँगी। सुधीर जी ने जो कहा वह सत्य था। लेकिन मेरी अपनी सच्चाई भी थी। मन ही मन अपनी आंतरिक इंद्रियों से बात करते हुए उसे कुछ पुरानी यादें याद आने लगीं। शशि ने यह तय किया कि अपनी यादों को कहीं नए ढंग से लिखने की कोशिश करूँगा। वह इस बारे में सोचने लगी कि मैं अपने लेखन को अलग तरीके से कैसे देखता हूँ। अगर हम प्यार पर लिखें तो वह प्राइमरी स्कूल में पढ़ रही थी और उसका पति कॉलेज में पढ़ रहा था। उसने अपने पति को शादी के बाद ही देखा। बाद में उसके ससुराल वालों ने यह कहकर उसे छोड़ दिया कि उसे कम दहेज मिला है। बाद में शशि ने ख़ुद सोचा कि ये प्यार नहीं हो सकता, उन्हें किसी और विषय पर लिखना होगा। वह अपनी पुरानी यादें तलाश रही थी। एक रात जब उसका पति अपने प्यार का इज़हार करने आया तो उन्होंने कल मंदिर जाने की बात की। पति ग़ुस्सा हो गया और कब क्या बात करना है पता नहीं है कहकर चला गया, वे नहीं जानता था कि पति क्यु ग़ुस्सा हो गई। जब वह घर पर अकेली थी तो उसके पति के दोस्त मोहन ने उससे प्यार भरी बातें कीं। लेकिन शशि ने उसे भगा दिया। उसका अंतर्मन कह रहा था कि कम से कम कुछ प्रेम भरी बातें सुन लेती तो कहानियों में काम आती। फिर ख़ुद से बात करते-करते उन्हें राजनीति की याद आ गई। शशि ने राजनीति में रुचि जताई थी। एक भाई ने उसे कई एम.एल.ए, एम.एल.सी, पी.ए, पुणे आदि से मिलवाया। कई महत्त्वपूर्ण लोगों से मिलवाने के बाद भाई उसे मंत्री से मिलवाने ले गया। मंत्री के बंगले में लोगों को खा-पीकर डकारें लेते देखा। वे उसके करीब आ रहे थे। शशि ने तुरंत भैया से वहाँ से चले जाने का अनुरोध किया। लेकिन वो भाई अपना कुछ काम पूरा करवाने के लिए ही उसे वहाँ लेकर आया था। सब कुछ समझने के बाद शशि तुरंत वहाँ से निकल गई। उस दिन से आज तक वह राजनीति से डरती हैं। शशि ने अपनी नई कहानी अपने तरीके से पूरी की। आधुनिक नारी अपने पति से दुखी और क्रोधित है। दुबारा शादी करने के बारे में सोचकर वह तलाक के लिए लड़ती है। बाद में आधुनिक नारी इस बात को ग़लत समझती है और निराश एवं असंतुष्ट होकर बीमार पड़ जाती है। इस नई कहानी को पढ़ कर सुधीर जी हँस रहे थे। उन्होंने तारीफ भी की। लेकिन उन्हें अच्छे से समझाया कि आप कहानियों की महिलाओं पर अपनी कठोर मानसिकता न डालें, उन्हें वही मिलने दें जो वे चाहती हैं। उस पर अपनी राय न थोपें। शशि के चेहरे पर डर देख कर सुधीर जी ने उसे निडर रहने को कहा। घर से बाहर निकलें और अकेले काम करें, हर कोई बुरा नहीं होता, अच्छे लोग भी होते हैं। उसे तो सुधीर जी की कही हर बात सही लगती है। आत्मविश्वास की कमी के कारण महिलाएँ कमज़ोर हो जाती हैं। शशि ने हिम्मत जुटाई और समाज को एक अलग नजरिए से देखना शुरू किया। निडर होकर आत्मविश्वास से जीना सीखा। कहानी के अंत में शशि को समझ आता है कि अपना रास्ता ख़ुद बनाना बहुत बड़ी बात है।

उनकी कहानियों के अध्ययन से पता चलता है कि समाज में दलितों की स्थिति क्या है। ऊँची जाति के लोग दलितों को अपना सेवक मानते थे। उन्होंने दलितों के साथ मनमाना व्यवहार किया है। लेकिन अब दलित लोग उन्हें अपनी मर्जी से चलने नहीं देना चाहते। उनकी कहानियों में दलित जाति अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती नज़र आती है। लेखिका ने अपनी लेखनी से दलित समाज को एक नई दिशा दी है। समसामयिक परिप्रेक्ष्य में वर्तमान को बेहतर बनाना और आने वाली पीढ़ियों के वर्तमान और भविष्य के बारे में सोचना ही इन कहानियों का उद्देश्य है। सुशीला जी के लेखन का उद्देश्य सिर्फ कहानियाँ लिखना ही नहीं था बल्कि समाज में घटित दलितों और महिलाओं की समस्याओं का उजागर करना ही था। वे अपनी कहानियों में कई समस्याओं को चित्रित करने में सफल रही हैं। इसीलिए सुशीला जी की कहानियाँ आधुनिक युग में दलितों और महिलाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली कहानियाँ हैं। उनकी कहानियों का मुख्य उद्देश्य समाज में पिछड़ी हुई दलितों की त्रासदी, समस्याओं और संघर्षों का प्रस्तुत करना है। मेरे विचार से सुशीला जी अपनी कहानियों को अपने उद्देश्य तक पहुँचाने में सफल रही हैं।

000

संदर्भ-

1.डॉ. सुशीला टाकभौरे, सिलिया, पृ.61, दलित कहानी संचयन, रमणिका गुप्ता, प्रथम संस्करण-2003, साहित्य अकादेमी. 2.डॉ. सुशीला टाकभौरे, सिलिया, पृ.61-62, दलित कहानी संचयन, रमणिका गुप्ता, प्रथम संस्करण-2003, साहित्य अकादेमी. 3.डॉ. सुशीला टाकभौरे, टूटता वहम, पृ. 61, सहायक ग्रंथ- रजत रानी मीनू, दलित स्त्री केन्द्रित कहानियाँ, प्रथम संस्करण-2003, वाणी प्रकाशन. रमणिका गुप्ता, दलित कहानी संचयन, प्रथम संस्करण-2003, साहित्य अकादेमी.

(शोध आलेख)

मराठी साहित्य की प्रमुख महिला कहानीकारों का रचना संसार

शोध लेखक : डॉ.संतोष गिरहे
सहयोगी प्रोफेसर
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर
मोबाइल- 9421971832
ईमेल-santoshmgirhe@gmail.com

मराठी साहित्य में कहानियों का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। वैसे तो पूरे भारतीय साहित्य का विचार करें तो कहानी 'कहना' और 'सुनना' मनुष्य की सहज प्रवृत्ति रही है। यही कारण है कि साहित्य में सबसे लोकप्रिय विधा के रूप में कथा साहित्य ने अपना महत्त्वपूर्ण स्थान हासिल किया है। बिल्कुल यही स्थिति मराठी साहित्य में भी देखने को मिलती है। विभिन्न व्रत और त्यौहारों के अवसर पर स्त्रियों द्वारा अनेक धार्मिक, नैतिक और जीवन उपयोगी कहानियाँ सुनी और सुनायी गई। धीरे-धीरे यही प्रचलन साहित्य विधाओं में भी देखा गया। आधुनिक काल में नए-नए भाव बोध के साथ उसे अभिव्यक्त किया जाने लगा। महिलाओं के द्वारा उनकी स्वानुभूति कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत होती गई। अपने-अपने समय, परिस्थिति और देशकाल वातावरण के अनुसार कहानियों के विषय तथा समस्याओं का अंकन होता गया। वही सारी स्थितियाँ मराठी महिला कहानीकारों की कहानियों में भी है। महिलाओं ने अपने जीवन अनुभव, पारिवारिक समस्याएँ, नौकरी तथा रोज़गार तथा अन्य जहाँ कहीं भी उनके ऊपर अन्याय अत्याचार शोषण या प्रताड़ना होती थी, उसकी बेवाक अभिव्यक्ति उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से करने का प्रयास किया है।

शांताबाई मराठी महिला कहानी लेखिकाओं में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण नाम है। इनके द्वारा लिखित 'बिचारी आनंदीबाई' मराठी की पहली स्त्री द्वारा लिखी कहानी मानी जातीं है। यह एक उपदेशात्मक कहानी है। जिसमें आनंदीबाई के सुखी परिवार में पति के निधन के कारण निर्माण हुई त्रासदी का चित्रण है। आनंदी तन मन धन से अपने क्षयग्रस्त पति की सेवा करती है परंतु फिर भी उसकी मृत्यु हो जाती है। विधवा आनंदीबाई के अभावग्रस्त जीवन और पीड़ा को इस कहानी में व्यक्त किया है।

जानकीबाई मराठे भी मराठी कहानी साहित्य की महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। इनके द्वारा 'अभागी यमुना' नामक कहानी लिखी गई है। इस कहानी की नायिका यमुना अपने जीवन संघर्ष को पत्रात्मक शैली में किसी दूसरे शहर में रहनेवाली अपनी बहन गंगु को बताती है। कहानी की नायिका यमुना विधवा है, इस कारण वह अपने मायके में ही रहती थी। माँ का निधन, अपना विधवा जीवन तथा भाभी द्वारा दी गई अनेक यातनाएँ और छल से त्रस्त होकर वह अपनी जीवन लिला समाप्त करती है। प्रस्तुत कहानी में स्त्री जीवन की करूण अभिव्यक्ति है।

काशीबाई कानिटकर मराठी महिला कहानीकारों में इनके नाम की महत्त्वपूर्ण चर्चा साहित्य जगत् में देखने को मिलती है। 'चाँदण्यातील गप्पा', 'शिळोप्या गोष्टी' इनके द्वारा लिखे गए कहानी संग्रह हैं। इसमें उन्होंने सामाजिक समस्याओं पर अपनी लेखनी चलाई है, जैसे-"दारूचे दुष्परिणाम', 'सत्समागमाचे फायदे', 'अत्युच्च प्रेमाची महती', 'ग़रीब', मनुष्याला त्याचे नातेवाईक कसे विसरतात, प्रसंगावधान व चातुर्य यामुळे आल्या प्रसंगाला तोंड कसे देता येते अशा सारखे त्यांच्या कथांचे विषय आहेत।"1 'लावण्यवती' तथा 'प्रसाद' यह कल्पित कहानियाँ हैं। साथ ही साथ 'मारूतीचा प्रसाद' एवं 'सारस बाग' इनके द्वारा लिखी गई बोध कथाएँ हैं। 'चाँदण्यातील गप्पा' को कहानी मालिका के अंतर्गत देखा जाता है। उस समय में फैली प्लेग की बीमारी से त्रस्त जनसामान्य लोगों के मन से डर तथा उदासी को भगाने के लिए इन कहानियों की सहायता से प्रयास किया गया था।

गिरिजाबाई केलकर भी मराठी की प्रमुख महिला कहानीकार रही हैं। इन्होंने 'समाज चित्रे' भाग-1 तथा 2 और 'केवल विश्रांतीसाठी' इन दो कहानी संग्रहों को लिखा है। इनकी कहानियों में उपदेशात्मकता की बहुलता है। "गिरिजाबाईंच्या कथातून प्रामुख्याने सामाजिक प्रश्नावरील हितगुज अधिक आढळते।"2 मध्यमवर्गीय पारिवारिक महिला जीवन का यथार्थ चित्रण इन्होंने अपनी कहानियों में किया है।

आनंदीबाई शिर्के कहानीकार रही हैं, जिन्होंने 'कथा कुंज', 'कुंज विकास', 'कुंज निवास', 'जुईच्या कळ्या', 'तृण पुष्पे', 'साखर पुडा' आदि कहानी संग्रह लिखे हैं। आनंदीबाई की कहानियाँ सोद्देश्य है, जिसमें सामाजिक नैतिकता को बड़ी सहजता से अभिव्यक्त किया गया

है। इस संदर्भ में प्रा. म. ना.अदवंत लिखते हैं, "आनंदीबाई शिर्के याँच्या कथांचा दृष्टिकोणही समाजाला काही तरी नैतिक धडा शिकविण्याचा आहे।"3

कमलबाई तिलक मराठी महिला कहानीकार हैं। इन्होंने अपने 'हृदयशारदा' नामक कहानी संग्रह में नारी जीवन की अनेक समस्याओं को अभिव्यक्ति दी है। जिसमें प्रमुख रूप से नारियों की व्यक्तिगत समस्याएँ बड़ी खूबी से चिचित हैं। 'आशाभंग', 'पतिव्रता', 'पूर्वस्मृति', 'आत्मदान', 'प्रेमाचा वाटा' आदि इनकी महत्त्वपूर्ण कहानियाँ रही है। जो नारी जीवन की समस्याओं का मनोविश्लेषण करती है। इस संदर्भ में म. ना. अदवंत ने लिखा है, "सूक्ष्म मनोविश्लेषण व स्त्री जीवनांतील नव्या-नव्या समस्या यांचे दर्शन आपणांस सौ. कमलताई टिळक यांच्या कथांतून होते. त्यांच्या कथांतून बाह्य घटनापेक्षा तरल भावनांनाच महत्त्व मिळाले आहे. त्यामुळे त्यांच्या कथा मनावर अधिक परिणाम करतात।"4

विभावरी शिरूरकर का कहानी संग्रह 'कळयांचे नि:श्वास' पारिवारिक तथा नौकरीपेशा स्त्री जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति करता है। इसमें प्रमुखता से सामाजिक रूढ़ियों, परम्पराओं के प्रति विद्रोह करती स्त्रियों का मार्मिक चित्रण है। "स्त्री मनाचे सखोल विश्लेषण, तिच्यापुढं पडलेल्या निरनिराळ्या सामाजिक समस्या व रूढींच्या आणि बदलत्या परिस्थितीच्या कात्रीत सापडल्यामुळे त्यांची जीवनाची झालेली परवड या सर्वांचे चित्रण विभावरी शिरूरकर, सौ. मालती बेडेकर यांनी अतिशय जिव्हाळ्याने केले आहे।"5 इस संग्रह का शीर्षक भी एक प्रतीक है, जो कलीरूपी नारी के मुरझाने की स्थिति को उजागर करता है। प्रमुख रूप से प्रौढ़ स्त्रियों के जीवन को यहाँ उठाने का प्रयास कहानीकार द्वारा हुआ है। गरीबी या रूप सौंदर्य न होने के कारण विवाह न होने की स्थिति में नारी जीवन की क्या दुर्दशा होती है, इसका लेखा-जोखा इस संग्रह में दिया गया है।

कृष्णाबाई दीक्षित द्वारा लिखित 'मानस लहरी' और 'अनिरूद्ध प्रवाह' नामक दो कहानी संग्रह लिखे गए है। 'आमचे दास' इस कहानी में एक पढ़ी-लिखी महिला की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। कहानी की नायिका विवाहोपरांत पति अधिनस्थ होकर नहीं जीना चाहती उसका अपना स्वतंत्र्य अस्तित्व सिद्ध करने के लिए वह पति को छोड़कर अपने मायके वापस आती है। एक दृष्टि से कहानी नारी संघर्ष और विद्रोह की अभिव्यक्त करती है। कृष्णाबाई की कहानियों पर प्रकाश डालते हुए म.ना.अदवंत लिखते हैं कि, "विषम विवाह, प्रेमविवाह, स्त्रियांचे समान हक्क, पुरुषांचे द्विपत्नीत्व इत्यादी अनेक प्रश्नांना कृष्णामाईंच्या कथा जिव्हाळ्याने हात घालते।"6

कुसुमावती देशपांडे के 'दीपकली', 'दीपदान' 'माळी', 'दीपमाला' आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इनकी कहानियों में नारी जीवन को बड़ी बारीकी तथा चिंतनशीलता की दृष्टि से अत्यंत सहज-सरल अभिव्यक्ति दी है। उनकी कहानियों की विशेषता यह है कि उन्होंने "लघुकथेच्या पारंपारिक साच्याकडे दुर्लक्ष करून स्वत:चे स्वतंत्र असे रंगरूप त्यांनी आपल्या कथेला दिले आहे।"7

वसुंधरा पटवर्धन मराठी कहानीकारों में एक प्रमुख हस्ताक्षर मानी जाती हैं। इनकी कहानियों में नारी जीवन की समस्याओं को प्रमुखता से अभिव्यक्ति दी है। "आपल्या प्रदीर्घ लेखन कारकिर्दीत त्यांनी विपुल कथालेखन केले. ते मुख्यत: स्त्रीलक्ष्यी आहे। परंपरागत मूल्यविचारांसी फारकत न घेणाच्या त्यांच्या कथेत स्त्रीच्या भावविश्वाचे विशेषत: तिच्या दु:खभोगाचे सहानुभवाने केलेले चित्रण आढळते।"8 'स्त्री', 'तपश्चर्या', 'सरल संस्कार', 'घेणेकरी', 'घर', 'उपासना' आदि महत्त्वपूर्ण कहानियों में 'स्त्री' जीवन के अर्न्तमन को चिंतनशीलता की दृष्टि से प्रस्तुत किया है।

सरिता पदकी द्वारा लिखित 'बारा रामाचे देऊळ' नामक कहानी संग्रह में कुल अठराह कहानियाँ संग्रहित हैं। 'रात्र', 'आटापिटा', 'सुटका', 'अर्धा दिवस सुट्टी', 'फुगे', 'दंश', 'पुनर्जन्म' आदि कहानियाँ लिखी है। इनकी कहानियों का प्रमुख विषय नारी जीवन की समस्याएँ हैं, जिसमें प्रौढ अविवाहित स्त्रियों की अनेक समस्याएँ बड़ी बारिकी से चित्रित की है।

इंदिरा संत द्वारा 'श्यामली' और 'कदली' नामक दो कहानी संग्रह प्रकाशित हैं। इंदिरा जी की कहानियों की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने अपनी कहानियों में दलित जीवन की अभिव्यक्त की है।

सरोजनी बाबर ने 'सटवाईची पावलं', 'नव्याची पुनव', 'अंजी', 'कोकणी', 'राधा गौळण', 'रूनझुनत्या पाखरा', आदि कुछ महत्त्वपूर्ण कहानियाँ लिखी हैं। इनकी कहानियों में सामाजिक जीवन के ग्रामीण पक्ष की अभिव्यक्त प्रमुखता से हुई है। इन्होंने ग्रामीण जीवन की विभिन्न समस्याएँ, रीति-रिवाज, श्रद्धा-अंधश्रद्धा आदि को सटीक एवं मार्मिक अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है।

कमल देसाई साठोत्तरी मराठी महिला कहानीकारों में एक चर्चित नाम है। इनके द्वारा 'रंग', 'रंग-2', 'रात्र दिन आम्हा युद्धाचा प्रसंग', 'हॅट घालणारी स्त्री' आदि कथाएँ प्रकाशित हुई है। रंग इनका पहला संग्रह है जिसमें अधिकत्तर नायिका प्रधान कथाएँ संकलित है। इन नायिकाओं की भी एक प्रमुख विशेषता यह है कि, इनका जीवन संघर्ष निरंतर बना हुआ है। यह अपने जीवन पथ पर लढ़ते-झगड़ते मार्गक्रमण करती है, टूटती है, हताश होती है परंतु झुकती कभी नहीं। कमल देसाई और विजया राजाध्यक्ष की कहानियों के विषयों पर प्रकाश डालते हुए डॉ. प्र.न. जोशी लिखते हैं कि, "विजया राजाध्यक्ष व कमल देसाई यांच्या कथा कलात्मक पातळीवरच्या असून स्त्री पुरुषांच्या मनाचे विविध अंगांनी चित्रण सूक्ष्मतेचे आहे।"9

तारा वनारसे सन 60 के बाद की महत्त्वपूर्ण कहानीकार हैं। 'पश्चिमकडा' 'सारंग', 'अस्मिता', 'पशु सहस्त्रक्ष', 'पुठठ्याचा समुद्र' आदि कहानियाँ संकलित है। सहस्त्रक्ष में ताराजी के लेखन की सारी खूबियाँ नज़र आती है। इसमें पुरुष वासना की संवेदनशील नारी मन पर हुए परिणामों की

सशक्त अभिव्यक्ति है।

सुधा नरवणे ने 'मरालिका', 'दोलचल', 'सरणं गच्छामि', 'इंद्रधनू' आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हैं। इनकी 'ओढ़, ' 'ख्रिस्तजन्म', 'झोपला', 'चक्काचूर' आदि महत्त्वपूर्ण कहानियाँ है।

सानिया सन 1975 के बाद की महत्त्वपूर्ण कहानीकार हैं। उनके शोध, 'प्रतीती', 'खिडक्या', 'भूमिका', 'वलय', 'परिणाम प्रयाण', आदि कहानी संग्रह संकलित हैं। इनकी कहानियों में प्रमुखता से स्त्री केंद्र में रही है। समाज में पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था के कारण नारी की हमेशा उपेक्षा होती रही है। इसी कारण पारिवारिक रिश्तों में तनाव तथा स्त्री-पुरुष संबंधों में बेबनाव की स्थिति बनी रहती है। इन्हीं सारी समस्याओं का सामना करते करते नारी संघर्ष को स्वीकार करती है तथा पुरुषवादी वर्चस्व को चुनौती देने का साहस बना लेती है। ऐसी कुछ समस्याओं को सानिया जी ने अपनी 'रिच्युअर', 'अपरिहार्य', 'सुटका', 'फ्रेम', 'रस्ते काळोखाचे' आदि कहानियों के माध्यम से उजागर करने का प्रयास किया है। सानिया जी की नायिकाएँ अपनी भावनाओं में जीती हैं इसलिए वे स्वयंकेंद्री लगने लगती हैं। इस संदर्भ में चंद्रकांत बांदिवडेकर लिखते है कि, "उनके अधिकांश स्त्री व्यक्ति रेखा अपनी मन की आवाज़ के अनुसार जीते हैं और असफल होते हैं। जीवन से आस्था उठ जाने से इस व्यक्ति की कथा जीवन विघटन की और संकेत करती है। सानिया ने ऐसे व्यक्ति चित्रण प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किए हैं।"10

गौरी देशपांडे मराठी महिला लेखिकाओं में एक प्रमुख नाम है। 'आहे हे असे आहे' इनका कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ है। इनकी कहानियों में भी नारी चरित्र ही प्रमुख रूप से उभरकर आते हैं। स्त्री-पुरुष संबंध हो या विवाहबाह्य संबंध इनकी बड़ी बारीकी से उन्होंने अभिव्यक्ति की है। उनकी कहानी 'देण' में पति-पत्नी संबंधों के साथ-साथ स्त्री पर जबरदस्ती लादा जाने वाला मातृत्व की विद्रोही अभिव्यक्ति नायिका अनिता के माध्यम से की गई है। मालती कहती है, "तुम्हारे देश में स्त्री को बच्चे निर्माण करने की मशीन मानते हैं लेकिन मैं अमेरिकन हूँ। जब चाहूँगी माँ बनूँगी। " यही बात है कि, स्त्री-पुरुष संबंधों को लेकर गौरी के कहानी लेखन को व्याख्यायित करते हुए डॉ. शिवकुमार सोनाळकर कहते हैं, "गौरी देशपांडे यह मुलत: स्त्रीवादी दृष्टि से कथा लेखन करनेवाली लेखिकाओं में सबसे आगे हैं। उनकी वैचारिक पृष्ठभूमि दृढ़ और निश्चित है। इसलिए स्त्री-पुरुष संदर्भ में वे परम्परागत विचारों का विरोध करती है और स्त्रीवादी दृष्टिकोण को समर्थन देती है। उनकी कथाओं में स्वतंत्र और मुक्त जीने की आकांक्षा रखनेवाली नायिकाएँ है।"11

सुनीता आफळे ने 'अनाथ', 'रिकामी', 'केवडा', 'बाहुल्या' आदि कहानी संग्रह लिखे हैं। इन्होंने भी कुछ नारी केंद्रित कहानियाँ लिखी हैं जिनमें 'जळवाट', 'ओटी', 'अनाथ', 'तळघर', 'निर्णय', 'नर', 'मादी', 'सुगंध', 'वेश्या' आदि है। इनकी कहानी 'वाल्या कोणाची बायको' में स्त्री विद्रोह का स्वर दिखाई देता है।

वसुधा पाटील के 'शांत सागरी कशास' तथा 'अखेरच्या क्षणी' कहानी संग्रहों का संकलन प्रकाशित किया है। जिनमंह 'माणसे', 'कोणीतरी कुणासाठी तरी', चिबोर्यात', 'दुरावा', 'रक्तात भिजलेली', 'आंदण', 'शांत सागरी कशास', 'रगेल नातं, 'अखेरच्या क्षणी', 'बला' आदि उल्लेखनीय कहानियाँ है। इन्होंने अपनी कहानियों में विपरित सामाजिक स्थितियाँ, स्त्री शोषण तथा विवाह संस्था की ओर विशेष ध्यान रखते हुए कहानियों का निर्माण किया है। साथ ही साथ स्त्री का आत्मस्वाभिमान और संघर्ष की रक्षा करने के लिए पुरुष मानसिकता के प्रति विद्रोह के भाव जागृत करती नारी को अभिव्यक्त किया है।

प्रिया तेंडुलकर मराठी महिला कहानीकारों में महत्त्वपूर्ण नाम हैं। इन्होंने 'ज्याचा त्याचा प्रश्न', 'जन्मलेल्या प्रत्येकाला', 'जावे तिच्या वेशा', आदि कहानी संग्रह प्रकाशित किए हैं। प्रियाजी ने नारीवाद की दृष्टि से अपनी कहानियाँ लिखी हैं। इसलिए उनकी कहानियों में स्त्री जीवन की अनेक समस्याएँ चित्रित हुई है। जिसमें पारिवारिक शोषण, मानसिक और शारीरिक शोषण आदि समस्याओं का बखूबी चित्रण किया है। 'सुंदरचे दिवस' कहानी में स्त्री पुरुष संबंधों पर प्रकाश डाला है। "स्त्री-पुरुष संबंधातील नितळ मैत्रीचे हृद्य चित्रण त्या सुंदरचे दिवस या कथेत करतांना आढळतात."12

निष्कर्ष- मराठी के कहानी साहित्य की दीर्घ परंपरा रही है। इसलिए इस क्षेत्र में बहुत सारे कहानीकारों में अपनी समृद्ध लेखनी से अपना परिचय कराया है। इतनी समृद्ध तथा दीर्घ परंपरा में नारी भी कैसे पीछे रह सकती है। कहानी लेखन की इस परंपरा को नारी द्वारा भी उतना ही सहयोग प्राप्त हुआ जितना पुरुष कहानीकारों द्वारा मिलता था। महाराष्ट्र की भूमि संतों की भूमि रही है। इसलिए वैचारिक धरातल पर जितनी सुधारवादी परंपरा यहाँ पायी जाती है, उसका बहुत बड़ा सहयोग साहित्य क्षेत्र को मिला है। यही कारण है कि सामाजिक नारी जीवन और नारी सुधार की दृष्टि से इस क्षेत्र में वैचारिक प्रगल्भता देखने को मिलती है। स्त्री को पढ़ने-लिखने तथा व्यवसाय-रोज़गार के क्षेत्र में भी यहाँ ज़्यादा खुली छुट मिलने के कारण वह अपनी एक स्वतंत्र पहचान बना पायी है। कहानी लेखन के क्षेत्र में भी इन सारी वैचारिकता का सकारात्मक प्रभाव देखा गया है।

संदर्भ- 1.मराठी कथा साहित्य एक आलेख-प्रा. म. ना. अदवंत, पृ.58, 2.वहीं, पृ.59, 3.वहीं, पृ.60, 4.प्रदक्षिणा खण्ड- सं. अनिरूद्ध कुलकर्णी, पृ.153, 5.मराठी कथा साहित्य एक आलेख-प्रा. म.ना. अदवंत, पृ.17, 6.वहीं. पृ.65, 7.वहीं पृ.67, 8.मराठी कथा विसावे शतक (मराठी कथा:पूर्वरंग) के. ज. पुरोहित, पृ.51, 9.मराठी वाङ्मयाचा विवेचक इतिहास-अर्वाचिन काळ-डॉ. प्र.न.जोशी, पृ.424, 10.साठ नंबरची मराठी कथा (ललित पत्रिका)-चंद्रकांत बादिवडेकर पृ.18-19, 11.स्त्रियांचे कथा लेखन: सामाजिक आणि भाषिकता-शिवकुमार सोनाळकर, पृ.123, 12.प्रदक्षिणा खण्ड -सं. अनिरूद्ध कुलकर्णी, पृ.146

(शोध आलेख)

सिनेमाई दायरे में अस्मिता की तलाश : थर्ड जेंडर के संदर्भ में

शोध लेखक : अभिरामी सी जे

शोध निर्देशक : डॉ शोभना कोक्काडन, अविनाशीलिंगम इनस्टीट्यूट फॉर होम साईन्स एंड हयर एजुकेशन फॉर विमेन कोयम्बत्तूर-641043

अभिरामी सी जे
अविनाशीलिंगम इनस्टीट्यूट फॉर होम साईन्स एंड हयर एजुकेशन फॉर विमेन
कोयम्बत्तूर-641043
मोबाईल- 9995931963
इमेल- abhirami97june@gmail.com

समाज से बहिष्कृत या उपेक्षित अल्पसंख्यकों को केन्द्र में रखकर वर्तमान युग में अधिक संख्या में चर्चा एवं परिचर्चाएँ होती हैं। परिणामस्वरूप समाज से बहिष्कृत लोगों की वैयक्तिक स्वतंत्रता व अस्मिता को लेकर हाल ही में बदलाव दिखाई पड़ा। इस सामाजिक बदलाव में साहित्य और फिल्म का एक अलग अस्तित्व एवं पहचान है। प्रगतिशील परिप्रेक्ष्य में सिनेमा एक ऐसा प्रभावशाली या सशक्त माध्यम रहा है जिसने सदियों से समाज को सर्वाधिक प्रभावित किया है। सिनेमा मात्र मनोरंजन का साधन ही नहीं बल्कि सामाजिक - राजनीतिक मुद्दों पर प्रतिरोध या अनीति को दर्शाने का एक मजबूत माध्यम है। दलित, आदिवासी, किन्नर, क्वीर जैसे हाशियेकृत समूह के प्रति समाज की संवेदनशीलता को जगाने और मानसिकता को बदलने का प्रयास फिल्म ने किया है। भारतीय हिन्दी सिनेमा में क्वीर का चित्रण तेजी से बदल रहा है। पहले क्वीर पात्रों को सिर्फ एक मज़ाक पात्र के रूप में दर्शाया जाता था। आज कल ऐसी फिल्में आ रही हैं जो क्वीर चरित्र के विभिन्न पहलुओं को समाज में पेश करती हैं जो समाज में अलगाव झेल रही इस समूह की समस्याएँ एवं संघर्षों को समझने एवं उन पर विचार करने की माध्यम बन रही हैं और जिसके फलस्वरूप समाज में हशियाकृत लोगों पर होने वाली स्वीकार्यता एवं जागरूकता बढ़ी है।

बीज शब्द : हिन्दी फिल्म, थर्ड जेंडर, हाशियेकृत समूह, हिजड़ा

हिन्दी सिनेमा में ट्रान्सजेंडर की बात की जाए तो सिनेमा में भी यह समाज पूरी तरह हाशिए पर ही रहा है। ट्रान्सजेंडर का जीवन, उनकी समस्याओं, उनकी सामाजिक स्थिति, समाज में इनका अस्तित्व जैसे मुद्दों को तथाकथित सभ्य समाज ने नज़र अंदाज़ किया है। लेकिन भारत

में बनने वाली थर्ड जेंडर पर केन्द्रित हिन्दी फिल्मों में महेश भट्ट की सड़क और तमन्ना, कल्पना लाजमी की दरमियाँ आदि हिन्दी सिनेमा की ऐसी फिल्में हैं जो हिजड़ों की समस्याओँ एवं संघर्षों को रेखांकित करती हैं। इन फिल्मों की विशिष्टता यह है कि इनमे हिजड़ों के प्रति झुकाव लिए हुए उनके अस्तित्व अधिकारों की आवाज़ उठाने का प्रयास किया गया है।

विश्व में हिजड़ों से संबधित काफी फिल्में बनी हैं। लेकिन भारत में हिजड़ों को लेकर बहुत ही कम फिल्में देखने को मिलती हैं। सन् 1991 में आई फिल्म सड़क पहली ऐसी मुख्यधारा की फिल्म है जिसने प्रमुखता से हिजडा पात्र को पर्दे पर लाया है।

सड़क(1991)- महेश भट्ट द्वारा निर्देशित फिल्म सड़क 1991 में प्रदर्शित हुई। इस फिल्म में खलनायक के रूप में एक हिजड़ा चरित्र की भूमिका है जो अपने अमानवीय चरित्र से सभी को अचंभित कर देता है। इस फिल्म ने हिजड़ा समुदाय की ख़राब छवि प्रदर्शित की है। प्रस्तुत फिल्म कथानक वेश्यावृत्ति, देहव्यापार पर आधारित है।

फिल्म की खलनायक महाराणी हिजड़ा है जो वेश्यावृत्ति का धंधा चलाती है। जो आर्थिक स्थिति से कमज़ोर लड़कियों को बहला-फुसलाकर उन्हें अपने कोठे की रौनक बनाती है। वह अपने इस धंधे को बनाये रखने के लिए कोई भी अनुचित काम कर गुज़रने को तैयार है। यहाँ तक कि उसे लोगों के खून करने से भी परहेज नही है। नायक रवि की बहन रूपा को भी महाराणी अपने धंधे में जोड़ने की कोशिश करती है इसी बीच रूपा की मृत्यु हो जाती है। रूपा की मृत्यु में भी महाराणी की भूमिका है। इस हिंसक घटना से रवि को गहरा आघात लगता है। रवि वेश्यालय में बंधनस्थ पूजा से प्यार करता है लेकिन इस रिश्ते को महाराणी स्वीकार नहीं करती और उन्हें अलग करने की कोशिश करती है। इस दौरान पूजा को अपने कोठे में लाने के लिए कई कत्ल करती व करवाती है। लेकिन अंतत: वह पूजा और रवि दोनों को अलग करने में विफल हो जाती है।

हिजड़ा खलनायक की भूमिका अभिनेता सदाशिव अमरापुरकर ने बडी ही सशक्तता से निभाई है। फिल्म में महाराणी ख़ुद को अभिशाप मानती है। महाराणी ऐसे हिजड़ों का प्रतिनिधित्व करती है जो अपने हिजड़ा होने का प्रतिशोध समाज से लेना चाहते हैं। यही प्रतिशोध की भावना महाराणी को क्रूर और अमानवीय बना देती है। फिल्म में खलनायक महाराणी की निष्ठुरता को देखकर उसके कोठे के ग्राहक उससे कहते हैं कि "तुम में कोई इंसानियत नाम की चीज़ है कि नही ?1"तब महाराणी कहती है "लोगों ने मुझे न मर्द कहा हिजड़ा कहा, हम लोगों को कभी किसी ने इंसान समझा ही कहाँ जो हमसे इंसानियत की उम्मीद की जाए2"फिल्म का यह संवाद हिजड़ा होने के दर्द को बखूबी दर्शाता है जो दर्शकों को सोचने में मजबूर करता है कि आख़िर हम इन्हें इंसान का दर्जा क्यों नहीं देते हैं। फिल्म ने कई सामाजिक मुद्दों को उजागर करने का प्रयास किया है, जैसे कि गरीबी, जातिवाद, राजनीतिक असमानता, नेताओं के भ्रष्टाचार और आत्मनिर्भरता की मुद्दे आदि। इस फिल्म मं हिजड़े की नकारात्मक प्रस्तुति के साथ साथ कुछ सीमा तक हिजड़ों की स्थिति को प्रकाशित करने की चेष्टा निश्चित रूप से की गई है।

सन् 1991 से 1997 ई. के बीच, हिन्दी फिल्मों में ट्रान्सजेंडर के चित्रण में कोई बदलाव नहीं हुआ। इस दौरान, कुछ फिल्मों में ट्रान्सजेंडर किरदारों का सिर्फ चित्रण ही हुआ है जैसे 1991 ई. में प्रदर्शित दिल है कि मानता नहीं फिल्म में अमीर खान ने एक हिजड़े के किरदार को निभाया था, जिसने समाज में स्थान प्राप्त करने के लिए संघर्ष किया। सन् 1995 ई. में आई फिल्म सच्चे का बोल बाला में अमिताभ बच्चन ने एक ट्रान्सजेंडर के किरदार को आत्म-स्वीकृति और समर्थन के साथ पेश किया। इन फिल्मों ने समाज में ट्रान्सजेंडरों की स्थिति को प्रस्तुत करके सामाजिक बदलाव की दिशा में कदम बढ़ाने की कोशिश की।

तमन्ना(1997)- महेश भट्ट द्वारा निर्देशित फिल्म तमन्ना (1997) एक हिजडा टिक्कु(परेश रावल) और उनकी बेटी तमन्ना(पूजा भट्ट) के इर्द गिर्द कहानी बुनती है। फिल्म का कथानक यथार्थ से जुड़ा है। टिक्कु को एक नवजात शिशु लावारिस मिलता है। शिशुबच्ची को छोड देने कीसलाह उसके दोस्त सलीम ने दी। सलीम का मानना है कि इस समाज में एक अनाथ बच्ची को गोद लेके पालन पोषण करना नामुमकिन है। टिक्कु ने जवाब दिया कि "ये मेरी बच्ची है, ये बच्ची मेरे जीने का बहाना है। मेरी ज़िंदगी की तमन्ना है।"3 टिक्कु बच्ची की परवरिश करता है। आठ साल तक अपने ही पास रखकर पाल पोस कर तमन्ना को बड़ा करता है। बाद तमन्ना की पढ़ाई के लिए दिन रात मेहनत करके उसे सेंट मेरी हाई स्कूल (बोर्डिंग) में शिक्षा का प्रावधान करता है। बचपन से लेकर आज तक तमन्ना को यह ज्ञात नहीं थाकि उसका पिता एक हिजड़ा है। एक दिन वह अचानक अपनी पढ़ाई छोड़कर अपने पिता से मिलने आती है तब वह टिक्कु को एक हिजड़े के रूप में देखकर डर जाती है। तमन्ना कहती है कि "मुझे यह सोचकर घिन आती है कि इस आदमी ने कभी मुझे छुआ होगा। एक हिजड़ा मेरा पिता कैसे हो सकता है।"4 वह अपने पिता को अपना नहीं पाती और घर छोड़कर चली जाती है। बाद में टिक्कु तमन्ना से माफी माँगकर कहता है कि " मैं कैसे कहता कि मैं एक हिजड़ा हूँ। अब सलीम भाई(दोस्त)..., मुझे ऊपर वाले ने ऐसा बनाया उसमें मेरा क्या दोष है। मेरे पैदा होने पर मेरा बस थोड़े ही था, वह तो अल्लाह की मर्जी थी, मेरा क्या दोष है बेटी।"5 बाद में टिक्कु को तमन्ना के पिता के बारे में पता चलता है कि उसके पिता एक अमीर पॉलिटिशियन हैं। अपने पिता से मिलने चली गई तमन्ना को अपने ही घर में स्वीकृति नहीं मिलती है। अंत में तमन्ना अपने जैविक पिता को नहीं बल्कि टिक्कु को ही अपना पिता स्वीकार करती है।

एक हिजड़ा की अभिलाषा को लोगों के सामने व्यक्त करने की कोशिश इस फिल्म ने की है। किसी अन्य की बेटी को अपनी ही बेटी मानकर उसके लिए अपने ही जाति और

समाज से लड़ना, केन्द्रीय पात्र टिक्कु की ममता, मनुष्यता एवं मातृत्व को दर्शाता है। फिल्म में टिक्कु द्वारा व्यक्त अकेलापन, बेरोज़गारी की समस्या, दयनीय आर्थिक स्थिति, आत्म सम्मान का त्याग, पारिवारिक संघर्ष आदि को महेश भट्ट जी ने बखूबी ढंग से परदे पर उतारा है। फिल्म थर्ड जेंडर विषय के साथ साथ कन्या भ्रूण हत्या, पितृसत्तात्मक समाज, घरेलू हिंसा जैसे मुददों को भी सामने लाने की कोशिश करती है। फिल्म सामाजिक मानसिकता में सकारात्मक बदलाव की पहल करती है।

दरमियाँ इन बिटवीन (1997)- हिजड़ा कोकेन्द्रीय भूमिका में रखते हुए कल्पना लाजमी दरमियाँ इन बिट्टवीन(1997) नामक फिल्म बनाई है। फिल्म में इम्मी जो कि हिजड़ा पात्र है को बड़े ही नाजुक ढंग से चित्रित करने का प्रयास किया गया है। जो दो मुख्य लैंगिक पहचानों और समुदायों के मध्य फंसी हुई है। फिल्म अभिनेत्री ज़ीनत बेगम अपने हिजड़े बेटे इम्मी को समाज के डर से अपना बेटा कहने का साहस नहीं करती है। इसलिए माँ को इम्मी आपा कहकर बुलाता है। समाज के सामने इम्मी ज़ीनत का भाई है। लेकिन हिज़डा जातिकी नेता चंपा को इम्मी की असलियत पता है और वो इम्मी को अपनी जाति बिरदारी से जोड़ना चाहती है। एक दिन दोस्तों के साथ खेलने गया इम्मी रोते हुए घर आता है क्योंकि उसके दोस्तों ने उसके स्त्रैण अंग देखकर उसे नामर्द कहा है। इसी बीच चंपा इम्मी से कहता है कि "तुम भी मेरी तरह एक हिजड़ा हो।"6 अपनी पहचान को लेकर भयभीत इम्मी से ज़ीनत कहती है कि तुम भी बाकी लोगों की तरह एक सामान्य बालक हो। ममत्व में ज़ीनत अपने पास इम्मी को रखकर उसका देखभाल करती है। इम्मी के बड़ा होने के बाद उसे लगता है कि उसे तो बचपन में ही हिजड़ों को को दे दिया जाना चाहिए था क्योंकि वह पुरुष नहीं, हिजड़ा था। बाद में पितृसत्ता द्वारा संचालित समाज में रहने से भयभीत होकर वह हिजड़ा समाज में अपने कदम रखता है। लेकिन हिजड़ा समाज में निहित देह व्यापार के धंधे की कड़वी सच्चाई इम्मी को न सिर्फ शारीरिक बल्कि भावनात्मक तौर पर भी आहत करती है। हिजड़ों की अमानवीय दुनिया से भी वह भाग निकलता है। बाद में वह अपनी अभिनेत्री माँ की सहायक प्रंबधक के रूप में कार्य करता है। लेकिन आर्थिक समस्या के कारण फिर से उसे हिजड़ा समाज में सम्मिलित होना पड़ता है। परन्तु देह व्यापार न करने के कारण पुरुषवादी समाज उसे जबरन नोचता-खसोटता है। इसलिए वह हिजड़ा बिरदारी को हमेशा के लिए छोड़ देता है। हिजड़ों द्वारा इम्मी को वापस हिजड़ा बिरादरी में लाने की भरसक कोशिश की जाती है परन्तु इम्मी के दृढ़ प्रतिरोध के आगे उन्हें भी हार माननी पड़ती है। फिल्म के केन्द्रीय पात्रको हिजड़ा समुदाय या समाज से अलग सामाजिक परिवेश में रखकर दिखाने की कोशिश की गई है, इसके बावजूद इस समुदाय के प्रति भी एक तरह की सहानुभूति फिल्म में दिखाई देती है। फिल्म में हिजड़ा समुदाय के लोग अपने लिए मताधिकार और ख़ुद के नारकीय जीवन जीने की मजबूरी पर बात करते हुए भी दिखाए गए हैं।

हिजड़ों की समस्याओं और उनके साथ हो रहे दुर्व्यवहार को प्रदर्शित करते हुए समाज की मुख्यधारा में पहुँचाने के लिए इन फिल्मों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ममता एवं मातृत्व का चित्रण दोनों फिल्मों में केन्द्रीय चरित्र की भूमिका में है। ये फिल्में तथाकथित सभ्य समाज में हिजड़ों को लेकर परंपरागत नकारात्मक मान्यताओं पर कुठाराघात करते हुए उसपर पुर्नविचार करने की कोशिश करती हैं। समाज के सम्मुख इस उपेक्षित समुदाय को देखने-परखने के लिए एक नया दृष्टिकोण देकर सिनेमा के इतिहास में इन फिल्मों ने अविस्मरणीय योगदान दिया है।

हिजड़ा समाज एवं हिजड़ों की ज़िंदगी को लेकर बहस काफी जोरों पर है। इनकी दारुण स्थितियों को देखते हुए उच्चतम न्यायालय ने उनके पक्ष पर खड़े होकर कहा कि "हमारा समाज के कार्यस्थल, दुकान, मॉल, सिनेमा तथा अस्पताल जैसे सार्वजनिक स्थलों पर हिजड़ों का मज़ाक बनाता है, गालियाँ देता है, दरकिनार करता है और अस्पृश्यों की तरह व्यवहार करता है। समाज में यह नैतिक विफलता ही है कि हम भिन्न लैंगिक अस्मिता को अपने में समावेशित नहीं कर पाते हैं, जो हमारे बीच के हैं, हमारा समाज उन्हें अंगीकार नहीं कर पाता। यह एक ख़ास तरह की मानसिकता की अभिव्यक्ति है, जिसे हमें बदलना है।"7 भारत जैसे देश में स्वयं की अस्मिता तथा पहचान तभी हो पाती है जब वे अपनी अस्मिता को कही दर्ज कर पाते हैं। सन् 2014 ई. में पारित संसद के बिल के तहत स्त्री पुरुष के साथ एक तीसरे लिंग के रूप में 'ट्रान्स जेंडर' को शामिल किया गया। कानूनी अधिकार तो इन्हें प्राप्त हो गया लेकिन समाज में इन्हें स्वीकार करना अभी भी शेष है।

000

संदर्भ- 1.फिल्म - सड़क, 1991दिसंबर, महाराणी और ग्राहक के बीच के मध्य संवाद, 2.फिल्म - सड़क, 1991दिसंबर, महाराणी और ग्राहक के बीच के मध्य संवाद, 3.फिल्म -तमन्ना, 1997, टिक्कु और सलीम के मध्य संवाद, 4.फिल्म -तमन्ना, 1997, टिक्कु और तमन्ना के मध्य संवाद, 5.फिल्म -तमन्ना, 1997, टिक्कु तमन्ना और सलीम के मध्य संवाद, 6.फिल्म -दरमियाँ इन बिट्टवीन, 1997, चंपा और इम्मी के मध्य संवाद, 7.National legal service authority, supreme court of India 15, ab.20N

मुख्य ग्रन्थ- 1.फिल्म तमन्ना-1997, 2.फिल्म दरमियाँ-1997, 3.फिल्म सड़क-1991,

सहायक ग्रन्थ- 1.राही मासूम रज़ा, सिनेमा और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, 2001, 2.डॉ इकरार अहमद्द, किन्नर विमर्श साहित्य के आईने में, अनुसंधान पब्लिशेर्स, 2017, 3.डॉ शगुफ्ता नियाज़, थर्ड जेंडर के संघर्ष, विद्या प्रकाशन, 2019, 4.शरद सिंह, थर्ड जेंडर विमर्श, समायिक प्रकाशन, 2019, 5.ललिता जोशी, बॉलिवुड पाठ विमर्श के संदर्भ, वाणी प्रकाशन, 2012, 6.डॉ के इन्दु वी, किन्नर और फिल्म, प्रवडा बुक्स, 2022, 7.डॉ के वनजा, क्वीर विमर्श, वाणी प्रकाशन, 2021

(शोध आलेख)

आदिवासी कविता : सदियों का सफर, शब्दों का जंगल

शोध लेखक : डॉ. गिरीश कुमार के के, सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग कोच्चि विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्चिन, केरला 682022

मोबाइल- 9495106637

ईमेल- girish372@gmail.com

आदिवासी धरती के मूल वासी हैं। वर्ण व्यवस्था के चपेट में फँसकर उस विशाल समूह ने सदियों पहले जंगल की ओर पलायन किया था। जंगल को मंगल बनाकर ये लोग वहाँ जिंदा रहे। सवर्ण मेधा समाज और सत्तासीन लोग हमेशा इसे मुख्यधारा से अलग रहने वाला जनसमूह माना है। इसलिए पीढ़ियों से ये सभ्य कहे जाने वाले मानव समाज के शोषण का शिकार हैं। समकालीन समय में आदिवासी शब्द का प्रयोग "विशिष्ट पर्यावरण में रहने वाले, विशिष्ट भाषा बोलने वाले, विशिष्ट जीवन पद्धति तथा परंपराओं से सजे और सदियों से जंगलों-पहाड़ों में जीवन यापन करते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को सँभालकर रखने वाले मानव-समूह का परिचय देने के लिए किया जाता है।" आदिवासी समाज का इतिहास शोषण एवं दमन का है। आर्यों के आने के पूर्व ये भारतीय समाज के अंग थे। लेकिन आर्यों की निर्दयी नीति ने इन्हें समाज में साथ रहने न दिया। जंगल में वह अपने विशेष संस्कार के साथ जीने लगा। मानवोचित हकों से वंचित आदिवासी समाज में समय-समय पर कई महान् हस्तियों का उदय हुआ है। जिन्होंने अपने समाज को जागृत करने का भरसक प्रयास भी किया। लेकिन यह जागरण प्रांतीय स्तर तक सीमित रहा। देशीय स्तर पर आदिवासी समाज में एकता का अभाव इस के लिए घातक सिद्ध हुई। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में और स्वतंत्रता परवर्ती जनान्दोलनों में भी आदिवासी नेताओं का सक्रिय सहयोग रहा। इन महान् चरित्रों की प्रेरणा से और हज़ारों वर्ष के भीषण जीवन स्थितियों से आज आदिवासियों में चेतना जगी है। नई-नई विचारधाराओं और क्रांतियों से वह परिचित हुआ है। इनके बल पर वह अपनी जीवन स्थितियों पर गौर से विचार करने लगा है। वास्तव में यह उसकी अस्मिता बोध का विकास, अपने साथ हुए भेदभाव या अन्याय की सहज परिणति है। समकालीन आदिवासी साहित्य में इस जागृत चेतना की झलक हम देख सकते हैं।

समकालीन आदिवासी कविता सदियों से हाशिए पर धकेल दिए गए वर्ग की आत्म-पहचान का नतीजा है। आदिवासी जीवन का गहन अनुभव, प्रकृति तथा मानवता के दु:ख-सुख में शामिल होने की प्रेरणा, जीवन स्थितियों को सुधरने के लिए संघर्ष, संस्कृति को बचाने की चिंता आदि समकालीन आदिवासी कविता का मुख्य स्वर है। वह अपनी पीड़ा ख़ुद कहने और उसका

समाधान ख़ुद ढूँढ़ने का प्रयास है। प्रस्थापितों की चहलकदमी के बरक्स वह प्रतिरोध की चेतना ज़ाहिर करती है। आदिवासी लेखन सदियों से झेलते आ रहे उत्पीड़नों का जवाब है। वह अपना इतिहास ख़ुद लिखने लगा है। अब तक के इतिहास में बंदर, भालू या किसी अन्य जानवर के रूप में उसका वर्णन है। उसे खारिज करने वाले मुख्य धारा की रचनात्मक गतिविधियों के ख़िलाफ़ आदिवासी लेखन एक तरह से समय की माँग है- तुम्हें अपने आदमी होने की / तलाशनी होगी परिभाषा / उनके सिद्धांतों / स्थापनाओं के विरुद्ध / उनके बर्बर वैचारिक / हमलों के विरुद्ध / रचने होंगे / स्वयं ग्रंथ।

हज़ारों सालों से आदिवासी समूह शोषण के चंगुल में है। उन्हें असभ्य कहकर मानव समाज के बीच से भगा दिया। उन्हें जंगल में आदिम जीवन जीने के लिए मजबूर कर दिया। जंगली होने पर भी उसके ऊपर का शोषण और दोहन जारी रखा। आज विकास के नाम पर उसकी संस्कृति, उसके निवास स्थान को मिटाने की साजिश योजनाबद्ध तरीके से रची जा रही है। समकालीन आदिवासी लेखक शोषण के नए-नए आयामों का सजग ज्ञान रखता है। इसलिए वे अपनी लेखनी से रचनात्मक प्रतिरोध ज़ाहिर करते हैं। आदिवासियों का संघर्ष अपनी अस्मिता के लिए हैं। उसका सपना छोटा है। लेकिन देश की व्यवस्था उसे सफल होने से रोकती है। वे इन सपनों या आदिवासी समाज की छोटी ज़रूरतों से कोसों दूर है- हमारे सपनों में रहा है / एक जोड़ी बैल से हल जोतते हुए / खेतों के सम्मान को बनाए रखना / हमारे सपनों में रहा है / कोइल नदी के किनारे एक घर / जहाँ हमसे ज़्यादा हमारे सपने हों।

निर्दयी शासकों का दंभ आदिवासी समाज के सपनों हतप्रभ करता है। लेकिन उसकी विद्रोही मानसिकता खतम नहीं होती है। वह अत्यधिक ज्वलन शीलता से आगे बढ़ती है। मुसीबतें उसको विद्रोह के रास्ते से हटाते नहीं बल्कि उसकी लड़ाई को नई उमंग देती है। उसकी लड़ाई विलासी जीवन की कामना नहीं करती। वह अपने जीवन के कंटीला रास्तों को साफ करने के लिए, बहत्तर जीवन जीने के लिए हैं- ओ मेरी युद्धरत दोस्त / तुम कभी हारना मत / हम लड़ते हुए मारे जाएँगे / उन जंगली पगडंडियों में / उन चौराहों में / उन घाटों में / जहाँ जीवन सबसे अधिक संभव होगा।

आदिवासी समाज का संघर्ष इनसानी हक के लिए है। आदिवासी, वनवासी, गिरिजन वगैरह कहकर पुकारने वाली व्यवस्था का उन्मूलन उसका लक्ष्य है। महादेव टोप्पो की कविता 'त्रासदी' आदिवासी समाज में विद्रोह जगाने की कोशिश की उपज है। कवि के विचार में भारत में पैदा हो जाने का अर्थ है- जातियों बँट जाना। अगर तुम एक आदिवासी परिवार में जन्म लेते तो तुम्हारी जीवन की विडंबना वहीं से शुरू होती है। आदमी के बीच भेदभाव उत्पन्न करने वाली फासिस्ट व्यवस्था से कवि पूछता है- उन लोगों की तरह / शरीर में तुम्हारे भी लाल रक्त बहता है / हाथ पाँव कान / नाक, मुँह, आँख आदि / सब कुछ तो वैसा ही है / मगर वे तुम्हें मनुष्य नहीं कहेंगे / सबसे बड़ी त्रासदी तो यह कि / तुम्हें वनवासी, आदिवासी, गिरिजन / सब कुछ कह लेंगे / लेकिन कहेंगे नहीं / कभी तुम्हें इस देश का वासी।

जीवन की विद्रुपताओं का वास्तविक चित्र संघर्ष चेतना की आग को तेज़ करता है। आदिवासियों के अनुसार सभ्य समाज से हुई क्षति हिंस्र जंतुओं से हुई क्षति से बहुत ज़्यादा है। शहर निवासी सभ्य मनुष्य ने उन्हें खूब सताया है। उसे चैन के साथ रहने न दिया है। संविधान की मान्यता के अनुसार आदिवासी अनुसूचित दर्जे के लोग है। लेकिन मुख्य धारा के समाज की नज़र में वे आज भी अपरिष्कृत है। मनुष्य के साथ रहने के लिए अयोग्य है। आदिवासी समाज के स्वत्व पर बाधा पहुँचने वाले मुख्य धारा समाज पर हरिराम मीणा ने अपना आक्रोश इस प्रकार अंकित किया है- जिन्होंने हमें गोलियों से भूना / वे इनसान थे / जिन्होंने हमें टापुओं के इधर-उधर खदेड़ा / वे इनसान हैं / और जो हमारी नस्ल को उजाड़ेंगे / वे इनसान होंगे।

आदिवासी संस्कृति की अपनी विशिष्ट पहचान है। वह "जीयो और जीने दो" विचारधारा पर आधारित है। समानता की भावना उसकी खासियत है "इसके अंतर्गत जाति समानता, लिंग समानता, सहभागिता, सहयोजिता, सामूहिकता, भाईचारा एवं सबसे विचित्र प्रकृति से निकटस्थ संबंध एवं प्रकृति प्रेम है जो अन्य सभी संस्कृतियों से आदिवासी संस्कृति को पृथक करता है।" परिष्कृत समाज के शोषण से अपने स्वाभिमान पर चोट पड़ने पर उसने जंगल की ओर प्रस्थान किया था। जंगल में उसने सामूहिक जीवन बिताया। वह समूह में रहना, जीना और सोचना पसंद करता है। अब तो आदिवासी संस्कृति को ख़त्म करने की मुहीम चलायी जा रही है। उसकी संस्कृति या तो हड़पी जा रही है या मिटाई जा रही है। आदिवासियों से उसकी ज़मीन, उसके जंगल और उसकी भाषा भी छीन रही हैं। विकास के नाम पर उसे जंगलों से बाहर खदेड़ा जा रहा है- हम हैं जंगल के वासी / इसलिए रह गए हम / किसी ढुठू की तरह / बराबर उजाड़े जाते रहने के / बावजूद / इस जंगल में / इस पठार में / उन दोपाया जोंकों से लड़ते हुए / जो चूसते नहीं / सिर्फ हमारे शरीर का रक्त / चूस लेते हैं हमारे खेत-खलिहान / हमारी भाषा-संस्कृति और इतिहास का भी रक्त।

आदिवासियों पर होनेवाले यह सांस्कृतिक अत्याचार जंगल-धरती-जल तक सीमित नहीं है। हज़ारों साल की कमाई से संपन्न उसकी परंपरा और संस्कार को उनसे अलग कर रहे हैं। आदिवासी समाज का पीछे करते सत्तासीन लोगों के इस षड्यंत्र कवि महादेव टाप्पो के विचार में 'सबसे बड़ा खतरा' है। एक इनसान को पूर्ण रूप से परास्त करने का माध्यम है उसकी सांस्कृतिक गरिमा को लूटना। ऐसा दुर्व्यवहार सत्ता के नेतृत्व में आदिवासी समाज पर हो रहा है- सिर्फ अपने खेत, खलिहान, मकान / ही नहीं खोये हैं हमने / खोयी है सैकड़ों वर्षों से अर्जित / पुरखों के गाढ़े पसीने की कमाई / अपनी भाषा संस्कृति और इतिहास।

हजारी लाल मीणा 'राही' की कविता 'नंगेपन का अंतर' आदिवासी और गैर

आदिवासी संस्कृति का विश्लेषण करती है। जिसमें नंगेपन के प्रतीक के माध्यम से सभ्यता की नई परिभाषा कवि दे रहे हैं। नंगेपन आदिवासी की मजबूरी है। पूरा तन ढकने का वस्त्र उसके पास नहीं है। शरीर से वह नंगा है संस्कार से नहीं। उसके अंतर्मन में अपने समाज के हर एक सदस्य के प्रति ममता, स्नेह और त्याग है। लेकिन शहरी वर्ग के अंतर्मन विषैला है। आधुनिकता के चल होड़ में नंगेपन को फैशन मानते शहरी सभ्य समाज के ख़िलाफ़ आदिवासी मानसिकता का विद्रोह- वह वनवासी है / आदिवासी है / जिसे पूरा तन ढकने को / वस्त्र भी मयस्सर नहीं / उसे क्या पता था कि / शहर भी इससे बेअसर नहीं / पर अंतर समझ गया था वह / कि वह मजबूरी में नंगा है / और शहर आधुनिकता में / शरीर तक सीमित है उसका नंगापन / शहर का नंगापन फैला है / अंतर्मन की गहराई तक।

आदिवासी साहित्य का वास्तविक लक्ष्य अपनी संस्कृति की रक्षा है। भूमण्डलीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण के चंगुल में विलीन होती जा रही जन संस्कृति के लिए वह अल्पसंख्यक समाज को जागृत कर रहा है। अपनी ज़मीन से उसको बेदखल करने के लिए क्रियाशील साम्राज्यवाद के यांत्रिक हाथों के आगे चुप्पी तोड़ने का आह्वान देते हुए कवि लिखता है- देखो...! आख़िर तुम्हें खदेड़ ही दिया न / तुम्हारी ज़मीन से / तुम्हें नेस्तानाबूद करने के लिए / पर फिर भी तुम चुप हो..? / क्यों..? / आख़िर क्यों...?

अपने को जंगली कहकर टालने वाले शोषक वर्ग से वह कह उठता है कि 'हाँ, मैं जंगली हूँ। मेरा घर तो तुम्हारे जैसा उपवन वाटिका नहीं जंगल है।' वह जंगली शब्द को गाली नहीं आशीष मानता है। जंगली होने पर भी हम आत्म निर्भर है। हवा-पानी या उजाले के लिए हम तुम्हारे सामने गिड़गिड़ाते नहीं। लेकिन तुम बार-बार इसकी तलाश में हमें परेशान करते हैं। जंगली जीवन का यथार्थ चित्र कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है- कैसे कहूँ उपवन-वाटिका / जहाँ मैं रहता हूँ एक जंगल है / मेरा घर / जिसमें उगे हैं झाड़-झंखाड / जिसके इर्द गिर्द भरमार है काँटों वाले परबती बबूलों की / जहाँ की धरती तुम्हारे महानगर की / चमचमाती तारकोल वाली सड़कों भी नहीं / ऊबड़ खाबड़ भटभोड़ सी है।

प्रकृति आदिवासी संस्कृति का अभिन्न अंग है। ऐसा नहीं वह प्रकृति की गोद में जन्मी, पली और समृद्ध हुई। प्रकृति से अलग उसका कोई अस्तित्व नहीं। प्रकृति के अन्य जीव जालों के प्रति उसमें सम भावना है। प्रकृति के प्रति उसका दृष्टिकोण सकारात्मक है। वह संस्कृति प्राकृतिक संपदाओं का उन्मूलन नहीं उपयोग करना सिखाती है- हमने चाहा कि पंडुकों की नींद गिलहरियों की धमाचौकड़ी से टूट भी जाए / तो उनके सपने न टूटे / हमने चाहा कि / खेतों के आसमान के साथ / हमने चाहा कि जंगल बचा रहे / अपने कुल-गोत्र के साथ / पृथ्वी को हम पृथ्वी की तरह ही देखें / नदी की जगह नदी / समुद्र की जगह समुद्र और / पहाड़ की जगह पहाड़।

समकालीन आदिवासी कविता आदिवासी जीवन के बहुमुखी पहलुओं का लेखा-जोखा है। वह देखा और भोगा गया सत्य का सटीक वर्णन है। आभिजात्य सौन्दर्य बोध का मुकाबला करने के लिए वे नया सौन्दर्य शास्त्र रचते हैं। मुख्यधारा समाज एक साजिश के तहत आदिवासी समाज को सदियों से समय के पीछे रखा था। वह समाज अब जागृत हुआ है और अपने इतिहास की खोज ख़ुद करने लगा है। अपनी संघर्ष-चेतना से वह वर्तमान को बदलना चाहता है ताकि भविष्य उसका हो सकें।

अपनी अस्मिता कायम करने के संघर्ष में वे अलग-अलग स्तरों पर संगठित भी हो रहे हैं। निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि समकालीन आदिवासी कविता धरती के मूल मालिक की आत्म पहचान का जीवंत दस्तावेज़ है। वह आदिवासी जीवन अनुभवों का वास्तविक बयान है। ये कविताएँ आदिवासियों में आत्म-पहचान के आन्दोलन और अपनी संस्कृति, भाषा, जल, जंगल और ज़मीन को बचाने की मुहिम का हिस्सा बनाती हैं।

000

नई पुस्तक

(कहानी संग्रह)

पीली पर्ची

लेखक : शिवेन्दु श्रीवास्तव

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

शिवेन्दु श्रीवास्तव का यह कहानी संग्रह अभी हाल में ही शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आया है। इस संग्रह में शिवेन्दु श्रीवास्तव की पीली पर्ची, हाथी, तिल का ताड़, गिलहरियां, आस, व्यूह, अड़ियम पड़ियम, आखिरी सपना, पगलिया चाची, ममत्व-पीर, बूढ़े वृक्ष की कोंपल कहानियाँ हैं।

कथाकार शिवेन्दु की कहानियाँ समय की तासीर को पहचानने की आकांक्षा से प्रेरित हैं। रचनाओं में अतिरिक्त सजावट की कोशिश से दूर रहकर शिवेन्दु सहजता से समाज के सत्य को उजागर करने का प्रसास करते हैं। आज के मायावी यथार्थ के व्यूह में फंसे आदमी की बेचैनी को वे अपनी कहानी की वस्तु में ढालते हैं। उनकी सजगता और सरलता ध्यान आकृष्ट करती है। - रमाकांत श्रीवास्तव

शिवेन्दु श्रीवास्तव के पास अपने समय के बीच में से सकारात्मक पात्रों का चयन कर, उसे रचनात्मक स्तर पर प्रस्तुत करने का एक विवेकपूर्ण बोध है और यह बोध ही उनकी रचनात्मकता का परिचायक है। -हरियश राय

000

(शोध आलेख)

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के दर्शन में राष्ट्रवादी तत्व: एक अवलोकन

शोध लेखक : डॉ. ज्योति सिंह गौतम, एसोसिएट प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान), राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी (उप्र)
पिनकोड-2841
मोबाइल- 88442411
ईमेल-gautam.jyotisingh@gmail.com

शोध-सार- राष्ट्रवाद का विचार सामाजिक समावेशीकरण का एक सशक्त माध्यम है, जो जाति, धर्म, रंग भेद व सत्ता से ऊपर उठकर समरसता की बात करता है। प्रत्येक व्यक्ति एक ऐसी व्यवस्था की लालसा रखता है जिसमें उसका सर्वोत्तम विकास हो सकें तथा वह अपने आपको स्वतन्त्र महसूस कर सकें। वर्तमान में यदि हमें ऐसी ही न्यायपूर्ण व्यवस्था तैयार करनी है तो डॉ. अम्बेडकर के विचारों की तरफ दृष्टिपात करना होगा- जो सामाजिक-आर्थिक जीवन में समानता के साथ राजनीतिक समानता की बात करते थे। डॉ. अम्बेडकर स्वतन्त्रता संघर्ष के समय से ही इस तथ्य से परिचित थे कि एक सुदृढ़ राष्ट्र के निर्माण के लिए जातिवाद, साम्प्रदायकता और सत्तावाद से मुक्ति आवश्यक है। वह सामाजिक-आर्थिक विषमता के उस जहरीले स्वरूप से अच्छी तरह से परिचित थे, जिसके कारण राजनीतिक रूप से स्वतन्त्र होने के बावजूद भी हम विभाजनकारी नीतियों से आबद्ध रहते हैं। डॉ. अम्बेडकर धर्म एवं राष्ट्र के बारीक सन्तुलन से अच्छी तरह अवगत थे। उनका मानना था कि धर्म का उफान एक तरह से जातीय अस्मिता की तीव्रता प्रदान करता है जिससे राष्ट्रीय अस्मिता खण्डित होती है। इसीलिए अम्बेडकर ने धर्म को राष्ट्रीय चेतना से सम्बद्ध करने की बात कही। डॉ. अम्बेडकर एक ऐसे राष्ट्रीय नेता थे जिन्होंने राष्ट्र के भाव को समुन्नत बनाने तथा उस भाव को समाज के वंचित वर्ग के लोगों से जोड़ने का प्रयास किया। प्रस्तुत शोध लेख डॉ. अम्बेडकर के दर्शन में राष्ट्रवादी तत्वों की व्याख्या का एक प्रयास हैं।

मुख्य शब्द- राष्ट्रीय चेतना, सम्प्रदायिकता, राष्ट्रवाद, तुष्टिकरण, समरसत्ता।

प्रस्तावना- किसी भी राष्ट्र के बहुआयामी विकास में सशक्त लोक शक्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है यदि हम भारत के इतिहास का निष्पक्षता से अध्ययन करें तो हमारे समक्ष यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय सामाजिक ढाँचे की असमान संरचना ने जिस सामाजिक विघटन को जन्म दिया उसका लाभ विदेशी आक्रमणकारियों एवं साम्राज्यवादी शक्तियों ने उठाया।

डॉ. अम्बेडकर के राष्ट्रवाद संबंधी विचारों पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो उसमें राष्ट्रवाद के संबंध में दो तत्व उभर कर सामने आते हैं- प्रथम, राष्ट्र के अन्दर रहने वाला सम्पूर्ण समाज, दूसरा, राष्ट्र की भौगोलिक परिसीमा, जिसके अंदर यह सम्पूर्ण समाज रहता हैं- इस प्रकार राष्ट्र शब्द में दो तत्व समाहित हैं- समाज एवं भौगोलिक क्षेत्र। डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में देश की स्वतंत्रता और उसमें रहने वालों की स्वतंत्रता में भेद मानना दोषपूर्ण है। उनका मत है- "दार्शनिक दृष्टि से राष्ट्र को एक इकाई मानना ठीक हो सकता है, लेकिन सामाजिक दृष्टि से ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि राष्ट्र अनेक वर्गों का एक समूह है, यदि राष्ट्र की स्वतंत्रता को वास्तविक रूप देना है तो उसमें रहने वाले विभिन्न वर्गों की स्वतंत्रता भी कायम रखनी चाहिए। मुख्य उन लोगों की जिनको निर्धन, पतित एवं अछूत माना जाता है।"

डॉ. अम्बेडकर सदैव देश को एक राष्ट्र बनाने हेतु आपसी सामंजस्य की बात करते रहे। वह कहा करते थे कि राष्ट्र की आजादी के साथ उसकी एकता भी सुरक्षित रखी जाय। उनका मत था, आज हम विभिन्न खेमों में बँटे हुए हैं...। मुझे विश्वास है कि समय और परिस्थितियों के आने पर संसार में कोई भी इस देश को एक बनाने से नहीं रोक सकता है और विभिन्न जातियाँ एवं धर्म होने पर भी मुझे यह कहने में बिल्कुल संकोच नहीं है कि एक दिन हम लोग किसी न किसी रूप में संगठित ढंग से रहेंगे।"

डॉ. अम्बेडकर का सम्पूर्ण दर्शन इसी सिद्धान्त पर आधारित रहा। वह सदैव जाति व्यवस्था और धर्मान्धता का विरोध कर 'भारतीय' बनने की वकालत करते रहे। अप्रैल 1938 में मुम्बई विधान सभा के अन्दर लिंगायतो द्वारा कर्नाटक के विभाजन के मुद्दे पर उनकी प्रबल राष्ट्रीय भावना को समझा जा सकता है। उनका मत था "सभी भारतीय यह भावना पैदा करें कि हम सब भारतीय हैं। यही सबका समान ध्येय होना चाहिए। अलग प्रांत की बात तथा धर्म और संस्कृति के आधार पर देशभक्ति का स्वर अलापना मेरी दृष्टि से अपराध है।"

डॉ. अम्बेडकर ने समृद्ध राष्ट्र की स्थापना हेतु राष्ट्रवादियों से बार-बार अपने पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर एक राष्ट्र बनाने का सुझाव दिया, "बहुसंख्यक लोगों का यह महान् कार्य होगा यदि वे भारत में रहने वाले सभी लोगों को एक सूत्र में लाने का प्रयास करें।" डॉ. अम्बेडकर आगे कहते हैं "हमें उन नारों तथा आवाजों का अंत करना चाहिए जिससे लोग भयभीत होते हैं।" वे केवल नाममात्र की एकता के पक्षधर नहीं थे वह कहते हैं "यदि स्थाई एकता स्थापित करनी है तो यह भाईचारे की भावना पर आधारित होना चाहिए।" उन्होंने कहा "भारत में केवल राजनीतिक एकता की ही आवश्यकता नहीं है, बल्कि हृदय और आत्मा के एकत्व की भी आवश्यकता है।.... मैं नहीं मानता कि केवल भौतिक हितों की संतुष्टि से ही स्थाई एकता स्थापित की जा सकती है।" डॉ. अम्बेडकर राष्ट्र के प्रति पूर्णरूप से समर्पित थे, उनकी भावना मानवता परक थी। वह चाहते थे कि ऐसा राष्ट्र बनाया जाय जिसे सभी अपना समझे। कुछ को विज्ञ और कुछ को मूर्ख बनाकर शासन करने के सिद्धान्त को राष्ट्र विरोधी मानते थे।

डॉ. अम्बेडकर समाज में 'अपनत्व की चेतना के भाव' को राष्ट्रीय भावना की प्रमुख विशेषता मानते थे। इस सिद्धान्त के आधार पर एक ही राष्ट्र में जनता के हृदय में अपनों के प्रति लगाव और विरोधियों के प्रति विदेशियों जैसा नफरत का भाव समाहित रहता है। इसी भाव से आपस में कटते-मरते रहते हैं। वे कहते हैं, "यह वह संगठित स्थाई भाव है, जो जिन लोगों में पाया जाता है वे यह अनुभव करते हैं कि वे सगे भाई बहिन हैं। एक ओर अपनों के लिए यह भाईचारे की भावना है, लेकिन दूसरी ओर जो अपने नहीं है उनके लिए नफरत की भावना है।"

वे इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं "यह अपनत्व की चेतना का भाव जिनमें पाया जाता है उनको वह एक स्थान पर बिठा देती है और यह इतना प्रभावी होता है कि आर्थिक एवं सामाजिक सभी प्रकार के उत्पन्न भेदभावों को दबा देता है परन्तु दूसरी ओर उन लोगों से पृथक कर देता है, जो अपने नहीं होते हैं। उनसे मिलने से रोकता है। जिसको हम राष्ट्रीय भाव कहते हैं उसका यही सार है।" डॉ. अम्बेडकर की राष्ट्रीय भावना में कट्टरता के लिए स्थान नहीं है। उनके राष्ट्रवाद में जाति, घृणा, शत्रुता की भावना तथा संकुचित मनोवृत्ति हेतु कोई स्थान नहीं है।

डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में सच्चे राष्ट्रवाद हेतु दो बातों का होना आवश्यक है- प्रथम, राष्ट्र के संदर्भ में राष्ट्रवाद का मौलिक आधार सामाजिक एकता की दृढ़ भावना होनी चाहिए इसके बिना राष्ट्रवाद स्थाई रूप से नहीं टिक सकता है। द्वितीय, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में राष्ट्रवाद का आधार मानव प्रगति एवं भलाई होना चाहिए अन्यथा संकुचित राष्ट्रवाद संघर्ष एवं युद्ध को जन्म दे सकता है।"

वे मानते थे कि वही राष्ट्रीय भावना राष्ट्रसम्वर्द्धक हो सकती है, जिसमें मानव हित की अवधारणा समाहित हो। धार्मिक सांस्कृतिक व जातीय कट्टरता को आधार मानकर राष्ट्रवाद की बात करना राष्ट्र के प्रति छल है। सामान्य तौर पर राष्ट्र के प्रति भक्ति एवं प्रेम की भावना को राष्ट्रवादी भावना कहते हैं। डॉ. अम्बेडकर मानते थे कि राष्ट्रवादी भाव एक ऐसा तथ्य है जिसे न भुलाया जा सकता है और न ही अस्वीकार किया जा सकता है। .... राष्ट्रवाद मानवता के लिए लाभदायक या हानिकारक है, यह केवल ज़ोर देने की भावना पर आधारित है। उनका विचार था कि प्राय: राष्ट्रवाद की भावना विघटनकारी तत्व के रूप में भी विद्यमान रही है। इस भावना ने बहुत से राष्ट्रों का अस्तित्व समाप्त किया।

डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि प्रारम्भ से ही हिन्दु और मुस्लिम राष्ट्रवादियों ने राष्ट्रवाद की मानवतावादी सृजनात्मक प्रवृत्ति को ठुकरा कर धार्मिक और सांस्कृतिक कट्टरवादी विघटनकारी प्रवृत्ति को अंगीकार किया। परिणामत: धार्मिक कट्टरवाद इतना उग्र हो गया कि हिन्दू और मुस्लिमों की सदियों की एकता को उसने छिन्न-भिन्न कर दिया और इस धार्मिक कट्टरवादी राष्ट्रीय भाव ने भारत का विभाजन करवा दिया।

डॉ. अम्बेडकर की राष्ट्रीय भावना दृढ़ एवं गम्भीर थी यद्यपि कुछ लोगों ने उनको समझने में भूल की। फलत: डॉ. अम्बेडकर को राष्ट्रविरोधी कहना प्रारम्भ कर दिया गया। राष्ट्रीय सम्मान एवं सामाजिक एकता उनकी राष्ट्रीय भावना के मूलाधार थे। उनके अनुसार राष्ट्रवाद की भावना का उदय उन लोगों की आस्था के साथ हुआ जो निर्धन, शोषित एवं अछूत थे। वे उन सभी लोगों के लिए समानता एवं नागरिक अधिकार चाहते थे।

डॉ. अम्बेडकर राष्टीयता के नाम पर सत्ता प्राप्ति की मुहिम को राष्ट्र के प्रति अपघात मानते थे। लोकहित और जनभावना को नज़रअंदाज़ कर शासित और शोषित के बीच की खाई को यथा स्थिति में बरकरार रखकर, सत्ता प्राप्ति हेतु षड़यंत्र और उद्दण्डता को आधार बनाकर तथा उसकी प्राप्ति को राष्ट्रीयता का स्वरूप देना सच्ची राष्ट्रीयता नहीं हो सकती। उनका मत था, "राजनीतिक उग्रवादी सामाजिक संघर्षों तथा झगड़ों को बढ़ावा देते हैं। वे राजनीतिक उपद्रवों की विस्तृत रूप से योजना बनाते हैं और आए दिन उनको व्यावहारिक रूप देते रहते है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भी कई समुदायों ने इस उद्दण्डता को राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अपना साधन बनाया।"

डॉ. अम्बेडकर मानते थे कि तुष्टीकरण की नीति ऐसी प्रक्रिया है जो भी राष्ट्र को समृद्ध बनाने के स्थान पर कमज़ोर ही करती है। वे राष्ट्रहित में सही और पक्षपात रहित निर्णय करने के पक्षधर थे। तुष्टीकरण की नीति से उस व्यक्ति या समुदाय को अधिक लाभ होता है जिसका अपने स्वार्थ हेतु कुछ शर्तो पर उसके अनिष्टकारी कार्यों को नजरंदाज कर संतुष्ट किया जाता है। इस प्रकार अपना हित-सम्वर्द्धन किया जाता है। इस नीति से कमज़ोर व्यक्ति या समुदाय को अन्याय का शिकार होना पड़ता है। इस कारण उन्होंने सदैव तुष्टीकरण की नीति को भी राष्ट्रीयता के लिए कलंक माना। वे कहते हैं "तुष्टीकरण की नीति का अर्थ होता है अतिक्रमण करने वाले को खरीद लेना। उसके अनैतिक कार्यों में सहयोग देना और उन बेगुनाह लोगों की उपेक्षा करना, जो उसकी बातों के शिकार होते हैं।" सरकार या नेताओं द्वारा तुष्टीकरण की

नीति से ऐसे व्यक्ति या समुदाय कभी संतुष्ट नहीं रहते। एक बार ऐसा होने पर बार-बार दबाव बनाकर कुछ न कुछ माँगते ही रहते हैं और इंकार की स्थिति में वह राजनीतिक उद्दण्डता की नीति के पक्षधर बनकर उपद्रव मचाते हैं। इस कारण डॉ. अम्बेडकर ने सदैव न्यायिक फैसले पर बल दिया। उनके अनुसार, "....फैसले का अर्थ होता है वे सीमाएँ निर्धारित कर देना जिनका कोई भी पक्ष उल्लंघन न कर सके। संतुष्टता की नीति में अतिक्रमण करने वाले के समक्ष ऐसी कोई सीमा नहीं होती है। फैसले के अंतर्गत सीमा तथा शर्तों का निर्धारण अवश्य होता है।" डॉ. अम्बेडकर ने 'पाकिस्तान का विभाजन' में लिखा है कि, रियायतें देने की नीति में मुस्लिम अतिक्रमण को बढ़ावा दिया। इस नीति को मुस्लिम नेता हिन्दुओं की हार मानते थे। इसी प्रकार धर्मांधता के प्रति यदि स्पष्ट नीति होती तो गांधी जी को बचाया जा सकता था।

डॉ. अम्बेडकर की मान्यता थी कि भाषाओं की भिन्नता ने राष्ट्रीयता को आघात पहुँचाया है। इस भिन्नता ने आपसी भेदभाव, घृणा तथा अन्य राजनीतिक बुराइयों को बढ़ावा दिया है। उनका मत था, "यह स्वाभाविक है कि व्यक्ति उनके साथ मिलना जुलना पसंद नहीं करते जिनके साथ वह बातचीत नहीं कर पाते।"

अम्बेडकर भाषा के इस अवरोध के उपरान्त भी यह मानते थे कि यद्यपि भाषा विभिन्नता ने समाज में दूरी उत्पन्न की है, फिर भी राष्ट्रहित में भाषा विवाद में नहीं उलझना चाहिए। सच्ची राष्ट्रीयता की यही पहचान है। वे कहते हैं कि एक भाषा लोगों को एकत्रित कर सकती है वहीं दो भाषाएँ उनको विभाजित करती है। ... यदि सभी भारतीय लोग एक होना चाहते है और एक सामान्य संस्कृति का भी विकास करना चाहते हैं तो उन सबका कर्त्तव्य है कि वे हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाएँ। 'एक राज्य एक भाषा' के सिद्धान्त से भारतीय लोगों में दो बातें लाना चाहते थे। पहली एकत्व की भावना बढ़े और दूसरी राष्ट्रवाद की जड़े मजबूत हों।

डॉ. अम्बेडकर मानते थे वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना के लिए आवश्यक है कि जनप्रतिनिधियों में लोकतांत्रिक प्रवृत्तियों का समावेश हो, उनका मत था "शासक वर्ग की कार्यकुशलता और योग्यता ही अच्छी सरकार नहीं बना पायेगी, उसके लिये आवश्यक है कि उसमें अच्छे कार्य करने की इच्छा हो। उनकी स्पष्ट अवधारणा थी कि जनप्रतिनिधि किसी भी जाति धर्म के हों, उनसे देश की और समाज की भलाई की अपेक्षा तभी की जा सकती है, जब वह नैतिक हों, उनके दिल में जन कल्याण की उत्कंठा निहित हो तथा राष्ट्र के प्रति समर्पण हो। अगर यह प्रवृतियाँ जनप्रतिनिधियों में समाहित नहीं हैं तथा इसके विपरीत वह स्वहित के लिए नाना प्रकार के प्रपंच अपनाकर सत्ता में पहुँचते हैं, ऐसी स्थिति में उनका स्पष्ट मत है कि देशवासियों को ऐसे अनैतिक जनप्रतिनिधियों को जाति और धर्म के आधार पर चयनित नहीं करना चाहिए। उन्होंने तो अस्पृश्यों को यहाँ तक कहा कि अगर अनुसूचित जाति के जनप्रतिनिधि भी योग्य और ईमानदार नहीं हैं, जो आपका कल्याण करने की दिली तमन्ना न रखते हों, तो ऐसे भ्रष्ट और स्वार्थी प्रतिनिधियों से आपको संविधान में प्रदत्त अधिकारों से कोई लाभ मिलने वाला नहीं।

डॉ. अम्बेडकर के इस विचार की प्रासंगिकता आज भारतीय राजनीति के लिए कितना महत्त्व रखती है यह सभी जानते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि डॉ. अम्बेडकर की इस अवधारणा के विरुद्ध सत्ता के शिखर तक पहुँचने के लिए आज अनैतिक और भ्रष्टाचार में लथपथ व्यक्तियों को राजनीति में खोज-खोज कर सामने लाया जा रहा है। वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना हेतु राष्ट्रहित में उनके इस सिद्धान्त को हृदय से अंगीकार करने की महती आवश्यकता है।

डॉ. अम्बेडकर वास्तविक राष्ट्रीयता की स्थापना के प्रबल समर्थक थे। वह ऐसे राष्ट्रवाद में विश्वास नहीं करते थे, जो धार्मिकता के रंग में रंगा हुआ हो। वे यद्यपि धर्मान्धता के प्रबल विरोधी थे, परन्तु भारतीय जनजीवन के लिए धर्म को आवश्यक मानते थे। जिससे भारत की एकता और अखण्डता छिन्न-भिन्न न हो। भारत के लिए उन्होंने धर्म निरपेक्षता की नीति को ही ठीक बताया है क्योंकि भारत में इतनी जनसंख्या है कि वह एक ही धर्म में समाहित नहीं हो सकती है। इसी नीति के तहत भारत में सभी धर्म सम्मानपूर्वक रह सकते हैं।

निष्कर्ष- डॉ. अम्बेडकर के उक्त विचारों का अनुशीलन करने के बाद कहा जा सकता है कि डॉ. अम्बेडकर एक सच्चे राष्ट्रवादी थे। उन्होंने सदैव समता और भाईचारे की स्थापना को महत्त्व दिया। उनका मानना था कि भ्रातृत्व भाव की नींव पर ही भारत में एक राष्ट्र की भावना की स्थापना की जा सकती है। अम्बेडकर सुधारक ही नहीं एक विधिवेत्ता भी थे। वे एक व्यावहारिक चिंतक थे। उनकी सोच थी कि जब तक देश के सदियों से शोषित दलितों को उनके अधिकार नहीं मिलेगें राष्ट्र का सद्भावनपूर्ण विकास नहीं होगा। वे आरक्षण को वैशाखी मानते थे और दलितों को योग्य, कुशल एवं सम्मानपूर्ण जीवन जीने योग्य बनाना चाहते थे। हम आप भी अनुभव करते हैं कि बिना सामाजिक बराबरी के एक सद्भावयुक्त राष्ट्र व समाज के निर्माण की कल्पना असंभव है।

000

संदर्भ- 1.निगम, डॉ. अखिलेश (218), "डॉ. अम्बेडकर: सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत", अनंग प्रकाशन, नई दिल्ली। 2.जाटव, डॉ. डीआर (21), "राष्ट्रीय आन्दोलन में अम्बेडकर की भूमिका", समता साहित्य सदन, जयपुर। 3.गोंड, डॉ. रवि कुमार (217), "डॉ. भीमराव अम्बेडकर: संघर्ष से शिखर तक", लोकहित प्रकाशन, लखनऊ। 4.जाघव, डॉ. नरेन्द्र (217), "डॉ. अम्बेडकर राजनीति, धर्म और संविधान विचार", प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली। 5.कीर, धनंजय (216), "डॉ. अम्बेडकर जीवन चरित्र", पापुलर प्रकाशन, नई दिल्ली। 6.जाटव, डॉ. डीआर (219), "डॉ. अम्बेडकर का राजनीतिक दर्शन" समता साहित्य सदन, जयपुर। 7.स्नेही, डॉ. कालीचरण (213), "भारत रत्न डॉ. भीमराव अम्बेडकर", आराधना ब्रदर्स, कानपुर।

(शोध आलेख)

साहित्य, समाज और यथार्थ का संबंध

शोध लेखक : ममता देवी
शोधार्थी, लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय, फगवाड़ा, पंजाब

शोध निर्देशक : डॉ. बृजेंद्र कुमार अग्निहोत्री, सहायक प्रोफ़ेसर (हिन्दी), लवली प्रोफ़ेशनल विश्वविद्यालय, फगवाड़ा, पंजाब

ममता ढाँडा
मकान नंबर 12, शालीमार गार्डन, अर्बन एस्टेट के पास, फगवारा, पंजाब
ईमेल- mamtadhanda78r@gmail.com

शोध सार- साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक होते हैं। साहित्य समाज से ही प्रेरित होता है। साहित्य में घटने वाली घटनाओं व समस्याओं के अनुभवों से ही साहित्यकार साहित्य रचना करते हैं और समाज के लिए मार्गदर्शन का काम करते हैं। साहित्य में यथार्थ वह माना जाता है जिसमें साहित्यकार स्वयं के अनुभवों या किसी ओर से सुनी हुई अनुभूतियों से साहित्य रचना करता है। और साहित्य द्वारा दूसरों को भी उन अनुभूतियों का अनुभव करा सकता है। सामाजिक यथार्थ की साहित्य में प्रस्तुति से ही साहित्य में अभिरुचि उत्पन्न होती है। सामाजिक यथार्थ से अभिप्राय समाज से संबंधित घटनाओं का सच्चा चित्रण करना। परंतु ऐसा नहीं है कि साहित्यकार समाज में जैसा देखता है, उसको वैसा ज्यों का त्यों साहित्य में प्रस्तुत कर देता है बल्कि उसमें साहित्यकार की स्वयं की कलात्मकता और बुद्धि प्रदर्शन भी होता है। साहित्य तथा यथार्थ दोनों में कल्पना का सत्य रूप विद्यमान रहता है। परंतु यह केवल कोरी कपोल कल्पना ना होकर यथार्थ को सुंदर से सुंदरतम ढंग से प्रस्तुत करने का तरीका होती है। साहित्य के द्वारा समाज को समाज में ही व्याप्त कई समस्याओं और विषमताओं का बोध होता है। साहित्यकार अपनी रचनाओं में समाज में व्याप्त वर्ग संघर्ष, सामाजिक और पारिवारिक दमन तथा समाज के कमज़ोर वर्ग और नारी की स्थिति की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट कराता है। हिन्दी साहित्य की भूमिका में आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य की परिभाषा देते हुए कहते हैं -"प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चितवृति का संचित प्रतिबिंब होता है।" 1 साहित्य मानव जीवन से उत्पन्न होकर मानव जीवन को ही समझने का मौका प्रदान करता है।

बीज-शब्द- साहित्य, समाज, यथार्थ, यथार्थवाद, धर्म, संस्कृति।

प्रस्तावना- समाज और साहित्य एक दूसरे के बिना विकसित नहीं हो सकते। साहित्य रचना समाज में रहकर ही की जा सकती है तो समाज के विकास में साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान है। और यथार्थ इन दोनों के बीच की पगडंडी का काम करता है। साहित्य समाज का आईना होता है। साहित्यकार अपने ईद-गिर्द जो भी यथार्थ का अनुभव करता है वह अपनी रचना में उड़ेल देता है।

साहित्य- वैसे तो साहित्य शब्द की परिभाषा करना बहुत कठिन है। साहित्य से मनुष्य के इतिहास और वर्तमान का ज्ञान मिलता है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य से हमें उस समय के समाज के दर्शन होते हैं जिस समय में उसकी रचना हुई होती है। आचार्य कुंतक के शब्दों में -"जहाँ शब्द और अर्थ के बीच सुंदरता की लिए होड़ लगी हो, तभी साहित्य की सृष्टि होती"2। साहित्य मनोरंजन के साथ-साथ प्रेरणादायक, समाज सुधारक, समाज की प्रगति और उन्नति के मार्गदर्शक भी होता है। साहित्य रचना अनेक विधाओं में की जाती है। जैसे-कहानी, उपन्यास, एकांकी, कविता और संस्मरण। समय के साथ साहित्य में भी परिवर्तन आते हैं। साहित्य समाज की सच्चाइयों से हमें अवगत कराता है और मनुष्य को सही दिशा में बढ़ने के लिए प्रेरित और उत्साहित करता है। आधुनिक समय में जीविकोपार्जन के लिए धन की आवश्यकता के लिए साहित्यकार भी अछूता नहीं है। इसलिए पाठकों की ज़रूरत के साथ मनोरंजन साहित्य की भी रचना होती है। ऐसे मनोरंजन साहित्य के लिए पाठकों और रचनाकार दोनों की आवश्यकता की पूर्ति होती है। साहित्यकार अपने समाज से किसी घटना को अपना कर उसे अपनी कल्पना के रंगों और बुद्धिजीविता से नया आयाम देता है। साहित्यकार अपने बौद्धिक विवेक से अपनी रचना में सकारात्मक को सम्मिलित कर उसमें कल्पना के तत्वों का मिश्रण करता है। इसलिए साहित्यकार साहित्य रचना के लिए अलग-अलग भाषा शैलियों का प्रयोग करते हैं। साहित्य का प्रयोजन ही समाज के लिए समाज के हित में कार्य करना होता है। हिन्दी के उपन्यास सम्राट तथा महान् कहानीकार प्रेमचंद ने साहित्य की परिभाषा देते हुए लिखा है- "साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित एवं सुंदर हो और जिसमें दिल और दिमाग़ पर असर डालने का गुण हो 3।" इस प्रकार साहित्य समाज को समाज के यथार्थ से अवगत कराकर उसके दिलों दिमाग़ पर असर

डालने का भी माद्दा रखता है

समाज- समाज में मनुष्य विभिन्न समूह में रहता है। बहुत सारे मनुष्यों के विभिन्न समूहों को ही समाज कहा जाता है। समाज उस संस्था को कहते हैं जिसमें मनुष्य अपने सभी रीति-रिवाज, नीति-मूल्य, धर्म- संस्कृति के साथ मेल-जोल से रहता है। मनुष्य के आप सी मेल-जोल के विभिन्न कारण या तरीके हो सकते हैं। समाज में रहकर ही मनुष्य जीवन संघर्ष और सभी कार्य-कलाप व आदर्श और संस्कार आदि सीखता है और सीखता भी है। समाज में रहने वाले सभी लोगों के लिए कुछ शर्ते या नियम बनाए जाते हैं। समाज में रहने वाले सभी लोग उन शर्तों व नियमों को मानने के लिए प्रतिबद्ध होते हैं। इस संदर्भ में सरला दुबे लिखती है-"प्रत्येक समाज में समाज द्वारा मान्यता प्राप्त कुछ आदर्श नियम होते हैं, जो कि उस समाज की संस्कृति के अभिन्न अंग होते हैं और संस्कृति तथा समाज व्यवस्था को स्थिर रखने के लिए यह आवश्यक समझा जाता है कि समाज के सदस्य अपने व्यवहारों को उन्हीं आदर्श नियमों के अनुरूप ढालें जिससे कि सदस्यों के सामान्य उद्देश्यों के साथ-साथ सामाजिक उद्देश्यों की भी पूर्ति संभव हो"4। मानक हिन्दी कोश, में रामचंद्र शुक्ल- ने बहुत सारे लोगों के एक स्थान पर रहने वाले समूह को समाज कहा है। अरस्तू ने मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा है। अनुशासनबद्ध मानव समूह को ही समाज कहा जाता है। समाज के अभाव में मनुष्य के अस्तित्व का की कल्पना भी नहीं की जा सकती क्योंकि मनुष्य स्वभाव से ही सामाजिक प्राणी है। प्राचीन काल से ही समाज में अलग-अलग जाति, धर्म, संस्कृति के लोग रहते हैं। एक दूसरे की आवश्यकता की पूर्ति हेतु समाज के लोग आपस में मिलजुल कर रहते हैं। समाज की सबसे छोटी इकाई व्यक्ति है। व्यक्ति के बिना समाज के की कल्पना भी नहीं की जा सकती। परिवार दूसरी इकाई है। मनुष्य परिवार में जन्म लेकर समाज का अंग बन जाता है। समाज में रहकर उसे अपने अधिकार और कर्त्तव्य का पालन करना होता है। जिस समाज का वातावरण जैसा होता है, व्यक्ति उसके अनुसार अपना विकास कर उसी वातावरण में ढल जाता है। इन सभी प्रतिबद्धताओं का पालन कर वह एक सफल नागरिक होने का गौरव प्राप्त करता है।

यथार्थ- यथार्थ अंग्रेजी शब्द रियल का हिन्दी रूपांतरण है जिसका अर्थ है- ठीक, वाजिब, उचित, सच्चा अर्थात जैसा होना चाहिए, ठीक वैसा, जैसा का तैसा। वास्तविकता को प्रस्तुत करना ही यथार्थ होता है। मनुष्य अपने जीवन संसार में जो भी सच्चाई देखा है या वह अपनी ज्ञानेंद्रिय द्वारा अपने चारों ओर अनुभव करता है, उसे ही यथार्थ समझता है। यथार्थवादी चित्रण जीवन के करीब होता है और वास्तविकता उसका दर्पण होता है। यथार्थवादी साहित्य में वस्तु को जैसा देखा जाता है उसका वैसा वर्णन किया जाता है। यथार्थ को समझने के लिए अनुभव से कहीं ज़्यादा संवेदना काम करती है।

यथार्थवाद - यथार्थवाद वह विचारधारा है जो उसे वस्तु एवं भौतिक जगत् को सत्य मानते हैं, जिसे हम अपनी ज्ञानेंद्रिय द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। यथार्थ और यथार्थवाद एक दूसरे के पूरक हैं। इनमें अंतर करना कठिन कार्य है। यथार्थवाद समाज को उसी रूप को स्वीकार करता है जिस रूप में वह दिखाई देता है। यथार्थवाद का धरातल यथार्थ से ही मिलता है। यथार्थ समय पर आधारित होता है। समय परिवर्तनशील है तो यथार्थ में भी परिवर्तन स्वाभाविक है। यथार्थवाद की स्थापना के बाद यथार्थवाद। को? कई रूपों में विभाजित किया जा सकता है। कुछ रूप इस प्रकार हैं। प्राकृतिक यथार्थवाद अति यथार्थवाद, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, ऐतिहासिक यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद, समाजवादी यथार्थवाद, जादुई यथार्थवाद। यथार्थ अथवा यथार्थवादी चित्रण में रचनाकार बिना किसी भय अथवा पक्षपात के सामाजिक विडंबनाओं, विसंगतियों, असमानताओं, और भ्रष्टाचारों को उसके यथार्थ रूप में समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

साहित्य, समाज और यथार्थ का संबंध- सीधी सी बात है, समाज है, समाज से साहित्य है तो जाहिर है कि समाज का यथार्थ भी होगा ही, जिसे साहित्यकार ने अपनी रचना में दर्शाया है। साहित्यकार को साहित्य लेखन के लिए कच्चा माल समाज के यथार्थ यानि मानव जीवन संघर्ष से मिलता है जिससे साहित्यकार प्रेरणा पाकर अपनी रचना गढता है। त्रिभुवन सिंह के अनुसार-"जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है"5। अनुभूति की अनिवार्यता और यथार्थ को साहित्य का श्रेष्ठ मानदंड मानते हुए मुंशी प्रेमचंद ने माना है-" वही उपन्यास उच्च कोटि के समझे जाते हैं, जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो। उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं। आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है"6। साहित्य की प्रेरणा स्रोत हमेशा सामाजिक प्राणी रहा है। इसलिए इस प्रकार साहित्य रचना से मानव जगत् हताश, निराश एवं विभत्स वास्तविकता को आशावादी दृष्टि से देखता है। साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से इस अवस्था में उत्पन्न होता है जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हों। यह बात निश्चित है कि रचनाकार जिस परिवेश में रहता है, जहाँ फलता-फूलता है, उस परिवेश का स्वाभाविक रूप से साहित्यकार पर असर पड़ता है और उसके द्वारा किए गए रचना कार्यों में भी उसी परिवेश का तथा उसके तत्वों का शामिल होना निश्चित हो जाता है। समय के साथ समाज में परिवर्तन आते हैं। साहित्य समाज से प्रभावित होता है। साहित्य में सामाजिक यथार्थ के बारे में डॉ. त्रिभुवन सिंह लिखते हैं-"सामाजिक यथार्थ का अर्थ है समाज की वास्तविक अवस्था का यथार्थ चित्रण, परंतु साहित्य के अंदर किसी भी वस्तु का चित्र उतार कर रख देना कठिन होता है क्योंकि साहित्यिक चित्र कैमरे द्वारा लिया गया चित्र नहीं होता, जिससे साहित्यकार के अनुभव एवं कल्पना के सुंदर रंग डाले होते हैं"7। इसलिए समाज की गतिविधियों और घटनाओं से सदा स्पंदित और संजीव होता है। साहित्य द्वारा जीवन के विभिन्न पहलू उद्घाटित हुए हैं। समाज के हर

विषय पर साहित्यकारों ने अपनी लेखनी चलाई है। विषय वैविध्य साहित्य की प्रमुख विशेषता है। सामाजिक यथार्थ के कारण ही साहित्य में जीवन के अनेक मानवीय परिवर्तनों के दस्तावेज प्रस्तुत होते हैं। साहित्यकारों ने अपने साहित्य में समाज यथार्थ की अभिव्यक्ति, सामाजिक मूल्य दृष्टि, परिवेश के प्रति सतर्कता व कर्त्तव्य धर्मिता, नारी जीवन की बहुमुखी समस्याएँ, आम आदमी के जीवन संघर्ष व प्रतिष्ठा, राजनीतिक परिपेक्ष्य, वर्तमान व्यवस्था की प्रति रोष तथा विद्रोही स्वर, भयावह महानगरीय जीवन, आर्थिक संबंधों की समस्याएँ आदि विषय प्रस्तुत होते हैं जिससे इन विषयों को यथार्थ के सहारे सच्चे अर्थों में समझना आसान हो जाता है। यथार्थ को प्रस्तुत करते हुए इस युग के साहित्यकारों ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के अनछूए प्रसंगों एवं स्थितियों को पूरी ईमानदारी से चित्रित किया है। सामान्य मनुष्य के जीवन में जीवन जीने के लिए विषम आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों, वैज्ञानीकरण, औद्योगीकरण तथा तकनीकी विकास के कारण उत्पन्न नवीन स्थितियाँ और समस्याएँ खड़ी रहती हैं उनको गहराई से समझकर प्रस्तुत करने की सफल कोशिश की है। डॉ पुष्प पाल सिंह कहते हैं-"वर्तमान से भिडने का आग्रह साठोत्तर कहानी को जीवन की खुरदरी ज़मीन पर लाकर खड़ा करता है। इस प्रकार नई कहानी अनुभूत और भोगे हुए यथार्थ को प्रमाणिकता से व्यक्त करने की जिस प्रतिबद्धता को ले कर चली थी, उससे दूर उसी सूत्र में जोड़कर जीवन की सच्चाइयों को कहानी में जिया"8। अत: यथार्थवादी साहित्य के कारण समाज, मनुष्य और जीवन को समझने में मदद मिलती है। फलस्वरूप आज व्यक्ति का कोई भी बोध भय को जन्म नहीं देता। यथार्थवादी साहित्य नवीन नैतिक मूल्यों को भी समझने में मदद करता है।

साहित्य प्रत्येक युग में पाठकों का ध्यान अपनी और आकृष्ट करने में समर्थ रहा है। प्रेमचंद के विचार में साहित्य की परिभाषा जीवन की व्याख्या है। "चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के या कथा के उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए"9। साहित्य का उद्देश्य समाज का ही हित करना है। साहित्यकार अपने युग के समाज का प्रतिनिधि होता है। समाज की समस्याओं, अवधारणाओं और भावनाओं को संतुलित रूप में ग्रहण करने की उसमें क्षमता होती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि साहित्य में समाज को प्रेरित करने एवं उसे सही दिशा प्रदान करने की असीम, अनन्त शक्ति होती है। साहित्य सहचर में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी साहित्य पर विचार कर व्यक्त करते हुए कहते हैं-"साहित्य मानव जीवन से सीधा उत्पन्न होकर सीधे मानव जीवन को प्रभावित करता है। साहित्य पढ़ने से हम जीवन के साथ ताजा और घनिष्ठ संबंध स्थापित करते हैं। साहित्य में उन सारी चीजों का जीवन्त विवरण होता है। जिन्हें मनुष्य ने देखा है, अनुभव किया है, सोचा है और समझा है। जीवन के जो पहलू हमें नजदीक से और स्थायी रूप से प्रभावित करते हैं उनके विषय में मनुष्यों को समझने का एक मात्र साधन साहित्य है"1। इस प्रकार साहित्य समाज और यथार्थ का गहरा संबंध होता है। साहित्यकार साहित्य रचना करते हैं जिससे समाज प्रगति की ओर अग्रसर होता है तथा सामाजिक उत्थान और नैतिक मूल्यों की स्थापना करने में समाज की सहायता करता है। समाज को यथार्थ से अवगत कराकर अच्छाई-बुराई का बोध कराने की शक्ति साहित्य में ही है।

निष्कर्ष- साहित्य समाज का कैसा भी यथार्थ हो चाहे वह विचारों में हो, भावनाओं में हो या फिर समस्या या घटना हो, सभी को प्रस्तुत करने में सक्षम है। समाज में जिन मूल्यों आदर्शों और धार्मिकता की आवश्यकता होती है, उस यथार्थ को समाज के समक्ष प्रस्तुत कर देता है। साहित्य न केवल समाज के यथार्थ से प्रेरित होता है बल्कि समाज को यथार्थ का आईना दिखाकर उन्नति और प्रगति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। लेकिन साहित्य में समाज के वास्तविक यथार्थ का ठीक वैसा चित्रण करना बहुत दुरूहपूर्ण कार्य होता है। साहित्यकार समाज में रहकर जो अनुभव ज्ञान प्राप्त करता है, उसे वह सैद्धांतिक विचारधारा की कसौटी पर कसता है। बुद्धि से इन अनुभवों का विश्लेषण करना यथार्थ बोध होता है। यदि साहित्यकार को रचना के निर्माण और समाज के यथार्थों का सत्य चित्रण करना है तो मानव जीवन के सभी पहलुओं के साथ गहराई से जुड़ना और जानना होगा। साहित्य का मतलब ही "समाज का हित करने वाला होता है। जो सही अर्थों में सार्थक साहित्य होता है। आधुनिक समय में यथार्थ साहित्य में मुख्य प्रवृत्ति के रूप में स्वयं को स्थापित कर चुका है और ऐसा साहित्य जो समाज के किसी काम ने आए ऐसे साहित्य का कोई मोल नहीं होता। यथार्थ ही साहित्य को उसके इतिहास और वर्तमान चरित्र से परिचित कराता है। जबकि यह किसी साहित्यकार की लेखनी द्वारा चित्रित एक ऐसा चित्र होता है जिसमें साहित्यकार के रंग-बिरंगे कल्पना के रंगों के साथ-साथ उसकी अनुभूतियों के रंग भी मिले होते हैं।

संदर्भ-

1.शुक्ला, आचार्य राम .हिन्दी साहित्य का इतिहास.नागरिक प्रचारिणी सभा वाराणसी 24वां संस्करण, 248, पृ.स.3,

2.http;\\www.sahityashi\pi.com\28\9\blog-past3518.html, 3.http\\vle.du.ac.in\mod\book\print.php?id=12741&chaptered,

4.दुबे, सरला.सामाजिक विघटन तथा पुनर्गठन.रंजन प्रकाशन, संस्करण-1982, पृष्ठ संख्या 156, 5.सिंह, त्रिभुवन .हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद.हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन, वाराणसी, पंचम संस्करण, पृ. सं.242, 6.प्रेमचंद.कुछ विचार.लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 28 पृ. सं.5, 7.सिंह, त्रिभुवन .हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद.हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन, वाराणसी, पंचम संस्करण, पृ. सं.79, 8.डॉ पुष्प पाल सिंह, समकालीन कहानी, युगबोध का संदर्भ, पृष्ठ 87, 9.प्रेमचंद, कुछ विचार साहित्य का उद्देश्य, पृष्ठ 3, 1.आचार्य, हजारी प्रसाद द्विवेदी.साहित्य सहचर. लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्मरण-25, पृष्ठ संख्या 3

(शोध आलेख)

प्रशिक्षित शिक्षकों की बुद्धि स्तरों के संदर्भ में उनकी व्यावसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन

शोध लेखक- श्वेता कपूर
शिक्षा संकाय, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

शोध निर्देशक- प्रो. डॉ. सन्तोष शर्मा
कुलपति, अरनी विश्वविद्यालय, काठगढ़, काँगड़ा (हिमाचल प्रदेश)

श्वेता कपूर,
एफ-5, शास्त्रीनगर,
मेरठ (उ.प्र.) - 254
ईमेल- shwetakapoor956@gmail.com

सार संक्षेप- प्रस्तुत शोध में प्रशिक्षित शिक्षकों की बुद्धि स्तरों के संदर्भ में उनकी व्यावसायिक प्रतिबद्धता का तुलनात्मक अध्ययन किया है। प्रस्तुत शोध मेरठ मंडल के माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित शिक्षको (महिला-पुरुषों) से संबंधित है। उपकरणों के अंतर्गत बुद्धि स्तर के मापन हेतु- अंतरा दे तथा नील रतन राय द्वारा निर्मित- "सोशल इंटेलिजेंट स्केल फॉर टीचर्स" तथा व्यावसायिक प्रतिबद्धता के मापन हेतु- डॉ. रविंद्र कौर, डॉ. सरबजीत रानू तथा श्रीमान संजीव कुमार बरार द्वारा निर्मित "प्रोफेशनल कमिटमेंट स्केल फॉर टीचर्स" का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण के लिए सांख्यिकीय विधि के अंतर्गत माध्य, प्रमाणिक विचलन, मानक त्रुटि तथा टी-प्राप्तांक का प्रयोग किया गया है। निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते हैं कि शहरी क्षेत्र के पुरुष एवं महिला प्रशिक्षित शिक्षकों के उच्च एवं सामान्य बुद्धि स्तरों का व्यवसायिक प्रतिबद्धता का सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता, लेकिन निम्न बुद्धि स्तरों के शहरी क्षेत्र के पुरुष एवं महिला प्रशिक्षित शिक्षकों का व्यवसायिक प्रतिबद्धता का सार्थक प्रभाव पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्र के पुरुष एवं महिला प्रशिक्षित शिक्षकों की उच्च, सामान्य एवं निम्न बुद्धि स्तरों का व्यावसायिक प्रतिबद्धता पर सार्थक प्रभाव नहीं है।

प्रस्तावना- शिक्षा मानव विकास का एक अति महत्त्वपूर्ण साधन है। यह केवल प्रमाण पत्र प्राप्ति ही नहीं है, बल्कि है तो मानव के व्यवहार-विचार, व्यक्तित्व, कार्यों, भाषा, संस्कार तथा दृष्टिकोण में स्पष्ट रूप से झलकती है। यह मानव को एक सफल, सार्थक तथा खुशहाल जीवन जीने में मदद करती है। स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता शिक्षकों की गुणवत्ता का प्रत्यक्ष परिणाम है। शिक्षा में 'शिक्षक शिक्षा' की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए कहा गया "उन समस्त कारकों में से जो शिक्षा की गुणवत्ता एवं राष्ट्रीय विकास में योगदान को निर्धारित करते हैं शिक्षक नि:सन्देह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारक है।"

शिक्षा एक प्रभाव है, जो मनुष्य के आंतरिक एवं बाहरी विकास में प्रेरणा देती हैं तथा बालको को सांस्कृतिक चेतना देते हुए आत्मनिर्भरता की योग्यता प्रदान करती है। समस्त ज्ञान

मनुष्य के भीतर ही विद्यमान है, आवश्यकता केवल उसे जागृत करने की है, वास्तव में मानव की अन्तर्निहित पूर्णता अथवा आंतरिक संस्कारों के बाहरी प्रकट की क्रिया को ही शिक्षा कहा गया है तथा यह प्रक्रिया शिक्षकों द्वारा ही संपन्न की जाती है और यदि शिक्षक प्रशिक्षित तथा अपनी व्यवसाय के प्रति पूर्णत: प्रतिबद्ध होगे तो वह अपनी शिक्षण प्रक्रिया संबंधी समस्त जिम्मेदारियाँ को और भी अधिक सचेत होकर पूर्ण करेंगे।

प्रशिक्षित शिक्षक- प्रशिक्षित शिक्षकों से आशय उन शिक्षकों से हैं, जिन्होंने शिक्षण कार्य करने हेतु बी.एड. का प्रशिक्षण कोर्स किया हुआ है, तथा इसी कोर्स के आधार पर वर्तमान समय में किसी माध्यमिक विद्यालय में अध्यापनरत् है। वर्तमान समय में शिक्षा की गुणवत्ता मे सुधारने के लिए शैक्षिक संस्थानों में प्रशिक्षित शिक्षकों को ही रखा जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षण एक उच्च पेशेवर गतिविधि है, जो कि शिक्षकों से अपने शिक्षण पेशे के प्रति उचित व्यवसायिक प्रतिबद्धता की माँग करती है। जोकि विद्यालयों में शिक्षकों के व्यक्तित्व को प्रदर्शित करता है। शिक्षण पेशे में व्यावसायिक क्षमता मौलिक है जिसमें अपने कार्यों की प्रति उचित योग्यता, अभिवृद्धि, वचनबद्धता, प्रतिबद्धता, सकारात्मक दृष्टिकोण तथा समर्पण की भावना शामिल है। एक प्रशिक्षित शिक्षक ही छात्रो के विकास में अपना योगदान दे सकता है, इसलिए कहा गया है कि यदि आप एक शिक्षक को प्रशिक्षित करते हैं तो संपूर्ण समुदाय को शिक्षित कहते हैं क्योंकि प्रशिक्षित शिक्षक आगे चलकर योग्य, कुशल, शिक्षक बनकर के समाज राष्ट्र के निर्माता के निर्माण में योगदान देते हैं। किसी भी राष्ट्र की प्रगति तथा शैक्षिक गुणवत्ता उसके अध्यापकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता पर निर्भर करती।

बुद्धि स्तर- बुद्धि शब्द का प्रयोग हम साधारण बोल-चाल की भाषा में कई अर्थों में करते हैं। उदाहरण के लिए सुनील कैसा बुद्धिमान बालक है। सीमा पायल से अधिक बुद्धिमान है। इन वाक्यों का विश्लेषण करने पर प्रश्न उठता है कि बुद्धि वास्तव में कोई शक्ति है? क्या इसका संबंध मस्तिक से है? क्या यह कोई विकासशील वस्तु है? बुद्धि को अनेक प्रकार से परिभाषित क्यों किया जाता है इन प्रश्नों के उत्तर में कहा जा सकता है कि जिस मानसिक तत्व के कारण बालकों के सीखने की क्षमता में अंतर उपस्थित होता है, जिस तत्व के कारण उनकी सीखने की क्षमता में भिन्नता दिखाई देती है, जिस तत्व के कारण किसी समस्या को हल करने में व्यक्तित्व अंतर दिखाई देता है, उसे कारण को समझने के लिए जो अर्थ हम देते हैं इस अर्थ को बुद्धि की संज्ञा दी गई है। बुद्धि के अर्थ को हम और अधिक स्पष्ट करने के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिक ने बुद्धि की परिभाषा दी है जिसमें कुछ इस प्रकार है-

बर्ट के अनुसार- "बुद्धि अच्छी तरह निर्णय करने, समझने, तर्क करने की योग्यता है।"

स्टर्न के अनुसार- "नवीन परिस्थितियों के साथ समायोजन करना ही होती है।"

बुद्धिलब्धि का सूत्र- प्रोफेसर ड्रेवर ने बुद्धि लब्धि को मानसिक आयु का कालिक के साथ अनुपात के रूप में अभिव्यक्त किया और निम्नलिखित सूत्र दिया- बुद्धिलब्धि = मानसिक आयु / कालिक आयु × 1

व्यावसायिक प्रतिबद्धता- प्रत्येक व्यवसाय में सफल होने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति उस व्यवसाय के संदर्भ में उचित योग्यता, अभिवृत्ति, अभिरुचि तथा सकारात्मक दृष्टिकोण रखना हो, यही तथ्य शिक्षण व्यवसाय में भी लागू होता है एक शिक्षक की सफलता का कारण उसके विषय वस्तु के ज्ञान एवं योग्यताएँ ही नहीं होती बल्कि शिक्षक की शिक्षण कार्य तथा शिक्षण व्यवसाय के प्रति सकारात्मक अभिव्यक्ति, अभिरुचि तथा व्यावसायिक प्रतिबद्धता पर भी निर्भर करती है। इस प्रकार व्यवसाय प्रतिबद्धता से तात्पर्य अपने व्यवसाय के प्रति समर्पण एवं अपने कार्य के प्रति वचनबद्धता से है अपने व्यावसायिक कार्यों के प्रति समर्पित होने की इच्छा उसके प्रति विश्वास तथा गंभीरता प्रदर्शित करने की भावना ही व्यवसायिक प्रतिबद्धता है।

व्यावसायिक प्रतिबद्धता शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है व्यावसायिक तथा प्रतिबद्धता जिसमें व्यवसाय का तात्पर्य किसी ऐसे कार्य से है, जिसको व्यक्ति कर रहा है जबकि प्रतिबद्धता से तात्पर्य इस बात से होता है कि जिस भी कार्य को व्यक्ति कर रहा हो उसे कार्य को पूर्ण समर्पण, निष्ठा, गंभीरता से करने तथा उसके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखने से है। व्यावसायिक प्रतिबद्धता को कुछ परिभाषाओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है, जो निम्न प्रकार है-

युक्ल के अनुसार- "प्रतिबद्धता से अभिप्राय संगठन में किसी व्यक्ति के जुड़ाव के स्तर से होता है। किसी निर्णय से सहमति रखते हुए उसके निर्वहन के लिए किए गए उच्च स्तर के प्रयासों को प्रतिबद्धता के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।"

जाफरे और हॉंगे के अनुसार- "वह व्यक्ति जो अपने शिक्षण कार्य को उन्नत बनाना चाहता है और विद्यालय समय के बाद भी समय देने के लिए तैयार है वह व्यावसायिक रूप से प्रतिबंध कहा जाएगा।"

अध्ययन की आवश्यकता- शिक्षा का व्यक्ति के जीवन में विशेष महत्त्व है। एक शिक्षित व्यक्ति न केवल स्वयं के लिए बल्कि अपने परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए बहुत उपयोगी होता है। शिक्षा प्राप्त करके व्यक्ति में चेतना का विकास होता है तथा वह स्वयं का एवं राष्ट्र का विकास करने का प्रयास करता है। किसी भी राष्ट्र की को उसकी सभ्यता एवं संस्कृति की मूल धारा से जोड़ने की व्यवस्था शिक्षा ही करती है। कोठारी आयोग में कहा गया है कि "भारत के भविष्य का निर्माण इसकी कक्षाओ में हो रहा है" तथा कक्षाओं का भाग्य निश्चित रूप से अध्यापकों के हाथों में है, क्योंकि इन कक्षाओं में विद्यार्थियों के भविष्य का निर्माण अध्यापक ही करते हैं और यदि अध्यापक प्रशिक्षित होंगे तथा अपने अध्यापन व्यवसाय के प्रति पूर्णतया प्रतिबद्ध होंगे तो वह विद्यार्थियों को अधिक कुशलता, दक्षता और निष्ठा के साथ शिक्षित कर सकेगे। ऐसे प्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा शिक्षित हुए विद्यार्थी अपनी समस्त जिम्मेदारियाँ को और

अधिक बेहतर ढंग से संपादित कर सकेंगे जिससे देश का चहुँमुखी विकास होगा।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत को प्रजातांत्रिक देश घोषित किया गया। जिसमें सभी को समान रूप से शिक्षा प्राप्ति के अधिकार प्रदान किए। सरकार ने शिक्षा के विकास के लिए अनेक अयोग्य एवं समितियाँ बनायी। जिससे शिक्षा जन-सामान्य तक पहुँच सके। इससे भारतीय जनता शिक्षा प्राप्ति के प्रति चेतना जागृत हुई। सरकार से प्राप्त सुविधाओं के फलस्वरूप जनता में शिक्षा की माँग बहुत अधिक बढ़ गई, साथ ही शिक्षण संस्थाओं में पढ़ाने के लिए प्रशिक्षत शिक्षकों की माँग में भी बढ़ गई क्योंकि सरकार ने शिक्षण संस्थान में प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति को ही प्राथमिकता दी। जिससे कि प्रशिक्षित शिक्षकों से शिक्षत होकर छात्र सुयोग्य नागरिक बन सके। अब प्रश्न यह उठता है कि सभी प्रशिक्षित शिक्षक भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमि तथा विभिन्न महाविद्यालय, विश्वविद्यालय से संबंधित होते हैं तथा विभिन्न ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र में अध्यापनरत् रहते हैं उनका बुद्धि स्तर भी भिन्न होता है जिससे अपने कार्य को संपादित करते हैं उनकी और व्यवसायिक प्रतिबद्धता में विभिन्न होती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए वर्तमान शोध पत्र में "प्रशिक्षित शिक्षकों की बुद्धि स्तरों के संदर्भ में उनकी व्यावसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन" करने की आवश्यकता प्रतीत हुई।

अध्ययन के उद्देश्य- 1.शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के पुरुष प्रशिक्षित शिक्षकों की बुद्धि स्तर के संदर्भ में उनकी व्यावसायिक प्रतिबद्धता पर पड़ने वाले प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन। 2.शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के महिला प्रशिक्षित शिक्षकों की बुद्धि स्तर के संदर्भ में उनकी व्यावसायिक प्रतिबद्धता पर पड़ने वाले प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ- 1.शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के पुरुष प्रशिक्षित शिक्षकों की बुद्धि स्तर के संदर्भ में उनकी व्यावसायिक प्रतिबद्धता पर पड़ने वाले प्रभाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। 2.शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के महिला प्रशिक्षित शिक्षकों की बुद्धि स्तर के संदर्भ में उनकी व्यावसायिक प्रतिबद्धता पर पड़ने वाले प्रभाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन की विधि- प्रस्तुत शोध को पूर्ण करने के लिए सर्वेक्षण की विश्लेषणात्मक विधि के चरणों का अनुसरण किया गया है।

शोध अभिकल्प- प्रस्तुत शोध में समस्या की प्रकृति के अनुरूप एकल स्थिर समूह अभिकल्प को चयन किया गया है।

शोध का परिसीमन- 1.प्रस्तुत शोध मेरठ जिले से सम्बन्धित है। 2.प्रस्तुत अध्ययन माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों के प्रशिक्षित महिला-पुरुष शिक्षकों से सम्बन्धित है।

शोध के उपकरण- प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने आँकड़ों को एकत्रित करने के लिए निम्नलिखित उपकरणों का उपयोग किया है- 1.समस्या की प्रकृति के अनुसार बुद्धि स्तर चर के मापन हेतु (i)Social Intelligence Scale for Teachers (SIST) - Antara Dey, Nil Ratan Roy

2.समस्या की प्रकृति के अनुसार व्यावसायिक प्रतिबद्धता चर के मापन हेतु (ii)Professional Commitment Scale for Teachers (PCST-KRB) - Dr. Ravindra Kaur, Dr. Sarbjit Ranu, Mrs. Sarvjeet Kaur Brar

सांख्यिकीय तकनीकी- समस्या की प्रकृति के अनुरूप प्रस्तुत शोध में आँकड़ों के संकलन के लिए माध्य, प्रमाणिक विचलन, मानक त्रुटि, और टी-प्राप्तांक का प्रयोग किया गया है।

परिणाम- 1.शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के पुरुष प्रशिक्षित शिक्षकों की उच्च बुद्धि स्तर का व्यावसायिक प्रतिबद्धता पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। सामान्य बुद्धि स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के पुरुष प्रशिक्षित शिक्षकों की बुद्धि स्तर का व्यावसायिक प्रतिबद्धता पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। निम्न बुद्धि स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के पुरुष प्रशिक्षित शिक्षकों की बुद्धि स्तर का व्यावसायिक प्रतिबद्धता पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्र के पुरुष शहरी क्षेत्र के पुरुष के तुलना में शिक्षण दक्षता ज़्यादा प्रभावित होती है।

2.शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के महिला प्रशिक्षित शिक्षकों की उच्च बुद्धि स्तर का व्यावसायिक प्रतिबद्धता पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। सामान्य बुद्धि स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के महिला प्रशिक्षित शिक्षकों की बुद्धि स्तर का व्यावसायिक प्रतिबद्धता पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। निम्न बुद्धि स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के महिला प्रशिक्षित शिक्षकों की बुद्धि स्तर का व्यावसायिक प्रतिबद्धता पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्र के महिला का शहरी क्षेत्र के महिला के तुलना में व्यावसायिक प्रतिबद्धता ज़्यादा प्रभावित होती है।

000

संदर्भ-

कौर एवं कौर (214), लिंग और स्थान के संबंध में माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के बीच व्यावसायिक प्रतिबद्धता, इलेक्ट्रॉनिक रिसर्च जर्नल (EURJ), कॉर्टन ईवा (1977) ने 'माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि की आवश्यकता, तनाव एवं अनुकरण शैली के बीच सम्बन्धों का अध्ययन' किया। शोध प्रबन्ध वायने स्टेट विश्वविद्यालय।, तासेव, जे.एम. (1992) "शिक्षण प्रशिक्षणार्थियों के कक्षाकक्ष की मौखिक व्यवहार की समस्या का उनकी बुद्धि आत्मविश्वास व शिक्षण के प्रति अभिवृत्ति के संबंध में अध्ययन" का प्रयास। पीएच.डी. पंजाब विश्वविद्यालय।, पहुजा, डॉ. सुधा (213), भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास।, पाण्डेय रामप्रसाद, व्यावसायिक निर्देशन, भारत सरकार (शिक्षा मंत्रालय) प्रकाशित।, शर्मा ए. (23), स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्राओं के व्यावसायिक एवं पारिवारिक मूल्यों का अध्ययन अप्रकाषित एम.एड. लघु शोध प्रबन्ध, आगरा, डी.ई.आई. दयालबाग।, सक्सेना, एम. (199) "व्यावसायिक सन्तुष्टि और अभिवृत्ति के बीच साथ ही सामाजिक आर्थिक स्थिति, व्यक्तित्व एवं व्यावसायिक सन्तुष्टि के बीच संबंध का परीक्षण" किया। पीएच.डी. आगरा विश्वविद्यालय।

(शोध आलेख)

हिमालयी कृषि-पारिस्थितिकी तंत्र और आजीविका पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

शोध लेखक : रमेश वर्मा, विवेक नैथानी
शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग, एच. एन. बी. गढ़वाल यूनिवर्सिटी, श्रीनगर, उत्तराखंड

रमेश वर्मा, विवेक नैथानी
मोबाइल- 7060671004, 8954755922
ईमेल- rameshverma25695@gmail.com
naithanivivek94@gmail.com

मनुष्य की बढ़ती अनियोजित औद्योगिक गतिविधियों के कारण ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन में लगातार वृद्धि हो रही है, जिसके कारण ग्रीनहाउस प्रभाव में बढ़ोतरी और पृथ्वी के तापमान में वृद्धि होती जा रही है। जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण मानवजनित है। औद्योगिक क्रांति के पश्चात मनुष्य ने प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन किया है। इन मानवीय गतिविधियों के कारण प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग जैसी समस्याएँ उत्पन्न हुईं। हिमालयीय क्षेत्र में कृषि-पारिस्थितिकी तंत्र एवं आजीविका के विभिन्न पहलुओं पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव की जाँच करना। हिमालयी कृषि-पारिस्थितिकी तंत्र और आजीविका पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव को समझाने के लिए द्वितीय आँकड़ों का प्रयोग किया गया है। इसलिए, वर्तमान अध्ययन उत्तराखंड में कृषि और आजीविका के भविष्य के दायरे को निर्धारित करने के लिए शोधकर्ता का प्रयास है। कृषि उत्तराखंड की अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिसमें अपने जीवन के लिए 70 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या इस क्षेत्र में शामिल है। उत्तराखंड के कृषि क्षेत्र में पुरुषों की तुलना में महिलाओं की सहभागिता अधिक है, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से छोटे किसानों के भोजन, पोषण, आजीविका और कल्याण पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

बीज शब्द- जलवायु परिवर्तन, कृषि-पारिस्थितिकी तंत्र, आजीविका, प्राकृतिक संसाधन।

परिचय- मनुष्य की बढ़ती अनियोजित औद्योगिक गतिविधियों के कारण ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन में लगातार वृद्धि हो रही है, जिसके कारण ग्रीनहाउस प्रभाव में बढ़ोतरी और पृथ्वी के तापमान में वृद्धि होती जा रही है जो कि आईपीसीसी की रिपोर्ट के अनुसार पूर्व औद्योगिक स्तर से पृथ्वी का तापमान 1.5 डिग्री सेल्सियस तक बनाए रखने के लिए नाकाफी है तथा भविष्य में पृथ्वी की स्थिति एक आग के गोले के समान हो जाएगी। आर्थिक विकास के कारण जीवाश्म ईंधन के उपयोग से वायु प्रदूषण से संबंधित पर्यावरणीय समस्याओं में अम्लीय वर्षा भी एक जटिल समस्या बनती जा रही है। पृथ्वी की जलवायु गतिशील है, जो प्राकृतिक चक्र के अनुसार सदैव बदलते रहती है किंतु मानवीय गतिविधियों द्वारा जलवायु परिवर्तन की दर में आई वृद्धि चिंता का विषय है। जलवायु में आए इन परिवर्तनों को दो भागों में बाँटा जा सकता है पहले प्राकृतिक और दूसरा मानव गतिविधियों, किंतु जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण मानवजनित है। औद्योगिक क्रांति के पश्चात मनुष्य ने प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन किया है। इन मानवीय गतिविधियों के कारण प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग, पर्यावरण में ह्रास जैसे समस्या उत्पन्न हुई। जलवायु परिवर्तन के कारकों की बात करें तो प्राकृतिक गतिविधियाँ के अंतर्गत भूकंप, ज्वालामुखी उद्भेदन, समुद्री बहाव में बदलाव, सौर विकिरण में विभिन्नता, महाद्वीपीय संवहन इत्यादि शामिल हैं तो वहीं मानवजनित कारकों में भूमि उपयोग में परिवर्तन, नगरीयकरण, औद्योगिकीकरण, वन उन्मूलन, खनिज खनन, जनसंख्या वृद्धि तथा निरंतर बढ़ती जनसंख्या के कारण भरण-पोषण हेतु अधिकाधिक खाद्यान्न उपजाने के लिए रासायनिक कीटनाशकों एवं उर्वरकों का असीमित उपयोग आदि शामिल है। आईपीसीसी सहित अनेक वैश्विक संस्थाओं की रिपोर्टों ने जलवायु परिवर्तन की पुष्टि की है। सन् 1961 तथा 1990 के बीच पृथ्वी का औसत तापमान लगभग 14 डिग्री सेल्सियस था। वर्ष 1998 में या बढ़कर 14.52 डिग्री सेल्सियस दर्ज किया गया था। उल्लेखनीय है कि सन् 1850 से अब तक के सर्वाधिक गरम वर्षों की गणना करें तो हम पाएँगे की सन् 1995 से लेकर वर्ष 2022 तक के हर आगामी वर्ष पूर्ववर्ती वर्ष से ज़्यादा गर्म होता जा रहा है अर्थात जलवायु का वैष्विक संकट लगाकर बढ़ रहा है।

शोध की आवश्यकता- हिमालय में जलवायु परिवर्तन पर यह विशेष अध्ययन उदार अर्थ से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें पृथ्वी के इस पर्यावरण संवेदनशील क्षेत्र में आर्थिक प्रणाली और जीवनोपायों को किसी विशेष कठिनाई के साथ निपटने के विषय में अद्वितीय चुनौतियों का अध्ययन किया गया है। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव पर ध्यान केंद्रित करते हुए, यह अनुसंधान सतत कृषि और समुदाय जीवनों के लिए संरक्षित कृषि और समुदाय जीवनों के लिए आवश्यक दुर्बलताओं और अनुकुलन रणनीतियों के बारे में महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करता है। इस

अनुसंधान के परिणामों मेंएक बड़े सहयोग के साथ हिस्सेदारी करने के लिए पहाड़ी क्षेत्रों को एक बदलते जलवायु के परिणामों से निपटने के लिए एक साथ मिलकर काम करने की आवष्यकता है।

वस्तुनिष्ठ- हिमालयीय क्षेत्र में कृषि-पारिस्थितिकी तंत्रएवं आजीविका के विभिन्न पहलुओं पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव की जाँच करना।

शोध की कमी- उत्तराखंड हिमालय में जलवायु परिवर्तन पर अध्ययन में अनुसंधान की कमी उस स्थानीय, संदर्भ-विशिष्ट प्रभावों पर है जो कृषि-पारिस्थितिकि और आजीविका पर हो रहे हैं। मौजूदा साहित्य में अक्सर क्षेत्र की विशेष उत्कृष्टताओं, अनुकूलन क्षमताओं और सामाजिक-आर्थिक परिणामों के विस्तृत अंशों की कमी है। इसके अलावा, हिमालय के स्थानीय समुदायों के बीच जलवायु विविधता, कृषि प्रथाओं और समुचित सामाजिक सुरक्षा के बीच के संबंधों पर समर्पित समृद्ध अध्ययनों की कमी है। इन सूक्ष्म परिणामों को समझना उत्तराखंड हिमालय की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप प्रभावी समाधान और अनुकूलन रणनीतियों के लिए महत्त्वपूर्ण है, जो जलवायु परिवर्तन, कृषि-पारिस्थितिकि और आजीविकाओं के बीच जटिल संबंधों परएक और संपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करता है।

शोध पद्धति- यह अध्ययन वर्णनात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। वर्तमान अध्ययन उपलब्ध बुनियादी और वर्तमान साहित्य का गहन विश्लेषण कर हिमालयी कृषि-पारिस्थितिकी तंत्र और आजीविका पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव को समझाने का प्रयास करता है। इसलिए, वर्तमान अध्ययन उत्तराखंड में कृषि और आजीविका के भविष्य के दायरे को निर्धारित करने के लिए शोधकर्ता का प्रयास है। यह अध्ययन द्वितीय आँकड़ों पर आधारित है, जो सरकारी रिपोर्टों, पत्रिकाओं, शोध लेखों से प्राप्त किया गया है।

परिणाम-

कृषि-पारिस्थितिकी तंत्र- हिमालयीय क्षेत्र में कृषि-पारिस्थितिकी तंत्र एवं आजीविका पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव गंभीर चिंता का विषय है। अत्यधिक तापमान, बारिश की असमान वितरण, और प्राकृतिक आपदाओं के आकस्मिक वृद्धि के कारण खेती और जीविकाओं को खतरा है। अनुकूलन की आवश्यकता है, जैसे कि समुदायों के लिए समृद्ध वाणिज्यिक संसाधनों का प्रबंधन, संगठन, और गतिशीलता। गहन अध्ययन और सामूहिक प्रयासों के माध्यम से हिमालयीय क्षेत्र में कृषि-पारिस्थितिकी तंत्रएवं आजीविका के विभिन्न पहलुओं पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के परिणामों की जाँच करने का प्रयास किया गया है जो इस प्रकार है।

भौगोलिक आकृति- उत्तराखंड के हिमालयी क्षेत्र में ऊबड़-खाबड़ इलाके है जो कृषि-पारिस्थितिकी तंत्र को बहुत प्रभावित करती है। जलवायु: उत्तराखंड में हिमालयी जलवायु की विशेषता ऊँचाई और मौसमी परिवर्तनों के आधार पर तापमान और वर्षा में भिन्नता है। मिट्टी: उत्तराखंड के हिमालयी परिदृश्य में मिट्टी की संरचना व्यापक रूप से भिन्न है, घाटियों में उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी से लेकर उच्च ढलानों पर चट्टानी और कम उपजाऊ मिट्टी तक है। जल संसाधन: हिमालय से निकलने वाली नदियाँ, जैसे कि गंगा और उसकी सहायक नदियाँ, सिंचाई और अन्य कृषि गतिविधियों के लिए महत्त्वपूर्ण जल संसाधन प्रदान करती हैं। जैव विविधता: उत्तराखंड का हिमालयी क्षेत्र विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों और जीवों सहित समृद्ध जैव विविधता का भंडार है। पारंपरिक खेती के तरीके: उत्तराखंड में कई समुदाय स्थानीय पर्यावरण के अनुकूल पारंपरिक खेती के तरीकों का अभ्यास करते हैं, जैसे छत पर खेती, मिश्रित फसल और चक्रीय चराई। पहाड़ी इलाकों और जलवायु परिवर्तनशीलता से उत्पन्न चुनौतियों के अनुकूल ढलने के लिए ये प्रथाएँ पीढ़ी दर पीढ़ी विकसित हुई हैं। आजीविका और सांस्कृतिक विरासत: उत्तराखंड के हिमालयी क्षेत्र में समुदायों की आजीविका और सांस्कृतिक पहचान के लिए कृषि केंद्रीय है। खेती की प्रथाएँ अक्सर स्थानीय परंपराओं, त्योहारों और मान्यताओं के साथ जुड़ी हुई है।

विभिन्न प्रणालियों में चयनित शमन और अनुकूलन विकल्प- विभिन्न प्रणालियों में चयनित शमन और अनुकूलन विकल्प प्रस्तुत करता है। वैश्विक स्तर पर उनकी बहुआयामी व्यवहार्यता के लिए निकट अवधि में और 1.5 डिग्री सेल्सियस ग्लोबल वार्मिंग तक मूल्यांकन की गई जलवायु प्रतिक्रियाओं और अनुकूलन विकल्पों को दर्शाता है। चूंकि 1.5 डिग्री सेल्सियस से ऊपर का तापमान सीमित है, इसलिए वार्मिंग के उच्च स्तर पर व्यवहार्यता बदल सकती है, जिसका दृढ़ता से आकलन करना वर्तमान में संभव नहीं है। प्रवास, जब स्वैच्छिक, सुरक्षित और व्यवस्थित होता है। वन आधारित अनुकूलन में स्थायी वन प्रबंधन, वन संरक्षण, पुनर्वनीकरण और वृक्षारोपण शामिल है।

कृषि, वानिकी और अन्य भूमि उपयोग विकल्प अनुकूलन और शमन कई लाभ प्रदान करते हैं जिन्हें अधिकांश क्षेत्रों में निकट अवधि में बढ़ाया जा सकता है। संरक्षण, बेहतर प्रबंधन, और जंगलों और अन्य पारिस्थितिक तंत्रों की बहाली आर्थिक शमन क्षमता का सबसे बड़ा हिस्सा प्रदान करती है, उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में वनों की कटाई में कमी के साथ कुल शमन क्षमता सबसे अधिक है। पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली, पुनर्वनीकरण और वन रोपण से भूमि पर प्रतिस्पर्धी माँगों के कारण व्यापार-बंद हो सकता है। माँग-पक्ष के उपाय (सतत् स्वस्थ आहार पर स्विच करना और भोजन की हानि/बर्बादी को कम करना) और स्थायी कृषि सघनीकरण पारिस्थितिकी तंत्र रूपांतरण, और मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन को कम कर सकते हैं, और पुनर्वनीकरण और पारिस्थितिकी तंत्र बहाली के लिए भूमि को मुक्त कर सकते हैं। प्रभावी अनुकूलन विकल्पों में खेती में सुधार, कृषि वानिकी, समुदाय-आधारित अनुकूलन, खेत और परिदृश्य विविधीकरण और शहरी कृषि शामिल हैं।

नीति मिश्रण- नीति मिश्रण जिसमें मौसम

और स्वास्थ्य बीमा, सामाजिक सुरक्षा और अनुकूली सामाजिक सुरक्षा जाल, आकस्मिक वित्त और आरक्षित निधि, और प्रभावी आकस्मिक योजनाओं के साथ संयुक्त प्रारंभिक चेतावनी प्रणालियों तक सार्वभौमिक पहुँच शामिल है। आपदा जोखिम प्रबंधन, प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली, जलवायु सेवाएँ और जोखिम फैलाने और साझा करने के दृष्टिकोण की सभी क्षेत्रों में व्यापक प्रयोज्यता है। क्षमता निर्माण, जलवायु साक्षरता, और जलवायु सेवाओं और सामुदायिक दृष्टिकोणों के माध्यम से प्रदान की जाने वाली जानकारी सहित बढ़ती शिक्षा, बढ़ते जोखिम की धारणा को सुविधाजनक बना सकती है और व्यवहार परिवर्तन और योजना में तेजी ला सकती है।

जलवायु संबंधी ख़तरे जोखिम का सिलसिला शुरू कर सकते हैं जो कई क्षेत्रों को प्रभावित करते हैं और जटिल प्राकृतिक और सामाजिक संबंधों के बाद पूरे क्षेत्र में फैल जाते हैं।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव- जनगणना 2011 के अनुसार, उत्तराखण्ड देश में सबसे अधिक जनसंख्या वाला 20वाँ और कुल भौगोलिक क्षेत्र के हिसाब से 19वाँ है। इसमें 10.08 मिलियन लोग हैं, जिनमें 5.13 मिलियन पुरुष और 4.95 मिलियन महिलाएँ हैं। भारत के कई हिस्सों की तरह, कृषि उत्तराखंड की अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिसमें अपने जीवन के लिए 70 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या इस क्षेत्र में शामिल है। कम बुनियादी संरचना और जीवन के विकल्प की कमी ने बहुत लोगों को उनकी आजीविका और जीवनाधार के लिए कृषि पर आश्रित कर दिया है।

उत्तराखंड के कृषि श्रमिकों का कुल श्रमिक संबंध में योगदान 2011 में 58.4 प्रतिशत था। यह अखिल भारतीय कृषि श्रमिकों का 58.2 प्रतिशत के लगभग समान था (तालिका-2)। जबकि देश स्तर पर पुरुष कृषि श्रमिकों का कुल श्रमिकों के प्रति शतक लगभग 61 प्रतिशत था, यह महिलाओं के लिए 39 प्रतिशत था, लेकिन उत्तराखंड राज्य के ज्ञात क्षेत्रों में, कृषि में काम करने वाली महिलाएँ (52.2 प्रतिशत) अपने पुरुष समकक्ष (47.8 प्रतिशत) से अधिक हैं।

हालाँकि उत्तराखंड में कृषि मुख्य गतिविधि है, उसका सकल राज्य मूल्य वृद्धि में कृषि और संबंधित क्षेत्रों का हिस्सा बहुत कम है। उत्तराखंड में 2011-12 से 2017-18 की अवधि के दौरान जीएसवीए में कृषि का हिस्सा सतत रूप से बढ़ा, जबकि ऑल इंडिया में, इसमें 2014-15 मेंएक अल्प गिरावट के अलावा, यह सतत बढ़ाई गई। यहाँ तक कि 2011-12 से 2016-17 की अवधि में उत्तराखंड में कृषि का हिस्सा ऑल इंडिया की तुलना में कम रहा है।। जिसके बावजूद कि बड़े हिस्से के उत्तराखंड के लोगों के लिए कृषि अब भी आजीविका का मुख्य स्रोत रहती है, यह नीति के महत्त्वपूर्ण है कि राज्य में कृषि के विकास की गति को बढ़ावा दिया जाए, साथ ही कृषि को नकद फसलें, पशुपालन, बागबानी आदि के संदर्भ में विविधीकृत किया जाए, ताकि वे लोग जो मुख्यत: कृषि और संबंधित गतिविधियों पर निर्भर करते हैं, उनकी आजीविका और आय में वृद्धि हो।

निष्कर्ष- हिमालय क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का अध्ययन व्यापक चिंताओं को उजागर करता है, ख़ासकर खेती-पालन प्रणालियों और आजीविकाओं पर। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि जलवायु परिवर्तन के संभावित प्रभावों को सामने लाने के लिए उपयुक्त नीतिगत, सामाजिक, और आर्थिक उत्तरदायित्व की आवश्यकता है। समुदायों के साथ सहयोग और गतिशील प्रबंधन के माध्यम से, हम समृद्ध और सांगठिक खेती-पालन प्रणालियों की स्थिति को सुधार सकते हैं, जो अनुकूल जीविकाओं के लिए आवश्यक है। इसके लिए संयुक्त प्रयास और स्थायी नीतियों की आवश्यकता है, जो हिमालय क्षेत्र की स्थिति को मजबूत और स्थायी बना सकते हैं। उत्तराखंड के लोगों के लिए कृषि अब भी आजीविका का मुख्य स्रोत रहती है, यह नीति के महत्त्वपूर्ण है कि राज्य में कृषि के विकास की गति को बढ़ावा दिया जाए, साथ ही कृषि को नकद फसलें, पशुपालन, बागबानी आदि के संदर्भ में विविधिकृत किया जाए।

000

संदर्भ-

IPCC. (2018). the impacts of global warming of 1.5°C above pre-industrial levels and related global greenhouse gas emission pathways, in the context of strengthening the global response to the threat of climate change, sustainable development, and efforts to eradicate . Geneva, Switzerland: World Meteorological Organization., IPCC. (2023). Synthesis Report. Contribution of Working Groups I, II and III to the Sixth Assessment Report of the Intergovernmental Panel on Climate Change. Geneva, Switzerland. doi:10.59327, Krishnan, R., Shrestha, A.B., Ren, G., Rajbhandari, R., Saeed, S., Sanjay, J., Syed, A., Vellore, R., Xu, Y., You, Q., & Ren, Y. (2019). Unravelling Climate Change in the Hindu Kush Himalaya: Rapid Warming in the Mountains and Increasing Extremes . Spring Nature Switzerland AG., M Ndebele-Murisa, C Mubaya. (2015). Climate change: Impact on agriculture, livelihood options and adaptation strategies for smallholder farmers in Zimbabwe. 155-199., Negi, G.C.S., Samal, P.K., Kuniyal, J.C., Kothyari, B.P., Sharma, R.K., & P.P. Dhyani. (2012). Impact of climate change on the western Himalayan mountain ecosystems: An overview. Tropical Ecology., Platt, Rutherford V., Ogra, Monica, Kisak, Natalie, Manral, Upma, and Ruchi Badola. (2020). Climate change perceptions, data, and adaptation in the Garhwal Himalayas of India. Climate and Development., Sati, Vishwambhar Prasad. (2015). Climate change and socio-ecological transformation in high mountains: an empirical study of Garhwal Himalaya. Change Adaptation Socioecol., Thakur, S. B. ; Bajagain, A. (2019). Impacts of Climate Change on Livelihood and its Adaptation Needs. Journal of Agriculture and Environment, 20, 173-185. doi:10.3126/aej.v20i0.25067, (2022-23). Uttarakhand Economic Survey, Section-1 . नियोजन विभाग. देहरादून: अर्थ एवं संख्या निदेशालय, उत्तराखंड. Retrieved from www.des.uk.gov.in, (2018). UTTARAKHAND HUMAN DEVELOPMENT REPORT . Institute for Human Development (IHD), Department of Planning. Delhi: Directorate of Economics & Statistics Department of Planning Government of Uttarakhand. Retrieved from ihdindia.org, Barah, B. C. (2010). Hill agriculture: Problems and prospects for mountain agriculture. Indian Journal of Agricultural Economics, 65(902-2016-67935)., Rana, K., Kameswari, V., Chaudhary, S., & Kumar, D. (n.d.). Livelihood opportunities through agriculture and allied field in the mid-hills of Uttarakhand.,

(शोध आलेख)

देहरादून जनपद के जनजातीय क्षेत्र जौनसार-बावर की समाज व संस्कृति का विश्लेषणात्मक अध्ययन

शोध लेखक : सागर जोशी एवं देवेन्द्र सिंह
शोधार्थी राजनीति विज्ञान विभाग, हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड-246174
मोबाइल- 8630407325, 7579200897
ईमेल- Joshisagar12011994@gmail.com

सार- आधुनिकता की इस दौड़ में पिछड़े कुछ विशेष जन समुदाय जाती एवं क्षेत्र जो विश्व के विभिन्न भागों में, विशेषकर जंगल, पर्वत, पठार, रेगिस्तान, समुद्र तट आदि पर निवास करती हैं; अपना एक अलग संसार बनाए हुए है। अनेक क्रियाकलापों, धार्मिक विश्वासों, अनोखी वेश-भूषा के द्वारा विशिष्ट प्रकार की संस्कृति को जन्म देने वाली यह जनजातियाँ आज आधुनिक प्रौद्योगिकी एवं वैज्ञानिक प्रगति के प्रभाव से दूर विकास की राह को ताक रही है। विषम भौगोलिक परिस्थिति एवं दुर्गम क्षेत्रों में रहने वाला यह मानव समुदाय अपनी एक अलग सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, तथा राजनीतिक संरचना का वाहक है जो सभ्य समाज से सर्वथा भिन्न है। इनकी संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था पर भौगोलिक एवं प्राकृतिक कारकों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। भारत में सात सौ (700) से अधिक जनजातियाँ हैं जो देश के विभिन्न राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों में आवासित हैं। जनजातियों में विकास एवं परिवर्तन की प्रक्रिया अत्यंत धीमी गति से होता है जिसका प्रमुख कारण इनकी रूढ़िवादी प्रवृति, परंपरागत रीति-रिवाजों के प्रति गहन आस्था एवं बाहरी समाज से संपर्क स्थापित करने में संकोच परिलक्षित होता है। इस शोध पत्र के माध्यम से उत्तराखंड राज्य के जनपद देहरादून में स्थित सुदूर पहाड़ी क्षेत्र जौनसार-बावर, जिसे जून 1967 में यहाँ के मूल निवासियों को भारत सरकार द्वारा 'जौनसारी जनजाति' का दर्जा दिया गया, की सामाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक विशिष्टता, एवं आर्थिक पिछड़ेपन का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

कुंजी शब्द - जौनसारी जनजाति, संस्कृति, समाज, एवं आर्थिक पिछड़ापन।

प्रस्तावना- सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परंपराओं का पृथक स्वरूप सृजित करने वाला मानव समूह जिसे जनजाति के नाम से जाना जाता है, भारतवर्ष के विस्तृत भू-भाग पर आवासित है। विभिन्न प्रकार के भौगोलिक वातावरण में निवास करने वाले ये लोग अपनी मूल संस्कृति को सुरक्षित रखे हुए हैं। जनजातियाँ अधिकांशत: पर्वतीय, पठारी, जंगली तथा समुद्र तटीय क्षेत्रों में निवास करती हैं जिस कारण इनको वनवासी, जंगली, आदिवासी, वन पुत्र, पहाड़ी आदि नामों से संबोधित किया जाता है।1

भारत में आदिवासी समाज भोग विलास की भौतिकवादी जीवनशैली से दूर पूर्णतया प्रकृति पर निर्भर सादगी एवं संतोषप्रद जीवन जीने का आदि रहा है। आदिवासी भले ही भौतिक सुख-सुविधाओं में पीछे रहा हो लेकिन वह समृद्ध विरासत का अधिकारी और यहाँ का मूल निवासी है। प्रकृति की गोद में रहते हुए मानवीय मूल्यों, प्रकृति सम्मत संस्कृति के पोषक के रूप में ख़ुद को प्रतिष्ठित किया है। इतिहास के लंबे काल खंडों में अपना मूलभूत कौशल, सादगी और संतोष की पूँजी को बनाए रखा। आर्थिक तौर पर वह कमज़ोर भले रहे हो लेकिन तमाम सोपानों पर वे सभ्य समाज से काफी आगे हैं। जनजातीय हस्तकला, संगीत और नृत्य की जो धरोहर उन्होंने संजो कर रखी है, वह उनकी संपत्ति विरासत और संस्कृति को दर्शाती है।2

संविधान के अनुच्छेद 244(1) के अंतर्गत पाँचवी अनुसूची, 'अनुसूचित इलाकों ' को ऐसे इलाकों के रूप में परिभाषित करती है जहाँ जनजातीय आबादी की प्रचुरता, क्षेत्र की साघनता और उपयुक्त आकार, व्यवहार्य प्रशासनिक संस्थाएँ, पड़ोसी इलाकों की तुलना में आर्थिक पिछड़ापन आदि लक्षण परिलक्षित होते हों य ऐसे 'अनुसूचित इलाकों' का विनिर्देशन संबद्ध राज्य सरकारों के साथ विचार- विमर्श के बाद राष्ट्रपति के अधिसूचित आदेश द्वारा किया जाता है। 3 देहरादून जनपद में स्थित जौनसार-बावर क्षेत्र को उक्त मानदंडों के आधार पर ही जनजातीय क्षेत्र का दर्जा प्राप्त है। इस क्षेत्र में आवासित मानव समुदाय को 'जौनसारी जनजाति' के नाम से जाना जाता है।

उत्तराखंड राज्य की पाँच प्रमुख जनजातियों में 'जौनसारी जनजाति' भी है। जौनसारी जनजाति के अलावा उत्तराखंड में राजी, भोटिया, भोक्सा, थारू आदि प्रमुख जनजातियाँ निवास

करती है। 2011 की जनगणना के अनुसार देश की कुल अनुसूचित जनजातियों की संख्या 84326240 है, जिसमें उत्तराखंड का योगदान 291903 है, उत्तराखंड की कुल जनसंख्या का 3 प्रतिशत तथा भारत की कुल जनसंख्या का 0.28 प्रतिशत है।4

जौनसारी जनजाति उत्तराखंड-हिमाचल प्रदेश की सीमा पर निवास करती है जिसकी अपनी विशिष्ट सामाजिक एवं सांस्कृतिक मान्यताएँ व परंपराएँ हैं। यह जनजाति सांस्कृतिक रूप से अति समृद्ध एवं प्राचीन है, परंतु आर्थिक एवं शैक्षणिक रूप से जनजातीय प्रदेश के अन्य जातियों की तुलना में अत्यधिक पिछड़ी है।5

जौनसार-बावर जनजातीय क्षेत्र का भौगोलिक एवं ऐतिहासिक परिचय- जौनसार-बावर उत्तराखंड राज्य के पश्चिमी भाग में प्रवाहित होने वाली टोंस व यमुना नदी के मध्य का भू-भाग है। यह क्षेत्र मध्य हिमालय के उत्तरी अक्षांश 30 डिग्री से 31 डिग्री एवं पूर्वी देशांतर 70 डिग्री से 78 डिग्री के मध्य अवस्थित है। वर्तमान समय में यह उत्तराखंड राज्य के देहरादून जनपद के दो विकासखंडों कालसी व चकराता के अन्तरगत आता है। इस क्षेत्र का वर्णन प्राचीनकाल से ही विभिन्न ग्रंथों में अनेक जातियों (किरात, शक, द्रविड़, नाग, तंगण, खश, आर्य) के आगमन स्वरूप माना गया है। ये सभी जातियाँ इस हिमालयी प्रदेश में भिन्न-भिन्न समय पर हुए आक्रमणों, युद्धों के फलस्वरूप आई और जलवायु की अनुकूलता तथा कृषि उपयोगी भूमि होने के कारण यहीं की होकर रह गईं।

यह क्षेत्र अनेक संस्कृतियों, ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक वैभव का केंद्रबिंदु रहा है।6 कालसी, हरिपुर, बैराटगढ़, नागथात, गौराघाटी, लाखामंडल, देववन, कनासर, हनोल, मैंद्रथ, चक्रथान आदि यहाँ के पौराणिक स्थल है, जिनकी प्राचीनता के प्रमाण शिलालेख, अनेक ग्रंथों एवं पुराणों से प्राप्त होते हैं। जिसे त्रेता युग में यामुन देश एवं महाभारत काल में कुलिंद के नाम से जाना गया वह आज का जौनसार-बावर है।7

प्राकृतिक सौन्दर्य एवं संपदाओं से परिपूर्ण यह क्षेत्र अनेक राजाओं, महाराजाओं की कृढास्थली रही। कुलिंद राजाओं की राजधानी कालसी में, राजा रिसालू की टिकरी समाधि, मौर्य सम्राट अशोक की राजाज्ञाओं का शिलालेख, यदुवंशी सिरमौरी राजाओं के राजधानी के प्रमाण स्वरूप कालसी गढ़, कानीगढ़, दरबार, भद्रकाली व शिव मंदिर, कृष्ण मंदिर व ठाकुर द्वारा हवेली आज भी जीर्ण अवस्था में यहाँ मौजूद है। सिरमौर राजाओं की राजधानी कालसी में 1219 से 1621 तक थी। 1809 से 1814 तक यहाँ गोरखों का शासन रहा। 1815 से 1947 तक यह क्षेत्र अंग्रेजों के अधीन रहा। अनेक आततायियों के अत्याचार को सहने के बावजूद भी यहाँ के मूल निवासियों ने अपनी संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था को कायम रखा।8

यद्यपि जौनसारी समाज में सामाजिक स्तर की जटिलता विद्यमान है तथापि यदि ऐतिहासिक परिपेक्ष में संश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट होता है कि यह एक व्यवस्थित समाज रहा होगा।9

जौनसार-बावर की रीति-नीति एक अलिखित संविधान की तरह है, इस रीति-नीति के आधार पर यहाँ परिवार, गाँव तथा समाज चलता है, जिसको यहाँ की सामाजिक व्यवस्था कहा जाता है। संपूर्ण जनजाति क्षेत्र संयुक्त परिवार रूपी संगठन के लिए प्रसिद्ध है। परिवार एक ऐसा संगठन है जिसका कोई लिखित विधान नहीं होता है लेकिन एक संस्कारिक विधि के अंतर्गत अनुबंधित होता है। जौनसार-बावर में एक परिवार जिसमें 50 से अधिक संख्या हो सकती है, की लगभग सभी शक्तियाँ स्याणा(परिवार का मुखिया) में निहित है। सामाजिक संगठन की सबसे आधारित इकाई परिवार ही है, परिवार की संरचना के आधार पर ग्राम और खत के संगठन निर्माण हुए हैं। जौनसार-बावर की सबसे बड़े सामाजिक संगठन यहाँ की खत/सदर (एक दर्जन गाँव या अधिक गाँव का समूह) होती है।

जौनसारी समाज की राजनीतिक व्यवस्था सरल समाजों की भाँति है इनका संपूर्ण क्षेत्र 39 खातों में विभाजित है प्रत्येक खत में कई गाँव होते हैं। गाँव से बड़ी इकाई खत की होती है। खत तथा गाँव के मुखिया अलग-अलग होते है खत मुखिया को खतस्याणा तथा गाँव के मुखिया को ग्राम स्याणा कहा जाता है दोनों को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त है। पारस्परिक विवादों का निपटारा खूमढ़ी(लोक पंचायत) द्वारा किया जाता है जिसकी अध्यक्षता प्रधान स्याणा करते हैं।

यहाँ एक अनोखी न्यायिक व्यवस्था का प्रचलन रहा है, जिसमे व्यक्ति व्यक्ति के विवाद, उधारी का लेनदेन, मारपीट, झगड़ा-फसाद, हरण विवाह, सीमा विवाद, खीत (छूट/तलाक), भूलवश या जानबूझकर किए गए अपराध, यहाँ तक की हत्या तक के विवाद सुलझाए जाते थे। इन विवादों को सुलझाने के लिए ग्राम स्याणा, खाग स्याणा तथा खत स्याणा के नेतृत्व में पंचों (समाज के प्रतिष्ठित एवं बुद्धिजीवी लोग) की बैठक (खूमडी) आहूत की जाती थी; बैठक में निष्पक्षता के साथ विवादों का समाधान किया जाता था। पंचों के द्वारा दिए गए निर्णयों को भाक्ति से लागू भी कराया जाता था और जो भी खूमडी के निर्णयों की अवहेलना करता था दंड विधान सहित उसका पूर्णतया सामाजिक बहिष्कार किया जाता था।

आज भी यह व्यवस्था बहुत हद तक संचालित तथा मान्य है। आज भी ग़रीब एवं निर्बल व्यक्ति कोर्ट कचहरी के वाद-विवाद से बचता है। हालाँकि आज जो पंचों के न्याय से संतुष्ट नहीं होता है तो वह कोर्ट कचहरी में जा सकता है और जाता है।

दैवीय विधान एवं देव आस्था के प्रति यहाँ के जनमानस का अटूट विश्वास है, 'महासू' यहाँ का लोक देवता है जिसकी मान्यता न्याय के देवता के रूप में सुविख्यात है। पंचों के न्याय से असंतुष्ट पीड़ित पक्ष अंतत: महासू महाराज से न्याय की गुहार लगाता है। महासू देवता का मूल थान हानोल में है। यह देवता चार रूपों बाशिक महासू, बोठा महासू, पवासी महासू एवं चालदा महासू के रूप में पूजे जाते हैं। स्थानीय लोग इन्हें चार भाई

महासू के नाम से पुकारते हैं। महासू देवता के अलावा भी इस क्षेत्र में अनेक देवी-देवताओं एवं महासू वीर है जिनकी मान्यता भी महासू देवता के समान ही है। महासू देवता का सम्पूर्ण न्याय क्षेत्र महासू क्षेत्र कहलाता है, जिसके अंतर्गत जनजातीय क्षेत्र जौनसार-बावर टिहरी जनपद का जौनपुर क्षेत्र, उत्तरकाशी जनपद का रंवाईं एवं बंगाण क्षेत्र तथा हिमाचल प्रदेश के जुब्बल, चौपाल, हाटी, शिमला, किन्नौर एवं रामपुर बुशहर आदि क्षेत्र सम्मिलित हैं। महासू क्षेत्र में सामाजिक संस्कार, रीति-रिवाज, खानपान, वेशभूषा, मानबिंदु, तीज-त्योहार आदि सामाजिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं में समानता के लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

जनजातीय क्षेत्र जौनसार बावर की समाज एवं संस्कृति पर महासू देवता का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। जितने भी खेले-मेले या तीज-त्योहार यहाँ मनाए जाते हैं उसका संबंध कहीं न कहीं यहाँ के लोक देवी देवताओं से जुड़े हैं। यहाँ खेतों मे जुताई-बुआई एवं फसल काटाई के दौरान अनेकों त्यौहार मनाएँ जाने की परंपरा है; इन त्यौहारों में विशिष्ट प्रकार के परंपरागत व्यंजन बनाये जाते हैं; जिनमें सीड़ा, अरसा, गेंजा, ससबूदा, अस्का, लगडा, डेन्डू रोट, रोट, इण्डा, तिलोड, बाड़ी, लैमड़ी, मौला भात तथा दूध और मांस से बनाये जाने वाले व्यंजन प्रमुख है; जो एक अनोखी खाद्य संस्कृति को प्रदर्शित करती है।10

यहाँ के लोकगीतों में छोड़े, जागर, जंगू-बाजू, ऋतु गीत, मांगलगीत, निराई-नुणायी के गीत, विवाह के गीत, संस्कार गीत, हारूल गीत आदि प्रमुख है। हारूल गीत जौनसार-बावर के सामाजिक सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक पक्षों को भी भलीभाँति उजागर करते हैं। बिस्सू, जखोली मेला, पांचोई, दशहरा, दिवाली, जागड़ा, नुणाई, मरोज पर्व, मौण, संक्रांति आदि यहाँ के प्रमुख त्योहार है।

यहाँ के लोगों का परिधान अन्य समाज के लोगों की भाँति ऋतुवत परिवर्तित होता रहता है शीतकाल में यहाँ के पुरुष गोल झोगा, साफा व ऊनी जूते (खूरसे) तथा स्त्रियाँ ऊनी कुर्ता, घाघरा, ढांटू आदि पहनती हैं। ग्रीष्मकाल में पुरुष सूती कुर्ता, झगोला, डिगुवा तथा महिलाएँ सूती घाघरा, कुर्ती, झगा आदि पहनती है। यह यहाँ की परम्परागत वस्त्र संस्कृति है परंतु वर्तमान समय में आधुनिक वस्त्र संस्कृति का भी प्रभाव परिलक्षित हो रहा है। परंपरागत वस्त्रों का परित्याग कर आधुनिक वस्त्रों का प्रयोग कर रहे हैं।

जनजातीय क्षेत्र जौनसार-बावर का संपूर्ण आर्थिक ताना-बाना कृषि एवं पशुपालन पर निर्भर है। विषम भौगोलिक परिस्थिती एवं प्रतिकूल जलवायु के कारण कृषि एवं पशुपालन से अतिरिक्त लाभ प्राप्त कर पाना अत्यंत कठिन है। कृशि एवं बागवानी की पैदावार मौसमीय दाओं पर निर्भर करती है। ओलावृश्टि, अतीवृश्टि, बाढ़, तूफान, भू-क्षरण, सूखा आदि यहाँ की कृशि एवं पैदावार को पूरी तरह से प्रभावित करती है जिसका सीधा असर यहाँ के जन जीवन पर पड़ता है। जिस कारण यहाँ के लोग अत्यंत निम्न स्तर का जीवन जीने के लिए विवश है। यहाँ ज़्यादातर खेती आज भी मानसून पर निर्भर है हालाँकि पिछले कुछ वर्शों से विभिन्न सरकारों द्धारा सिंचाई हेतु नहरें एवं हौज आदि का निर्माण बडे पैमाने पर किया गया है परन्तु जलवायु परिवर्तन एवं वनों के कटाव आदि के कारण पानी के प्राकृतिक स्रोत अधिकांा सूख चुके हैं। जिस कारण किसानो को केवल मानसून पर ही निर्भर रहना पडता है।

स्वतंत्रता के पश्चात देहरादून एवं अन्य पहाड़ी जिलों के विकास के लिए सामुदायिक विकास योजना 1952 से चालू की गई। 1960 में उत्तराखंड मंडल की स्थापना की गई पर्वतीय क्षेत्र में 5 जनजाति विकास खंड चकराता एवं कालसी देहरादून में जनजाति एवं अनुसूचित जाति वर्ग के लिए प्रारंभ किए गए परंतु फिर भी क्षेत्र के निवासियों के जीवन स्तर में सुधार नहीं हो पाया। सरकारों की प्रतिबद्धताओं के अनुसार अनुसूचित जनजातियों के कल्याण एवं उनके जीवन स्तर में सुधार हेतु अनेक विकासात्मक कदम उठाए गए है, इन वर्गो के लोगों के आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक उत्थान हेतु कई कल्याणकारी योजनाओं का संचालन किया जाता रहा है जिससे इनका सर्वांगीण विकास हो सकें।

निश्कर्ष- भौगोलिक विषमता के बावजूद यहाँ की प्राकृतिक सुंदरता और सांस्कृतिक विशिष्टता जनमानस को प्रभावित करती है। सादगी और ईमानदारी के साथ जीवन जीने वाला यह जनजातीय समुदाय आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ है। आज भी यहाँ के लोग परंपरागत सामाजिक व्यवस्था एवं सांस्कृतिक विशिष्टता को जिंदा रखे हुए है। शिक्षा के अभाव के कारण आधुनिकता के साथ तारतम्यता बिठाने में आज भी संघर्ष कर रहा है। राजनीतिक जागरूकता के संक्रमण काल से गुज़र रहा है। सरकार जनजातीय समुदाय के विकास एवं उत्थान के लिए अनेक कल्याणकारी योजनाओं को संचालित किया है जिसका लाभ चंद लोग ही ले पाते है।

पर्यटन एवं बागवानी की दृष्टि से यह क्षेत्र अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यहाँ के पौराणिक स्थल एवं तीर्थ दर्शनीय है। जिनका उपयोग पर्यटन एवं तीर्थटन के रूप में किया जा सकता है। इससे अनेक आय के स्रोत खुल जाएँगे जो इस क्षेत्र के लोगों के विकास को गति प्रदान कर सकता है।

संदर्भ-1 मेथानी, डी.डी., गायत्री प्रसाद (2015), उत्तराखंड का भूगोल, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद, पृ.-126-127, 2 संपादकीय, सितंबर 2022, कुरूक्षेत्र पत्रिका, पृष्ट- 4, 3. भारत 2022, न्यू मीडिया विंग, सूचना प्रसारण मंत्रालय भारता सरकार, लोधी रोड, नई दिल्ली, पृ. 357., 4 मेथानी, डी.डी., गायत्री प्रसाद (2015), उत्तराखंड का भूगोल, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद। पृ. 128, 5 उत्तराखंड अनुसूचित जनजाति आयोग देहरादून, वार्षिक प्रतिवेदन 2017-2018, 6 राणा, जे0 पी0 सिंहः 2004, जौनसार-बावर सरस्वती प्रेस, पृ.-16, 7 हिम ओज, जौनसार बावर अंक, 2004, पृष्ट- 7, 8.भााह, टीकारामः 2016 जौनसार-बावर ऐतिहासिक सन्दर्भः विनसर पब्लिशिंग कंपनी, पृ.- 553, 9 मेथानी, डी.डी., गायत्री प्रसाद (2015), उत्तराखंड का भूगोल, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद पृ.-141

(शोध आलेख)

'कालापानी संज्ञा मुझको खलती है' काव्य संग्रह में समसामयिक दृष्टिकोण

शोध लेखक : शिबानी राजभूषण
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
जवाहरलाल नेहरु राजकीय महाविद्यालय, पोर्ट ब्लेयर
प्रो. डॉ. दिग्विजय कुमार शर्मा
अधिष्ठाता, हिन्दी एवं आधुनिक भाषाएँ विभाग, ओपीजेएस विश्वविद्यालय चुरू (राजस्थान)
शिबानी राजभूषण, द्वारा पी के राजभूषण, डॉ. वाजिद अली शाह, 45 आरजीटी रोड, रामकृष्ण मिशन के पास, पोर्ट ब्लेयर, अंडमान निकोबार द्वीप समूह 744101
मोबाइल- 9531819077, 9531885178

डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी की साहित्यिक नागरिकता काफी पुरानी है। वे गद्य-पद्य की विभिन्न विधाओं में निरंतर सक्रिय रहे हैं। उन्होंने काव्य लेखन की शुरुआत सन 1977 में ही कर दी थी। किंतु उन्होंने अपनी कविताओं को पुस्तक का रूप नहीं दिया था। काफी लम्बे समय के बाद उन्होंने अपनी काव्य संग्रह 'कालापानी संज्ञा मुझको खलती है' 2012 में प्रकाशित किया। उनकी कविताओं में कथ्य एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से ही पर्याप्त वैविध्य है। इस संग्रह में एक ही विषय पर एकाधिक कविताएँ मिल सकती हैं किंतु प्रत्येक कविता में नवीनतम रूप विद्यमान हैं। संवेदना साहित्य की पूँजी हैं। कवि ने इस काव्य संग्रह में प्राकृतिक सुषुमा यहाँ की हरीतिमा, प्रदूषण मुक्त वातावरण से लेकर, यहाँ आए क्रांतिकारियों का दर्द, यहाँ पर आए स्वतन्त्रता सेनानियों की पीड़ा तथा यहाँ कालापानी में शहीदों के त्यागों और बलिदानों की महागाथा है। जिस कवि ने अपने क़लम के माध्यम से सजीवता प्रदान की है। कवि ने इस संग्रह में अंडमान की शोभा और सुषुमा को बढ़ाते हुए 'कालापानी की भूमि वन्दनीय मानते हुए - "यह कालापानी नहीं बन्धु/ वंदना भूमि बड़भागी है/ इसके दर्शन से वंचित जो वह पुन्यहीन हतभागी है/ माता, मातृभूमि पर जो/ प्राणों को अर्पित करता हैं/ वह देवतुल्य, इतिहास पुरुष/ मरकर भी कभी नहीं मरता है/ ऐसे शहीद की चरण धूलि/ चन्दन रोली बन जाती है/ गौरव गाथा की पुण्यभूमि सदियों तक पूँजी जाती है/ अंडमान की पवन धरती/वीरों की अमर कहानी हैं।"1

कवि के कविताओं में बाबूजी माँ, भाई, बहन और समाज को भलीभाँति समेटा है। उन्होंने संबंधों के महत्त्व को बताया हैं। निराश, हताश, दुस्वप्न, कायरता, हार, भय हो या फिर अंधकार सभी में उन्हें आशा है की किरण के रूप में प्राय: 'बाबूजी' याद आती है - " 'घाघ' के उपनाम थे बाबूजी दिन चाहे रात / ठंड, झंझावात/ गर्मी, बरसात/ आतप, हिमपात में/ श्रम के उपमान में बाबूजी/ भूखा और दुख/ बाद और सुखा / ग़रीब, लाचारी/ आफत, महामारी में/ सतुआ और किसान थे बाबूजी।"2

डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी ने इस संग्रह में 'लड़की-एक' के माध्यम से लड़कियों के जीवन गाथा कह डाली है तथा इस कविता में पिता और बेटी के संबंध की बहुत ही मार्मिक रूप प्रस्तुत किया है- 'लड़की पिता की मजबूरी पड़ती है/ दाँतों से नाखून काटती/ नाखूनों से धरा खोदती/ हाथों की रेखाओं में/ किस्मत का स्थान खोजती लड़की/ पिता की आँखों में आँसू भरती है।"3

कवि शीर्षक 'लड़की - दो' तथा 'लड़की तीन' में बेटियों की सफलताओं एवं उनके स्थान को गिनाते हुए कह रहे हैं कि आधुनिक युग में लड़कियाँ भी कम नहीं है वे भी लड़कों को मात देती हुई निरंतर आगे बढ़ रही है - "विमान उड़ाती / रेलगाड़ी चलाती / अंतरिक्ष में जाति / सागर में गोता लगती / शत्रुओं के छक्के छुड़ाती / कंप्यूटर चलाती / वाद- विवाद- संवाद मंत / अपनी सफलता का एहसास कराती लड़की।"4 इस कविता के माध्यम से कवि ने स्त्री नियति का यथार्थ वर्णन किया है। वह नारी को किसी से कम नहीं मानते हैं। बल्कि वह सभी क्षेत्रों में अपनी धाक जमाई है लड़कियों ने।

डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी कृषि एवं संस्कृति के भी कवि है। उनकी कविताओं में उनके गाँव के पूरे परिवेश को भी इंगित करता है। मौसम, हाल, फल, पानी, बादल, खेत, किसान आदि शामिल है। उनकी कविताओं में निरंतर संघर्षरत भारतीय किसान का चेहरा दिखता है।

डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी एक विचारक कवि भी है। वे समस्याओं की जड़ तक पहुँचते हैं - 'सावन बीत गया' कविताओं में उन्होंने चिंता जताई है- "तपती धूप पसीना तर-तर/ ऊपर से महँगाई/ अंबर ने/ कुछ अवनी ने यह/ मिलकर आग लगाई/ ऐसा क्यों हो गया आज यह कैसी नौबत आई/ संबंधों की गरमाहट में/ बची नहीं गरमाई/ नेह डोर बाँधा करता जो/ उत्सव थी तीज गया/ सावन बीत गया।"5 इस कविता में बाज़ार की आँधी पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही साथ महँगाई की चर्चा भी की है। भूमंडलीकरण ने मनुष्यों को पहुँच गए लाभ की भारी कीमत वसूल की है। धीरे-धीरे हमारी संस्कृति भी हमसे दूर होती जा रही है, वह दिन दूर नहीं जब प्रेम, दया, ममता, दान, उत्साह, उल्लास, सत्य, त्याग, सद्भाव, और बंधुत्व ढूँढ़ने से भी नहीं

मिलेंगे।

डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी अपने समय के प्रति अत्यंत जागरूक कवि हैं। उनके कलम में प्राय: युग-बोध की उपज देखने को मिलती है। कवि की यही प्रवृत्ति उसे उच्च स्थान प्रदान करती है। वे जीवन के कटु यथार्थ से आँख मूंदकर अपनी ही दुनिया में विचार करने वाले कवि नहीं हैं, बल्कि यथार्थ का शाब्दिक चक्रव्यूह है। इस संग्रह में अनेक ऐसी कविताएँ हैं जो उनकी सशक्त जनपक्षधरता की गवाही देती है।

डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी के काव्य में देश प्रेम का गुण है - "हाथों में पहने हथकड़ियाँ/ निकले हराने को महावीर/ भारत माता के आँचल को/ जो सौंप दिए अपना शरीर/ उन त्यागों पर बलिदानों पर/ मैं अर्ध्य चढ़ाने आया हूँ/ मैं दीप जलाने आया हूँ।"6 'मैं दीप जलाने आया हूँ' कविता में राष्ट्रीयता का भाव है। इस कविता के माध्यम से श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। 'सैनिकों की प्रति' कविता में आपने अमर गाथा तथा जवानों को शत-शत बार नमन किया है तथा उनके प्रति मान-सम्मान का भाव है। साथ-ही-साथ उन माता को भी प्रणाम किया है, जिन्होंने ऐसे वीर सुपूतों को जन्म दिया है। उन पत्नियों को महान् कहा है जिन्होंने ऐसे पति का वरन किया है- "मूली गाजर की तरह शत्रुओं पर तुम वैसे ही टूट पड़े/ जैसे नागों के झुंडों पर वीर गरुड़ जी टूट रहे/ वीरत्व के लिए ऐसे जवान को कोटि-कोटिश: नमस्कार/ श्रद्धा के सुमन समर्पित है तेरे चरणों में बार-बार/ अभिमन्यु की तरह वीर जो शत्रु द्वारा छले गए/ भारत माँ के मंदिर में वे प्राण चढ़कर चले गए/ धन्य है वह माताएँ जिन्होंने ऐसे सूत को जन्म दिया/ धन्य है वह पत्नियाँ जिन्होंने ऐसे पति का वरण किया।"7

आधुनिक व्यक्ति अपने बाह्य परिवेश से विरक्त होते हुए आत्म-केंद्रित हो रहा है। इसलिए प्रकृति भी आज के मनुष्य को प्रभावित नहीं करती। अंडमान की प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी का कवि मन चहक उठता है - "अंडमान की शोभा सुषमा/ त्रिभुवन अनुपम, प्यारी है, मानो बाह्य ने सागर बीच/ सृजी कोई फुलवारी है/ वर्ण-वर्ण के खिले फूल सम/ आदिम नागर अधिवास यहाँ/ जन मन की डाली पर हरदम/ छाया रहता मधुमास जहाँ/ जब ललित ललाम पहाड़ी को/ बादल दुकूल ओढ़ता है/ चंचलता अपनी छोड़ पवन/ इस शोभा में खो जाता है/ सबसे पहले सूरज किरणें/ द्वीपांचल में आती हैं।"8

आधुनिक युग भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण, उदारीकरण का युग है। इस युग ने मानों आम आदमी की जटिलताएँ भी बढ़ा दी है। बाज़ारवाद के कारण ही हमारे आत्मीय संबंध में भी बदलाव आया है। इससे हमारे जीवन की पारिवारिक सहजता और सार्थकता नष्ट होती जा रही है। कवि ने 'यह नहीं मधुमास कोयल' में व्यंग्य करते हुए इस व्यवस्था को परिलक्षित करने का प्रयास किया है - वे कहते हैं- "हंस का जामा पहनकर घूमते बगुले/ झींगुरों के आर्त स्वर में डूबती विपुले/ कमल-क्रोड का मस्त भ्रमर उबता जाए भले/ प्यास के आकुल पपीहे हो गए हैं बावले।"9

'हिन्दी दिवस पर' विषय पर कविता में आपने हर साल के आयोजनों पर तीखा प्रहार किया है - "सुधरे अनेक हाल/ आख़िर आयोजक ठहरे/ लगे छानने माल/ डूब कर भीतर गहरे/ आलोचक को खुश किया/ दे पुरस्कार की बिंदी/ गाएँ सब समवेत में/ जय हिन्दी डे, जय हिन्दी।"10

संग्रह में कुछ दोहे भी है। दोहों में कवि को सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश पर व्यंग्य करने में अद्भुत सफलता हासिल हुई है। पुराने छंद का नए संदर्भ में इससे सार्थक प्रयोग होना मुश्किल है। संग्रह की ग़ज़लें भी ध्यान आकर्षित करने में सफल है। कविताओं में यत्र-तत्र, प्रयुक्त, संस्कृत, अंग्रेजी एवं भोजपुरी के शब्द काव्य संग्रह की चारुता बढ़ते ही है। कहीं-कहीं छंदों के कारण शब्दों में तोड़ मरोड़ दिखाई पड़ता है, जैसे विकासती, क्रन्दना, (पृष्ठ 1) व्याधि (पृष्ठ 34) आदि। पुराने सांचे में नई बात कैसी कहीं जा सकती है, यह देखना हो तो व्यास मणि त्रिपाठी का काव्य संग्रह, 'कालापानी संज्ञा मुझको खलती हैं' एक अनिवार्य 'Text' का काम करेगा। जनता, परिवेश, सामाजिक मूल्यों एवं अपने कविता-कर्म के प्रति प्रतिबद्धता ही कवि की सफलता का रहस्य है। हर लिहाज से हिन्दी की रचनाधर्मिता में यह स्वागत-योग्य कृति है।"11

डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी ने अपनी कविता 'मैं उसे चेताने आया हूँ' में ऐतिहासिक संदर्भों का बाया करते हुए लिखते हैं - "देश-मान के लिए वीर ने/ नहीं शत्रु से हाथ मिलाया/ राणा ने उस स्वाभिमान को/ मैं पुन: जगाने आया हूँ।"12

कवि ने जीवन के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पहलुओं पर विचार किया है। 'उतना कभी न था' कविता में कवि ने सगे संबंधों, रिश्तेनाते, भाई-बंधु का एक साथ होने पर स्वर्गिक सुख का आनंद मिलता है परंतु बाजारीकरण के आ जाने पर वह सुख कभी विलुप्त हो गया है, अब केवल अन्याय, भ्रष्टाचार, प्रतिस्पर्धा, दुशासन, शोषण, बलात्कार, धोखा जैसे भाव ही चारों ओर विद्यमान है- "सूरज तब भी था अब भी है/ लेकिन जन-मन में पसरा अंधकार/ जितना अब है उतना कभी न था।"13

डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी की यह काव्य संग्रह जीवन-जगत् की नाना समस्याओं, विसंगतियों और विडंबनाओ से पीड़ित हृदयों का संग्रह है। कवि की कविताएँ देश-प्रेम, रिश्ते-नाते, तथा अंडमान-निकोबार की हरीतिमा की एक सुंदर प्रस्तुति है।

000

संदर्भ-

1. कालापानी संज्ञा मुझको खलती है- डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी, पृ. सं- 10, 2. वही - पृ. सं - 14, 3. वही - पृ. सं - 24-25, 4. वही - पृ. सं -27, 5. वही - पृ. सं 19-20, 6. वही - पृ. सं -12, 7. वही - पृ. सं -54-55, 8. वही - पृ. सं -111, 9. वही - पृ. सं -84, 10.वही - पृ. सं -62, 11. द्वीप लहरी, जनवरी- जुलाई 2013, हिन्दी साहित्य कला परिषद, पोर्ट ब्लेयर का प्रकाशन, पृ. सं - 58, 12. कालापानी संज्ञा मुझको खलती हैं - डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी, पृ. सं- 98, 13. वही - पृ. सं -100

(शोध आलेख)

फसक: किस्सागोई शैली में पहाड़ी जन-जीवन और राजनीति

शोध लेखक : डॉ. ज्योति

ज्योति सुपुत्री श्री जोगेन्द्र सिंह
मकान नं.-610, नजदीक पुराना शिव मंदिर, गाँव- गोच्छी, तहसील- बेरी, जिला-झज्जर, हरियाणा 124107
मोबाइल- 8920367163
ईमेल-

राकेश तिवारी कृत वर्ष 2017 में वाणी प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उपन्यास 'फसक' 21वीं सदी के दूसरे दशक के उपन्यासों में किस्सागोई शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। उपन्यास के नाम (फसक) का अर्थ ही 'गप' होता है। किस्सागोई शैली बात को बढ़ा-चढ़ा कर कल्पना का समावेश कर गपोड़ियों द्वारा किसी बात को किस्सा बना देने की एक अनोखी शैली है। उपन्यासकार ने इस शैली के पर्यायवाची नाम 'फसक' का प्रयोग कर इसके सैद्धांतिक स्वरूप को व्यवहारिकता के सांचे में उतारकर प्रस्तुत किया है। उपन्यास के केंद्र में बचवाली का पहाड़ी जन-जीवन है, लोगों की मान्यताएँ है, धर्म में आस्था-अनास्था व आम लोगों की आम दिनचर्या है, जिससे उपन्यास में अनेक बिखरे चित्रों को समग्रता में एकजुट देखा जा सकता है। 'फसक' यहाँ के लोगों की धड़कन है, जिससे राजनीति तक अछूती नहीं रह पाई है।

बचवाली में अमीर-हमजा की दास्तान सुनाने वाले नहीं थे। कई-कई जिल्दों में समाने वाली दास्तानें नहीं थीं। फिर भी छोटी-मोटी गप्पों को रबर की तरह खींच कर वे अपने हुनर के मुताबित छोटी-मोटी दास्तान में तब्दील कर देते थे। ''बचवाली की दास्तानें भूतों से भिड़ंत के अजीमुश्शान किस्से थे छुपे रुस्तम आशिकों और बड़े जतन से बेपर्दा की जाने वाली उनकी

आशिकी के नट करतब थे। बाघ, भालू और सुअर जैसे जंगली जानवरों से मुठभेड की साहसिक कथाएँ थीं। बाबाओं के चमत्कार और जादू-टोने के वहम थे। बस्तियों का मसखरापन था और किस्सागोई का खुबसूरत पेचोताब।''1

यहाँ बाघों को किसी ने पगडंडियों पर नहीं देखा, लेकिन उनके किस्से घरों में घुस जाते हैं। मोहन सिंह की चाय की दुकान फसकियों का अड्डा थी गुज़रे जमाने में फसक ही पहाडी लोगों के लिए समय बिताने व चर्चाएँ करने का एकमात्र साधन था ''कस्बे में फसक की परंपरा बहुत पुरानी है। ऐसा अनुमान है कि जब परंपरा की शुरुआत हुई होगी, पहाड़ों पर समय काटना पहाड़ चढ़ने जैसा ही मुश्किल रहा होगा। अब भी कुछ लोगों के लिए समय काटना बड़ा भारी काम है... पर जाने ऐसा क्या हुआ कि इधर के कुछ वर्षों में फसक की प्रकृत्ति बदल गई। कई फसकें तो अब बनी-बनाई आने लगी हैं। ... स्थानीय ज़रूरत के हिसाब से फसक को असेम्बल किया जाता है।''2 युवाओं में आज-कल मोबाइल फ़ोन के प्रचलन से फसकियों की नई पीढ़ी का रूप एवं स्वरूप दोनों बदल गए है। फसक आजकल लद्धड़ों के पाले में मौखिक रूप से फैलती है, मानों ये लोग श्रुत परंपरा के वाहक है।

चुस्त फर्राट लोगों के मध्य में आजकल फसक अर्थात् किस्सागोई का स्वरूप वैश्वीक हो चुका है, फसक अब लिखी और पोस्ट की जाती है। इससे एक ही क्षण में वह दूर तक पहुँच जाती है। ''नई फसक में परंपरागत फसक के काफी अंतर है। पुरानी फसक में सच भी थोड़ा-थोड़ा सन्देहास्पद लगता था। पर उसकी रोचकता ही उसकी लोकप्रियता थी नई फसक में संदेहास्पद चीजें भी भरोसेमंद हो गई है। क्योंकि इसमें आस्था का तत्त्व है किसी सवाल, संदेह और चुनौती से परे होती जा रही है।''3

यह उपन्यास पहाड़ी लोगों के जीवन के ताने-बाने में लिखा गया राजनीतिक जीवन की समसामायिक सामाजिक उपन्यास है। 'फसक' एक कुमाऊनी का शब्द है। कुछ पाठक नाम से ही इस उपन्यास का बिंब अपने मन-मस्तिष्क में बना लेते है। उपन्यास बचवाली नामक एक कस्बे के जीवन का चित्रांकन करता है। इसमें संपूर्ण उत्तराखण्ड के पहाड़ उपस्थित हो जाते है, चाय की एक दुकान पर बैठने वाले कुछ लोग पहाड़ों की धड़कनो से साक्षात्कार करवाते है। रेवा, पुष्पा, तेजू, चन्दू पाण्डे, नन्हू महाराज जैसे पात्र इस उपन्यास की शान हैं। उपन्यास में अच्छे दिन लौटने के बहाने से अफवाहों, अंधविश्वास व मनघड़ंत कहानियों का बाज़ार लगता है।

उपन्यास में फसक अर्थात् किस्सागोई के माध्यम से अतीत की घटनाओं को वर्तमान में कहा जाता है। वैश्विक महामंदी, 1984 के चुनावी हालात और बचवाली में दलितों के साथ 1984 की अपमानजनक स्थिति आदि घटनाओं को किस्सागोई शैली के माध्यम से कहा गया है। मोहन सिंह एक चाय की दुकान चलता है, जहा किस्सागोई करने वाले गप्पोड़ी और सुनने वाले श्रोता दोनों आते हैं। मोहन सिंह इस शैली का प्रयोग कर अपने पिता को भूतकाल से वर्तमान में ले आता है। वह लोगों को अपने पिता की भूत के साथ हुई मुठभेड़ का किस्सा अक्सर बढ़ा-चढ़ा कर सुनाता है। ''जीतराम मँजा हुआ किस्सागो तो नहीं था, पर बैठकी का पुराना चस्का था। यह चस्का उसे तभी से लगा जब बचवाली में फसकबाजी अपने चरम पर थी और जब लोग फुर्सत में हुआ करते थे। लेकिन दस साल पहले कस्बे के युवाओं ने मानों चाकू से समय के पेट पर साफ-साफ विभाजन रेखा खींच कर हैरान कर दिया था। लकीर के इस पार लद्धड़ यानी सुस्त समय और लकीर के उन पार फर्राटा यानी स्मार्ट व तेज़ समय।''4

पहाड़ी लोग अपनी फसक में अफवाह व गप्प का वर्णन पहाड़ों में घुमने आने वालों के साथ करते हैं, होटल में काम करने वाला एक वेटर अपने यहाँ रुके हुए महमानों से कहता है कि हवा बड़ी बदचलन है। पास ही में बीड़ी पी रहा एक अन्य व्यक्ति उसकी बात को गप्प बतलाता है ''वेटर विश्वास दिलाने लगा, बड़ी बदचलन हवा है यहाँ की साब। शाम को चौराहे पर जाकर देखो, कैसे हूँ -हूँ करते हुए कपड़ों के अन्दर घुसती है। ... कुक के कत्थई होंठों पर हलचल हुई- दै रे फसकिया (वाह रे गप्पी!) तेजू ने कुक की ओर देखा तो वह सकपका गया और बीड़ी फेंक कर दूसरा पैर ज़मीन पर टिका लिया-ठीक ही कहा है सर पहाड़ो का और हवा का कोई ईमान-धरम थोड़ी ठैरा।''5

अपनी जड़ों को खोजने की अभिलाषा से बचवाली में आकर जोशी काटेज में रहने वाली रेवा ने फसक को एक नया मुद्दा दे दिया था इस आधुनिक किस्से में रहस्यमय-रोमांच का मसाला है। इससे बचवाली की किस्सागोई में जान आ गई किस्सागोई के उखाड़ते तंबू को थामने के लिए कई लोग उठ खड़े हुए इनमें चंदू पांडे और मोहन सिंह का नाम सबसे आगे या रेवा के किस्से से लद्धड़ पाले में भूकंप आ गया रेवा के घर जोशी कॉटेज में ताक-झाँक करने वाले तीन फर्राट लड़कों और चंदू पांडे ने इस फसक को जन्म दिया, जोशी काटेज का नाम आते ही 28 वर्ष पहले का जानकी का किस्सा भी फिर से चल पड़ा। रेवा ताक-झाँक करने वाले लोगों को डराने के लिए आवाजें निकालती है। जिससे लोगों को भय लगता है कि जोशी कॉटेज में भूत है। चंदू लोगों को बताता है कि जब वह ''पीछे पहुँचा तो गुणमुण -गुणमुण हो रही ठैरी। मुझे तो यही ख़बर हुई कि लड़की अकेली है। ये बात लड़को को भी पता हुई... मैंने दरवाजे पर कान चिपका दिया... ''6

इस बार फसक शुरू होती है तो रेवा व भूत की प्रेमिका कहानी जीवंत सह शरीर बचवाली में खड़ी हो जाती है। ''आधी कहानी आधी लंतरानी। स्थानीय भाषा में कहें तो आधी फसक, आधा फसाना बचवाली के फसकियों उर्फ किस्सागो कुछ ऐसे ही थे। जिसमें ख़ुद की भूमिका हो उसमें लंतरानी, जिसमे दूसरे हो, उसमे कोरी फसक... एकदम करीब सिमट आती। मुंडिया सट जाती, ताकि मुँह से कानों की दूरी कम से कमतर हो जाए।''7 रेवा को लेकर चलाई फसक बचवाली में अंधविश्वास का रंग ले लेती। चंदू जैसे स्वार्थी लोग चुनाव जीतने के लिए अफवाह को ओर

अधिक बढ़ावा देकर प्रेत मुक्ति का हवन तक जोशी काटेज में करवाते हैं।

ग्राम प्रधान के चुनाव के समय किस्सागोई द्वारा विधानसभा तक के चुनावों में चलने वाली भ्रष्ट राजनीति का चित्रांकन किया गया है। भय्याजी नामक पात्र विशेष रूप से राजनीति के केंद्र की प्रमुख कड़ी है। भय्याजी की उम्र साठ से थोड़ा ऊपर होगी, लेकिन लोग अब भी उन्हें युवा तुर्क कहते हैं। भय्या जी चुनाव हो या न हो वे सदैव चुनाव के समय अपनाई जाने वाली मुद्राओं का ही प्रयोग करते हैं। भय्या जी राजनीति के चाणक्य कहे जाते है, इनसे चाणक्य नीति सिखी जा सकती है। अपनी भ्रष्ट राजनीति का जाल फैलाकर ही वे आगे बढ़ते रहे हैं। उन्होंने अपने विरोधी प्रकाश दद्दा के चरित्र पर प्रश्न चिह्न लगाकर चुनाव में विजय पाई थी। इसी प्रकार की शिक्षा वे चंदू को देते हैं। "इतना जान लो कि कोई उम्मीदवार की अच्छाई और सच्चाई देखकर वोट नहीं देता वोट पड़ती है विरोधी का घटियापन और कमीनगी उजागर करने से। चुनाव जीतने का मूल मंत्र है, विरोधी की कमजोरियाँ सार्वजनिक करो। मौका मिले तो उसके कपड़े उतारने से भी मत चूको।"8

भय्याजी कई गुणों की खान हैं किसी के भी मरने की सूचना पाते ही वे अंतिम संस्कार पर जाते हैं। साल में कम से कम बीस दिन वे थाना-चौकी में झगडा-झंझट निपटाने पहुँच ही बाते है। युवाओं को मोबाइल रिचार्ज के मुफ्त कूपन की स्कॉलरशिप से लेकर चोर-उचक्कों व अपराधियों के लिए नैनीताल हाई कोर्ट तक भी वे पहुँचाते है। उनका साफ कहना है। "जब तक अपराधी से वोट देने का अधिकार नहीं छीन लिया जाता, नेताओं को सबके साथ समान व्यवहार करना पड़ेगा। उनका यह भी मानना है कि राजनीतिक अपराधीकरण तभी ख़त्म होगा। जब अपराधी का राजनीतिकरण बंद होगा।"9

राजनीतिक में केंद्रीय सत्ता के सहयोगी बनकर कार्य करने वाला नन्हू महाराज धार्मिक, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी राजनीति की गंदी मिलावट का प्रचार-प्रसार करते हैं। नन्हू महाराज पुराने ग्राम प्रधान को सबक सिखाने के लिए भय्याजी के साथ मिलकर चंदू को उसके विरुद्ध में चुनाव लड़ने के लिए तैयार करते हैं। चंदू का राजनीतिक गुरू बनकर बाबा उससे कहते हैं, "एकला चलो का यह मतलब न समझ लेना कि अकेले ही वोट माँगने चल देना है। चार आदमी हमेशा साथ रखो। दो ठस दिमाग़ मुश्टंडे और दो तरल बुद्धि समझदार। जहाँ सभ्यता के साथ अपना परिचय देना हो वहाँ बुद्धिमानों को आगे करो और जहाँ सभ्यता कमज़ोर पडने, वहाँ मुश्टंडों पर छोड़ दो... इस तरह एक निहायत ही गैर राजनीतिक प्राणी चंदू ने नेताजी से नीति-ज्ञान और बाबाजी से गुरू मंत्र लेकर राजनीतिक यात्रा शुरू की" 10

बचवाली में अनपढ़ मज़दूर वर्ग के लोगों के साथ-साथ पी थ्री व तेजू जैसे पढ़े-लिखे बेरोज़गार लोग भी रहते हैं। ये दोनों संवेदनशील व दुनियादारी के तिकड़मों की तह तक जाने वाले युवा है। बचवाली में बाज़ारवादी संस्कृति का बोल-बाला है। इधर नई पीढ़ी के बीच सेल फ़ोन, टॉक टाइम और फेसबुक विचार-विमर्श का नया विषय बनकर उभरे थे बचवाली में जहाँ सालों की मनोरंजन की प्रक्रिया का एकमात्र साधन फसक अर्थात् किस्सागोई होता था, वहीं आधुनिकता की बाज़ारवादी संस्कृति में सेल फ़ोन से लेकर "सेल्फी खींचने वाले ड्रोन कैमरों की भनक लग चुकी है... यह एक नई दुनिया है जो अब खुली है बचवाली के फर्राटा लड़कों के लिए रहस्यमय है और उसके बारे में वे अनुमान ही लगा पाते है। पिछले दिनों बचवाली का एक लड़का खच्चर के साथ सेल्फी लेते वक्त उसकी लात से घायल हो गया था। इसी तरह कुछ समय पहले नैनीताल में एक नवविवाहिता टूरिस्ट युवती सेल्फी लेते हुए पहाड़ से फिसल गई।"11

बाज़ारवादी संस्कृत वर्तमान युग के मानव के जीवन में अपनी गहरी जड़ें बना चुकी है। आज हर छोटी से छोटी चीज़ से लेकर अपनी बड़ी से बड़ी चीज़ इंसान को घर बैठे ही मिलती है। आज पूरा विश्व एक गाँव बन गया है। दुनिया के किसी भी कोने में होने वाले विकास कार्य, मानव जीवन संबंधित समस्या, बुझ-अबुझ सभी तथ्यों की जानकारी व्यक्ति को इंटरनेट के माध्यम से जादूई पिटारे के अन्दर मिल जाते है।

बाज़ारवादी संस्कृति के आविर्भाव के कारण आकर्षण में जहाँ गाँव के लोग स्वयं को झोंक रहे है, वहीं पर शहरी लोग इस जीवन से तंग आकर पहाड़ों पर ज़मीन खरीदकर घर बना रहे है। शहर के आपाधापी वाले जीवन से मुक्ति पाने के लिए पहाड़ों में आकर रहते है। पी थ्री इन पर व्यंग्य करते हुए कहते है कि "जो कुछ आपके आसपास है, जिसे बचाना चाहिए था... उसकी आपने परवाह नहीं की। जो पृथ्वी पर बचा रह गया है, वही आपको अच्छा लगता है। अफसोस की बात तो ये है कि उसे भी आप वैसा नहीं रहने देते। आपने यहाँ भी कंक्रीट के जंगल खड़े कर दिये। आप जहाँ-जहाँ जाएँगे, वहाँ-वहाँ से हवाओं को, हरियाली को, नदियों और झरनों को विदा करते जाएँगे, आपके लिए यही विकास है।"12

इस प्रकार से राकेश तिवारी का यह उपन्यास किस्सागोई की शैली में पहाड़ी लोगों के जीवन व राजनीति की जीती-जागती तस्वीर प्रस्तुत करता है। आम पहाड़ी लोगों के जीवन की यथार्थ दिनचर्या, चाय की दुकान पर चलने वाली बैठकों, आय को बढ़ाने के लिए यात्रियों के साथ चलने वाली गप्पे और हमारे देश के युवा वर्ग के मध्य में मोबाइल फ़ोन, इंटरनेट, फेसबुक और ट्विटर जैसी सुविधाओं के प्रचलन के पश्चात समाज की दो पीढ़ियों के मध्य खिंची रेखा, आस्था के नाम पर लोगों के साथ होने वाली धोखाधडी और देश का सर्वाधिक सम सामायिक चर्चित विषय राजनीति को उपन्यासकार ने सहजता से उजागर किया है।

000

संदर्भ- 1 राकेश तिवारी, फसक, वाणी प्रकाशन, 2017, पृष्ठ -7, 2 वहीं, पृष्ठ - 226, 3 वहीं, 4 वहीं, पृष्ठ - 28, 5 वहीं, पृष्ठ -41, 6 वहीं, पृष्ठ -32, 7 वहीं, पृष्ठ -20, 8 वहीं, पृष्ठ -69, 9 वहीं, पृष्ठ -66, 10 वहीं, पृष्ठ -85, 11 वहीं, पृष्ठ -70, 12 वहीं, पृष्ठ - 72

(शोध आलेख)

पूर्वोत्तर भारत की समस्याएँ और समाधान

शोध लेखक : डॉ. धीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
गवर्नमेंट कमलानगर कॉलेज, चोंगटे,
सम्बद्ध मिज़ोरम यूनिवर्सिटी,
आइजोल, मिज़ोरम
मोबाइल- 8707502283

सारांश- पूरे देश में फैले भ्रष्टाचार का सबसे अधिक अनुपात पूर्वोत्तर के राज्यों में देखने को मिलता है। नागालैंड, असम, मणिपुर जैसे राज्यों में उग्रवादी एवं देशद्रोही संगठन सरकारी अधिकारियों, कर्मचारियों एवं व्यापारियों से खुलेआम वसूली करते हैं। यदि माँग पूरी नहीं की गई तो हत्या तक कर देना मामूली बात है। मणिपुर के इम्फाल, चूड़ाचान्दपुर जैसे शहरों में तो ''इंडियन गो बैक'' लिखे पोस्टर भी दिखायी देते हैं। यहाँ दो-दो, तीन-तीन महीने तक बन्द व हड़ताल का होना सामान्य बात है। यही स्थिति त्रिपुरा में भी है। यहाँ विपुल नेशनल लिबरेशन फ्रंट जैसा संगठन आनन्द व विद्रोह का वातावरण बनाने का काम पिछले कई वर्षों से कर रहा है।

पूर्वोत्तर भारत में अलगाव के बीज अंग्रेजों के काल में ही बो दिये गए थे। उग्र रूप धारण किये हुए इस अलगाववाद की जड़ें बहुत गहराई तक फैली हुई है। इस समस्या का उपाय तभी होग, जब इसे जड़ से समाप्त कर दिया जाय। आज यह काम कठिन ज़रूर लग रहा है पर असम्भव नहीं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि शासन तथा शेष भारत दोनों को इस समस्या का हल निकालने की ईमानदार पहल करनी होगी। दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ शेष भारत के लोगों को मिलाकर पूर्वोत्तर भारत की ओर सहयोग का हाथ बढ़ाया तो विशाल हृदय वाले पूर्वोत्तर भारत के बंधुओं की ओर से सार्थक प्रतिक्रिया ही प्राप्त होगी।

बीज शब्द- भ्रष्टाचार, उग्रवाद, पूर्वोत्तर भारत, आतंकवाद, सहयोग, विशाल हृदय, दृढ़ इच्छाशक्ति, अलगाववाद, आतंक, विद्रोह, शासन, देश, राज्य।

भारत के पूर्वोत्तर में सात राज्य थे। उसमें अब सिक्किम भी जुड़ गया है। इस पूरे भूभाग की जनसंख्या और आर्थिक स्थिति का आकलन करें तो यह पूरे देश का आठवाँ हिस्सा है। 1 भारत की सीमा पर चल रही विद्रोही गतिविधियों एवं उग्रवाद का आकलन करें तो पूरे देश में चल रही ऐसी गतिविधियों का 60 प्रतिशत हिस्सा इन्हीं राज्यों में है। दिल्ली में बैठी सरकार का इस क्षेत्र के विकास की ओर कोई ध्यान नहीं है, इस प्रकार की शिकायत यहाँ के लोग वर्षों से कर रहे हैं। यहाँ के समझदार नागरिकों के बीच व्याप्त निराशा और कुंठा लगातार बढ़ रही है।

देश का पूर्वोत्तर का इलाका आजादी के लम्बे समय बाद भी अलग-थलग नज़र आता है। यह इलाका अक्सर किसी बड़े घटना या उग्रवाद की नजह से ही सुर्खियों में आता रहता है।

दरअसल देश की आजादी के बाद असम ही इलाके का इकलौता राज्य था। उसके बाद धीरे-धीरे प्रशासनिक सहूलियत को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अलग राज्यों का गठन किया जाता रहा लेकिन उस समय दोनों पक्षों से विचार-विमर्श किये बिना सीमा का जिस तरह निर्धारण किया गया था कहीं न कहीं यही विवाद की मूल वजह नज़र आती है।

यही वजह है कि कभी मिज़ोरम के साथ विवाद भड़कता है, तो कभी मेघालय, अरूणाचल प्रदेश और नागालैण्ड के साथ। अब तक सता में रहने वाली राजनीतिक पार्टियों ने भी इस गम्भीर समस्या की ओर से चुप्पी साधे रखी है।

दरअसल आजादी के बाद से ही, असम, नागालैण्ड, मणिपुर और त्रिपुरा जैसे राज्यों में उग्रवाद की समस्या जिस गम्भीरता से फिर उठाया, उसके बाद तमाम मुद्दे हाशिये पर चले गए। केन्द्र और राज्यों का पूरा ध्यान उग्रवाद पर ही लगा रहा। हालाँकि उग्रवाद पर अंकुश लगाने में कितनी कामयाबी मिली इस पर सवाल हो सकते हैं।

इसकी वजह यह कि तमाम दावों के बावजूद इलाके में उग्रवाद का खात्मा नहीं किया जा सका है। केन्द्र की उपेक्षा और इन राज्यों में सत्ता सँभालने वाली राजनीतिक पार्टियाँ सीमा विवाद जैसे गंभीर मुद्दों को सुलझाने की बजाय अपने हितों को साधने में ही जुटी रही।

हिन्दी पर प्रतिबंध- उग्रवादियों के दबाव के चलते पिछले कई वर्षों से हिन्दी पर प्रतिबंध लगा हुआ है। इम्फाल, चूडाचाँदपुर जैसे शहरों में तो "इंडियन गो बैक" लिखे पोस्टर भी दिखाई देते हैं। यहाँ दो-दो, तीन-तीन महीने तक बंद व हड़ताल का होना सामान्य बात है। ऐसे समय में डीजल व पेट्रोल 130 से 200 रुपये प्रति लीटर बिकता है। घरेलू गैस डेढ़ से दो हजार रुपये प्रति सिलेंडर तक बिकती है। किसी भी पाठ्य पुस्तक के प्रारम्भ में या अंत में राष्ट्रीय उत्सव भी कड़े सुरक्षा प्रबंधों के बीच आयोजित किया जाता है। अकेले मणिपुर में दस से भी अधिक उग्रवादी संगठन सक्रिय हैं। इन उग्रवादी संगठनों को विदेशों से मिलने वाले शस्त्रों एवं धन के बल पर भारत में विद्रोह की आग फैलाई जाती है। यही स्थिति त्रिपुरा में भी है। यहाँ त्रिपुरा नेशनल लिबरेशन फ्रंट जैसा संगठन आतंक व विद्रोह का वातावरण बनाने का काम पिछले कई वर्षों से कर रहा है।

अभिवादन का प्रतीक 'जयहिन्द'- अरुणाचल- पूरे देश में सर्वाधिक प्राकृतिक सम्पदा एवं बलिष्ठ देशभक्त युवकों के प्रांत के रूप में अरुणाचल प्रदेश प्रसिद्ध है। पूर्वोत्तर भारत का यही एक ऐसा राज्य है जहाँ गाँव में हिन्दी बोली जाती है। विधान सभा का काम काज भी हिन्दी में ही चलता है। यहाँ 'जयहिन्द' कह कर अभिवादन करने की लोकप्रिय परम्परा भी है। दुर्भाग्य से यहाँ के 80 प्रतिशत गाँवों में अभी भी बिजली नहीं है। सीमावर्ती क्षेत्रों में तो सड़कों का अता-पता भी नहीं है।

उत्तर पूर्वांचल यह भारत का मुकुट है। यह देवी-देवताओं का प्रदेश है। प्राकृतिक सौंदर्य से सजा हुआ है। इस क्षेत्र को अप्सराओं का क्षेत्र भी कहा जाता है। यहाँ के नयनाभिराम सरोवर, नदियाँ, पर्वत एवं यहाँ के निवासी भारत का गौरव है। सारी दुनिया में यह अनन्य है। 2 परन्तु ये राज्य केवल उग्रवाद एवं अराजकता की काली छाया के ही शिकार नहीं हैं, बल्कि ये राज्य दिल्ली में बैठे पत्थर-हृदय शासकों की उपेक्षा के शिकार भी हैं।

अलगाववाद के कारण- सम्पर्क का अभाव- यह दिखाई देता है कि सम्पर्क का अभाव तथा इन प्रदेशों के विषय में अज्ञान ही यहाँ के अलगाववाद का मूल है। इन प्रदेशों के नाम व राजधानियों के नाम सामान्य भारतीय नामों से अलग होने के कारण अनेक लोगों को ऐसा लगता है कि ये पूर्व की ओर के देश हैं। वहाँ के असंख्य नागरिकों की शक्ल चीन, जापान आदि देशों के नागरिकों से मिलती-जुलती है। जब पूर्वोत्तर भारत के ये नागरिक भारत के अन्य भागों में किसी कारणों से जाते हैं तो उन्हें चीनी या जापानी समझने की भारी भूल हम लोग करते हैं। कई बार तो ऐसे अवसर भी आते हैं, जब सुरक्षा कर्मियों या पुलिस द्वारा उनसे पासपोर्ट या वीजा भी माँगा जाता है। पूर्वोत्तर भारत के अशांत वातावरण से परेशान होकर शेष भारत में पढ़ने आने वाले पूर्वोत्तर भारत के लगभग सवा लाख विद्यार्थियों को एक ओर इन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है तो दूसरी ओर हिन्दी-अंग्रेजी का उन्हें पर्याप्त ज्ञान न होने के कारण ये विद्यार्थी यहाँ के लोगों के साथ ठीक से संवाद भी नहीं बना पाते।

आंतरिक सम्पर्क का अभाव- पूर्वोत्तर भारत की भौगोलिक स्थिति विविधतापूर्ण है। दुर्गम पर्वतों, घने जंगलों, विशाल नदियों से यह क्षेत्र भरा पड़ा है। वहाँ रहने वाली बहुभाषी जनजातियों को इन दुर्गम पर्वतों के कारण शेष भारत से अनेक वर्षों तक दूर रहना पड़ा। सबकी अपनी अपनी स्वतंत्र भाषा, संस्कृति, पूजा पद्धति तथा आचार-विचार होने के कारण उनमें समरसता पैदा होना कठिन था; ऊपर से यह भौगोलिक दुर्गमता थी ही। अलग-अलग भाषा बोलने के कारण एक-दूसरे की भावनाओं को समझ नहीं सकने के कारण आपस में संघर्ष होना स्वाभाविक था।

उस संघर्ष को रोकने के लिए एक भाषा का सूत्र रूप में प्रयोग जरूरी था, पर दुर्भाग्य से वैसा हो नहीं पाया। पूर्वोत्तर भारत में कुल मिलाकर 180 जनजातियाँ हैं। उनकी सबकी भाषाएँ एक-दूसरे से बहुत भिन्न हैं। उपभाषाओं की संख्या तो सात सौ के आसपास है। आसपास रहने वाली जनजातियों की, प्रत्येक की जनसंख्या बहुत कम है, कुछ की जनसंख्या तो पाँच हजार से भी कम है। आसपास रहने वाली जनजातियों की भाषा अलग होने से उनके साथ वे समरस तो हो ही नहीं पाते, ऊपर से दूसरी जनजाति हमारे ऊपर प्रभुत्व तो नहीं जमा रही है इसका काल्पनिक भय हमेशा बना रहता है। वहीं से अस्मिता तथा अस्तित्व का संघर्ष भी दिखाई देता है। इन सभी जनजातियों में थोड़ी बहुत मात्रा में पहचान का संकट भी पैदा हुआ है।

लगभग तीस वर्ष पूर्व तक यह पूरा भू-भाग एक प्रांत था। छोटे राज्यों की माँग पूरी होने के बाद एक-एक राज्य की संरचना ही ऐसी हो गई है कि इनके बीच भौगोलिक कारणों से सम्पर्क कठिन हो गया है। उदाहरण के लिए मेघालय तथा अरुणाचल के एक जिले से दूसरे जिले में जाने के लिए असम से होकर फिर दूसरे रास्ते से उस राज्य में प्रवेश करना पड़ता है।3

आंतरिक सुरक्षा तथा सेना की उपेक्षा- पूर्वोत्तर भारत में समय-समय पर हुए आंदोलनों के हिंसक होने पर उन्हें वीरतापूर्वक रोकने का प्रयास तो किया ही नहीं गया, उलटे सीमा की सुरक्षा में लगी तथा आंतरिक सुरक्षा में लगी सेना की योजनाओं को स्वीकृत भी नहीं किए जाने की राजनीति की गई। उग्रवाद के विरूद्ध जो कड़ी कार्रवाई अपेक्षित थी वह न करते हुए, उनके प्रति नरम दृष्टिकोण की नीति अपनाई गई।4

समाधान- पूर्वोत्तर भारत की समस्याओं के समाधान के लिए उनके कारणों की जड़ में प्रत्येक समस्या का अलग-अलग स्तर पर विचार करना होगा। प्रभावशाली सम्पर्क तथा जनजागरण पूर्वोत्तर भारत व शेष भारत के बीच सम्पर्क तथा संवाद के अभाव को दूर करने के लिए कुछ भ्रांतियों को पहले दूर करना होगा। अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो नीति को मजबूत करने वाली मैकॉले की शिक्षा पद्धति में आज भी सिखाया जाता है कि पूर्वोत्तर भारत की सभी जनजातियाँ मंगोल हैं, वे क्रूर जंगली तथा हिंसक है। परन्तु उनमें प्रचलित अनेक रीतियाँ तथा परम्पराएँ शेष भारत की परम्पराओं से लेशमात्र भी अलग नहीं है। यदि कहीं कोई एक दो जनजातियाँ बाहर से भी आई होंगी तो उनको वहाँ की संस्कृति ने आत्मसात कर लिया है। अब उनमें से कोई जंगली, क्रूर और हिंसक न होकर दिल से उदार, विश्वसनीय तथा पवित्र हैं। अतिथि देवो भव की परम्परा तथा प्रकृति के प्रति कृतज्ञता का भाव जैसे समानता के बिन्दु अंग्रेजों की कूटनीति का पर्दाफाश करते हैं। वर्षों से चली आ रही एक-दूसरे के प्रति भ्रांतियों को दूर कर एकात्मकता का भाव पैदा करने के लिए पूर्वोत्तर भारत तथा शेष भारत इन दोनों के बीच सम्पर्क तथा संवाद बढ़ाने की आवश्यकता है। इसके लिए नीचे कुछ उपाय सुझाव प्रस्तुत हैं-

शिक्षा पद्धति- शेष भारत के विद्यार्थियों को दी जाने वाली शिक्षा में पूर्वोत्तर भारत की जानकारी के लिए स्वतंत्र अध्याय होने चाहिए। जिससे विद्यार्थियों को पूर्वांचल का ज्ञान हो सके। पूर्वोत्तर भारत के ऐतिहासिक व्यक्तियों, वीर पुरुषों तथा स्वतंत्रता सेनानियों की जानकारी भी संबंधित विषयों का एक भाग होना चाहिए। आज शेष भारत के कितने लोग लाचित बड़फुकन (असम), रानी माँ गाईडीनल्यू, नगालैण्ड, तिरचसिंह, कियेंग नागबा (मेघालय) आदि महापुरुषों के विषय में जानते हैं? जबकि इनका जीवन चरित्र भी शिवाजी, राणा प्रताप, लक्ष्मीबाई जैसा ही प्रेरणादायी है।

मार्गदर्शन केन्द्र- पूर्वोत्तर भारत के विद्यार्थियों, व्यावसायियों, मरीजों तथा पर्यटकों के लिए विशेष मार्गदर्शन केन्द्र आवश्यक स्थानों पर खोलना चाहिए, जिससे शेष भारत में उनकी यात्रा या उनसे संबंधित कार्य सुविधाजनक तरीके से सम्पन्न हो सके।

उचित राजनैतिक दृष्टिकोण तथा जमीनी प्रयास- पूर्वोत्तर भारत की समस्याओं के निराकरण के लिए राजनीतिक नेतृत्व को दूरदृष्टि के साथ प्रयास करना होगा। संवादहीनता की स्थिति को समाप्त करने के लिए किए जाने वाले उपरोक्त प्रयासों में राजनैतिक तथा प्रशासनिक निर्णयों की सहभागिता भी आवश्यक है। पूर्वोत्तर भारत की समस्याओं का सभी आयामों से गहराई के साथ विचार कर समीक्षा करनी होगी। प्रत्येक चुनाव के बाद नेतृत्व बदलते रहने के कारण इस काम को केवल राजनैतिक नेतृत्व के भरोसे न छोड़ कर एक गैर राजनैतिक समिति को यह काम सौंपना चाहिए, जिसमें विधि विशेषज्ञ, सेना विशेषज्ञ तथा समाज सुधारकों का समावेश हो। उन्हें पूर्वोत्तर भारत के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक तथा अन्य क्षेत्रों के लिए अल्पकालिक तथा दीर्घकालिक योजनाएँ बनाना चाहिए।

पूर्वोत्तर भारत में विपुल मात्रा में उपलब्ध प्राकृतिक सम्पत्ति पर आधारित उद्योगों की स्थापना की गई तो उससे रोज़गार निर्मित होगी और आज उग्रवाद की ओर मुड़ने वाला युवा वर्ग कल आत्मनिर्भर होकर राष्ट्र के विकास में सहभागी होगा। उन स्थानां पर जहाँ घुसपैठिए हैं, वहाँ आर्थिक व सामाजिक बहिष्कार होना चाहिए। इन तरीकों को अपनाने पर ही बांग्लादेशी घुसपैठिए उन स्थानों से भागेंगे।

000

संदर्भ-

1. उत्तर-पूर्वी भारत के आदिवासी- डॉ. वीरेन्द्र परमार, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2020, पेज नं- 48, 2.उत्तर-पूर्वी भारत का इतिहास- राजेश वर्मा, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2019, पेज नं- 203, 3. पूर्वोत्तर भारत का जनजातीय साहित्य- सं अनुशब्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पेज नं- 76, 4.पुस्तक संस्कृति (पत्रिका), अंक जनवरी-फरवरी 2021, संपादक- पंकज चतुर्वेदी, 5.राजभाषा भारती (पत्रिका), अंक अप्रैल-जून 2018, संपादक- डॉ. श्रीप्रकाश शुक्ल, संयुक्त निदेशक (नीति/पत्रिका), भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग

(शोध आलेख)

उत्तराखण्ड के झण्डा सत्याग्रह आंदोलन में गाँधीवादियों का योगदान

शोध लेखक : भाष्करानन्द पन्त शोधार्थी, इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, हे.न.ब.ग.वि.वि., श्रीनगर, उत्तराखण्ड

शोध निर्देशक : प्रो. आर. सी. भट्ट, आचार्य, इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, हे.न.ब.ग.वि.वि, श्रीनगर, उत्तराखण्ड

भाष्करानन्द पन्त
कमरा न- S-1, आर्यभट्ट शोध छात्रावास चौरास परिसर, हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर, उत्तराखण्ड 249161
मोबाइल- 8477908898
ईमेल- bpant947@gmail.com

उत्तराखण्ड के इतिहास में झण्डा सत्याग्रह आंदोलन एक ऐसा आंदोलन था जो राष्ट्रीय स्तर से होते हुए स्थानीय स्तर तक पहुँच कर उत्तराखण्ड के जनमानस पर अपना ऐसा प्रभाव डाला कि ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता ने लोगों के सामने अपने घुटने टेक दिए। यह आंदोलन राष्ट्रीय स्तर पर नमक आंदोलन के रूप में प्रसारित हुआ लेकिन उत्तराखण्ड में प्रवेश करने के उपरांत यह आंदोलन झण्डा सत्याग्रह के रूप में परिणित हो गयाए परंतु ब्रिटिश सत्ता को चुनौती देना इतना साधारण कार्य भी नहीं था। इस कार्य को जिन गाँधीवादियों ने अंजाम दिया उनमें मोहन जोशी एवं शांति लाल त्रिवेदी प्रमुख गाँधीवादी चिंतक थे जिन्होंने झंडे के स्वाभिमान के लिए अपनी जान की बाजी लगाकर ब्रिटिश प्रशासन के गोरखा सैनिकों से खुकरी एवं डंडों से मार खाकर भी भारतीय झंडे को नगरपालिका के कार्यालय के शीर्ष पर फहरा दिया। इस शोध पत्र में हम झण्डा सत्याग्रह आंदोलन में गांधी जी के सिद्धांतों को अपनाकर गाँधीवादियों का योगदान एवं आंदोलन के सफल संचालन के उपरांत आंदोलन के उत्तराखंड में प्रभाव का विश्लेषण करेंगे।

बीज शब्द- गाँधीवादी, झण्डा सत्याग्रह, सत्य-अंहिसा, नमक सत्याग्रह।

प्रस्तावना- भारत के जनमानस पर गांधीवादी विचारों एवं सिद्धांतों ने स्वतंत्रता के संघर्ष को एक नया आयाम दिया जो कि अहिंसावादी और समग्र विकासवादी था। यह विचार मनुष्य के सर्वांगीण विकास पर बल देते हैं। भारत में गांधी जी के आगमन के पश्चात स्वतंत्रता के संघर्ष को और बल मिला इसका मुख्य कारण यह था कि अभी तक कोई भी नेता अपने आप को गाँवों से और वहाँ के लोगों तक अपने आप को जोड़ नहीं पा रहा था तथा अभी तक नेता केवल अपनी माँगों पर ही बात कर रहे थे लेकिन गांधी जी के भारत आगमन के पश्चात परिस्थितियाँ बदल गई थी। गांधी जी अब जन सहयोग और जन कल्याण पर बात कर रहे थे और लोगों की परेशानियों

पर बात कर रहे थे। गांधी जी जनता के सम्मुख जाकर उनकी समस्याओं को सुन रहे थे उन्होंने भारतीय महिलाओं को घर की चाहरदीवारी से बाहर निकालकर स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल किया। अब उनका पहला कार्य भारत को आज़ाद करने के साथ-साथ जनमानस के कष्टों को दूर करना भी हो गया था, लेकिन ये कष्ट दूर कैसे होंगे? ये सबसे बड़ी चुनौती थी, इस चुनौती का निराकरण गांधी जी ने अपने दक्षिण अफ्रीका के अनुभवों से किया, वह अनुभव यह थे की लोगों को शिक्षा मुहैया कराना और उनको उनके कानूनी अधिकारों से अवगत करना था और यह कार्य करने में गांधी जी बहुत अच्छी तरह से कामयाब रहें। इसी प्रकार जब गांधी जी क्षेत्रीय स्तर पर भ्रमण के लिए गए तो उनके विचारों का प्रभाव भी वहाँ पड़ा और अनेकों जगह उनके अनुयायी सक्रिय रहे जिन्होंने गांधी जी के विचारों एवं उनके कार्यों से प्रेरित होकर अपने-अपने क्षेत्रों में कार्य करने शुरू कर दिए।1

भारतीय झण्डे का इतिहास निरंतर प्रगतिशील ही रहा है भारतीय झण्डे ने संघर्ष एवं विकास की प्रकिया से गुज़र कर अपने आज के स्वरूप को प्राप्त किया। झण्डे का प्रयोग वैसे प्राचीन काल से ही लोगों द्वारा अपने साम्राज्य के प्रतीक के रूप में किया जाता रहा है झंडे का महत्त्व उस समय केवल एक राज्य या साम्राज्य तक ही सीमित था और झण्डा ही उस साम्राज्य की शक्ति का प्रतीक होता था। जनता को ना तो झण्डे को चुनने का अधिकार प्राप्त था और ना ही उस झण्डे में उनकी कभी आस्था रही थी। झण्डे के प्रति लोगों में भावना का विकास उस समय तक आज के स्वरूप जैसा नहीं हुआ था आधुनिक भारत के इतिहास में जब ब्रिटिश लोगों ने भारतीय राजाओं की सत्ता को चुनौती दी तो शासकों की सत्ता छिन्न-भिन्न हो गई, लेकिन सत्ता कहा किसी की दासी रह सकती है वह तो हमेशा गतिमान रहती है अंग्रेजों के आने के बाद भारतीय समाज में कुछ हलचले पैदा होना शुरू हो गई थी जो की औपनिवेशिक शासन की जड़ों को खोखला करने के लिए आतुर हो रही थी लोगों के मन में स्वतंत्रता की भावना का वास होने लगा था और उन्होंने औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध अपना मोर्चा खोल दिया परंतु संघर्ष की इस धारा के प्रवाह को अपने लक्ष्य तक पहुचाने के लिए आत्मा का होना जरूरी था जो भारतीय लोगों का प्रतिनिधित्व कर सके और यह आत्मा थी भारत का झण्डा लेकिन यह गुलामी का नहीं वरन आजादी का प्रतीक होगा यह साम्राज्य का प्रतीक न होकर जन समुदाय का प्रतीक होगा यह झण्डा प्रतीक होगा की गुलामी की बेड़ियों से कैसे आजादी लेकर एक कल्याणकारी भारत का निर्माण हो सके।2

झण्डा सत्याग्रह 20वीं शताब्दी की एक ऐसी घटना है जिसने समस्त भारत के क्षेत्रों में क्रांति का आवाहन कर दिया था यह क्रांति झंडे के स्वाभिमान के लिए थी क्योंकि झंडे को भारतीय लोगों की आज़ादी के प्रतीक के रूप में माना जाता था झण्डा सत्याग्रह आंदोलन की शुरुआत के बीज हमें असहयोग आंदोलन के शुरुआती दौर से देखने को मिल जाते है जब गांधी जी लोगों में स्वतंत्रता की भावना को जाग्रत करने के हर संभव प्रयास कर रहे थे तो इन प्रयासों के और इन्हीं प्रयासों के बीच असहयोग का प्रभाव झण्डा सत्याग्रह के रूप में भी देखने को मिला 5 फरवरी 1922 को चोरा-चोरी की घटना के बाद गांधी जी ने असहयोग आंदोलन को स्थगित कर दिया क्योंकि आंदोलन गांधी जी के विचारों अर्थात सत्याग्रह, अहिंसा के अनुरूप नहीं चला था परिणाम स्वरूप अंग्रेजों ने गांधी जी को 6 साल की सजा सुनाई लोगों में ब्रिटिश राज के ख़िलाफ़ और भी भावना भड़क गई थी इसी दौरान असहयोग आंदोलन के प्रभाव को देखने के लिए काँग्रेस ने एक जाँच कमेटी का निर्माण किया जिसके सदस्यों में शामिल पंडित मोतीलाल नेहरू, विट्ठल भाई पटेल और राजगोपालाचारी जबलपुर पहुँचे थे। जाँच समिति के लोगों का प्रतिवेदन एवं अभिनंदन वहाँ के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने विक्टोरिया टाउन हाल में किया और सर्वप्रथम टाउन हाल में स्थित नगरपालिका की सरकारी इमारत पर तिरंगा झण्डा(जिसके बीच में तब चरखा होता था) फहराया गया यह भारतीय लोगों की राष्ट्र प्रेम की भावना की पहली जीत थी जो की ब्रिटिश राज के शीर्ष में भारतीय झंडे का फहराना थी लेकिन जल्द ही स्वदेशी झण्डा रोहण की ख़बर आग की भाति समाचार पत्रों में प्रकाशित होकर इंग्लैंड की संसद तक पहुँची संसद में जब इस घटना की चर्चा हुई तो उस समय के भारतीय मामलों के सचिव विंटरटन को ब्रिटिश संसद को यह आसवाशन देना पड़ा कि अब से भारत में किसी भी सरकारी और अर्धशासकीय इमारत पर तिरंगा झण्डा नहीं फहराया जाएगा।3

यह भारतीय लोगों की भावना पर एक गहरा आघात था स्वतंत्रता सेनानियों ने अंग्रेजी हुकूमत के तिरंगे को फहराने पर लगी रोक को एक चुनौती की तरह स्वीकार किया और दोबारा टाउनहॉल में झंडा फहराने का निर्णय लिया गया। कांग्रेस की दूसरी समिति के सदस्य के रूप में राजेंद्र प्रसाद, जमनालाल बजाज, देवदास गांधी, चक्रवती राजगोपालाचारी मार्च 1923 को जबलपुर पहुँचे तो समिति के सभी सदस्यों को सम्मानित करने हेतु म्यूनसिपल कमेटी ने टाउन हाल में कार्यक्रम आयोजित किया नगर कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष सुदरलाल ने अपने साथियों के साथ मिलकर तत्कालीन अंग्रेजी डिप्टी कलेक्टर किस्मेट लेलैंड ब्रुअर हेमिल्टन से तिरंगा फहराने की अनुमति माँगी। लेकिन हेमिल्टन ने यह शर्त रखी कि तिरंगे झंडे के साथ साथ ही यूनियन जैक का झंडा भी फहराया जाए। इस समय जबलपुर म्यूनसिपैलटी के अध्यक्ष बाबू कंछेदीलाल जैन थे। बाबू कंछेदीलाल जैन इस शर्त को मानने के लिए तैयार नही हुए जबलपुर के लोगों ने इस शर्त को तिरंगे झंडे का अपमान माना और उनका आक्रोश ब्रिटिश राज के ख़िलाफ़ और बढ़ गया नगर काँग्रेस कमेटी के अध्यक्ष सुंदरलाल ने जन भावना को आंदोलित कर टाउन हाल में दोबारा तिरंगा झण्डा फहराने का निर्णय लिया 18 मार्च 1922 को महात्मा गांधी जी को जेल भेजा गया था इसी लिए लोगों ने रणनीति बनाई की 18 मार्च 1922 को ही टाउन हाल में तिरंगा

फहराया जाएगा। 4 यह भारतीय लोगों की भावना पर एक गहरा आघात था स्वतंत्रता सेनानियों ने अंग्रेजी हुकूमत के तिरंगे को फहराने पर लगी रोक को एक चुनौती की तरह स्वीकार किया और दोबारा टाउनहॉल में झंडा फहराने का निर्णय लिया गया। कांग्रेस की दूसरी समिति के सदस्य के रूप में राजेंद्र प्रसादए जमनालाल बजाजए देवदास गांधीए चक्रवती राजगोपालाचारी मार्च 1923 को जबलपुर पहुँचे तो समिति के सभी सदस्यों को सम्मानित करने हेतु म्यूनसिपल कमेटी ने टाउन हाल में कार्यक्रम आयोजित किया नगर कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष सुदरलाल ने अपने साथियों के साथ मिलकर तत्कालीन अंग्रेजी डिप्टी कलेक्टर किस्मेट लेलैंड ब्रुअर हेमिल्टन से तिरंगा फहराने की अनुमति माँगी। लेकिन हेमिल्टन ने यह शर्त रखी कि तिरंगे झंडे के साथ साथ ही यूनियन जैक का झंडा भी फहराया जाए। इस समय जबलपुर म्यूनसिपैलटी के अध्यक्ष बाबू कंछेदीलाल जैन थे। बाबू कंछेदीलाल जैन इस शर्त को मानने के लिए तैयार नही हुए जबलपुर के लोगों ने इस शर्त को तिरंगे झंडे का अपमान माना और उनका आक्रोश ब्रिटिश राज के ख़िलाफ़ और बढ़ गया नगर काँग्रेस कमेटी के अध्यक्ष सुंदरलाल ने जन भावना को आंदोलित कर टाउन हाल में दोबारा तिरंगा झण्डा फहराने का निर्णय लिया 18 मार्च 1922 को महात्मा गांधी जी को जेल भेजा गया था इसी लिए लोगों ने रणनीति बनाई की 18 मार्च 1922 को ही टाउन हाल में तिरंगा फहराया जाएगा। 4 1924 में जब देश भर से स्वयं सेवकों की टोलियाँ भारी मात्रा में सत्याग्रह के लिए नागपुर पहुचने लगी तो ब्रिटिश सरकार सकते में आ गई और उसने घोषणा कर दी की स्वयं सेवकों को नागपुर जाने के लिए रेलवे का टिकट ना दिया जाए। सरकार ने सोचा रेलवे का टिकट नहीं देने से सत्याग्रही रुक जाएँगे लेकिन गांधी जी ने साबरमती आश्रम से ही लोगों को सत्याग्रह के लिए प्रेरणा दी और नए तरीके को अपनाने का आग्रह किया। यह नया तरीका था पथ यात्रा से सत्याग्रह में भाग लेने का।6

1924 में साबरमती आश्रम अहमदाबाद से गांधी जी के आदेश पर 11 स्वयंसेवकों के साथ उनके अध्यक्ष श्री सुरेन्द्र आश्रम अंतेवासी एवं शांतिलाल त्रिवेदी उपाध्यक्ष बन कर नागपुर गए। इस पथ यात्रा का सबसे बड़ा फायदा यह रहा कि सत्याग्रही गाँव-गाँव होकर जब जाते थे तो वहाँ-वहाँ सभाएँ आयोजित करते थे। इन सभाओं के माध्यम से स्वराज्य और स्वतंत्रता का राष्ट्रीय प्रचार होता था और जनता भी इस आंदोलन में जुड़ती रही। सत्याग्रहियों ने लगभग 400 मील की यात्रा को पूरा किया और उन्हे सरदार बल्लभ भाई पटेल का एक पत्र मिला जिसमें उन्होंने सत्याग्रहियों को सम्बोधित करते हुआ लिखा- "victory" "विजय"। इस प्रकार झण्डा सत्याग्रह भारत के अन्य हिस्सों में भी फैला लेकिन अन्य हिस्सों में इसके कारण और आंदोलन का स्वरूप अलग तरह का था। यह आंदोलन नमक सत्याग्रह आंदोलन के रूप में भारत के विभिन्न क्षेत्रों से होकर इसने उतराखंड में भी प्रवेश किया जिस प्रकार समस्त भारत में इस आंदोलन का नेतृत्व गाँधीवादियों ने किया उसी प्रकार उत्तराखंड में भी इस आंदोलन का संचालन उत्तराखण्ड के गांधीवादी लोगों द्वारा ही किया गया था।7

गांधी जी के आदेश पर शांतिलाल त्रिवेदी का आगमन कुमाऊँ मे सन 1928 में हुआ शांति लाल त्रिवेदी को गांधी जी ने रचनात्मक कार्यों को करने के लिए कुमाऊँ में भेजा था शांति लाल त्रिवेदी के पास यह एक ऐसा अनोखा मौका था जिसमे सफल होने के बाद उनका नाम उत्तराखंड के इतिहास मे सदा के लिए अविस्मरणीय हो गया था।8

25 मई को म्यूनसिपाल बोर्ड ने अपने प्रस्ताव के माध्यम से सभी लोगों की आम सहमति लेते हुए एक प्रस्ताव पारित किया कि 26 मई के दिन राष्ट्रध्वज को म्युनिसिपल बोर्ड के दफ्तर में फहराया जाएगा। ब्रिटिश प्रशासन को जब इस बात का अभास हुआ तो उन्होंने हर प्रकार से इसको अवरुद्ध करने का प्रयास किया जिससे अल्मोड़ा की जनता इस बात से बिफर गई और उन्होंने ब्रिटिश प्रशासन का जुलूस निकालना शुरू कर दिया। इसके पश्चात नन्दा देवी मंदिर के प्रांगण मे एक विशाल सभा का आयोजन किया गया।9

जब नमक सत्याग्रह आंदोलन नैनीताल से अल्मोड़ा की और प्रभावशील हुआ तो मोहन जोशी के नेतृत्व में 4 मई 1930 को नन्दा देवी मंदिर के प्रांगण में एक विशाल सभा का आयोजन हुआ और सभा में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार एवं प्रशासन के प्रतिरोध से संबंधित भाषणों का उच्चारण हुआ। 10 अंततोगत्वा अल्मोड़ा में 5 मई 1930 को स्वयं सेवकों की सभा में सर्वसम्मति से प्रस्ताव पास किया गया जिसमें अल्मोड़ा के नगर पालिका भवन में तिरंगा फहराना निश्चय हुआ। लेकिन ब्रिटिश प्रशासन ने बेवजह के कारणों को प्रस्तुत कर तिरंगे को फहराने पर अपनी तीव्र प्रतिक्रिया दी और इसको रोकना चाहा लेकिन मोहन जोशी कहाँ रुकने वाले थे। वे अपने गाँधीवादी साथी शांति लाल त्रिवेदी के साथ मिलकर तिरंगे झंडे को सत्याग्रह की प्रणाली को अपना कर नगर पालिका भवन के शिखर पर फहराने की योजना बनाने लगे। मोहन जोशी एवं शांति लाल त्रिवेदी के नेतृत्व में लगभग 150 सत्याग्रही 26 मई को तिरंगा फहराने के लिए नगर पालिका भवन पर कूच करने गए तो सरकार ने वहा पर धारा 144 की घोषणा कर दी। नगर पालिका स्थल पर गोरखा सैनिक भी पंहुच गए थे और डिप्टी कमिश्नर ने आदेश रूप में कहा "Disperse with five minuts "(सभी लोग 5 मिनट में यहा से प्रस्थान करे अन्यथा गोली से प्राण खोने पड़ेंगे)। मोहन जोशी ने स्वयं सेवकों को संबोधित किया और कहा "वे स्वयं सेवक ही यहाँ रुके जो अपने बलिदान के लिए तत्पर हों"। लेकिन मोहन जोशी और शांति लाल के अतिरिक्त केवल पाँच सत्याग्रही गंगा सिंह बिष्ट, पदमानन्द तिवारी, हरीराम, भुवन चंद्र एवं रवींद्र प्रसाद अग्रवाल के सिवाय कोई भी वहाँ पर खड़ा नहीं रहा।11

गांधीवादी मोहन जोशी ने अपने दृढ़ साहस से अपनी आवाज़ से राष्ट्रगान का उच्चारण करना शुरू कर दिया- "झण्डा ऊँचा रहे हमारा / इसकी शान न जाने पाए / चाहे जान भले ही जाए"12

बाँस की लकड़ी में आरूढ़ राष्ट्रध्वज को पकड़कर सभी लोग स्थल खड़े थे। गोरखा सैनिक शराब पीकर सभी लोगों को अंधाधुंध लठिया भाँजने लगे थे। मोहन जोशी की रीढ़ की हड्डी में खुकरी का एक ज़ोरदार प्रहार हुआ और सिर में गंभीर चोट लगने के कारण वे घटना स्थल पर ही बेहोश हो गए। शांति लाल त्रिवेदी की छाती की तीसरी हड्डी टूटी और गोरखा सैनिकों ने उनके पैर में और सिर में भी काफी घातक प्रहार किया जिसके कारणवश शांति लाल भी वहीं पर मूर्छित हो गए। स्ट्रेचर के माध्यम से सभी लोगों को अस्पताल में पहुँचा दिया गया और वही उनका उपचार किया गया। उपचार के कुछ दिनों उपरांत ही मोहन जोशी घर को चले गए। राष्ट्रध्वज को ना फहरा पाने का दुख उनको अंदर ही अंदर खाए जा रहा था। मोहन जोशी और शांति लाल ने नगरपालिका के अध्यक्ष "रेवरेंड ओकले" को चेतावनी दी कि यदि 27 जून तक नगरपालिका में राष्ट्रीय झण्डा नहीं फहराया गया तो हम दोनों घायल होते हुए भी डांडी में जाकर सत्याग्रह करके झंडे को फहराया देंगे। जनता से अपील की गई कि सत्याग्रही अधिक से अधिक संख्या में बलिदान हेतु अल्मोड़ा पंहुचे और राष्ट्रध्वज के सम्मान और रक्षा के लिए एकजुट हो जाए। भारी संख्या बल में लोग अल्मोड़ा पहुचने लगे थे। गाँवों के प्रधान भी त्यागपत्र के भारी ढेरों के साथ डिप्टी कमिश्नर के पास पहुँचने लगे। प्रशासन इस वातावरण से सकते में आ गया था। इस बलिदान की भावना ने अंततोगत्वा प्रशासन को झुका ही दिया। 25 जून को ही नगर पालिका परिषद के चेयरमैन "ओकामों" ने नगर पालिका परिषद के शिखर पर राष्ट्रध्वज को उसकी शान के साथ फहरा दिया।13

झण्डा सत्याग्रह आंदोलन के बारे में शांति लाल त्रिवेदी ने कुछ इस प्रकार कहा कि, "सत्याग्रह की अभूतपूर्व विजय। इस बार भी जेल जाते जाते बच गया पर हड्डियाँ अवश्य टूटी। पर यह तो मानों ब्रिटिश साम्राज्य की हड्डियाँ टूटी। अल्मोड़ा के इतिहास में क्या उत्तराखण्ड के इतिहास में यह राष्ट्रध्वज सत्याग्रह स्वर्ण अक्षरों मे सदा अमित रहेगा। राष्ट्रध्वज अमर रहे ..... Arise! Awake! Stop not till the goal is reached 14

निष्कर्ष - नमक सत्याग्रह के रूप में शुरुआत हुआ यह आन्दोलन उत्तराखंड के जनआन्दोलनों के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि यह कुली बेगार आंदोलन के उपरांत प्रथम ऐसा जन आंदोलन था जिसकी परिपाटी राष्ट्रीय धरातल से होते हुए क्षेत्रीय धरातल तक प्रसारित हुई जबकि कुली बेगार आंदोलन क्षेत्रीय धरातल से राष्ट्रीय धरातल मे प्रसारित हुआ था। झण्डा सत्याग्रह आंदोलन में उत्तराखंड के गाँधीवादियों ने गांधीवादी सिद्धांतों (अहिंसा एवं सत्याग्रह) को अपनाकर अप्रतिम शोर्य का प्रदर्शन किया, उन्होंने न केवल ब्रिटिश प्रशासन का डटकर मुकाबला किया अपितु जनमानस में अपने आधिकारों एवं अपने राष्ट्रीय ध्वज के स्वाभिमान के लिए क्रांति का बिगुल भी बजाया। गाँधीवादियों ने जनमानस की चेतना को जाग्रत करके उनमें एक नए संचार का संचरण किया जिससे आगे आने वाले वर्षों में सत्य-अहिंसा के सिद्धांतों को अपना कर लोगों ने ब्रिटिश प्रशासन के शोषण से भरे हुए कानूनों का प्रतिकार किया और सविनय अवज्ञा आंदोलन को बल प्रदान किया। इस प्रकार इन गाँधीवादियों के सक्रिय योगदान को उत्तराखंड के आंदोलनों के इतिहास मे कभी भुलाया जा नहीं सकता है।

आभार- इस शोध पत्र को"भारतीय सामाजिक अनुसंधान परिषद'(ICSSR)द्वारा केंद्र प्रशासित पूर्ण-अवधि डॉक्टरेट फेलोशिप कार्यक्रम के तहत वित्त पोषित किया गया है, और लेखक इस अनुदान को स्वीकार करता है।

000

संदर्भ-

1.पचौरी, सुरेश (2011, 1, अक्टूबर) आज भी आधुनिक समाज के लिए प्रकाशस्तंभ की तरह है महात्मा गांधी, अमर उजाला https://www.amarujala.com/columns/blog/gandhi-jayanti-special-principles-of-mahatma-gandhi-is-still-a-lighthouse-for-today-s-modern-society?pageId=1, 2.Chatterji, S. K. (1944). The National Flag: A Selection of Papers, Cultural and Historical. India: Mitra & Ghosh.page 1-2

3.विश्वकर्मा, अंकित (2022, 15, अगस्त) Har Ghar Tiranga: देश मे जबलपुर से शुरू हुआ था झण्डा सत्याग्रह, टाउन हाल में पहली बार 1922 मे पहली बार फहराया था तिरंगा, अमर उजाला, https://www.amarujala.com/photo-gallery/madhya-pradesh/jabalpur/har-ghar-tiranga-flag-satyagraha-was-started-from-jabalpur-in-the-country,

4.मुठ्ये, अर्चना (2022, 12, जून) इतिहास के पन्नों से जब 18 जून 1923 नागपूर में फहराई स्वाधीनता की क्रांति पताका, दैनिकजागरण https://www.jagran.com/lifestyle/miscellaneous-when-the-flag-of-freedom-revolution-was-hoisted-in-nagpur-jagran-special-22796403.html, 5.Jha, Sadan. (2008). t he indian National Flag as a Site of Daily plebiscite. Economic and Political Weekly. 43. 10.2307/40278109.,

6.त्रिवेदी, शांतिलाल - मेरे जेल जीवन की यादें संस्कृति विभाग उत्तराखण्ड पृ.-17।, 7.वही, पृ.-17।, 8. शक्ति अख़बार, अल्मोड़ा, (3 अक्टूबर 1956) पृ.-2।, 9.त्रिवेदी, शांतिलाल - मेरे जेल जीवन की यादें संस्कृति विभाग उत्तराखण्ड पृ.-19।, 10.पाठक, शेखर, संपादक, सरफ़रोशी की तमन्ना (उत्तराखण्ड में स्वाधीनता का दृश्य इतिहास) प्रकाशक चंद्र, जयति, आयुक्त कुमाऊँ मण्डल, नैनीताल 1993, पृ.-82, उद्धृत- स्वाधीन प्रजा, 7 मई 1930।, 11. करगेती, मदन मोहन - स्वतन्त्रता आन्दोलन तथा स्वातंत्र्योत्तर उत्तराखण्ड, बिनसर पब्लिशिंग कं0 देहरादून 2016, पृ.-133-134।, 12. शक्ति 3 अक्टूबर 1959 पृ.-3।, 13.शांतिलाल - मेरे जेल जीवन की यादें, संस्कृति विभाग उत्तराखण्ड, पृ.-20-21।, 14. वही -21।

(शोध आलेख)

रचनावादी उपागम : शिक्षण एवं अधिगम में नवाचार की ओर एक कदम

शोध लेखक : डॉ. अमित गौतम, सह-प्राध्यापक, स्कूल और अनौपचारिक शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान (एनआईईपीए), नई दिल्ली

डॉ. मनीषा, सहायक आचार्या, शिक्षक शिक्षा विभाग, बैकुंठी देवी कन्या महाविद्यालय, आगरा

सारांश- वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020; शिक्षा में सबकी पहुँच, समता, गुणवत्ता, वहनीयता एवं जावाबदेही जैसे मार्गदर्शी उद्देश्यों पर आधारित है विशेष रूप से शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए नई शिक्षा नीति 2020 में कई क्रन्तिकारी परिवर्तन हुए हैं शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए किये गए इन प्रयासों की सफलता शिक्षक एवं छात्र दोनों पर निर्भर करती है क्योंकि शिक्षक और छात्र दोनों ही शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रिया के अभिन्न अंग हैं जो इस प्रक्रिया को संपन्न करते हैं शिक्षक को संपूर्ण शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रिया की योजना छात्र को केंद्र में रख कर करनी चाहिए शिक्षक द्वारा अपनाई जाने वाली विधियाँ छात्र केन्द्रित हों जिससे छात्र सक्रिय होकर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में भाग ले सकें परम्परागत शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में शिक्षक एवं छात्रों के मध्य ज्ञान का संचार एकतरफा होता है जिसमें छात्रों की सहभागिता सक्रिय नहीं होती यहाँ अधिकतर छात्र विषय वस्तु को समझने की अपेक्षा रटने पर अधिक बल देते हैं परम्परागत शिक्षण में छात्र की सहभागिता शिक्षक द्वारा दिए गए व्याख्यान को सुनने तक ही सीमित रहती है जिसके कारण उसकी अन्तर्निहित क्षमताओं का विकास भी बाधित होता है। छात्रों को कक्षागत शिक्षण अधिगम में सक्रिय बनाने के लिए रचनावादी उपागम को एक नवाचार के रूप में प्रयोग किया जा सकता है रचनावाद के अनुसार छात्र पूर्व अनुभवों के आधार पर नवीन ज्ञान का निर्माण करता है। रचनावाद ज्ञान को छात्र की क्रियाशीलता का ही परिणाम मानता है, जिससे छात्रों की सक्रियता बढ़ती है तथा उनमें अन्य क्षमताओं का विकास भी होता है जो कि वर्तमान और भावी जीवन में आने वाली समस्याओं का सामना करने के लिए

आवश्यक है इसलिए यह आवश्यक है कि छात्रों में समस्या समाधान, नवाचार तथा आलोचनात्मक एवं रचनात्मक सोच से सम्बंधित कौशलों का विकास किया जाए इनके विकास में रचनावादी उपागम को एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

प्रस्तावना- अधिगम निरंतर चलने वाली एक सामाजिक प्रक्रिया है जो कि औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों अनुभवों के माध्यम से पूर्ण होती है औपचारिक अनुभव ग्रहण करने का प्रमुख स्थान विद्यालय होते हैं जहाँ शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रिया परम्परागत विधि से संपन्न होती आ रही है। हमारे विद्यालयों में अधिगम के विभिन्न उपागमों में से (जैसे : शिक्षक-केन्द्रित उपागम, छात्र केन्द्रित उपागम, दक्षता केन्द्रित उपागम, विषय - केन्द्रित उपागम, रचनात्मक - उपागम आदि) सर्वाधिक उपयोग किया जाने वाला उपागम शिक्षक केन्द्रित उपागम है शिक्षक केन्द्रित उपागम का सर्वाधिक उपयोग होने के कारणों में मुख्य करण है कि शिक्षक को एक निश्चित समयावधि के भीतर पाठ्यक्रम पूरा करना होता है समय की कमी और विस्तृत पाठ्यक्रम के कारण उनका लक्ष्य विषय वस्तु को छात्रों तक परंपरागत विधियों द्वारा पहुँचाने तक सीमित रह जाता है ऐसी स्थिति में कक्षा में बैठने वाले सभी छात्रों की भूमिका एक निष्क्रिय श्रोता बनने तक ही सीमित रह जाती है और कक्षागत अधिगम छात्र के लिए एक बोझ के सामान बन जाता है इस प्रकार के अधिगम में छात्र रुचि नहीं लेते हैं न ही विषय वस्तु को समझने का प्रयास करते हैं और पढाई गई विषय वस्तु को अधिक समय तक याद रखने में भी असमर्थ रहते हैं

हमारे भारतीय समाज में यह परंपरा चली आ रही है कि अभिवावक, शिक्षक और छात्र अधिगम की सफलता को प्राप्तांकों के रूप में देखते हैं इस स्थिति में विद्यालयों में दाखिल होने वाले सभी छात्र अच्छे प्राप्तांकों से उत्तीर्ण होने की होड़ में लग जाते हैं परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करने के लिए छात्र बिना समझे विषय वस्तु को रटना आरम्भ कर देते हैं जो कि उनके बोध कौशल, आलोचनात्मक एवं रचनात्मक सोच तथा नवाचार कौशल के विकास में बाधित तो होता ही है साथ ही रटी हुई विषय वस्तु अल्प समय में विस्मृत हो जाती है विस्मृति के कारण छात्र आगे की विषय वस्तु को भी ठीक प्रकार समझने में असफल रहते हैं।

वर्तमान स्थिति में परंपरागत कक्षा शिक्षण में शिक्षक छात्र को एक 'कोरी स्लेट' मानकर उसे विषय वस्तु पढ़ाने का प्रयास करते हैं जबकि वास्तविकता यह है कि कक्षा में प्रवेश करने वाला हर छात्र अपने साथ कुछ पुराने अनुभव लेकर आता है, ऐसी स्थिति में छात्र को 'कोरी स्लेट' की संज्ञा देना ग़लत सिद्ध हो जाता है शिक्षक को चाहिए की वह छात्रों के पूर्व अनुभवों को महत्त्व देते हुए कक्षा में ही ऐसा वातावरण विकसित करे जिससे छात्र नवीन अनुभवों को पूर्व अनुभवों से जोड़कर अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं कर सके।

रचनावादी उपागम- रचनावाद पर आधारित कई अधिगम सिद्धान्त प्रतिपादित किये गए हैं जिनमें अर्नस्ट ग्लैसर्सफेल्ड, जीन पियाजे, लेव वायगोतस्की, जेरोम ब्रूनर जॉन डीवी जैसे मनोवैज्ञानिकों का महत्पूर्ण योगदान रहा है। रचनावाद का जनक कहे जाने वाले जीन पियाजे द्वारा दिए गए सिद्धान्त को संज्ञानात्मक रचनावाद के नाम से जाना जाता है इन्होंने बताया कि व्यक्ति अनुकूलन और आत्मसात्करण द्वारा कैसे अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर नवीन ज्ञान का निर्माण करता है (छाबड़ा, चेतना एवं माथुर, 2013) कक्षागत शिक्षण एवं अधिगम में छात्रों के अनुभवों को रचनावादी उपागम द्वारा सम्मिलित किया जा सकता है रचनावादी उपागम वह उपागम है जिसके द्वारा छात्र पूर्व अनुभवों के आधार पर नवीन अनुभवों द्वारा अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं करता है रचनावादी उपागम कक्षा में उपस्थित व्यक्तिगत भिन्नताओं वाले सभी छात्रों की सक्रिय सहभागिता पर बल देता है यहाँ छात्र कक्षा के वातावरण में ही नवीन अनुभवों को ग्रहण कर पूर्व ज्ञान एवं अनुभवों के आधार पर नवीन ज्ञान का निर्माण करते हैं इस उपागम द्वारा छात्र की अन्तर्निहित क्षमताओं का विकास किया जाता है जो कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है यहाँ शिक्षक की भूमिका अनुकूल वातावरण में छात्रों को अधिगम के अवसर उपलब्ध कराना होती है एन .सी .ऍफ़ (2005) ने छात्रों के सीखने को महत्त्वपूर्ण बताया है तथा सीखने के तरीकों पर अधिक बल दिया है पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, एवं पुस्तकें ऐसी हों कि वे छात्रों के पूर्व अनुभवों को सम्मिलित कर उन्हें नवीन ज्ञान के निर्माण की ओर अग्रसित करें ताकि छात्र अपने ज्ञान के निर्माण की जिम्मेदारी स्वयं लेना सीख सकें तथा समस्याओं का समाधान भी कर सकें।

रचनावाद आधारित प्रतिमान- कई शोधकर्ताओं द्वारा विभिन्न विषयों में रचनावाद के प्रभाव का अध्ययन छात्रों की उपलब्धि पर किया गया है विभ्भिन शोधों के परिणाम में पाया गया है कि रचनावादी उपागम से पढ़ाने पर छात्रों के उपलब्धि स्तर में वृद्धि हुई है (उज़ुन्तिर्याकी एवं गेबान, 2004; किम, 2005; कौर एट अल, 2017; कुस्मार्योनो एवं सुयित्नो, 2016) कुछ शोधकर्ताओं ने प्राप्त परिणामों के आधार पर रचनावादी प्रतिमान भी विकसित किये हैं जैसे :ऐटकिन एवं कारप्लस अधिगम चक्र प्रतिमान, 4 ई अधिगम चक्र, बी. एस. सी. एस. 5 ई इंस्ट्रक्शनअल मॉडल, 7 ई अधिगम चक्र आदि।

इन प्रतिमानों पर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शोध कार्य किये गए हैं जिनमें पाया गया है कि रचनावाद आधारित ये प्रतिमान छात्रों के उपलब्धि स्तर पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं (किलावुज़, 2005; कैम्पबेल, 2006; कार्डक एट. अल, 2008; सदी एवं ककिरोग्लू, 2010; याल्सिं एवं बय्राक्सकें 2010, अकिसली, याल्सिं एवं तुर्गुत, 2011)

साहित्यिक समीक्षा करने पर यह पाया गया है कि रचनावादी प्रतिमान आधारित शोध प्रयास अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अधिक किये गए हैं तथा 5 ई अनुदेशात्मक प्रतिमान अत्यधिक उपयोग किये जाने वाले परिमाणों में से एक है रचनावादी उपागमों के छात्रों के उपलब्धि स्तर पर देखते हुए राष्ट्रीय स्तर पर भी

रचनावादी उपागम आधारित प्रतिमानों की दक्षता सम्बंधित शोध कार्य करने की आवश्यकता है।

5 ई अनुदेशात्मक प्रतिमान- सन 1987 में राजर बायबी तथा उनके साथियों ने 5 ई अनुदेशात्मक प्रतिमान का निर्माण किया गया यह प्रतिमान रचनावाद पर आधारित है, जिसके द्वारा छात्र अपने ज्ञान का निर्माण वातावरण से अन्त: क्रिया करते हुए पूर्व अनुभवों के आधार पर करता है यह प्रतिमान छात्र की स्वाभाविक प्रकृति जैसे खोजबीन करना, सवाल पूछना, स्वयं करके सीखना आदि को महत्त्व देता है

इस छात्र केन्द्रित उपागम में शिक्षक की भूमिका एक सलाहकार के रूप में होती है वह छात्र को सहज परिस्थितियाँ, अधिगम सामग्री प्रदान कर उनके अधिगम को मार्गदर्शित करता है तथा उनका निरंतर मूल्यांकन करता रहता है इस प्रकार वह छात्रों को उनकी क्षमताओं को पहचानने तथा नवीन ज्ञान विकसित करने में उनकी सहायता करता है 5 ई अनुदेशात्मक प्रतिमान को कक्षागत शिक्षण एवं अधिगम में नवाचार लाने के लिए सफलता पूर्वक उपयोग किया जा सकता है इसको उपयोग करने से पहले इसके विभिन्न चरणों को समझना अति आवश्यक है 5 ई अनुदेशात्मक प्रतिमान में निम्नलिखित पाँच चरण हैं; (बायबी, आर., 2009) प्रत्येक चरण अंग्रेजी

1. संलग्न करना- अंग्रजी के शब्द "एनगेज" का अर्थ होता है संलग्न करना इस चरण में छात्रों का ध्यान कक्षा में केन्द्रित किया जाता है, जिससे वह शिक्षण अधिगम की ओर आकर्षित हो सकें। पढ़ने से पहले छात्र का ध्यान कक्षा में आकर्षित करना अत्यंत आवश्यक है जिसपर उसका अधिगम निर्भर करता है कक्षा में छात्रों का ध्यान केन्द्रित करने के लिए शिक्षक द्वारा कई विधियाँ अपनाई जा सकती है जैसे कि उनके समक्ष रचनात्मक ढंग से कोई समस्या रखना, कोई तस्वीर दिखाना, कोई उपकरण या मॉडल दिखाना, कोई चल चित्र दिखाना, कोई प्रदर्शन करना आदि

इस सब विधियों का उपयोग करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि यह उनके पूर्व ज्ञान पर आधारित हों इस चरण की सफलता को मापने के लिए शिक्षक को यह देखना है कि क्या उसके छात्रों में कोई जिज्ञासा उत्पन्न हुई ? क्या वे इसके बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते है? तथा क्या वे इस स्थिति से सम्बंधित सवाल पूछ रहे है ? यदि वे ऐसा करते हैं तो उपयोग की गई विधि द्वारा उन्हें कक्षागत शिक्षण एवं अधिगम में संलग्न किया जा चुका है

2. अन्वेषण करना: यह 5 ई अनुदेशात्मक प्रतिमान का दूसरा चरण है यह चरण पूर्णत: क्रियात्मक है, जिसमें कक्षागत अनुभव सम्मिलित होते हैं इस चरण को उपयोग करने के लिए एक शिक्षक के लिए आवश्यक है कि छात्रों को कक्षा में ही अनुभव प्रदान करे जिसके लिए उसका पहले से योजना बनाना आवश्यक है विषय वस्तु से सम्बंधित कक्षागत अनुभव प्रदान करने के लिए शिक्षक को छात्रों का पूर्व ज्ञान तथा स्तर जानना महत्त्वपूर्ण है इस चरण में शिक्षक की मुख्य भूमिका, क्रियाकलाप करने के लिए छात्रों को अनुकूल वातावरण देना तथा उनका मार्गदर्शन करना होती है इस चरण में छात्र अपने पूर्व ज्ञान को आधार बना कक्षागत अनुभवों द्वारा नवीन ज्ञान का निर्माण करते हैं छात्रों के अधिगम को मार्गदर्शित करने के लिए शिक्षक बीच-बीच में सवाल भी पूछ सकते हैं जिनके उत्तर कक्षागत क्रियाकलापों द्वारा भी छात्रों द्वारा खोजे जा सकते हैं कक्षागत गतिविधियाँ करने के लिए शिक्षक छात्रों को छोटे-छोटे समूहों में भी विभाजित कर सकते हैं।

3.समझाना- यह 5 ई अनुदेशात्मक प्रतिमान का तीसरा चरण है यहाँ छात्र पूछे गए प्रश्नों का उत्तर दूसरे चरण में की गई गतिविधियों की सहायता से स्पष्ट करता है उनके उत्तर पूर्ण रूप से औपचारिक नहीं होते, एक छात्र द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को अन्य छात्रों द्वारा आलोचनात्मक रूप से भी सुना जाता है छात्र द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को सुनकर शिक्षक उनकी मिथ्या धारणा एवं अन्य कमियों को ज्ञात कर लेते हैं यहाँ छात्र को अपने अनुसार विषय वस्तु को प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त होता है तथा उनके विचारों का स्वागत किया जाता है।जब छात्र अपने विचारों को स्वयं स्पष्ट करना सीख जाते हैं तो उनमें आत्मविश्वास जागृत होने लगता है इसके साथ साथ आलोचनात्मक ढंग से अपने साथी द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को सुनने से उनकी आलोचनात्मक सोच भी विकसित होती है छात्रों के स्पष्टीकरण को सुनने के बाद शिक्षक द्वारा औपचारिक रूप से विषय वस्तु का स्पष्टीकरण दिया जाता है यह स्पष्टीकरण दूसरे चरण में की गई गतिविधियों से संबन्धित होता है इस चरण में छात्रों की मिथ्या अवधारणा एवं अन्य कमियों को भी दूर किया जाता है विषय वस्तु को समझाने के लिए शिक्षक यहाँ दृश्य श्रव्य सामग्री का उपयोग भी कर सकते हैं

4. विस्तृत करना- 5 ई अनुदेशात्मक प्रतिमान का यह चौथा चरण है जिसका अर्थ अधिगम में विस्तारण से है इसमें सीखी गई विषय वस्तु को छात्र नवीन परिस्थिति में लागू करना सीखते हैं इस चरण में शिक्षक छात्र के समक्ष ऐसी परिस्थितियाँ रखता है जिससे की छात्र सीखे गए ज्ञान को उस परिस्थिति में उपयोग कर सके इसके अतिरिक्त इस चरण में सीखे गए ज्ञान को और अधिक विस्तृत किया जा सकता है नवीन परिस्थिति में ज्ञान को लागू करने से छात्र ज्ञान के व्यवहारिक पक्ष को समझ पाते हैं।

5. मूल्यांकन करना- 5 ई अनुदेशात्मक प्रतिमान का यह अंतिम चरण है जो कि मूल्यांकन से सम्बंधित है इस चरण में छात्र द्वारा सीखे गए ज्ञान का मूल्याङ्कन किया जाता है किसी भी छात्र का यह मूल्यांकन उसके सहपाठियों द्वारा भी किया जा सकता है तथा शिक्षक भी उसका मूल्यांकन करता है सहपाठियों द्वारा मूल्यांकन करने पर छात्र की आलोचनात्मक सोच भी विकसित होती है तथा वह अपने स्पष्टीकरण को और अधिक बेहतर बनाने का प्रयास भी करते हैं रचनावाद मूल्यांकन का उपयोग छात्रों के अधिगम पर केन्द्रित होता है तथा यह रचनात्मक रूप से हर

चरण के साथ चलता रहता है पाठ के अंत में सारांशित मूल्यांकन करने से ज्ञात हो जाता है कि छात्र विषय-वस्तु को समझने में कितना सफल हुए हैं।

निष्कर्ष- कक्षा में प्रत्येक छात्र अपने साथ कुछ न कुछ अनुभव लेकर आता है शिक्षक को चाहिए कि वह के इन पूर्व अनुभवों को आधार बना कक्षागत नवीन अनुभवों द्वारा उसके नवीन ज्ञान का निर्माण करें उन्हें प्रतिकूल वातावरण प्रदान करें जिससे वे अपने ज्ञान का सृजन कक्षा में सक्रिय सहभागिता द्वारा स्वयं कर सकें तथा भविष्य में आने वाली समस्याओं का समाधान करने की क्षमता का विकास कर सकें छात्रों के ज्ञान के प्राकृतिक सृजन में रचनावाद महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है वर्तमान समय में जहाँ ज्ञान का विस्तार तेजी से हो रहा है वहाँ आवश्यक है कि शिक्षक केन्द्रित विधियों से परे छात्र केन्द्रित रचनावाद विधियों का प्रयोग करें जिससे छात्र स्वयं ज्ञान का निर्माण करना सीख सकें शिक्षकों को उनके प्रशिक्षण काल में ही परंपरागत उपागम से हटकर रचनावादी उपागम आधारित प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है रचनावादी उपागम पर आधारित कई प्रतिमान शोधकर्ताओं द्वारा विकसित किये गए हैं जिनकी प्रभाविकता की पुष्टि छात्रों की उपलब्धि पर शोध के परिणामों द्वारा की जा चुकी है यदि हमें अपने छात्रों में समस्या समाधान, रचनात्मक कौशल, आलोचनात्मक कौशल विकसित करने हैं तथा उन्हें स्वयं अपने अधिगम के लिए जिम्मेदार बनाना है तो परंपरागत उपागम को छोड़कर रचनावादी उपागम की ओर विस्थापन करना अतिआवश्यक हो जाता है।

000

संदर्भ- अकिसली, एस., यालिसं, एस.ऐ., एवं तुर्गुत, यू. (2011). इफेक्ट्स ऑफ द 5 ई लर्निंग मॉडल ऑन स्टूडेंट्स अकेडमिक अचीवमेंट्स इन मूवमेंट्स एंड फोर्स इश्यूज. प्रोसीडीया सोशल एंड बिहेवियरल साइंसेज 15, 2459 2462. रिट्राइव्ड फ्रॉम:

https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S1877042811006744,

उजुन्तिर्याकी, ई. एवं गुबेन, ओ. (2004). इफेक्टिवेनेस ऑफ़ इंस्ट्रक्शन बेस्ड ऑन कंसट्रक्टिविस्ट एप्रोच ऑन स्टूडेंट्स अंडरस्टैंडिंग ऑफ केमिकल बॉन्डिंग कॉन्सेप्ट्स. साइंस एजुकेशन इंटरनेशनल, 15 (3), 185-200. रिट्राइव्ड फ्रॉम:

https://etd.lib.metu.edu.tr/upload/3/692046/index,

एन. सी. ऍफ़ (2005). राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली. रिट्राइव्ड फ्रॉम

http://www.ncert.nic.in/rightside/links/pdf/framework/english/nf2005.pdf ऑन8/10/2019,

कार्डक ओ., डिकमेनली, एम., सरीटस, ओ. (2008). इफ़ेक्ट ऑफ 5 ई इंस्ट्रक्शनल मॉडल इन स्टूडेंट्स सक्सेस इन प्राइमरी स्कूल सिक्स्थ ईयर सर्कुलेटरी सिस्टम टॉपिक. एशिया-पसिफ़िक फोरम ऑन साइंस लर्निंग एंड टीचिंग. 9 (2), 1-11. रिट्राइव्ड फ्रॉम

https://www.eduhk.hk/apfslt/download/v9_issue2_files/cardak.pdf

किम, जे.एस. (2005). द इफेक्ट्स ऑफ अ कंसट्रक्टिविस्ट टीचिंग एप्रोच ऑन स्टूडेंट्स अचीवमेंट, सेल्फ कांसेप्ट एंड लर्निंग स्ट्रेटेजीज. एशिया पैसिफिक एजुकेशन रिव्यु 6 (1), 7-19. रिट्राइव्ड फ्रॉम :

https://eric.ed.gov/?id=EJ728823,

किलावुज़, वाई. (2005). द इफ़ेक्ट ऑफ 5 ई लर्निंग साइकिल मॉडल बेस्ड ऑन कंसट्रक्टिविस्ट थ्योरी ऑन टेंथ ग्रेड स्टूडेंट्स अंडरस्टैंडिंग ऑफ एसिड बेस कांसेप्ट. रिट्राइव्ड फ्रॉम:

citeseerx.ist.psu.edu.,

कुसमरयोनो, आई., एंड सुईटनो, एच. (2016). द इफ़ेक्ट ऑफ कंसट्रक्टिविस्ट लर्निंग यूसिंग साइंटिफिक एप्रोच ऑन मैथमेटिकल पॉवर एंड कोन्सेप्टूअल अंडरस्टैंडिंग ऑफ स्टूडेंट्स ग्रेड iv. जर्नल ऑफ फिजिक्स: कांफ. रिट्राइव्ड फ्रॉम

https://iopscience.iop.org/article/10.1088/1742-6596/693/1/012019/pdf,

कौर, आर., सिंह, जी., सिंह, एस. (2017). द इफ़ेक्ट ऑफ सेल्फ लर्निंग माड्यूल्स एंड कंसट्रक्टिविस्ट एप्रोच ऑन अकेडमिक परफॉरमेंस ऑफ सेकेंडरी स्कूल स्टूडेंट्स: अ कम्पेरेटिव स्टडी. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस रिसर्च, 3 (1), 61-63. रिट्राइव्ड फ्रॉम : social science journal.in, छाबड़ा, एस., चेतना एवं माथुर, एम . (2013). कंसट्रक्टिविस्म इन स्कूल्स: इम्प्लीकेशंस फॉर टीचर एजुकेशन प्रोग्राम्स. एजुकेशन इंडिया जर्नल, 2 (1), 98-110. रिट्राइव्ड फ्रॉम

http://www.educationindiajournal.org/home_art_avi.php?path=&id=124,

बायबी, आर. (2009). द बी.एस.सी.एस. 5 ई इंस्ट्रक्शनल मॉडल एंड ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी स्किल्स. अ कमीशंड पेपर प्रीपेयर्ड फॉर अ वर्कशॉप ऑन एक्सप्लोरिंग द इंटरसेक्शन ऑफ साइंस एजुकेशन एंड द डेवलपमेंट ऑफ ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी स्किल्स. रिट्राइव्ड फ्रॉम:

https://sites.nationalacademies.org/cs/groups/dbassesite/documents/webpage/dbasse_073327.pdf

यालिसं, ऍफ़. ए. एवं बग्राक्सकें, एस.(2010). द इफेक्ट्स ऑफ 5 ई लर्निंग मॉडल ऑन प्री-सर्विस टीचर्स अचीवमेंट ऑफ एसिड बेस सब्जेक्ट. इंटरनेशनल ऑनलाइन जर्नल ऑफ एजुकेशनल साइंसेज, 2 (2), 508-531. रिट्राइव्ड फ्रॉम:

https://www.researchgate.net/publication/45258410_The_Effect_of_5E_Learning_Model_on_Pre-Service_Science_Teachers'_Achievement_of_Acids-Bases_Subject,

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020). रिट्राइव्ड फ्रॉम

https://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/Draft_NEP_2019_HI.pdf

ऑन 12/10/2019, सदी, ओ. एवं ककिरोग्लू, जे. (2010). इफ़ेक्ट ऑफ 5 ई लर्निंग साइकिल ऑन स्टूडेंट्स सर्कुलेटरी सिस्टम अचीवमेंट. रिट्राइव्ड फ्रॉम:

//www.research gate.net.

(शोध आलेख)

मैला आँचल में अभिव्यक्त गांधीवादी मूल्य

शोध लेखक : डॉ. राजेश कुमार शर्मा (एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, हंसराज महाविद्यालय)
एवं
सौरभ कुमार सिंह
(शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय), C-3, टीचर्स फ्लैट, हंसराज कॉलेज, मलकागंज दिल्ली-110007
मोबाइल- 9140578464
ईमेल- saurabh72339@gmail.com

साहित्य का अपने समय और समाज से गहरा संबंध होता है। साहित्य अपने समाज में हो रहे परिवर्तनों से प्रभावित भी होता है तथा उसे प्रभावित भी करता है। लेखक सामाजिक जीवन के यथार्थ को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से मानवीय संवेदना के साथ प्रस्तुत करके परिवर्तन की प्रक्रिया को सर्जनात्मक रूप से अभिव्यक्त करता है। इस प्रक्रिया में लेखक को गहरे जीवनानुभवों से गुज़रना पड़ता है जिनसे वह रचनात्मक ऊर्जा ग्रहण करता है। फणीश्वरनाथ रेणु भी अपने जीवनानुभवों और यथार्थ दृष्टि के कारण ही बड़े लेखक माने जाते हैं। उनका जीवन से गहरा लगाव और संवेदना गहरी एवं व्यापक थी।

रेणु का समूचा लेखन वास्तव में एक साधना है जिसका चिर साध्य है बिहार अंचल के निम्नवर्गीय लोगों का विकास और उत्थान एवं साहित्यकार के रूप में ग्रामीण समस्याओं एवं कुरीतियों के प्रति संघर्ष। रेणु की रचनाएँ स्वातंत्र्योत्तर ग्राम्य जीवन के परिवर्तनशील यथार्थ को बहुत गहराई एवं व्यापकता के साथ उद्घाटन करने में सफल हुई हैं। रेणु एक ऐसे ईमानदार रचनाकार हैं जो अपने समय में जीता है। जब-जब जनतांत्रिक मूल्यों पर आघात हुआ तब-तब जन संघर्ष में भाग लेकर उन्होंने अपने लेखन को सार्थकता प्रदान की।

प्रेमचंद ने हिन्दी कथा साहित्य को कृषक तथा मध्यम वर्ग के व्यापक फलक से जोड़कर तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना को उद्भूत किया। प्रेमचंद ने अपने साहित्य के माध्यम से मानवीय

अस्मिता और गरिमा को स्थापित करने का प्रयास किया है। रेणु ने इस परंपरा में अग्रसर होते हुए 1940 के बाद का राजनीतिक ऊहापोह, सांस्कृतिक - सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक दुराव्यवस्था और औपनिवेशिक चालों के प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न ऐतिहासिक सांस्कृतिक गतिविधियों को तीव्रतम स्वर प्रदान किया।

आधुनिक हिन्दी साहित्य पर गांधी का प्रभाव पूरी व्यापकता से विद्यमान है। गांधी जी ने भारत भूमि की स्वाधीनता के लिए अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। वे जनमानस में सत्य, अहिंसा, प्रेम, एकता, शांति, सद्भाव, सर्वधर्म समभाव, समानता एवं मानवता की भावना जागृत करने के लिए सतत संघर्षशील रहे। गांधी जी के चिंतन दर्शन, राष्ट्र नवनिर्माण की कल्पना को हिन्दी साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं का विषय बनाया। डा. सुनील डहाले कहते भी हैं कि-

"भारत की लगभग सभी भाषाओं के साहित्य पर गांधी के मानवतावादी वैचारिक चिंतन का गहरा असर हुआ है। विशेषत: हिन्दी साहित्य और साहित्यकार गांधी दर्शन से सर्वाधिक प्रभावित हुए हैं। महत्मा गांधी को हिन्दी के प्रति विशेष प्रेम था इसलिए उन्होंने हिन्दी के माध्यम से समस्त भारतीयों को एकसूत्र में बाँधने का कार्य किया था। शायद यही कारण है कि हिन्दी साहित्य और साहित्यकार उनके अधिक निकट आ गए और अपनी रचनाओं में गांधी के आदर्शों, विश्वासों एवं दर्शन का प्रसंगानुरूप चित्रण किया।"1

भारत को पराधीनता से मुक्त कराने तथा दुनिया को नया रास्ता दिखाने के लिए गांधी जी ने अपने विचारों, अपने व्यक्तित्व, अपनी भाषा, अपने कार्यक्रमों, विशेषकर अपने भाषणों एवं लेखन के सशक्त माध्यम से भारतीय जनमानस में तथा मुख्यत: लेखकों, साहित्यकारों, पत्रकारों आदि को जागृत किया। गाँवो को गांधी की प्रयोगशाला कहा जा सकता है और इसका ही परिणाम था कि हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद, सियारामशरण गुप्त, फणीश्वरनाथ रेणु, जैनेन्द्र सहित विभिन्न रचनाकारों की रचनाओं में गांधी तथा गांधी का दर्शन पाया जाता है।

भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के नेतृत्वकर्ता महात्मा गांधी ने देश के एक बहुत बड़े वर्ग की वैचारिकी को प्रभावित किया। फणीश्वरनाथ रेणु भी गांधी जी के विचारों से गहरे जुड़े हुए थे, उन्होने अपने जीवन दर्शन में गांधीवादी विचारों को अपनाने के साथ- साथ साहित्यिक कृतियों में भी गांधीवादी विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान की। अद्यतन कतिपय पक्षों के माध्यम से विवेच्य कृति में गांधीवादी मूल्यों को समझने का प्रयास किया जाएगा।

महात्मा गांधी ने नमक सत्याग्रह, असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन, भारत छोड़ो आंदोलन के अतिरिक्त विभिन्न तरह की सामाजिक कुरीतियों जैसे छुआछूत, मैला ढोने की प्रथा का केवल विरोध ही नहीं किया अपितु निजी जीवन में उसका अक्षरश: पालन भी किया। महात्मा गांधी के जीवन मूल्यों जैसे सत्य, अहिंसा, न्याय, ब्रम्हचर्य, दर्शन आदि की मीमाँसा करने के साथ-साथ साहित्य रचना भी की गई। गांधी जी का कहना था कि 'गाँवों की ओर चलो।' गांधी जी की वर्धा योजना इसी का परिणाम है। उन्होंने वर्धा में अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की शुरुआत की और इसके साथ ही साथ गाँव की हस्तकलाएँ और हुनर, खेती से जुड़े कुटीर उद्योग, सफाई और अस्पृश्यता निवारण आदि रचनात्मक कार्यों को भी शुरू किया। ग्रामीण व्यवस्था से जुड़े इस नारे का ही प्रभाव था कि हिन्दी में 'देहाती दुनिया', 'गोदान' और 'मैला आँचल ' का केंद्र भारतीय ग्रामीण जीवन बना।

मैला आँचल के माध्यम से अद्वितीय औपन्यासिक शैली से परिचय कराने वाले फणीश्वरनाथ रेणु भारतीय सामाजिक लोक संस्कृति के मूल रूप को प्रस्तुत करते है। रेणु ने अपनी रचनाओं के माध्यम से यह सिद्ध किया कि उनकी आत्मा गाँवों में बसती है। उन्होंने ग्रामीण जीवन, कार्य व्यापार और लोक संस्कृति के साथ-साथ ग़रीब भूमिहीन किसान, मज़दूर, पूँजीपति, ज़मींदार और राजनेता आदि के भाव-विचार को अत्यंत कुशलता पूर्वक ढंग से उकेरा है। रेणु के प्रथम उपन्यास मैला आँचल के संबंध में डा. रामदरश मिश्र लिखते हैं कि - "पिछड़े हुए इलाकों को उपन्यास का क्षेत्र बनाकर उपन्यासकार द्वारा उपेक्षित जीवन के प्रश्नों, आकांक्षाओं, गरीबी और अशिक्षाजन्य विषमता एवं असुंदरता का अंकन होता है और इन सबके बीच भी मानवीय संवेदना की छवि को अंकित कर उधर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। इस प्रकार हमारे सौंदर्यबोध और संवेदना का विस्तार करता है। अनदेखी जीवन छवियाँ हमारे सामने उजागर हो उठती है।"2

मैला आँचल का प्रकाशन कल 1954 ई का है। महात्मा गांधी की मृत्यु से लेकर प्रथम प्रजातांत्रिक चुनाव तक की गतिविधि से लेखक प्रभावित है। मैला आँचल में एक ओर गिरते हुए जीवन मूल्यों की जीवंत चर्चा है तो दूसरी ओर एक साधारण सा पिछड़े गाँव मेरीगंज में विभिन्न राष्ट्रीय राजनीतिक दलों का बढ़ता हुआ प्रभाव देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इन राजनीतिक दलों की बढ़ती हुई सरगर्मी से मेरीगंज का वातावरण भी गर्म हो गया है।

मैला आँचल का कथा क्षेत्र स्वतंत्र भारत का गाँव और उसका नया संघर्ष है। गाँव के जीवन में दुहरा संघर्ष है। एक ओर तो गाँव की जनता देश की स्वतंत्रता का सही उपभोग करने के लिए, तो दूसरी ओर देश के विकास में भागीदार बनने के लिए अपनी उन समस्त समस्याओं, संस्कारों और बाधाओं से संघर्ष कर रही है जो उसकी प्रगति में बाधक है। उपन्यास में सन् 1942 ई. से 1948 ई. तक की मेरीगंज गाँव में होने वाले राजनीतिक हलचलों और देशव्यापी आंदोलन की लहर, उसके प्रभाव, वहाँ के संगठन, बोलचाल, सामाजिक - आर्थिक आंदोलनों आदि का व्यापक चित्रण हुआ है।

लोकचेतना से संपृक्त रचनाकार रेणु के लेखन की विशेषता तो यह कि उनमें गंवई स्पर्श के साथ-साथ मिट्टी की सौंधी सुगंध पायी जाती है। ग्रामीण परिवेश का चित्रण करते हुए जैसी जीवंतता व मानसिक बिंब उनमें दिखलायी पड़ता है वह पाठक वर्ग को

ग्रामीण जीवन के और अधिक नज़दीक पहुँचा देता है। सामान्यत: यह कहा जाता है कि प्रेमचंद के बाद फणीश्वरनाथ रेणु ही हैं जिन्होंने उनकी परंपरा को आगे बढ़ाने के साथ-साथ समृद्धि भी प्रदान की। परमानंद श्रीवास्तव रेणु की सराहना करते हुए लिखते भी हैं कि- "भारतीय उपन्यास की अपनी खासियत है। इसकी विशिष्ट पहचान निर्धारित करने में जिन उपन्यास लेखकों की कृतियों से विशेष प्रेरणा मिली है उनमें फणीश्वरनाथ रेणु अन्यतम हैं।"3

इस उपन्यास में किसी व्यक्ति को केंद्र में नहीं रखा गया है बल्कि संपूर्ण अंचल को ही केंद्र में रखा गया है। यह आज़ादी से पूर्व तथा आज़ादी के पश्चात तक की मेरीगंज की जीवन गाथा है। रेणु मैला आँचल की भूमिका में लिखते भी हैं कि- "यह है मैला आँचल एक आंचलिक उपन्यास, कथांचल है पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है, इसके एक ओर है नेपाल, दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिम बंगाल।"4

प्रेमचंद के गोदान में वर्णित गाँव सेमरी और बेलारी जिस तरह उत्तर भारत के किसी भी गाँव का प्रतीक़ हो सकते हैं उसी तरह पूर्णिया ज़िले के मेरीगंज गाँव की कहानी अन्य गाँव की कहानी हो सकती है। मैला आँचल में पायी जाने वाली विभिन्न तरह की सामाजिक विद्रूपताएँ जैसे अंधविश्वास, टोना-टोटका, सामाजिक विसंगतिया, मलेरिया व हैज़ा, कालाजार जैसी बिमारियाँ, जातिगत टोलियाँ आदि मात्र मेरीगंज की विशेषता नहीं है बल्कि अधिकतर भारतीय गाँवों की विशेषता है।

मेरीगंज में जातीय कट्टरता इतनी अधिक विद्यमान है कि निम्नवर्गीय संथालों को गाँव में शामिल नहीं किया जाता था। कायस्थ व राजपूत जैसी टोलियाँ संपन्न जातियों में शामिल थी जिनका प्रयास रहता था कि वह संपूर्ण गाँव पर अपना नियंत्रण बनाए रखें। ग्रामीण जनता अशिक्षा से ग्रसित थी और गरीबी, अंधविश्वास तथा पिछड़ेपन से जूझ रही थी इसके बावजूद इसी गाँव में तत्कालीन भारत के ग्रामीण क्षेत्र के लिए आधुनिक विकास का द्योतक पोस्ट ऑफिस, डिस्पेंसरी तथा रेलवे स्टेशन भी था। यही कारण है कि रेणु मैला आँचल के दोनों पक्षों के संबंध में स्पष्टीकरण भूमिका में ही दे देते हैं -

"इसमें फूल भी हैं, शूल भी हैं, धूल भी है, कीचड़ भी है, गुलाल भी है, कीचड़ भी है, चंदन भी है, सुंदरता भी है, कुरूपता भी है। मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।"5

रेणु की रचना मैला आँचल में महात्मा गांधी के विचारों का प्रभाव दिखलायी पड़ता है। बहुजन हिताय, ग्राम स्वराज, गरीबी को हटाने के लिए सर्वोदय, अंत्योदय जैसे विभिन्न गांधीवादी दर्शनों का प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में मैला आँचल में दिखलायी पड़ता है। गांधी शहरी जीवन में भले ही एक महापुरुष हों परंतु वह ग्रामीण जीवन में दिव्य पुरुष थे, जिनकी कही बातें ईश्वर की बातें होती थी। उपन्यास में लक्ष्मी कोठारिन भगत बालदेव जी को समझाती हुई कहती है कि-

"महतमा जी के पंथ को मत छोड़िये, बालदेव जी! महतमा जी अवतारी पुरुष हैं। जिस नैन से महातमा जी का दर्शन किया है उसमें पाप को मत फैलने दीजिए। जिस कान से महतमा जी के उपदेश को ग्रहण किया है, उसमें माया की मीठी बोली को मत जाने दीजिए। महतमा जी सतगुरु के भगत हैं।"6

लक्ष्मी कोठारिन के इस बात से पता चलता है कि गांधी जी मात्र राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का प्रयास नहीं कर रहे थे बल्कि व्यक्ति के अंदर नैतिक विकास को भी बढ़ावा देकर एक उच्च व्यक्तित्व का निर्माण कर रहे थे।

गांधी जी द्वारा निर्मित व्यक्ति सत्य पर टिका हुआ था तथा माया से कोसों दूर होने के साथ साथ पाप का भी निषेध करता था। विवेच्य कृति में महात्मा गांधी का प्रभाव इतना अधिक था कि गांधी भक्त बालदेव व चुन्नी गोसाईं को महत्मा जी का भर (देवी देवता का सवार होना) होता था। सेवादास जो कि मठ का महंथ है उसे सतगुरू साहेब सपने में दर्शन देते है और अपना शिष्य बतलाते है। वह गांधी जी की पैरवी करते हुए कहते है कि-

"तुम्हारे गाँव मे परमार्थ का कारज हो रहा है और तुमको मालूम नही ? गांधी तो मेरा ही भगत है। गांधी इस गाँव में इसपिताल खोलकर परमार्थ का कारज कर रहा है। तुम सारे गाँव को एक भंडारा दे दो।"7

मेरीगंज की घुटनभरी ज़िंदगी में राजनीतिक चेतना गांधीवादी बालदेव, बावनदास और समाजवादी पार्टी के कालीचरण के माध्यम से उभारी गई है। हिंसा की बात होने पर बालदेव उपवास और अनशन करता है। यह विवेच्य रचना गांधीवाद मूल्यों की चरम अभिव्यक्ति है। रेणु के द्वारा मैला आँचल में एक छोटे से गाँव में उस समय के सभी दल के नेताओं जैसे कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट, जनसंघ, सर्वोदय तथा कांग्रेसी आदि को अपने समर्थकों के साथ उपस्थित कर देना इस बात का प्रमाण है कि रेणु राजनीतिक सरगर्मी से पिछड़े ग्रामीणों को अलग नहीं होने देते।

गांधी के समर्थकों में मैला आँचल के दो पात्रों का योगदान अत्यंत ही सराहनीय माना जाता है। एक है बालदेव और दूसरे हैं बावनदास। बालदेव कम पढ़े लिखे इंसान थे, रेणु जी ने जानबूझकर मेरीगंज के कांग्रेस पार्टी के सर्वेसर्वा के रूप में बालदेव जैसे भोले भाले पात्र की रचना की है। इस उपन्यास में रेणु उसे इस प्रकार से प्रस्तुत करते हैं कि हास्यास्पद स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, फिर भी गाँव के लोग बालदेव जी के प्रति अपनी प्रशंसा और सम्मान के भाव व्यक्त करते हैं।

जब बालदेव जी कालीचरण और उसकी पार्टी के हरगौरी सिंह से लड़ने के लिए अनशन करता है तो लोग उसे गियानी आदमी कहते हैं और इस गियानी आदमी के मुँह से साधरण हिन्दी के शब्द जैसे अंडोलन, अनसन और हिंसावाद आदि भी उच्चारित नहीं हो पाते। रेणु जी ने इन सभी कार्य व्यवहारों से यह बतलाया हैं कि लोग गांधी जी के शब्दों और आचरणों से प्राभावित होने लगे है और उसके माध्यम से जनता पर प्रभाव डालकर बड़े नेता बन गए है। इस कारण से मैला आंचल गांधीवाद मूल्यों के ह्रास का भी सशक्त दर्पण है।

गांधी जी का नाम लेकर मैदान में कूद जाने पर समाज सम्मान देता था। गांधी की

सत्यवादिता, सेवा भावना, त्याग और ईमानदारी के प्रति जनसमूह में अंधविश्वास था। यही कारण है कि बालदेव अपनी तमाम कमियों के बावजूद मेरीगंज वासियों की नज़र में दूसरे गांधी के रूप में सम्मानित और प्रतिष्ठित हैं। बालदेव में नेता बनने की उच्चाकांक्षा है और यश प्राप्त करने की भूख है। बड़े-बड़े नेताओं के बीच उनकी कद्र है। बालदेव बावनदास के पास से उन पत्रों की चोरी करता है, जो बावनदास के साथ बड़े-बड़े नेताओं का पत्राचार हुआ था। लेखक ने सत्य को दिखाने का प्रयास किया है कि गांधी जी के न होने पर भी गांधी जी का प्रभाव समाज पर छाया हुआ है। बालदेव जी के माध्यम से गांधी के प्रति जन समुदाय की निष्ठा की नींव गहरी जमी हुई है।

मैला आँचल का गांधीवाद विचारों से संबंधित दूसरा महत्त्वपूर्ण पात्र बावनदास है। बावनदास का बलिदान बेकार चला जाता है। महात्मा गांधी का बलिदान जिस तरह व्यर्थ होता है उसको देखकर रेणु का हृदय क्षोभ से भर उठता है और मैला आँचल के प्रतिनिधि पात्र बावनदास की मृत्यु उसी दु:ख का स्मृति चिन्ह है। बावनदास पर गांधी के व्यक्तित्व की अमिट छाप है।

बावनदास के रूप में लेखक ने महात्मा गांधी के बलिदान की स्मृति को झकझोर कर जाग्रत कर डाला है। मैला आँचल में चित्रित अनैतिक एवं भ्रष्ट कार्य कलापों द्वारा लेखक ने यही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि जो थोड़ी सी जागरूकता गांधी जी के प्रयत्नों से उत्पन्न हुई थी, वह स्वंत्रता के पश्चात अनैतिक एवं भ्रष्ट्र लोगों के हाथ में पड़कर सत्तारूढ़ राजनीतिज्ञों के संरक्षण में केवल अहित करने में सफल हुई।

चंदे के पैसे से 2 पैसे की जलेबी खाने के बाद बावनदास को पश्चाताप हुआ और उन्होंने तुरंत गले में हाथ डालकर कै किया और साथ ही प्रायश्चित के लिए दो दिनों का उपवास भी रखा। इसी तरह नमक सत्याग्रह के दौरान बावनदास के मन में स्वाभाविक आकर्षण एक तेज-तर्रार नेत्री के प्रति हुआ और उसी दौरान गांधी की तस्वीर पर निगाह जाने पर घोर पश्चाताप हुआ इसके बाद बावनदास बेहोश होकर गिर पड़े। होश में आने के बाद बावनदास ने प्रायश्चित व आत्मशुद्धि के लिए सात दिनों तक का उपवास रखा। बावनदास गांधी जी के प्रति स्वयं को पूर्णत: समर्पित करते हुए कहते हैं कि- "क्या होगा यह शरीर रखकर ? चढ़ा दो गांधी बाबा के चरण में, भारतमाता की ख़ातिर"8

उपन्यास के अंतिम हिस्से में बावनदास की हत्या मात्र महात्मा गांधी की हत्या नहीं है बल्कि यह गांधीवाद मूल्यों की हत्या का प्रतीक है। रेणु यह दिखलाने का प्रयास करते है कि आजादी के पश्चात देश की राजनीति से किस तरह गांधीवादी मूल्यों को विदा किया जाने लगा।

रेणु ने दिखाया है कि किस तरह से लूटखसोट, जमाखोरी और कालाबाजारी आदि ने भारत की एकता की जड़ों को खोखला कर दिया है। राजनीति में शामिल होने वाले लोगों को देश सेवा से कोई लगाव नही रह गया था बल्कि सत्ता सुख का आनंद लेने के लिए वह सब राजनीति में शामिल होने लगे थे। यही मुख्य कारण है जिससे भारत माता जार-बेज़ार होकर रो रही है।

उपन्यासकार मैला आँचल में लिखते भी हैं कि- "वैसे बावनदास को पता है इसका कारण। वह इसकी वजह बताते हुए सुराजी साथी बालदेव से कहता है- और सुनोगे? दुलारचंद कापरा को जानते हो ना? वही जुआ कंपनीवाला एक बार नेपाली लड़कियों को भगाकर लाते समय जो जोगबनी में पकड़ा गया। वह कटहा थाना के सेक्रेटरी है।"9

इस उपन्यास में लेखक ने डॉ. प्रशांत के माध्यम से भविष्य की संभावनाओं का आशावादी परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किया है और आशा की है कि परिश्रम और साधना से देश की मूल्यों की गिरावट को दूर किया जा सकता है। वह एक आदर्शवादी स्वप्नदृष्टा है क्योंकि वह इस समाज को समुन्नत देखना चाहता है जिसमें विकास का तत्व मौजूद हो। डॉ. प्रशांत कहता है-

"जिस दिन धनी, ज़मींदार, सेठ और मिल वालों की लोग राह चलते कोढ़ी और पागल समझने लगेंगे उसी दिन असल सुराज हो जाएगा।"10 इस उदाहरण से प्रतीत होता है कि लेखक यहाँ पर आशावादी हो गए हैं और एक आदर्श की स्थापना करते हैं।

समग्रत: मनुष्य को मनुष्य बनाना गांधी का मूलमंत्र रहा है और रेणु के विचार दर्शन का भी मूलमंत्र यही है। वे दु:खी हुए, मोह भंग की स्थितियों से भी उनको गुज़रना पड़ा, फिर भी उन्होंने यथार्थ से कतरा जाने की बात कभी नहीं सोची। इसीलिए रेणु का समूचा साहित्य एक ईमानदार राजनीतिक योद्धा के अनुभवों की परिणति है।

रेणु की रचनाशीलता स्वतंत्र भारत के परिवर्तनशील यथार्थ एवं चेतन की सूक्ष्म एवं संवेदनशील अभिव्यक्ति में समर्थ एवं सफल हुई है। वर्तमान समय में मैला आँचल में अभिव्यक्त मानवतावादी मूल्यों, नैतिकता, स्वयं पर आत्म नियंत्रण तथा उत्साह के माध्यम से स्वयं के व्यक्तित्व के साथ- साथ राष्ट्र के स्तर को नवीन ऊँचाई तक ले जा सकते हैं और एक नई पहचान कायम कर सकते हैं। मैला आँचल जहाँ हमें तत्कालीन परिस्थितियों के विषय मे विस्तार से बताता है तो वहीं समस्याओं के निवारण हेतु स्वराज्य, अंत्योदय जैसे गांधीवादी मूल्यों के माध्यम से राह भी दिखलाता है।

000

संदर्भ- 1. हिन्दी उपन्यास एवं गांधी दर्शन- डॉ.. सीताराम मीणा, International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science, Jan-Mar, 2022, पृष्ठ संख्या-100, 2.आंचलिकता के जीवंत चित्रकार रेणु, कलानाथ मिश्र, साहित्य यात्रा पत्रिका, अप्रैल-जून, 2021, पृष्ठ संख्या-8, 3.वही, पृष्ठ संख्या-9, 4.भूमिका, मैला आँचल-फणीश्वर नाथ रेणु, राजकमल पेपरबैक्स, 39वां संस्करण, पृष्ठ संख्या-7, 5.वही, पृष्ठ संख्या-7, 6.वही, पृष्ठ संख्या-225, 7.वही पृष्ठ संख्या- 28, 8.वही, पृष्ठ संख्या-141, 9.वही, पृष्ठ संख्या-140, 10.वही, पृष्ठ संख्या-336,

(शोध आलेख)

भारत में सोशल मीडिया चुनौतियाँ: फेक न्यूज और उसके समाधान

शोध लेखक : दीपक सिंह (शोध छात्र), राजनीति विज्ञान विभाग, चैधरी चरण सिंह यूनिवर्सिटी, मेरठ, उत्तर प्रदेश - 250001

एवं

आयुषी थलवाल (शोध छात्रा), राजनीति विज्ञान विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल यूनिवर्सिटी, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड- 246174

ईमेल-ayushi.thalwal@gmail.com

मोबाइल- 7505668341

सार- सोशल मीडिया ने सूचना के स्रोतों को विकेंद्रीकृत कर दिया है, लेकिन उत्पन्न होने वाली जानकारी की प्रामाणिकता के लिए चुनौतियाँ पैदा कर दी हैं। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों पर ग़लत सूचना और दुष्प्रचार बड़े पैमाने पर होता है, जो तीसरे पक्ष के तथ्य-जाँचकर्ताओं द्वारा सत्यापित होने का भी दावा करते हैं। यह समस्या ख़ासतौर पर भारत में बढ़ती है। भारत की साक्षरता दर 74 प्रतिशत है जो अपने आप में एक चुनौती है, साथ ही डिजिटल साक्षरता भी बेहद निराशाजनक है। डीप फेक जैसी तकनीकें लगभग पूर्णता के साथ लोगों की नकल करने में सक्षम हैं, जिससे उस पर विश्वास करना बहुत कठिन है जो हम सोशल मीडिया पर देखते हैं, इस पृष्ठभूमि में भारत को फेक न्यूज से निपटने के लिए सतर्क और सक्रिय रहने की ज़रूरत है। इस लेख में यह सुझाव दिये गए हैं कि समाचार चैनलों को फ़र्जी ख़बरों से निपटने के लिए सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर समर्पित चैनल चलाने चाहिए। साथ ही, कुछ प्रमुख फ़र्जी ख़बरों को का सच सामने लाने के लिए प्रत्येक केबल समाचार चैनल पर एक कार्यक्रम भी चलाया जा सकता है। इसके साथ फेक न्यूज़ से लड़ने के लिए और भी सुझाव दिये गए हैं।

कुंजी शब्द: सोशल मीडिया, फेक न्यूज, सूचना, प्रामाणिकता

परिचय- सोशल मीडिया के आगमन ने सूचना प्रसारित करने के तरीके में क्रांति ला दी है, जिससे एक विकेन्द्रीकृत परिदृश्य सक्षम हो गया है जहाँ व्यक्ति आसानी से सामग्री की एक विस्तृत श्रृंखला को साझा और प्राप्त कर सकते हैं। हालाँकि सूचना के इस लोकतंत्रीकरण के अपने फायदे हैं, इसने उत्पन्न होने वाली जानकारी की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता के

संबंध में महत्त्वपूर्ण चुनौतियों को भी जन्म दिया है। 23 मई 2023 को, पेंटागन पर हमले की एक तस्वीर सोशल मीडिया पर वायरल हो गई और S & P इंडेक्स में 30 अंकों की गिरावट आई।1 यह सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर मौजूद फेक न्यूज के बड़े पैमाने पर हमले में नवीनतम है।

इस लेख के प्रयोजन के लिए, हम फेक न्यूज को मिसिनफॉर्मेशन और डिसिंफॉर्मेशन के रूप में परिभाषित करेंगे, जो सोशल मीडिया प्लेटफार्मों पर प्रसारित होती है, जो अक्सर तेजी से फैलती है और उपयोगकर्ताओं के बीच व्यापक भ्रम और अविश्वास पैदा करती है। मिसिनफॉर्मेशन आकस्मिक झूठ है और डिसिंफॉर्मेशन जानबूझकर बनाया गया झूठ है, इन्हें अक्सर सोशल मीडिया पर प्रभावशाली लोगों द्वारा बिना सत्यापन के प्रसारित किया जाता है।2 इस जानकारी के स्रोत अपारदर्शी हैं और अक्सर इनका सत्यापन और ख़बरों की तरह न होकर, उनके द्वारा प्राप्त आकर्षण के परिणामस्वरूप ही उनकी प्रमाणिकता का सबूत बन जाता है।

दुनिया में सबसे बड़ी आबादी के साथ, भारत के लिए चुनौतियाँ विशेष रूप से इसके विशाल और विविध जनसंख्या आधार के कारण बढ़ जाती हैं, जो बड़े पैमाने पर आतंक पैदा करने की क्षमता को बढ़ाता है। इस पृष्ठभूमि में फेक न्यूज़ के ख़तरे से निपटने के लिए पारंपरिक मीडिया, सरकार और नागरिक समाज को एक सक्रिय दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

शोध पद्धति- यह लेख भारत में फेक न्यूज से उत्पन्न चुनौतियों का पता लगाने और इस मुद्दे के समाधान के लिए एक गुणात्मक शोध पद्धति का उपयोग करता है। शोध डिजाइन में साहित्य समीक्षा, शोध लेख, रिपोर्ट और अन्य प्रासंगिक प्रकाशनों सहित माध्यमिक स्रोतों से डेटा का संग्रह और विश्लेषण शामिल है। यह दृष्टिकोण विषय पर मौजूदा ज्ञान और अंतर्दृष्टि की व्यापक जाँच की अनुमति देता है। डेटा संग्रह प्रक्रिया मुख्य रूप से शैक्षणिक डेटाबेस, ऑनलाइन रिपॉजिटरी और प्रतिष्ठित वेबसाइटों सहित माध्यमिक स्रोतों से किया गया है। ये स्रोत भारत में फेक न्यूज से निपटने के लिए व्यापकता, प्रभाव और रणनीतियों पर प्रचुर मात्रा में जानकारी और विश्लेषण प्रदान करते हैं। एकत्र किए गए डेटा को महत्त्वपूर्ण मूल्यांकन और विश्लेषण करने के बाद, जिसमें सामान्य विषयों, पैटर्न और प्रमुख निष्कर्षों की पहचान करने पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

शोध के उद्देश्य- 1. भारत में फेक न्यूज की व्यापकता और प्रभाव की जाँच करना।

2. भारत में फेक न्यूज के प्रसार में योगदान देने वाली चुनौतियों और कारकों की पहचान करना।

3. भारत में फेक न्यूज से निपटने के लिए प्रभावी रणनीतियों और हस्तक्षेपों का सुझाव देना।

सूचना का विकेंद्रीकरण- सोशल मीडिया प्लेटफार्मों द्वारा लाए गए सूचना के विकेंद्रीकरण ने व्यक्तियों के सूचना तक पहुँचने और साझा करने के तरीके को मौलिक रूप से बदल दिया है। 3 अतीत में, पारंपरिक मीडिया आउटलेट द्वारपाल के रूप में कार्य करते थे, समाचारों के प्रवाह को नियंत्रित करते थे और यह निर्धारित करते थे कि जनता की पहुँच किस तक है। हालाँकि, सोशल मीडिया के उदय के साथ, शक्ति की गतिशीलता बदल गई है, जिससे अधिक विकेंद्रीकृत और लोकतांत्रिक सूचना परिदृश्य की अनुमति मिली है।

सोशल मीडिया प्लेटफार्मों ने जीवन के सभी क्षेत्रों के व्यक्तियों को वैश्विक दर्शकों के साथ अपने विचार, राय और अनुभव साझा करने, सामग्री निर्माता बनने में सक्षम बनाया है। इससे विविध आवाजें और दृष्टिकोण सामने आए हैं जो पहले हाशिए पर थे या अनसुने थे।4 उपयोगकर्ताओं के पास अब समाचार कहानियों, घटनाओं और चर्चाओं से सीधे जुड़ने की क्षमता है, वे अपनी अनूठी अंतर्दृष्टि और प्रमुख विचारो को चुनौती दे रहे हैं। इसके साथ ही, सूचना के विकेंद्रीकरण ने भौगोलिक बाधाओं को तोड़ने में भी मदद की है। अतीत में, सूचना तक पहुँच अक्सर किसी के स्थान या पारंपरिक मीडिया आउटलेट्स की पहुँच तक सीमित होती थी। सोशल मीडिया के साथ, इंटरनेट कनेक्शन वाला कोई भी व्यक्ति समय और स्थान की बाधाओं से मुक्त होकर, दुनिया भर की जानकारी तक पहुँच सकता है। इसने अंतर-सांस्कृतिक समझ, सहयोग और वैश्विक स्तर पर विचारों को साझा करने के नए अवसर खोले हैं।

इसके अलावा, सोशल मीडिया की विकेंद्रीकृत प्रकृति ने वास्तविक समय की रिपोर्टिंग और नागरिक पत्रकारिता की अनुमति दी है।5 महत्त्वपूर्ण घटनाओं या संकटों के दौरान, ज़मीन पर मौजूद व्यक्ति प्रत्यक्ष विवरण, चित्र और वीडियो साझा कर सकते हैं, वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रदान कर सकते हैं और अक्सर आधिकारिक विचारों को चुनौती देते है जैसा कि अमेरिका में जॉर्ज फ्लॉयड की मृत्यु के दौरान देखा गया था। इससे समाचार चयन में तात्कालिकता और प्रामाणिकता पर अधिक ज़ोर दिया जा रहा है, क्योंकि लोग तेजी से नवीनतम अपडेट के लिए सोशल मीडिया की ओर रुख कर रहे हैं।

सोशल मीडिया पर सूचना के विकेंद्रीकरण से जहाँ कई लाभ हुए हैं, वहीं इसने चुनौतियों को भी जन्म दिया है। उपलब्ध जानकारी की प्रचुरता से जानकारी की अधिकता हो सकती है और ग़लत सूचना या फेक न्यूज से विश्वसनीय स्रोतों को पहचानना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। तथ्य-जाँच प्रक्रियाओं की कमी के परिणामस्वरूप ग़लत या भ्रामक जानकारी तेजी से फैल सकती है, जिससे संभावित रूप से भ्रम, ध्रुवीकरण और नुकसान हो सकता है।

फेक न्यूज और भारतीय परिपेक्ष- भारत की साक्षरता दर 74 प्रतिशत है, जो अपने आप में अनूठी चुनौतियाँ खड़ी करती है।6 कम साक्षरता दर, दुनिया में इंटरनेट डेटा की सबसे सस्ती पहुँच और सोशल मीडिया अनुप्रयोगों तक पहुँच में आसानी के कारण, भारत में फेक न्यूज के प्रति उच्च संवेदनशीलता है। बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे घनी आबादी वाले क्षेत्रों में साक्षरता चिंताजनक रूप से कम है, क्रमश: 61 प्रतिशत और 67 प्रतिशत डीप फेक जैसी प्रौद्योगिकियों के उद्भव के कारण

यह उन्हें सोशल मीडिया पर फर्जी खबरों के लिए आसान लक्ष्य बनाता है।7 अक्सर वैचारिक या राजनीतिक प्रेरणाओं से प्रेरित झूठे विचार तेजी से लोकप्रियता हासिल कर सकते हैं और सार्वजनिक चर्चा को प्रभावित कर सकते हैं। ग़लत सूचना के कई उदाहरण देखे गए हैं, जिनमें राजनीतिक धोखाधड़ी और अफवाहों से लेकर स्वास्थ्य संबंधी मिथक और सांप्रदायिक तनाव तक शामिल हैं।

कई अध्ययनों और रिपोर्टों ने भारत में फेक न्यूज की सीमा पर प्रकाश डाला है।8 माइक्रोसॉफ्ट के अनुसार, भारतीयों को ऑनलाइन फेक न्यूज का सामना करने की अधिक संभावना है।9 इसके अलावा, फेक न्यूज की फैलने की गति तथ्य-जाँचकर्ताओं और इसके प्रसार को रोकने का प्रयास करने वाले अधिकारियों के लिए चुनौतियाँ खड़ी करती है। चूंकि ग़लत सूचना उसे रोकने के उपायों की तुलना में तेजी से फैलती है, इसलिए जनता की राय पर इसका प्रभाव दूरगामी हो सकता है।10

भारत में फर्जी समाचार की समस्या को प्रभावी ढंग से संबोधित करने के लिए, इसके प्रसार में योगदान देने वाले तकनीकी कारकों को समझना महत्त्वपूर्ण है। डीप फेक, एक तेजी से आगे बढ़ने वाली तकनीक, एक विशेष रूप से घातक खतरा पैदा करती है। ये परिष्कृत जोड़-तोड़ यथार्थवादी वीडियो और ऑडियो सामग्री बनाने के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता एल्गोरिदम का उपयोग करते हैं जो वास्तविक लगती है लेकिन मनगढ़ंत होती है।11 सार्वजनिक हस्तियों की नकल करने और झूठी कहानियों को प्रसारित करने की डीप फेक की क्षमता वास्तविक और बदली गई सामग्री के बीच अंतर करने में एक महत्त्वपूर्ण चुनौती पेश करती है।

फेक न्यूज का प्रभाव- भारत में फेक न्यूज का प्रभाव इसके आरंभिक प्रसार से आगे बढ़कर समाज के विभिन्न पहलुओं में फैल गया है और एक स्थायी छाप छोड़ गया है। सबसे चिंताजनक परिणामों में से एक, ध्रुवीकरण की संभावना है।12 जब झूठी जानकारी जंगल की आग की तरह फैलती है, तो इसमें विभिन्न धार्मिक, जातीय या राजनीतिक समूहों के बीच तनाव पैदा करने की क्षमता होती है। मौजूदा विभाजनों का फायदा उठाकर, फेक न्यूज दुश्मनी और हिंसा भड़का सकती हैं, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक सद्भाव और स्थिरता का क्षरण हो सकता है। सांप्रदायिक दंगों, भीड़, हिंसा और घृणा अपराधों की परेशान करने वाली घटनाओं को फेक न्यूज के प्रसार के लिए जिम्मेदार ठहराया गया है, जो इस व्यापक मुद्दे से निपटने की तत्काल आवश्यकता को रेखांकित करता है।13

इसके अलावा, फेक न्यूज का खतरा लोकतांत्रिक प्रक्रिया के लिए भी एक बड़ा खतरा है। विशेष रूप से चुनावों के दौरान, जनता की राय को प्रभावित करने और मतदान व्यवहार को प्रभावित करने के लिए भ्रामक आख्यानों को रणनीतिक रूप से तैयार किया जा सकता है।14 ग़लत जानकारी के प्रसार के माध्यम से, दुर्भावनापूर्ण सोशल मीडिया एकाउंट्स लोकतांत्रिक संस्थानों की अखंडता को कमज़ोर कर सकते हैं, जिससे संभावित रूप से ऐसे उम्मीदवारों या नीतियों का चुनाव हो सकता है जो मतदाताओं की अच्छी तरह से सूचित विकल्पों के बजाय झूठ पर आधारित हैं। परिणामस्वरूप, सूचना के विश्वसनीय स्रोतों पर जनता का भरोसा कम हो जाता है, जिससे लोकतंत्र की नींव कमज़ोर हो जाती है। यह क्षरण एक सूचित नागरिक वर्ग के लिए आवश्यक सटीक जानकारी के मुक्त प्रवाह को बाधित करता है, जिससे लोकतांत्रिक प्रक्रिया को बेहतर ढंग से कार्य करने में बाधा आती है।

भारत में फेक न्यूज का एक और हानिकारक प्रभाव इसके उत्पन्न होने वाले आर्थिक परिणाम हैं। ग़लत जानकारी का प्रसार व्यवसायों, उद्योगों और निवेश माहौल पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। फेक न्यूज घबराहट और अनिश्चितता पैदा कर सकती हैं, जिससे बाज़ार में अस्थिरता, निवेशकों का विश्वास खोना और आर्थिक मंदी आ सकती है, जैसा कि पेंटागन हमले के चित्र के मामले में देखा गया था। इसके अलावा, यह व्यक्तियों, कंपनियों और संस्थानों की प्रतिष्ठा को धूमिल कर सकता है, जिससे उनकी वित्तीय स्थिति और संभावनाओं को अपूरणीय क्षति हो सकती है। फेक न्यूज का आर्थिक प्रभाव तात्कालिक नुकसान से कहीं अधिक होता है, क्योंकि यह दीर्घकालिक विकास में बाधा बन सकता है, विदेशी निवेशपर प्रभाव डाल सकता है और देश के समग्र विकास को बाधित कर सकता है।

इसके अलावा, फेक न्यूज का सार्वजनिक स्वास्थ्य और सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों, जैसे कि कोविड-19 महामारी, के संबंध में ग़लत जानकारी के प्रसार से निवारक उपायों, उपचारों और टीकों के बारे में ग़लत सूचना फैली। 15 यह ग़लत सूचना भ्रम पैदा कर सकती है, प्रभावी सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रतिक्रियाओं में बाधा डाल सकती है और जीवन को खतरे में डाल सकती है। सुरक्षा प्रक्रियाओं या आपातकालीन स्थितियों से संबंधित ग़लत जानकारी भी घबराहट, ग़लत सूचना और अक्षम प्रतिक्रिया प्रयासों को जन्म दे सकती है, जिससे व्यक्तियों और समुदायों की भलाई और सुरक्षा से समझौता हो सकता है।

फेक न्यूज से निपटने के सुझाव- भारत में फर्जी समाचार चुनौती से निपटने के लिए सरकारों, प्रौद्योगिकी प्लेटफार्मों, मीडिया संगठनों और नागरिक समाज सहित विभिन्न हितधारकों को शामिल करते हुए एक बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है। मीडिया साक्षरता बढ़ाने, तथ्य-जाँच तंत्र को मजबूत करने और सोशल मीडिया के जिम्मेदार उपयोग को बढ़ावा देने के लिए सक्रिय उपाय किए जाने चाहिए।

ग़लत सूचना के प्रसार से निपटने के लिए तथ्य -जाँच पहल को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। मीडिया संगठनों और स्वतंत्र संस्थाओं दोनों के भीतर तथ्य-जाँचकर्ताओं की समर्पित टीमें सक्रिय रूप से झूठे समाचारों की निगरानी और खंडन कर सकती हैं। इन तथ्य-जाँच संगठनों को उनकी प्रभावकारिता

और स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त संसाधन और समर्थन प्रदान किया जाना चाहिए।

फर्जी खबरों को संबोधित करने में प्रौद्योगिकी मंच भी महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी निभाते हैं। सोशल मीडिया कंपनियों को संभावित रूप से ग़लत या भ्रामक सामग्री का पता लगाने और चिह्नित करने के लिए उन्नत एल्गोरिदम और कृत्रिम बुद्धिमत्ता टूल में निवेश करना चाहिए।

तथ्य-जाँच संगठनों के साथ बेहतर सहयोग उपयोगकर्ताओं को विवादित या खारिज की गई सामग्री के बारे में सटीक जानकारी और चेतावनियाँ प्रदान कर सकता है। उपयोगकर्ताओं के साथ विश्वास फिर से बनाने के लिए एल्गोरिथम निर्णयों में पारदर्शिता आवश्यक है। किसी भी संबंधित कहानी के वास्तविक तथ्यों को प्राप्त करने के साथ इसे उस व्यक्ति तक पहुँचाया जाना चाहिए जिसे किसी सोशल मीडिया के उपयोगकर्ता ने ग़लत देखा हो, इस कार्य को करने के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग किया जा सकता है।

इसके अलावा, मीडिया संगठन सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर समर्पित चैनल चलाकर फर्जी खबरों का मुकाबला करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। ये चैनल सक्रिय रूप से ग़लत सूचनाओं को खारिज कर सकते हैं, सटीक और सत्यापित जानकारी प्रदान कर सकते हैं और इंटरैक्टिव प्रारूपों के माध्यम से उपयोगकर्ताओं के साथ जुड़ सकते हैं। अपनी विश्वसनीयता और पहुँच का लाभ उठाकर, मीडिया आउटलेट सार्वजनिक चर्चा को आकार देने और फर्जी समाचार स्रोतों का एक विश्वसनीय विकल्प प्रदान करने में मदद कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त, केबल समाचार चैनल विशेष रूप से फेक न्यूज के प्रमुख उदाहरणों के तथ्य लोगो के सामने रखने के उद्देश्य से कार्यक्रम चला सकते हैं। ये कार्यक्रम वायरल कहानियों का विश्लेषण और तथ्य-जाँच कर सकते हैं, ग़लत सूचनाओं को सही करने के लिए एक मंच प्रदान कर सकते हैं और जनता को फर्जी खबरों के प्रभाव के बारे में शिक्षित कर सकते हैं। नियमित रूप से इस तरह की न्यूज का खंडन कर, अधिक सूचित नागरिक वर्ग के निर्माण और झूठी कहानियों के प्रसार को हतोत्साहित करने में योगदान दे सकते हैं। इन पहलों की प्रभावशीलता सुनिश्चित करने के लिए सभी पक्षों के बीच सहयोग आवश्यक है। सरकारें जिम्मेदार डिजिटल नागरिकता, सामग्री मॉडरेशन और मीडिया साक्षरता प्रयासों को बढ़ावा देने वाले समर्थन, संसाधन और नियामक ढांचे प्रदान करके एक सुविधाजनक भूमिका निभा सकती हैं।

अत: भारत में फेक न्यूज की समस्या से निपटने के लिए बहु-आयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है। मीडिया साक्षरता को मजबूत करना, तथ्य-जाँच तंत्र को बढ़ाना, प्रौद्योगिकी प्लेटफार्मों द्वारा जिम्मेदार व्यवहार को बढ़ावा देना और मीडिया संगठनों के प्रभाव का लाभ उठाना सभी महत्त्वपूर्ण कदम हैं। सामूहिक रूप से काम करके, भारत फेक न्यूज के प्रभाव को कम कर सकता है, सार्वजनिक विश्वास की रक्षा कर सकता है और एक अधिक सूचित और लचीला समाज विकसित कर सकता है।

000

संदर्भ-

1.https://www.aajtak.in/world/story/how-a-fake-ai-image-of-pentagon-explosion-fooled-the-world-ntc-1701227-2023-05-23, 2.Stahl, B. C. (2006). On the difference or equality of information, misinformation, and disinformation: A critical research perspective. Informing Science, 9, 83., 3.Fuchs, C. (2021). Social media: A critical introduction. Social Media, 1-440., 4.Bala, K. (2014). Social media and changing communication patterns. Global Media Journal: Indian Edition, 5(1)., 5.Kim, Y., & Lowrey, W. (2015). Who are citizen journalists in the social media environment? Personal and social determinants of citizen journalism activities. Digital journalism, 3(2), 298-314., 6.National Portal of India. (2023). https://knowindia.india.gov.in/profile/literacy.php, 7.Singh, P. (2023, April 11).

केरल है भारत का सबसे शिक्षित राज्य, बिहार सबसे पीछे, जानें कितनी है साक्षरता दर. News 18 हिन्दी.

https://hindi.news18.com/photogallery/education/which-state-has-the-highest-and-lowest-literacy-rate-in-india-5842333.html, 8.Al-Zaman, M. S. (2021). Social media fake news in India. Asian Journal for Public Opinion Research, 9(1), 25-47., 9.Press Trust of India & Business Standard. (2019, February 5). Microsoft survey: Indians are more likely to encounter online fake news. www.business-standard.com. https://www.business-standard.com/article/pti-stories/microsoft-survey-india-topping-fake-news-menace-globally-119020501427_1.html, 10.Meyer, R. (2018). The grim conclusions of the largest-ever study of fake news. The Atlantic, 8, 2018., 11.Westerlund, M. (2019). The emergence of deepfake technology: A review. Technology innovation management review, 9(11)., 12.OSMUNDSEN, M., BOR, A., VAHLSTRUP, P., BECHMANN, A., & PETERSEN, M. (2021). Partisan Polarization Is the Primary Psychological Motivation behind Political Fake News Sharing on Twitter. American Political Science Review, 115(3), 999-1015. doi:10.1017/S0003055421000290, 13.Mathur, P. (2021). FAKE NEWS AND REAL VIOLENCE. HOME TEAM, 109., 14.Tufekci, Z. (2018). How social media took us from Tahrir Square to Donald Trump. MIT Technology Review, 14, 18., 15.Rocha, Y. M., de Moura, G. A., Desidério, G. A., de Oliveira, C. H., Lourenço, F. D., & de Figueiredo Nicolete, L. D. (2021). The impact of fake news on social media and its influence on health during the COVID-19 pandemic: A systematic review. Journal of Public Health, 1-10.

(शोध आलेख)

रसखान : श्रीकृष्ण लीला के विदग्ध गायक

शोध लेखक : प्रो. चंद्रकांत सिंह
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला (हिप्र)
मोबाइल- 08219939068
ईमेल- chandrakants166@hpcu.ac.in
एवं
आशीष कुमार मौर्य
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला (हिप्र)
मोबाइल- 8808868252
ईमेल- ashish319155@gmail.com

कृष्णभक्ति काव्य में अष्टछाप कवियों के अतिरिक्त 'रसखान' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्वानों ने अंत: साक्ष्य और बाह्य साक्ष्य के आधार पर इनका मूल नाम सैयद इब्राहीम बताया है। इनका जन्म स्थल पिहानी (जनपद- हरदोई) है। रसखान का संबंध सैयद वंश से था। बाद के दिनों में रसखान दिल्ली आ गए। संवत् 1612-13 वि0 के आस-पास सत्ता वर्चस्व के लिए दिल्ली के सूरवंशियों और मुग़लों के बीच राष्ट्रव्यापी युद्धोन्माद जैसी विषम स्थिति रही। जिसका परिणाम हुआ कि दिल्ली में भयानक अराजकता के साथ नरसंहार जैसी घटनाएँ घटित हुईं। ठीक इसी समय संवत् 1612 वि0 में दिल्ली एवं आगरा में भीषण अकाल पड़ा जिसका वर्णन प्रसिद्ध इतिहासकार अब्दुल कादिर बदायूँनी ने अपनी पुस्तक 'मुनतखिबुत्तवारीख' में किया है। इस अकाल के कारण लोग नरमाँस और घास-पात खाने के लिए विवश थे। इन घटनाओं से दिल्ली व उसके आस-पास का जन-जीवन पूर्णत: ध्वस्त हो गया था। इन दोनों हृदय विदारक घटनाओं से विमुख होकर रसखान ब्रज की ओर चले आए जिसका संकेत स्वयं उन्होंने 'प्रेमवाटिका' में किया है- देखि गदर हित साहबी, दिल्ली नगर मसान। / छिनहिं बादसा-बंस की, ठसक छोरि रसखान।।1 रसखान के भक्तिमार्ग के संदर्भ में एक अन्य कथा भी मिलती है जिसका उल्लेख प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी ने 'रसखान-पदावली' में किया है। वह कहते हैं कि रसखान युवा अवस्था में किसी स्त्री से प्रेम करते थे। जो अत्यंत सुंदर एवं मानवती थी। किंतु उसकी अनदेखी के कारण रसखान कृष्ण-भक्ति की ओर उन्मुख होते चले गए। इसका वर्णन स्वयं रसखान ने किया है- तोरि मानिनी तें हियो, फोरि मोहिनी-मान। / प्रेमदेव की छविहि लखि, भए मियाँ रसखान।।2

रसखान के ब्रज आने का चाहे कोई भी कारण रहा हो किंतु तत्कालीन परिस्थितियों में यह घटना अविस्मरणीय ही कही जाएगी। उन्होंने मुस्लिम होकर भी भारतीय धर्म एवं दर्शन की गूढ़ बातों को जिस तरह आत्मसात किया है, वह चकित करने वाला है। उन्होंने कृष्ण को ही अपना अभिन्न सखा माना। मित्रों की उलाहनाओं का वे सकारात्मक प्रत्युत्तर देते हैं, वे स्पष्ट कहते हैं कि- कौन मिताई कह सकै, श्रीनाथ साथ रसखान की।3

अर्थात जब भगवान् श्रीकृष्ण साथ हैं तो किसी मित्र की शिकायतों का क्या औचित्य ? यहाँ भगवान् कृष्ण के प्रति रसखान का उत्कट लगाव दिखता है। भगवान् की प्रपत्ति के बाद वे किसी बात को महत्त्वपूर्ण नहीं मानते। वे कृष्णभक्ति में लगातार निमग्न होते चले जाते हैं। इस निमग्नता एवं प्रगाढ़ता के कारण उन्हें ब्रज भूमि से क्रमश: अनुराग स्थापित हो जाता है। वे अपने पदों के माध्यम से कहते हैं- मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन। / जो पशु हौं तौ कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।। / पाहन हौं तौ वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरंदर धारन। / जो खग हौं तौ बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन।।4

उपर्युक्त पंक्तियों में रसखान का कृष्ण और ब्रज-भूमि के प्रति अतिशय लगाव दिखता है। उनका कृष्ण के प्रति यह लगाव जीवन पर्यंत बना रहा। यही कारण है कि भगवान् कृष्ण का प्रत्येक रूप इनको आकर्षित करता है। रसखान कृष्ण की बाल छवि का वर्णन करते हुये लिखते हैं कि धूल से धूसरित हमारे आराध्य श्याम का शरीर बहुत ही शोभायमान है जिस पर कामदेव की कोटि सुंदरता न्यौछावर है। उस कौवे का कितना बड़ा भाग्य है कि हरि के हाथ से माखन-रोटी लेकर चला गया। रसखान की कविताओं को पढ़ते हुए यही लगता है कि ये कृष्ण प्रेम की माधुरी में पगी हुई कविताएँ हैं जिनका दायरा अत्यंत विस्तृत है। जिन्हें पढ़ते हुए न केवल श्रीकृष्ण की मोहक छवि एवं सौंदर्य का दिग्दर्शन होता है बल्कि ऐसा लगता है जैसे सम्पूर्ण ब्रजमंडल जीवंत हो उठा हो- धूर भरे अति शोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुंदर चोटी। / खेलत खात फिरैं अँगना पग पैंजनी बाजती, पीरी कछोटी।। / वा छवि को रसखानि बिलोकत बारत काम-कला निज कोटी। / काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी।।5

सूरदास जी ने हिन्दी की कृष्ण काव्य-परंपरा में माधुर्य भाव का समावेश कर बाद के कवियों के मार्ग को प्रशस्त करने का श्लाघनीय कार्य किया। उसी भाव की उपस्थिति रसखान की

कविता में भी दिखाई पड़ती है। इस भाव की भक्ति के तीन प्रमुख अंग- रूप, विरह-वर्णन तथा आत्मसमर्पण आदि का भाव रसखान के यहाँ दिखाई पड़ता है। इन्होंने सूरदास की तरह राधा-कृष्ण के रूप का वर्णन बहुत ही मनोहारी ढंग से किया है। इन्होंने 'सुजान-रसखान' में कृष्ण की अन्यान्य छवियों यथा- कृष्ण के बाल रूप, बाँसुरी बजाते हुए, गोपियों को रिझाते हुए आदि को सुंदर ढंग से अंकित किया है। रसखान ने अपने एक सवैये में कृष्ण के विषय में वर्णन करते हुए लिखा है कि जिस भगवान् कृष्ण के गुणों का स्मरण शेषनाग, गणेश, शिव, सूर्य, इंद्र आदि निरंतर करते हैं, उस अनादि, अनंत, एवं अगोचर कृष्ण को अहीर की लड़कियाँ छछिया-भर छाछ के लिए नाच नचा रही हैं। यह दृश्य इतना मनोरम है कि कृष्ण-भक्ति का मानो जागतिक लोक पाठकों की आँखों के सामने खड़ा हो जाता है। रसखान को पढ़ते हुए पाठक केवल पाठक रहता है या कह लें कि भक्त ही रह जाता है वह हिंदू-मुस्लिम, मत-सम्प्रदाय की सभी बंदिशों से ऊपर उठ जाता है। यह एक कवि के रूप में रसखान की बड़ी सहृदयता है- सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं। / जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं।। / नारद से सुक व्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं। / ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं।।6

रसखान के काव्य में कृष्ण लीला के विविध रूप दृष्टिगत होते हैं। इस लीला वर्णन को लक्ष्य करके सत्यदेव मिश्र जी लिखते हैं कि- "इनके काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य कृष्ण का लीला-विलास है।"5 सत्यदेव मिश्र जी द्वारा रसखान की कविता के विषय में यह कहना बिल्कुल सत्य है क्योंकि जब कोई साधक अपने आराध्य की भक्ति में पूर्णत: डूब जाता है तो उस स्थिति में उसके स्वयं का अस्तित्व नहीं रह जाता, तब वह अपने मुख से जो कुछ भी कहता है उसमें उसके ईश्वर का ही दर्शन होता है। ठीक यही स्थिति रसखान की भी है। श्रीकृष्ण की भक्ति में तन्मय होकर रसखान उनकी लीलाओं का गान करते हैं। कृष्ण की ये लीलाएँ रसखान को सदा आकर्षित करती रही हैं। इन्होंने अपने एक पद में भगवान् कृष्ण के प्रति माता यशोदा के वात्सल्य भाव और प्रात:कालीन श्रीकृष्ण के शृंगार का जो मार्मिक चित्रण किया है, उसे पढ़ते हुए न केवल माता-पुत्र के प्रेम भाव का संचार पाठकों के हृदय में होता है बल्कि कृष्ण की मोहक छवि की छाप भी गहरे सहृदय के चित्त में उतरती चली जाती है- आजु गई हुती भोर ही हौं रसखानि रई कहि नंद के भोनहिं। / बाको जियो जुग लाख करोर जसोमति को सुख जातक हौं नहिं।। / तेल लगाइ कै अंजन भौंह बनाइ बनाइ डिठौनहिं। / डालि हमेलनि हार निहारत बारत ज्यौं चुचकारत छौंनहिं।।8

रसखान कृष्ण की सुंदरता के प्रति बहुत आसक्त थे। वे कृष्ण की सुंदरता का वर्णन करते हुये कहते हैं कि भगवान् कृष्ण कानों में कुंडल पहने हुए हैं और मोर का पंख उनके सिर पर शोभायमान है। वे अपना वेश प्रतिपल बदलते रहते हैं। उनका यह वेश बदलना हर क्षण नया लगता है। उनके पैरों में पैजनी सुशोभित है। ऐसे भगवान् कृष्ण की सुंदर छवि रसखान के अंतर्मन में बस गई है जो निकालते नहीं निकलती है। इन पंक्तियों का क्या ही कहना ! इन्हें पढ़ते हुए कोई नहीं कह सकता कि ये पंक्तियाँ कृष्ण भक्ति शाखा के मँझे हुए संत की नहीं हैं। इन पंक्तियों में जो प्रेम एवं भाव का अपूर्व ज्वार है वह भक्ति की चासनी में पगा हुआ है जिसे पढ़ते हुए पाठक मात्र भोक्ता या सहृदय नहीं रहता बल्कि वह रसखान की अनुभव-संपदा से युक्त हो जाता है- दोउ कानन कुंडल मोरपखा सिर सोहै दुकूल नयो चटको। / मनिहार गरे सुकुमार धरे नट भेस अरे पिय को टटको।। / सुभ काछनी बैजनी पैंजनी पामन आमन मै न लगै झटको। / वह सुंदर को रसखानि अली जुग गलीन मैं आइ अबै अँटको।।9

गोपियाँ कृष्ण के रूप सौंदर्य को देखकर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देती हैं। इन गोपियों को कृष्ण के बिना शांति नहीं है। कृष्ण की साँवली-सलोनी सूरत दिन-रात गोपियों की आँखों के सम्मुख घूमती है। कृष्ण की छवि को देखने के लिए गोपियाँ व्याकुल हैं। गोपियों की इस व्याकुलता का वर्णन रसखान अपने शब्दों में कुछ इस प्रकार करते हैं- सोहत हैं चँदवा सिर मौर के जैसियै सुंदर पाग कसी है। / तैसियै गोरज भाल बिराजति जैसी हिये बनमाल लसी है।। / रसखानि बिलोकत बौरी भई दृग मूँदि कै ग्वालि पुकारी हँसी है। / खोली री घूँघट खोलौं कहा वह मूरति नैनन माँझ बसी है।।10

एक पद में रसखान गोपियों की आप बीती सुनाते हैं। एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि ए ! सखी कृष्ण का दर्शन करने के लिए नयन बहुत आतुर हैं। कृष्ण की बात सुनने के लिए कान अकुलाए हैं। उनकी तरह-तरह की भाव-भंगिमाएँ हृदय को मथ देती हैं परंतु कृष्ण ऐसे हैं कि हम गोपियों की सुध भी नहीं लेते मानो वे हमें भूल ही गए हैं- देखन कों सखी नैन भए न सने तन आवत गाइन पाछैं। / कान भए इन बातन के सुनिबे कों अमिनिधि बोलन आछैं।। / पै सजनी न संहारि परै वह बाँकी बिलोकन कोर कटाछैं। / भूलि गयो न हियो मेरी आली जहाँ पिय खेलत काछिनी काछैं।।11

ब्रज की सभी स्त्रियाँ कृष्ण-प्रेम में स्वयं को अर्पित कर देती हैं। उन स्त्रियों का रोम-रोम कृष्ण के ग्वाले रूप पर पुलकित हो उठता है। उनके प्रेम में वे इतना पगी हैं कि उनको किसी कार्य की सुध नहीं रहती। ऐसे ग्वाल रूपी कृष्ण जब बाँसुरी पर कोई धुन छेड़ते हैं तो इन स्त्रियों का अनुराग जागृत हो उठता है- आयो हुतो नियरें रसखानि कहा कहूँ तू न गई वह ठैंया। / या ब्रज हुतो में सिगरी बनिता सब बारति प्राननि लेत बलैया।। / कोऊ न काहू की कानि करै कछु चेटक सो जु कर्यो जदुरैया। / गाइगो तान जमाइगो नेह रिझाइगो प्रान चराइगो गैया।।12

रसखान कृष्ण और गोपियों के बीच चल रही लीलाओं का भी अद्भुत वर्णन करते हैं। इनकी कविताओं में कृष्ण के प्रति आकंठ लगाव दिखता है। एक सवैये में वह कहते हैं कि बृजराज अर्थात कृष्ण के प्रेम का डंका सर्वत्र बजा हुआ है। कृष्ण का यह प्रेम सभी को पराभूत कर देता है। इसलिए एक गोपी दूसरी गोपी से बाहर दही-दूध बेचने का आग्रह

करती है जिससे रसिक शिरोमणि कृष्ण से भेंट न हो और अँखियाँ उस प्रेम प्यासे के अधीन न हो जाएँ- बारहीं गोरस बेंचि री आजु तूँ माइ कै मूड़ चढ़ै कत मौड़ी। / आवत जात लौं होयगी साँझ भटू जमुना भतरौंड़ लों औड़ी।। / ऐसे में भेंटतही रसखानि ह्वै हैं अँखिया बिन काज कनौड़ी / एरी बलाइ ल्यों जाइगी बाज अबै ब्रजराज सनेह की डौड़ी।।13

कृष्ण द्वारा गोपियों के रिझाने का सजीव वर्णन भी रसखान ने किया है। वे कहते हैं कि कृष्ण और गोपियाँ आँखों-आँखों में एक-दूसरे से मिलने की इच्छा प्रकट कर रही हैं। वे पारस्परिक रूप से ईशारों में बात करते हैं। कृष्ण गोपियों पर ऐसा मोहिनी मंत्र चला देते हैं जिससे गोपियाँ उनके बस में हो गई हैं- अँखियाँ अँखियाँ सों सकाय मिलाय हिलाय रिझाय हियो भारिबो। / बतियाँ चितचोरन चेतक सी रस चारु चरित्रन ऊँचरिबो।। / रसखानि के प्रान सुधा भरियो अधरान पै त्यों अधरा धरिबो। / इतने सब मैन के मोहनी जंत्र पै मंत्र बसीकर सी करिबो।।14

रसखान को कृष्ण की शैशवावस्था के साथ-साथ तारुण्य और किशोरावस्था भी प्रिय है। प्रेम-रस संसिक्त यौवन, स्वच्छंद विहार, आवर्जनाओं का अधिकरण, मधुमय ऋतु-प्रभाव, यौवन की मादकता, उद्दाम आवेग, मद विह्वल उन्माद, उल्लास तथा प्रेयसियों से छेड़-छाड़ की सुंदर तस्वीरें रसखान के काव्य में यत्र-तत्र पायी जाती हैं। प्रेम-रस में सिक्त राधा-कृष्ण के प्रगाढ़ आलिंगन को देखकर एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि वृक्ष की छाया में वे दोनों अंग-प्रत्यंग गहरे स्पर्श सुख में भींगे हुए हैं। प्रियतम-प्रियतमा के स्वर्ण आभा युक्त कुम्भ के समान सुडौल कुचों का और अधोवस्त्र का स्पर्श कर नीबि-संधान करने का जब-जब प्रयास करता है तब-तब संभोग-सुख में अंतर्लिप्त नायिका नहीं-नहीं शब्द का उच्चारण करती है- अंगनि अंग मिलाय दोऊ रसखानि रहे लपटे तरु छाँहीं। / संग निसंग अनंग को रंग सुरंग सनी पिय दै गल बाँहीं।। / बैन ज्यों मैन सु ऐन सनेह कों लूटि रहे रति अंतर जाहीं। / नीबी गहै कुच कंचन कुंभ कहै बनिता पिय नाहीं जू ना नाहीं।।15

एक पद में रसखान कृष्ण के बाँसुरी बजाते हुये रूप पर कहते हैं कि उनका बंसी बजाते हुये कटाक्ष करना जादू जैसा प्रभाव डालता है। कृष्ण-दर्शन के भाव में राधा के साथ ही सभी गोपियाँ नंद बाबा के द्वार पर विष पीकर प्राणोत्सर्ग करने का दृढ़ संकल्प भी लेती हैं- बंसी बजावत आनि काढ़ो सो गली में अली कछू टोना सों डारैं। / हेरि चितै तिरछी करि दृष्टि चलो गयो मोहन मूठि सी मारैं।। / ताही घरी सों परी धरी सेज पै प्यारी न बोलति प्रानहूँ वारैं। / राधिका जीहै तौ जीहैं सबै न तौ पीहैं हलाहल नंद के द्वारैं।।16

गोपियाँ कृष्ण के रूप सौंदर्य से इतनी प्रभावित हैं कि उन्हें, उनका बाँसुरी बजाना अच्छा नहीं लगता है। सभी गोपियाँ यह विचार करती हैं कि ब्रज में केवल बाँसुरी रहेगी हम लोग यहाँ से कहीं और चले जाते हैं। इस प्रकार के दृश्यों का वर्णन रसखान कुछ इस प्रकार करते हैं- कांह भए बस बाँसुरी के अब कौन सखी हमकों चहिहै। / निस द्यौस रहै सँग साथ लगी यह सौतिन तापन क्यों सहिहै।। / जिन मोहि लियो मनमोहन को रसखानि सदा हमकों दहिहै। / मिलि आओ सबै सखी भाग चलैं अब तो ब्रज मैं बँसुरी रहिहै।।17

एक बार श्रीकृष्ण ने किसी धुन में एक प्रेयसी का नाम भर ले लिया। तभी से उस प्रियतमा के मन में कृष्ण के समीप आने की और उस पीतांबरी के वक्र सौंदर्य से साक्षात्कार करने की अलभ्य अभिलाषा सुगबुगा रही है। संयोगवश उस मनोहारी मनचोर पर उसकी नज़र पड़ गई तभी से वह मन में अटक गया है और हृदय विदग्ध हो उठा है- एक समै मुरली धुनि मैं रसखानि लियो कहुँ नाम हमारो। / ता दिन तें परि बैरी बिसासिनी झाँकन देती नहीं है दुवारो।। / होत चबाव बचाओं सु क्यों करि अलि भेंटिए प्रान पियारो। / दृष्टि परी तबहीं चटको अटको हियरे पियरे पटवारो।।18

एक पद में गोपियाँ कृष्ण से एकात्म स्थापित कर कृष्ण-रूप को ही धारण कर लेती हैं। स्वयं कृष्णमय होने की अलभ्य लालसावश सखी के सुझाव पर गोपी कृष्ण की भाँति मोरपंखों का सिर-मुकुट बनाने, गुंजों की माला पहनने, लकुटी लेने, पीतांबर ओढ़ने, निरंतर मुरली धारण करने जैसे सभी उपक्रम करने के लिए आतुर है जिससे कि वह कृष्ण ही हो जाए- मोरपखा सिर ऊपर राखिहौं गुंज की माल गरें पहिरौंगी। / ओढ़ी पितंबर लै लकुटी बन गोधन ग्वारिन संग फिरौंगी।। / भावतो वोहि मेरो रसखानि सों तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी। / या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी।।19

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार अमीर ख़ुसरो भारतीय चिंतन धारा से प्रभावित होकर स्वयं से हिंदुई में बात करने के लिए कहते हैं। ठीक उसी प्रकार तत्कालीन समय में कबीर, जायसी आदि सूफ़ी कवियों के साथ संत रज्जब, रहीम, ताज बीबी आदि मुस्लिम संतों और भक्तों ने भारतीय धर्म-दर्शन, आचार-विचार से प्रभावित होकर समाज में समरसता स्थापित करने के साथ-साथ हिन्दुओं तथा मुसलमानों को एक भावभूमि पर ला खड़ा किया। इसी महत्त्वपूर्ण काव्य- धारा में रसखान भी कृष्ण के प्रति अपनी अमोघ भक्ति के लिए जाने जाते हैं। रसखान अपने काव्य में कृष्ण लीला के विविध रूपों का दिग्दर्शन करते हैं। इस तरह कवि लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की भावभूमि पर पहुँचने में सफल होते हैं।

000

संदर्भ- 1.मिश्र विद्यानिवास तथा मिश्र सत्यदेव सं0, रसखान रचनावली, पृ. सं0- 91, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपरबैक संस्करण- 2021 ई0। 2.वही, पृ. सं0- 91, 3.चौबे देवेंद्र, रसखान, पृ. सं0- 8, सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केंद्र, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2022 ई0, 4.वही, पृ. सं0- 21, 5.वही, पृ. सं0- 24, 6.वही, पृ. सं0- 27, 7.वही, पृ. सं0- 14, 8.बोहल शोध मंजूषा, अक्टूबर- 2020 अंक, पृ. सं0- 160, 9.वही, पृ. सं0- 27, 10.वही, पृ. सं0- 25, 11.वही, 12.वही, पृ. सं0- 25, 13.वही, 14.वही, 15.वही, पृ. सं0- 24, 16.वही, पृ. सं0- 23, 17.वही, पृ. सं0- 22, 18.वही, 19.वही, पृ. सं0- 21

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

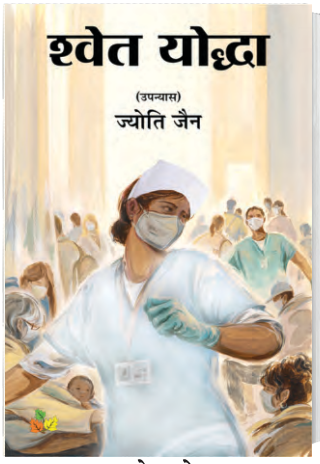

श्वेत योद्धा
उपन्यास
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 175 रुपये, वर्ष- 2024

ऐ वहशते-दिल क्या करूँ
उपन्यास
लेखक - पारुल सिंह
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

टूटी पेंसिल
कहानी संग्रह
लेखक - हंसा दीप
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

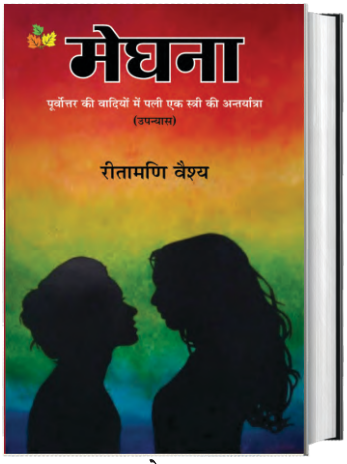

मेघना
उपन्यास
लेखक - रीतामणि वैश्य
मूल्य- 400 रुपये, वर्ष- 2024

पीली पर्ची
कहानी संग्रह
लेखक - शिवेन्दु श्रीवास्तव
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

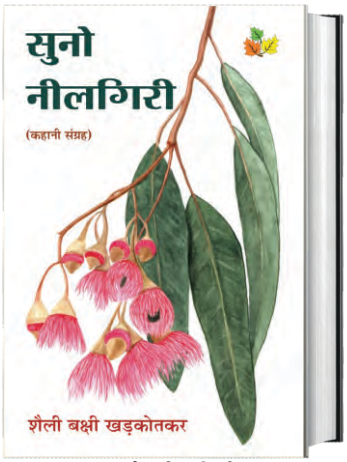

सुनो नीलगिरी
कहानी संग्रह
लेखक - शैली बक्षी खड़कोतकर
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

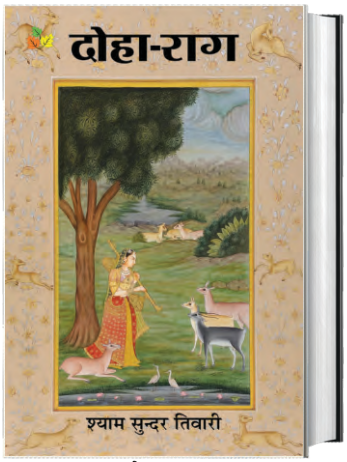

दोहरा राग
दोहा संग्रह
लेखक - श्याम सुन्दर तिवारी
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

कुछ चेहरे कुछ यादें
रेखाचित्र संग्रह
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 175 रुपये, वर्ष- 2024

व्यंग्य के नेपथ्य - 2
आलोचना
संपादक - प्रेम जनमेजय
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

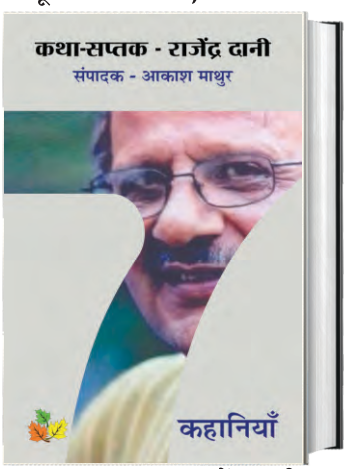

कथा सप्तक - राजेंद्र दानी
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2024

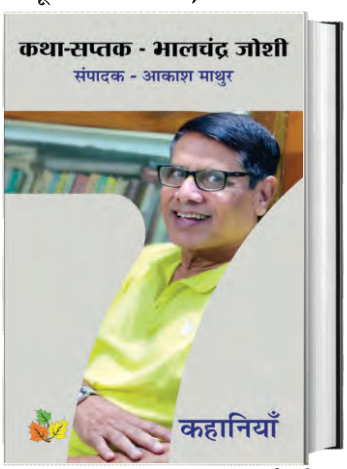

कथा सप्तक - भालचंद्र जोशी
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

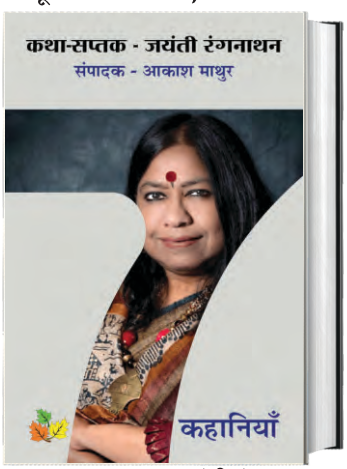

कथा सप्तक - जयंती रंगनाथन
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2024

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 2-8, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फ़ोन- 07562405554, 07562490372
मोबाइल- +91-9806162184 (शहरयार), +91-6265665580
व्हाट्सएप- +91-8959446244, ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com
वेबसाइट- www.shivnaprakashan.com

Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com
+91-8959446244 https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
https://www.amazon.in/s?me=A17JJYGSVM2CEV

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में शिवना प्रकाशन की नई पुस्तकों का विमोचन

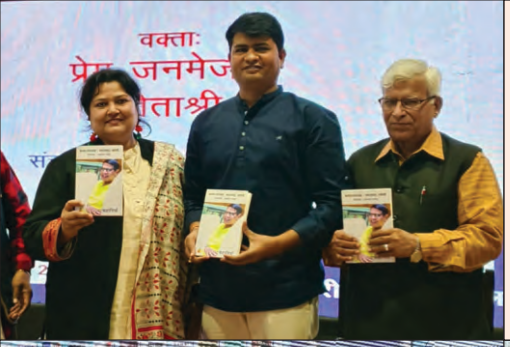

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में शिवना प्रकाशन की नई पुस्तकों का विमोचन

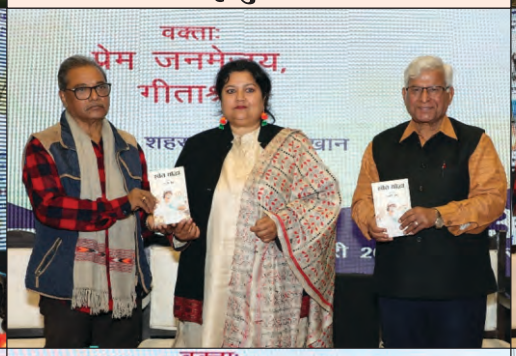

Shivna Sahityiki ● Quarterly ● April-June 2024 ● RNI : MPHIN/2016/67929 ● ISSN : 2455-9717

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2022-23 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह। अतिथिगण- पंडित अजय पुरोहित, समाजसेवी श्री अखिलेश राय, डॉ. विजय सक्सेना, श्री अनिल पालीवाल तथा श्री कैलाश अग्रवाल।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2022-23 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह। अतिथिगण- पंडित अजय पुरोहित, समाजसेवी श्री अखिलेश राय, डॉ. विजय सक्सेना, श्री अनिल पालीवाल तथा श्री कैलाश अग्रवाल।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2022-23 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह। अतिथिगण- पंडित अजय पुरोहित, समाजसेवी श्री अखिलेश राय, डॉ. विजय सक्सेना, श्री अनिल पालीवाल तथा श्री कैलाश अग्रवाल।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2022-23 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह। अतिथिगण- पंडित अजय पुरोहित, समाजसेवी श्री अखिलेश राय, डॉ. विजय सक्सेना, श्री अनिल पालीवाल तथा श्री कैलाश अग्रवाल।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-490372, Mobile 09806162184, 08959446244 07828313926

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।